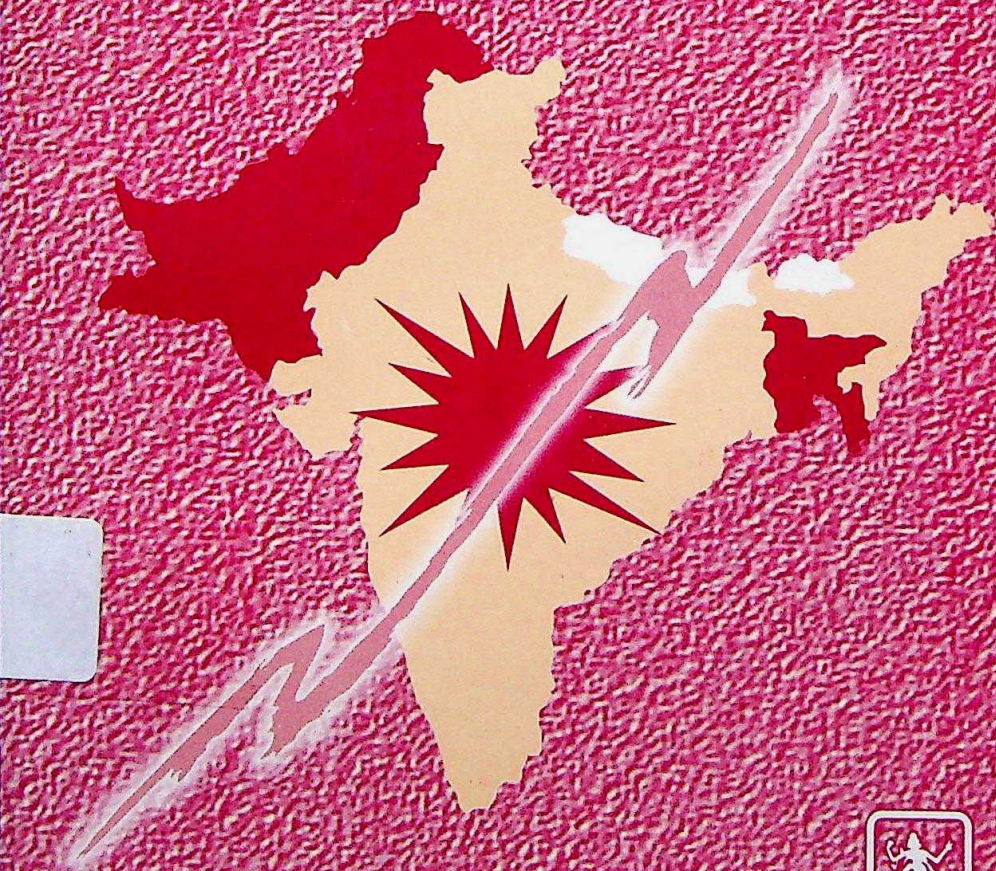


सुखदा

स्वाधीनता के पथ पर



स्वाधीनता के पथ पर

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

स्वाधीनता के पथ पर



लेखक : गुरुदत्त

आर्य साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Religious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web: www.aryasamaj.org

081



168021

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली - 05

© भारतीय साहित्य सदन

R
009.9143
GUP-S

आर्य समाज
Complete Vedic Books Store
Vedic & Sanskrit
Ved & Upanishad
(M)

मूल्य 150.00

प्रकाशक हिन्दी साहित्य बोर्ड

2 वी. डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005

email: indiabooks@rediffmail.com

फोन 51545969, 23553624

फैक्स 011-23553624

संस्करण 2004

मुद्रक त्रिवेणी ऑफसेट नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

कलक्टर की हत्या

टन...टन...टन...टन...। मन्दिर का घण्टा बज रहा था। देवता की आरती समाप्त हो चुकी थी। लोग चरणामृत पान कर अपने-अपने घर जा रहे थे। थड़ा, भक्ति, नम्रता और उत्साह से लोग आगे बढ़कर, दोनों हाथ जोड़, मस्तक नवा, देवता को नमस्कार करते और हाथ की अंजुली बना चरणामृत के लिए हाथ पसारते थे। पुजारी नंगे सिर, बड़ी चोटी को गाँठ दिये, केवल रामनामी ओढ़नी ओढ़े, देवता के चरणों के निकट चौकी पर बैठे अरघ्य से चरणामृत वाँट रहा था।

पुजारी जब चरणामृत देता था तो आँखें नीची किये रखता था। उसकी दृष्टि अधिक-से-अधिक लोगों के हाथों पर ही जाती थी। धीरे-धीरे सब लोग चले गये। पुजारी यद्यपि लोगों को देख नहीं रहा था, पर अनुभव कर रहा था कि उसका काम समाप्त हो रहा है। अकस्मात् उसकी दृष्टि एक स्त्री के हाथों पर पड़ी। ये हाथ भी चरणामृत पाने के लिए ही आगे बढ़े थे। इन हाथों को देखते ही पुजारों के हाथ काँपने लगे। अर्था चरणामृत सहित उसके हाथ से याचक के हाथों में गिर गया। पुजारी ने अरघ्य को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया, परन्तु तब तक वे हाथ पीछे खिसक गये थे। पुजारी ने हाथ और आगे बढ़ाया। स्त्री के हाथ पुजारी की पहुँच से दूर हो चुके थे। पुजारी ने आँख उठाकर स्त्री की ओर देखना चाहा, परन्तु स्त्री घूम गयी थी और पुजारी की ओर उसकी पीठ थी। वह चरणामृत पी रही थी। उसने चरणामृत पिया और अरघ्य को अपनी साड़ी के आँचल में छिपा लिया। इसके बाद पीछे की ओर देखा बिना वह मन्दिर के बाहर निकल गयी। पुजारी हाथ फैलाये, अवाक् मुख मन्दिर से बाहर जाती हुई स्त्री की पीठ देखता रह गया। ऐसा प्रतीत होता था कि वह अर्था माँगना चाहता है, परन्तु मुख से शब्द नहीं निकलता।

जब स्त्री आँखों से ओझल हो गई तो पुजारी की बुद्धि ठिकाने आई। उसे अपने हाथ फैलाने पर लज्जा प्रतीत हुई। उसने तुरन्त हाथ समेट लिये और मन्दिर में, चारों ओर देखकर, मन-ही-मन कहा, 'ओह ! चलो किसी ने देखा नहीं।'

: २ :

यह मन्दिर नगर के एक मोहल्ले के बीच में था। राय साहब सेठ कुंजबिहारी लाल ने अपनी वृद्धा माता के आग्रह पर श्री लक्ष्मीनारायण का यह मन्दिर बनवा-

कर नगर के एक प्रसिद्ध कथावाचक पं० श्यामाचरण को इसमें पुजारी नियुक्त कर दिया था। पं० श्यामाचरण अपने अकेले पुत्र मधुसूदन के साथ मन्दिर के पिछवाड़े वाले घर में रहता था। वह पुराने विचारों का रूढ़िवादी ब्राह्मण था। संसार की प्रगति से सर्वथा पृथक्, सागर में द्वीप की भाँति, अपने विचारों पर दृढ़, संसार-सागर की तरंगों की अवहेलना करता हुआ, अपने में लीन था। मधुसूदन पिता का लाड़ला पुत्र था। उसकी माँ का देहान्त उसी समय हो गया था, जब उसने इस संसार की वायु में पहला साँस खींचा था। तब से माता से भी अधिक स्नेह से पिता बालक का लालन-पालन करता आ रहा था। उसने बहुत कठिनाई से उसे पालकर बड़ा किया था, परन्तु इस परिश्रम में भी वह माँ के भाग का प्रेम, स्नेह और वात्सल्य भूला नहीं था। मधुसूदन को यह कभी अनुभव नहीं हुआ कि वह मातृ-विहीन है। उसके लिए श्यामाचरण माता, पिता और मित्र सबकुछ था।

मधुसूदन अति निर्मल बुद्धि का था। संस्कृत में शास्त्री, अंग्रेजी में बी० ए०, हिन्दी में साहित्यरत्न, गायन-विद्या में आचार्य, चित्रकला में निपुण, तात्पर्य यह कि अनेक गुण-सम्पन्न था। चौबीस वर्ष की आयु में इन सब बातों में उच्चकोटि की योग्यता प्राप्त करना कोई साधारण बात नहीं थी। यह उसकी प्रतिभा-विशेष का ही परिणाम था कि एक छोटे-से मन्दिर के पुजारी का लड़का होकर भी वह इतनी योग्यता प्राप्त कर सका था।

मधुसूदन की शिक्षा का भार राय साहब ही उठा रहे थे। राय साहब मधुसूदन की प्रतिभा को समझ गये थे। जब वह बालक ही था तब से ही मधुसूदन ने उनके मन पर अपनी विशेषता की छाप लगा दी थी। वह आरम्भ से ही उसकी शिक्षा का प्रबन्ध कर रहे थे।

राय साहब की अपनी कोई सन्तान भी नहीं थी। निःसन्तान मनुष्य प्रायः तोता, मैना, कुत्ता, बिल्ली वगैरह पालने में बहुत उत्साह दिखाते हैं, परन्तु राय साहब को यह प्रसन्द नहीं था। वह मधुसूदन के ही पालन और शिक्षा में अपने मन की रिक्तता को भरने का यत्न करते थे।

श्यामाचरण जानता था कि राय साहब उसके पुत्र पर विशेष कृपादृष्टि रखते हैं, परन्तु इस कृपा की सीमा कितनी लम्बी-चौड़ी है इसका अनुमान वह नहीं लगा सकता था। इस सीमा के जानने का उसने कभी यत्न भी नहीं किया।

मधुसूदन अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करने पर भी प्राचीन सभ्यता का कट्टर अनुयायी था। वह उसके संस्कृत साहित्य के पढ़ने और भारतवर्ष की विभूति, प्राचीन सभ्यता, को एक पुजारी की ऐनक से देखने के कारण ही नहीं था, प्रत्युत यूरोपीय सभ्यता को भारतीय न्याय और सांख्य के काँटे पर तोलने के कारण भी था। उसने शेक्सपियर, कीट्स और शैली पढ़े थे, परन्तु जब इनकी तुलना वह कालिदास और भवभूति तथा व्यास और पातञ्जलि से करता था तो उन्हें समुद्र के

किनारे पर केवल कंकर बटोरते हुए पाता था।

कुछ दिन से पुजारी को ज्वर आ रहा था। वह स्वयं ठाकुरजी की पूजा करने मन्दिर में नहीं आ सका था। मन्दिर का काम आजकल मधुसूदन को करना होता था। प्रातःकाल चार बजे उठता, मन्दिर को धो-गोंछकर साफ करना, स्नान इत्यादि कर, तिलक-छाप लगा, छः बजे पूजा पर बैठना होता था। छः बजे में लोगों का आना आरम्भ हो जाता था।

जब से मधुसूदन ने मन्दिर का काम आरम्भ किया था, पूजा तथा देव-दर्शन करने वालों की संख्या बढ़ रही थी। मधुसूदन ऊँचे, मीठे, संगीतभरे स्वर से पूजा के मन्त्र तथा श्लोक पढ़ता था। उसकी वाणी में माधुर्य, रस और प्रभाव था। मुख पर पूर्ण यौवन का तेज था। आँखों में ब्रह्मचर्य की मस्ती थी। देखने तथा सुनने वालों के हृदय गद्गद हो जाते थे। देवमूर्ति की अपेक्षा पुजारी की यह मूर्ति कहीं अधिक आकर्षण का केन्द्र बन रही थी। पूजा करने वालों में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कहीं अधिक होती थी, परन्तु मधुसूदन की आँखें देवमूर्ति के चरणों पर गड़ी रहती थीं और उसे पता नहीं रहता था कि मन्दिर में कौन आया है और कौन नहीं आया।

उक्त घटना का दिन पूर्णिमा का दिन था। सत्यनारायण की कथा सुबह से ही आरम्भ होकर बारह बजे तक चलती रही थी। मन्दिर में विशेष समारोह था। इसका कारण भी मधुसूदन ही था। पुजारी की बीमारी के कारण कथा भी उसे ही करनी थी। सदा से भिन्न, कथा में सरलता, मधुरता और रोचकता अधिक थी। दृष्टांत पर दृष्टांत दिये जा रहे थे, सुक्तियों की भरमार थी। बीच में एक-दो भजन भी हो गये थे। यद्यपि कथा सदा से लम्बी हो गयी थी, परन्तु किसी का जी नहीं उकताया, न ही कोई घबराया। समय से पूर्व कोई उठकर नहीं गया। सब मूर्तिमान बने, मुग्ध मन से कथा की नवीन विवेचना सुनते रहे। भाषा की सरलता ने कथा के आशय को साधारण अपढ़ स्त्रियों पर भी स्पष्ट कर दिया था, मानों पलक की झपक में समय व्यतीत हो गया।

: ३ :

जब अरघा लेकर वह स्त्री चली गयी तो किसी के द्वारा न देखे जाने पर मधुसूदन भगवान् का धन्यवाद करता हुआ आसन से उठा। मन्दिर का किवाड़ बन्द कर वह घर पहुँचा। पिता की लगभग स्वस्थ अवस्था देखकर बोला, “पिता जी, आपका ज्वर उतरे तो कई दिन हो गये, अब आपको मन्दिर का काम सँभालना चाहिये।”

श्यामाचरण कुछ खिन्न मन से बोला, “क्या इतने में ही घबरा गये? आज पहली बार कथा तुमने की है, और जानते हो, लोग क्या कहते हैं?”

“क्या कहते हैं?”

“अभी गोपाल आया था। कहता था, तुम तो मनुष्यरूप में साक्षात् भगवान् प्रतीत होते हो। बेटा ! तुम जैसा योग्य पुत्र पाकर मेरा मन फूला नहीं समाता।”

“परन्तु, पिताजी, आपके बँठे में पुजारी के आसन पर बैठना नहीं चाहता।”

आज मधुसूदन का मन भोजन में नहीं था। पिता ने एक-दो बार कुछ पूछा तो उसका उत्तर भी वह ठीक से नहीं दे सका। भोजनोपरान्त बाज़ार जाने के लिए तैयार हो गया। उस समय फिर पिता ने कुछ पूछा, परन्तु उसने टालमटोल कर दिया।

बाज़ार में सबसे पहला काम अरघा खरीदना था। पश्चात् वह सीधा राय साहब कुंजबिहारी के मकान पर जा पहुँचा। राय साहब घर पर नहीं थे। नौकर जानता था कि राय साहब मधुसूदन को बहुत मानते हैं। अतएव वहाँ पहुँचते ही राय साहब के नौकर ने बड़े आदर से उसे बैठाया। वह उनसे मिलने ही निकला था, अतः बैठक में डटकर जम गया।

मधुसूदन राय साहब के घर दोपहर के दो बजे पहुँचा था। राय साहब की प्रतीक्षा करते-करते सायंकाल के छः बजे गये, परन्तु वह नहीं आये। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जाता था उसका निश्चय राय साहब से मिलने का और भी पक्का होता जाता था। नौकर ने एक-दो बार आकर पूछा भी, ‘पण्डितजी, जल पीजियेगा?’, ‘पण्डितजी, बहुत आवश्यक काम है क्या?’, ‘राय साहब एक घण्टे तक आने के लिए कह गये थे’ इत्यादि।

मधुसूदन ने ‘हाँ’, ‘नहीं’, ‘ओह’ के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा।

नौकर बाज़ार में कुछ लेने चला गया। बैठक में अँधेरा हो चला था, परन्तु मधुसूदन को इसका ज्ञान नहीं था। वह अपने विचारों में मग्न था।

अकस्मात् किसी ने बैठक की बिजली जला दी। इस प्रकार प्रकाश हो जाने से मधुसूदन चौंक उठा। उसे समय का ज्ञान हो आया। अब उसने दृष्टि उठाई तो बिजली के बटन के पास एक स्त्री को खड़ी देखकर घबरा गया। स्त्री के मुख से ऐसा जान पड़ता था कि वह वहाँ किसी की उपस्थिति से अनभिज्ञ थी। प्रकाश होने पर मधुसूदन को एक कुर्सी पर विचारमग्न बैठा देख चौंक उठी। विस्मये में बोली, “आप...”, परन्तु शीघ्र ही अपने-आपको काबू में कर बोली, “कब आये?”

इतने में मधुसूदन ने भी स्त्री को पहचान लिया था। वह अपने-आपको संभालकर बोली, “राय साहब से मिलने आया था। परन्तु तुम... क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा?”

स्त्री बोली, “नहीं। यह स्वप्न नहीं है। आप ठीक ही देख रहे हैं। आपका विस्मित होना भी ठीक ही है। कल की देश-भक्तिनी, जाति-अभिमान से परिपूर्ण, देशद्रोहियों से घृणा करने वाली पूर्णिमा आज अमावस्या हो गई है। राय साहब देशद्रोही हैं न? और मुझे यहाँ नहीं होना चाहिये था। यही या कुछ और?”

मधुसूदन बात काटकर बोल उठा, “पूर्णमा ! पूर्णमा ! नहीं, यह बात नहीं। मेरे अचम्भे का कारण तो यह था कि तुम्हारा राय साहब से कैसा सम्बन्ध है जो मुझे भी ज्ञात नहीं। क्योंकि राय साहब मेरे पुराने हितचिन्तकों में से हैं और मैं इनके प्रायः सब सम्बन्धियों को जानता हूँ। यह जानते हुए भी कि तुम इस नगर में हो, तुम्हारे यहाँ मिलने की आशा नहीं थी।”

“क्यों आशा नहीं थी ?”

“तुम्हारा इनसे परिचय है, मैं यह नहीं जानता था।”

“परिचय लेकर तो कोई पैदा होता नहीं। यह पैदा करने से ही होता है। बतौड़ये, आप यहाँ किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ?”

“राय साहब की।”

“वह आज नहीं मिलेंगे। आपको मालूम नहीं कि आज कलक्टर के यहाँ दावत और नाच है और राय साहब उसी का प्रबन्ध कर रहे हैं।”

मधुसूदन बोला, “ओह ! ज्ञात तो था किन्तु अनुमान था कि वह एक बार दावत से पहले अवश्य घर आयेंगे। किन्तु अब तो उनसे मिलने के लिए यहाँ ठहरना व्यर्थ है। अच्छा ! चलता हूँ। नमस्ते।”

इतना कह मधुसूदन उठ खड़ा हुआ, परन्तु पूर्णमा की आँखों की चमक और होंठों की मुस्कराहट से यह जानकर कि उसके मन में कुछ है, यह जानने के विचार से वह ठहर गया। पूर्णमा हँस पड़ी और बोली, “क्या अपना अरघा नहीं माँगियेगा ?”

“बाजार से नया ले आया हूँ। मुझे क्या ज्ञात था कि तुम यहाँ विराज रही हो ? छः आने व्यर्थ गये।”

“बहुत शोक है। परन्तु वतलाओ कि देवता के सम्मुख पसारे हाथों में अगर कुछ मिल जाय तो क्या वह छोड़ देना चाहिये ?”

“नहीं ! परन्तु तुम तो देवता को मानती नहीं। आज मन्दिर में कैसे पहुँच गई थी ?”

पूर्णमा ने लम्बी साँस ली और फिर कहा, “पत्थर के देवताओं के पुजारी भला सजीव देवताओं को क्या जानें ?”

यह सुन मधुसूदन की आँखों में विशेष चमक पैदा हो गई। उसका मुख लाल हो गया और होंठ फड़कने लगे।

इस समय घड़ी ने सात बजाये। पूर्णमा ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा, “अब जाने का समय हो गया है। फिर दर्शन करूँगी।”

: ४ :

मधुसूदन वहाँ से चला तो सीधा कलक्टर के बँगले पर जा पहुँचा ;

बँगले के अहाते में शामियाना लगा था। बिजली के प्रकाश से सब बँगला

जगमगा रहा था। झंडियों और फूलों के हारों की भरमार थी। शामियाने के नीचे चारों ओर पंक्तियों में कौच व कुर्सियाँ लगी हुई थीं। बीच में दरी बिछी थी। दरी पर सफेद चादर और चादर के बीचोबीच एक बड़ा मखमली कालीन बिछा था। कालीन के एक कोने में तबलची और सारंगी बजाने वाले अपने-अपने वाद्यों को सुर-ताल में ला रहे थे। दर्शक एक दूसरे शामियाने में से खाना खा-खाकर यहाँ आकर बैठते जाते थे। पान, सुपारी, इलायची और सिगरेट के दौरे चल रहे थे। कई राय साहब, खान बहादुर, रईस, सेठ और नगर के आम प्रतिष्ठित लोग उपस्थित थे। सब प्रबन्ध राय साहब कुंजबिहारी का था। राय साहब स्वयं एक-एक मेहमान से पूछ रहे थे, 'क्यों साहब, आप क्या लीजियेगा? खाना खाया है या नहीं? चाय आए या लैमनेड? पान नहीं खाइयेगा? सिगरेट लीजिये', इत्यादि। प्रत्येक के आराम और मनोरंजन का सामान था। लोग भी तकल्लुफ से कहते थे, 'राय साहब, शुकरिया !'

किसी ने पूछा, "राय साहब, क्या देरी है? आठ तो बज रहे हैं।"

राय साहब ने बहुत ही शिष्टाचार के साथ जवाब दिया, "बस, सब तैयार है। साहब बहादुर के आने की देरी है।"

राय साहब को इतनी मेहनत और उत्साह से काम करते देखकर लोग भाँति-भाँति की बातें करते थे, 'अब के यह राय बहादुर बनकर रहेंगे।' कोई दूसरा कहता, 'मेरे विचार में तो, 'नाइट' की पदवी मिलेगी।' एक तो बीच ही में बोल उठा, 'अजी, खिताब की कौन परवाह करता है। यहाँ तो साहब की बदौलत लाखों के ठेके मिलते हैं। आखिर घर-बार, शान-शौकत और राग-रंग सब साहब की कृपा से ही तो हैं।'

कलक्टर साहब कश्मीरी ब्राह्मण थे। वह कई वर्षों से इस नगर में नियुक्त थे। प्रति वर्ष शरद-पूर्णिमा को अपने इष्ट मित्रों को दावत दिया करते थे। इस वर्ष इस दावत के साथ मदारी के खेल और एक बनारस की नाचने वाली का प्रबन्ध भी था। इसी से दावत में जमाव कुछ अधिक था। लगभग चार-पाँच सौ मेहमानों को निमन्त्रण दिया गया था और उपस्थिति कुछ अधिक ही थी।

ऐसे समय मधुसूदन वहाँ जा पहुँचा। वह बँगले के फाटक पर रोक दिया गया। चपरासी ने कार्ड माँगा।

"भाई, मैं तो दावत में नहीं आया। मुझे तो राय साहब कुंजबिहारीजी से कुछ निजी काम है।" मधुसूदन ने कहा।

चपरासी ने सूझा जवाब दिया, "हम नहीं जानते, कौन राय साहब कुंजबिहारी? यहाँ तो बिना पास के भीतर नहीं जा सकते।"

चपरासी एक मुसलमान, लम्बी दाढ़ी रखे, सरकारी वर्दी पहने छः फुट का लम्बा जवान था। गबनर व कलक्टरों के चपरासी बददिमाग तो होते ही हैं।

इसके अतिरिक्त इस समय सैकड़ों मेहमानों के आने-जाने, मोटरों और ताँगों की भरमार ने तो उसको पागल-सा बना रखा था। वह डपटकर बोला, “एक तरफ हट जाओ, नहीं तो मोटर के नीचे दबकर मर जाओगे।”

मधुसूदन फाटक के एक तरफ हटकर खड़ा हो गया। वह सोच ही रहा था कि किस प्रकार राय साहब से भेंट हो कि इतने में सर्र से एक मोटर फाटक के पास आकर खड़ी हो गयी। यों तो मोटर, ताँगे बहुत आ-जा रहे थे, परन्तु इस मोटर में विशेषता यह थी कि यह राय साहब कुंजविहारी की थी। यही कारण था कि मधुसूदन का ध्यान इस मोटर गाड़ी की ओर विशेष रूप से गया। मधुसूदन के अचम्भे का ठिकाना न रहा जब उसने मोटर में से पूर्णिमा को निकलते देखा। वह नाचने वालों की पोशाक पहने हुए थी। पूर्णिमा ने फाटक के पास मधुसूदन को खड़े और हैरान होते देख लिया था। वह मुस्कराकर फाटक में जाकर खड़ी हो गयी। चपरासी ने बिना पास देखे रास्ता छोड़ दिया, परन्तु वह वहीं खड़ी कुछ सोचती रही। पश्चात् उसने चपरासी को कुछ धीरे से कहा। चपरासी बहुत फुर्ती से मधुसूदन के पास आकर बोला, “आपको बाईजी बुलाती हैं।”

इस प्रकार बुलाये जाने पर मधुसूदन, जो गम्भीर विचार में डूब गया था, चौंक उठा और बोला, “कौन बाई?”

चपरासी ने पूर्णिमा की ओर संकेत कर कहा, “वही ! मालती बाई ! देखिये, वह आपको बुला रही हैं।”

पूर्णिमा मधुसूदन को आने के लिए हाथ से संकेत कर रही थी। मधुसूदन मन में ‘मालती बाई, मालती बाई’ बड़बड़ाता हुआ फाटक के समीप पहुँचा और प्रश्न-भरी दृष्टि से पूर्णिमा की ओर देखने लगा।

पूर्णिमा ने बहुत ही मीठी मुस्कराहट में होंठों को गोल करते हुए बड़े आदर से कहा, “आप खड़े क्यों हैं ? आइये न भीतर !”

मधुसूदन ने चपरासी का मुख देखते हुए कहा, “मेरे पास भीतर जाने के लिए परवाना नहीं है।”

पूर्णिमा ने गम्भीर भाव धारण कर दरवान से कहा, “इन्को आने दो। इन्का कार्ड मेरे पास है।”

चपरासी मधुसूदन का मार्ग छोड़कर एक तरफ खड़ा हो गया, ताकि वह भीतर जा सके। परन्तु मधुसूदन अपने स्थान से नहीं हिला। बोला, “नहीं, मुझे भीतर जाने की आवश्यकता नहीं। आप जाइये। आपकी भीतर प्रतीक्षा हो रही होगी।”

एक क्षण के लिये पूर्णिमा के मस्तक पर बल दिखाई दिया। तुरन्त ही वह मिट गया और उसके मुख पर फिर मुस्कराहट दिखाई देने लगी। वह यह कहकर ‘जैसी आपकी इच्छा’ भीतर चली गयी। मधुसूदन के मुख से फिर एक बार निकल

गया, 'मालती वार्ड', और वह अचम्भे में भीतर जाती हुई पूर्णिमा को देखता रह गया। चपरासी ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए आसमान की ओर देखकर एक निःश्वास खींचा और कहा, 'वाह री किरमत !'

मधुसूदन ने वहाँ खड़ा रहना व्यर्थ समझ घर की ओर मुख किया। मार्ग में वह पूर्णिमा को इस नये रूप में देख इसका अर्थ सोचता रहा। कभी-कभी उसके मन में पश्चात्ताप होता था कि वह सुविधा होने पर भी भीतर क्यों नहीं गया और राय साहब से जो उसका काम था उसे क्यों नहीं कर आया। फिर वह सोचता था कि उसने ठीक ही किया है। पूर्णिमा के वहाँ पहुँच जाने से उसे अपने काम की महत्ता कम प्रतीत होने लगी थी और वह पूर्णिमा के इस वेप, काम और रङ्ग-ढङ्ग के विरोध में अपने भाव प्रकट करने का और कोई उपाय भी नहीं पाता था। उसने पूर्णिमा की सिफारिश को ठुकराकर उसे बता दिया था कि वह उसे कितना छोटा समझता है।

घर पहुँचकर वह बिना खाये-पिये खाट पर जाकर लेट गया। पिता के पूछने पर उसने कह दिया, 'तबीयत खराब है।'

: ५ :

श्यामाचरण आज मन्दिर में जाने को तैयार था, परन्तु पुत्र को भी तैयार देख स्वयं नहीं गया। यद्यपि मधुसूदन ने कल कह दिया था कि वह पुजारी का आसन ग्रहण करना नहीं चाहता, इस पर भी आज वह मन्दिर में जा पहुँचा और पूजा का सामान सजाने लगा।

आज पूजा में वह ठाठ नहीं जमा। पुजारी की कातर आँखें उपासकों में से किसी को ढूँढ़ निकालने के लिये भाग-दौड़ कर रही थीं। पूजा समाप्त हुई। चरणामृत बाँटा गया। लोग अपने-अपने घर लौट गये। मधुसूदन निराश, देवता को प्रणाम कर, चौकी से उठा और मन्दिर वन्द करने लगा। वह उपासकों के बैठने के लिये बिछी हुई चटाइयों को समेट रहा था कि जिसकी खोज थी वह दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई। पूर्णिमा बहुत ही साधारण पोशाक में थी। रात के ठाठ में और अब के पहरावे में दिन-रात का अन्तर था। माथे पर बिंदी और सिंदूर भी था। एक हाथ पट्टी से गले में लटक रहा था। दूसरे हाथ में फूलों का दोना था। मुख पर भी कुछ पीलापन था।

मधुसूदन पूर्णिमा की यह अवस्था देख प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा।

पूर्णिमा ने दरवाजे पर खड़े-खड़े ही पूछा, "आज पूजा शीघ्र ही समाप्त कर दी क्या?"

"कल तो सत्यनारायण का व्रत था और कथा हुई थी। आज साधारण पूजा ही थी। परन्तु यह तुम्हारे हाथ को क्या हुआ है?"

पूर्णमा ने अपने पट्टी में लटकते हाथ को देखकर कहा, “यह? ओह! कुछ नहीं। राय साहब के घर जाइयेगा तो पता चल जायेगा। क्या अब देवता की पूजा नहीं हो सकती?”

“क्यों नहीं?”

पूर्णमा ने लक्ष्मीनारायण की मूर्ति की ओर देखा। पश्चात् मधुसूदन के मुख की ओर देख, उसके सम्मुख घुटनों के बल हो, फूलों के दोने को उसके पाँवों के समीप रख दिया।

मधुसूदन घबराकर बोल उठा, “अरे! अरे!! यह क्या कर रही हो?” यह कहते हुए वह दो कदम पीछे हट गया।

पूर्णमा ने जहाँ मधुसूदन के पाँव थे वहाँ की मिट्टी को उठा माथे पर चढ़ा लिया। वह उठ खड़ी हुई और मिर झुका प्रणाम कर वापस लौट गयी।

मधुसूदन कुछ काल तक तो विन्मय और घबराहट में पूर्णमा और फूलों को देखता रहा। जब वह चली गयी तो फूलों को फर्श पर से उठा, देवता की मूर्ति के सम्मुख रख, हाथ जोड़, आँखें मूंद कुछ काल तक खड़ा रहा। पश्चात् अपने सिर को मूर्ति के चरणों में रख दिया।

इस प्रकार चित्त को शान्त कर, मन्दिर को बन्द कर, वह घर चला गया।

श्यामाचरण आज पूजा के लिये तैयार हुआ था, परन्तु मधुसूदन के चले जाने पर पुनः खाट पर बैठ गया। पहले तो वह रुग्ण होने से देरी से उठा करता था और मधुसूदन के पूजा करके लौट आने पर दवाई इत्यादि लिया करता था, परन्तु आज वह स्नान इत्यादि कर प्रातःकाल ही तैयार था। कुछ देर बैठे रहने के पश्चात् उसने हठकर दवाई खाई। इस पर भी समय पहाड़-सा प्रतीत होने लगा। चित्त को स्थिर करने के लिये रामायण पढ़ने लगा। अभी मधुसूदन के आने का समय नहीं हुआ था। रामायण से भी जी उकता जाने पर उसे बन्द कर कमरे में इधर-उधर टहलने लगा। जब इस प्रकार भी समय व्यतीत होता प्रतीत नहीं हुआ तो वह मन्दिर की ओर चल पड़ा। उसकी इच्छा हुई कि पुत्र को पूजा पर बैठा देखकर गोपाल के कथन की सत्यता की परीक्षा करे। क्या सत्य ही मधुसूदन साक्षात् भगवान् का अवतार प्रतीत होता है?

घर से मन्दिर में जाने का मार्ग ठीक मन्दिर के मुख्य दरवाजे के सम्मुख पहुँचता था। श्यामाचरण जब मन्दिर में पहुँचा तो मधुसूदन मुख्य दरवाजे की ओर मुख किये खड़ा था। उसकी पीठ घर से आने वाले मार्ग की ओर थी। श्यामाचरण ठिठककर रह गया। उसने देखा कि एक लड़की घुटनों के बल बैठ मधुसूदन के पाँवों के आगे फूल-पत्र चढ़ा रही है। उसके पश्चात् जो कुछ भी हुआ, उसने देखा। पूर्व इसके कि मधुसूदन देवता के चरणों से सिर उठाये, श्यामाचरण घर को लौट आया। मधुसूदन ने पिता को नहीं देखा।

वह जब घर पहुँचा तो श्यामाचरण ने पुत्र को समीप बुलाकर बैठा लिया और बहुत स्नेह-भरे शब्दों में पूछा, “बेटा, वह लड़की, जो तुम्हारे चरणों पर फूल चढ़ा रही थी, कौन थी?”

मधुसूदन कुछ घबराया अवश्य। उसे यह ज्ञान नहीं था कि पिता ने घटना का कितना अंश देखा है। आज तक वाप-वेटे में कोई भेद-भाव नहीं था। जब से पुत्र ने होश सँभाला, पिता ने उससे मित्र की भाँति व्यवहार किया था। पुत्र भी, माता के अभाव में, अपनी सब छोटी-बड़ी समस्याएँ लेकर पिता के पास पहुँचा करता था और पिता उसकी समस्याओं को सुलझाने में यथाशक्ति उसकी सहायता करता रहता था।

आज यह पहली बात थी जिसके बताने में मधुसूदन झेंप गया। पिता ने पुत्र को चुप देख उसको मन की बात बताने में सहायता देने के विचार से कहा, “बैठे-बैठे मेरे मन में आया कि गोपाल भैया के कहने की सत्यता की परीक्षा करूँ। तुम्हें पूजा करते देखने की इच्छा से मन्दिर में गया तो देखा कि वह तुम्हारे पाँवों पर फूल चढ़ा रही थी। तुम्हारे चरण-रज को माथे पर चढ़ाकर वह चुपचाप चली गयी। क्या तुम्हें मालूम है कि वह कौन थी, बेटा?”

मधुसूदन ने प्रश्न का उत्तर उतना ही दिया जितना आवश्यक था। वह बोला, “हाँ, पिताजी, वह नरोत्तम की पगली बहन पूर्णिमा थी।”

“नरोत्तम? वही बनारस वाला?”

“जी।”

“बेटा, वह पगली नहीं है। मैंने उसकी आँखों को देखा था। वह पागल की आँखें नहीं थीं। परन्तु तुम तो कहते थे वह नास्तिक है।”

“जी। वह देवी-देवताओं को पत्थर की मूर्ति समझती है। उनकी पूजा से कुछ लाभ नहीं समझती। इसी कारण सजीव की पूजा करने लगती है।”

श्यामाचरण हँस पड़ा और बोला, “मेरा बेटा कितना भोला है।”

: ६ :

मधुसूदन के मन में उथल-पुथल मच रही थी। वह शीघ्र ही राय साहब के घर जाकर पता करना चाहता था कि पूर्णिमा को कैसे चोट लगी है। उसके मन में संशय था कि रात की नाच-पार्टी में अवश्य कुछ गड़बड़ हुई है। इसी बात से राय साहब को सचेत करने के लिये कल वह उनसे मिलने का यत्न कर रहा था, परन्तु कर नहीं सका।

आज वह खाना खाकर लम्बे-लम्बे कदम उठाता हुआ राय साहब के घर को चल पड़ा। राय साहब के मकान के सम्मुख लोगों की भीड़ एकत्रित देख उसका माथा ठनका। जिस बात का संशय था, उसे सत्य ही होते देख उसके शरीर से पसीना छूटने लगा। वह स्वयं भीड़ में जा खड़ा हुआ। दरवाजे पर पुलिस के कुछ

मिपाही खड़े थे। एक-दो मोटरें भी खड़ी थीं और बीसियों ही लोग सड़क पर खड़े कानाफूसी कर रहे थे। लोग भयभीत प्रतीत होते थे।

मधुसूदन को वहाँ देखते ही एक ने पूछा, “क्यों, पण्डितजी, राय साहब का क्या हाल है?”

मधुसूदन ने अचम्भे से पूछा, “क्यों, क्या हुआ? मुझे नहीं मालूम।”

मधुसूदन को वहाँ देख लोग उसके चारों ओर आकर एकत्रित हो गये। एक व्यक्ति ने मधुसूदन से पूछा, “आप भीतर से नहीं आये क्या?”

“नहीं, भाई, पूजा से अभी छुट्टी पाकर चला आ रहा हूँ।”

एक और बोला, “रात को नाच में वम जो चल गया है।”

मधुसूदन का मुख फीका पड़ गया। पूछने लगा, “वम? किसने फेंका था? कैसे, क्या हुआ?”

“पण्डितजी, बीस आदमी तो वहीं डेर रहे। कलक्टर के तो चिथड़े उड़ गये। राय साहब को भी बहुत चोटें आई हैं। कहते हैं, उनकी अवस्था शोचनीय है। नाचने वाली के भी हाथ में चोट लगी है। तबलकी की दाढ़ी जल गई और साहब रहमानअली खाँ की लाश का तो पता ही नहीं चलता।”

“परन्तु यह हुआ कैसे?”

इस प्रश्न पर सब एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। यथार्थ बात यह थी कि कोई आँख देखी बात तो जानता नहीं था। एक-दूसरे से सुन-सुनकर बातें बताते थे। ऐसी बातों से सन्तोष न होने के कारण मधुसूदन भीड़ से निकल मकान के भीतर चला गया। दरवाजे पर पुलिस ने पहले रोका, परन्तु बताने पर कि वह घर का ही आदमी है, उसे भीतर जाने दिया।

राय साहब बैठक में एक पलंग पर लेटे थे। उनके मुख, सिर, हाथों और टाँगों पर पट्टियाँ बँधी थीं। पलंग के एक तरफ डॉक्टर हाथ में स्टेथेस्कोप लिये कुर्सी पर बैठा था और दूसरी तरफ एक मैजिस्ट्रेट कागज़, कलम और दवात लिये वयान लिख रहा था। मैजिस्ट्रेट के पास एक सब-इन्स्पेक्टर पुलिस तथा दो सफेद-पोश, जो खुफिया पुलिस के अफसर प्रतीत होते थे, बैठे थे। पूर्णिमा कुछ दूर कुर्सी पर बैठी किसी गम्भीर विचार में मग्न प्रतीत होती थी। समीप ही एक कौच पर राय साहब की बहन बैठी थी।

मधुसूदन को भीतर आते देख राय साहब ने उसे एक ओर बैठ जाने के लिये आँख से संकेत किया।

मैजिस्ट्रेट ने पूछा, “हाँ, तो राय साहब, फिर क्या हुआ?”

“जब बड़े साहब कुर्सी पर बैठ गये तो और लोग भी अपने-अपने स्थान पर डट गये और सबसे पहले फजलू मदारी के खेल आरम्भ हुए। ये खेल लगभग पौन घण्टे तक होते रहे। उसके बाद नाच का प्रोग्राम था। यह मालती बाई मंच पर

आई, और एक गाना, प्रार्थना का, गाने के पश्चात् इन्होंने खड़े होकर नाचना आरम्भ किया। जब फ्लैश लाइट इन पर फेंकी गयी तो बिजली फेल हो गई। ऐसा प्रतीत हुआ कि फ्यूज हो गया है। बिजली बुझे एक सेकण्ड भी नहीं हुआ था कि धम से बहुत बड़ा धमाका हुआ। उस समय मैं साहब की कुर्सी के पीछे खड़ा था। साहब मुझसे मालतीदेवी का परिचय ले रहे थे। यह धमाका साहब की कुर्सी के दो-तीन कदम आगे हुआ। वहाँ पर आग की एक लपट, जैसी बारूद जलने के समय उठती है, दिखाई दी। साहब एकदम कुर्सी से उठे। यह नहीं कह सकता कि वह बिजली बुझ जाने से घबराकर उठे थे, या कोई और बात थी। न ही मैं यह बता सकता हूँ कि धमाका होने से पहले उठे या बाद में। सब बातें इतनी जल्दी-जल्दी हुई कि मैं यह नहीं बता सकता कि पहले क्या हुआ और पीछे क्या। इसके बाद, मुझे यह ज्ञात है कि, साहब मेरे ऊपर लुढ़क पड़े और मैं उनके बोझ से अथवा किसी और कारण से भूमि पर गिर पड़ा। साहब मेरे ऊपर थे। तब तक मुझे होश था। गिरने के पश्चात् तुरन्त ही मैंने तीन धमाकों के शब्द और सुने। मुझे भी चोटें आईं और मैं बेहोश हो गया।

“मुझे जब होश आया तो मैं इस कमरे में था। मैं इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता।”

यह सबकुछ लिख लेने के पश्चात् एक सफेदपोश पुलिस अफसर ने पूछा, “खाँ साहब रहमानअली खाँ कहाँ बैठे थे?”

“वह घटना के समय साहब के बिल्कुल साथ दाहिनी ओर बैठे थे।”

“दावत के कार्ड किसने बाँटे थे?”

“यों तो यह काम साहब के पी० ए० के हाथ में था परन्तु नगर के रईस अपने मेहमानों के लिये भी कुछ कार्ड माँग ले गये थे।”

“आपने कितने कार्ड लिये थे?”

“मैंने? कोई नहीं। मुझे एक कार्ड डाक द्वारा आया था और यथार्थ में जाने के समय मैं वह भी नहीं ले गया। वह कार्ड मेरी लिखने की मेज़ पर होना चाहिये।”

“राय साहब, धन्यवाद। आपको अब अधिक कष्ट देना नहीं चाहते। हाँ! केवल एक बात और। यह मालतीदेवी आपको कहाँ मिली थी?”

“लगभग दो मास हुए मैं बनारस गया था। वहाँ एक मित्र के घर मैंने इनका नाच और गाना देखा। मुझे बहुत पसन्द आया। उस समय मैंने इनका पता नोट कर लिया था। अब साहब के यहाँ दावत का प्रबन्ध करते समय मैंने इनको यहाँ बुला लिया।”

मैजिस्ट्रेट के सम्मुख राय साहब के बयान लेने में जल्दी इस कारण की गयी थी कि उनकी अवस्था कुछ अच्छी नहीं समझी जाती थी और डॉक्टर उनके बचने में सन्देह करते थे। ज्यों ही उन्हें होश आया, पुलिस ने मैजिस्ट्रेट बुलाकर उनके बयान

कलमबन्द कर लिये ।

पश्चात् सब लोग उठकर बाहर चले गये । राय साहब के पास केवल डॉक्टर, पूर्णिमा, राय साहब की बहन और मधुसूदन रह गये । अब ये लोग राय साहब के पलंग के समीप कुसियाँ ले आये । भीतर से राय साहब की स्त्री भी चली आई ।

डॉक्टर ने फिर घायल की परीक्षा आरम्भ की । देखभाल कर बोला, “आपको एक इंजेक्शन ले लेना चाहिये ।” मधुसूदन ने भी राय साहब की नाड़ी-परीक्षा की और डॉक्टर साहब से कहा, “इसकी विशेष आवश्यकता तो है नहीं । नाड़ी ठीक चलती है । कुछ खुराक देनी चाहिये ।”

राय साहब की भी इच्छा थी कि कुछ खाने को मिले । डॉक्टर की इच्छा न रहने पर भी दूध और शिलाजीत दे दी गयी । यथार्थ में राय साहब की चोटें तो साधारण-सी थीं, केवल उनके दिल को धक्का बहुत लगा था । साथ ही रात को पार्टी के प्रबन्ध में उन्हें बहुत कम खाने का अवसर मिला था । दूध पीने से उनके चित्त को बहुत शान्ति मिली और हृदय की गति, जो मन्द हो रही थी, ठीक हो गयी ।

डॉक्टर साहब, कुछ देर में फिर आने के लिये कहकर, चले गये । राय साहब की अवस्था कुछ ठीक हुई तो वह पूर्णिमा की ओर घूमकर बोले, “मालतीदेवी, क्या आपको भी चोट आई है ?”

“हाँ, जब बिजली बुझी तो मैं जहाँ थी वहीं खड़ी हो गयी । मेरा भी विचार यही था कि फ्यूज हो गया है । पहले धमाके के समय ही मेरे हाथ पर एक कंकर आकर लगा । धमाका होते समय ही मैं समझ गई थी कि क्या हुआ है । मैं कूदकर जिस मेज पर मदारी का सामान रखा था, उस पर चढ़ गई । पश्चात् लोगों में भगदड़ मच गयी । देखते-देखते चार बम और फटे और चारों के चारों एक-एक सेकण्ड के बाद फटे । ऐसा प्रतीत होता था कि एक ही आदमी उनको सभा-मण्डप के भिन्न-भिन्न कोनों में फेंक रहा था ।

“लगभग सब लोग बंगले से बाहर निकल चुके थे । कई लोगों के कराहने की आवाजें आ रही थीं । मुझे नहीं रहा गया । मैं कोठी में गयी । वहाँ पर नौकर घबराते हुए इधर-उधर भाग रहे थे । तभी साहब के पी० ए० ने जेब से माचिस निकालकर जलाई । हम दोनों ने बिजली के फ्यूजों की परीक्षा की । वे सब ठीक थे । मेन स्विच किसी ने बन्द कर दिया था । उसे जब चढ़ाया तो शामियान जगमगा उठा । परन्तु शामियाने के नीचे बहुत ही भयानक दृश्य था । लोगों के घबराकर भागने के कारण कुसियाँ टूटी-फूटी, उलट-पुलट पड़ी थीं । मैं और साहब के पी० ए० भागकर साहब के पास पहुँचे । वह तो मर चुके थे । उनकी आँतें बाहर निकल आई थीं । उनकी लाश उठाते समय मुझे आप दिखाई दिये । आप बेहोश और खून में लथपथ थे । मैं दौड़ी हुई बाहर आई और आपकी गाड़ी के

ड्राइवर को साथ लेकर आपको उठा गाड़ी में लादकर घर ले आई। इसके बाद क्या हुआ, मैं नहीं जानती।

“सुना है इसके बाद साहब के पी० ए० ने अस्पताल में टेलीफोन कर एम्बुलेंस-कारे मँगवाई और मरे हुए तथा घायलों को अस्पताल भिजवाया।”

राय साहब बहुत ध्यान से घटना का वृत्तान्त सुन रहे थे। मालती के चुप हो जाने पर पूछा, “कितने मर गये और कितने जखमी हुए?”

“एक पुलिस वाला अभी कह रहा था कि बीस तो वहीं मर गये, पचास से ऊपर घायल हुए और दो-तीन की अवस्था शोचनीय है।”

यह सुन राय साहब ने एक लम्बी साँस खींचकर कहा, “ईश्वर को धन्यवाद, मैं साहब के पीछे खड़ा था। पहला वम उनके पाँवों के पास ही फटा था। मुझे तो साहब ने बचा लिया प्रतीत होता है। उनका काम तो पहले ही बार में हो गया था। जब वह मेरे ऊपर गिरे थे तो मुझे पता चल गया था कि वह मर गये हैं। मैंने यही उचित समझा कि उनके नीचे पड़ा रहूँ। किन्तु कुछ काल पश्चात् ही मेरी चेतना जाती रही।”

राय साहब की स्त्री की आँखों से अश्रुधारा वह रही थी। जब उन्होंने उसे देखा तो बोल उठे, “वाह, क्या पगली हुई जा रही हो?”

अकस्मात् उन्हें कुछ याद आया। वह पूर्णिमा की ओर घूमकर बोले, “आप कब जा रही हैं?”

“आज सायंकाल चली जाऊँगी। मेरे वयान हो चुके हैं और मैंने अपना पता पुलिस को दे दिया है।”

राय साहब ने कुछ आँखें नीची किये हुए कहा, “मैंने आपको पाँच सौ दिलवाने को कहा था परन्तु ऐसी परिस्थिति में आपको जो कुछ भी मिल जाय, मान जाना चाहिए।” इतना कह उन्होंने मधुसूदन को संकेत किया कि पूर्णिमा को दो सौ रुपया दिलवा दे।

पूर्णिमा ने दृढ़ स्वर में कहा, “मैं कुछ नहीं लूँगी। आपने लिखा अवश्य था कि पाँच सौ मिलेगा परन्तु मैंने उसी समय आपको लिख दिया था कि मैं गाने का पेशा नहीं करती। मैं तो इस कला की उपासना करती हूँ और सुनने तथा देखने वाला को दिखाती हूँ। इस घटना के पश्चात् तो आने-जाने का खर्चा भी नहीं लूँगी।”

राय साहब की स्त्री भीतर से दो सौ रुपये ले आई। सौ-सौ के दो नोट थे। उसने ये नोट पूर्णिमा के हाथ में दे दिये। पूर्णिमा ने वे नोट लेकर राय साहब के सिर पर वार उन्हें वापस उनकी स्त्री के सम्मुख रख दिया और कहा, “ये राय साहब की न्योछावर गरीबों में बाँट दीजियेगा।”

इतना कह वह राय साहब से बोली, “आप जब बिल्कुल ठीक हो जायें तो

लिखियेगा। अपने स्वस्थ हो जाने के जलसे में मुझे बुलाइयेगा। मैं आपको अपनी कला दिखाऊँगी।” इतना कह वह उठ खड़ी हुई और राय साहव को हाथ जोड़ प्रणाम कर मधुसूदन के पास चली गई। वहाँ से वे दोनों धीरे-धीरे बैठक से बाहर निकल गये।

: ७ :

राय साहव की बैठक की बगल में एक छोटा-सा कमरा था। यहीं पूर्णिमा ठहरी हुई थी। मधुसूदन और पूर्णिमा बैठक से निकले तो उस कमरे में पहुँच गये। पूर्णिमा एक कुर्सी पर, जो ड्रेमिंग टेबल के सम्मुख रखी थी, बैठ गई और आईने में अपना मुख देखने लगी। मधुसूदन कुर्सी के पीछे खड़ा होकर आईने में पूर्णिमा का मुख देखने लगा। कुछ काल तक दोनों चुप रहे। दोनों के मन में कहने के लिये बातें भरी थीं परन्तु कोई आरम्भ करना नहीं चाहता था। आखिर मधुसूदन ने ही कहना आरम्भ किया, “तुम यहाँ क्यों आई थीं?”

“बताया तो है, कला की उपामना करती हूँ। जहाँ उसके प्रियजन होते हैं, वहाँ मैं जाती हूँ।”

“यह वम चलवाना कला है?”

पूर्णिमा चौंक पड़ी। घूमकर देखने लगी, परन्तु मधुसूदन वैसे ही आईने में, जिसमें अब पूर्णिमा की पीठ दिखाई दे रही थी, देखता रहा। पूर्णिमा ने उद्देग में कहा, “यह झूठ है!”

मधुसूदन ने वैसे ही गम्भीर भाव से स्थिर रहते हुए कहा, “मैं तुम्हें पुलिस के हवाले नहीं करूँगा। तुम जानती हो मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं मित्र हूँ, यद्यपि मैं आतङ्कवाद को गलत समझता हूँ।”

पूर्णिमा ने घबराये हुए स्वर से फिर कहा, “परन्तु मैं कहती हूँ, यह सत्य नहीं है। इसका कोई प्रमाण नहीं है।”

मधुसूदन मुस्कराने लगा। उसने आईने पर से अपनी दृष्टि हटाकर पूर्णिमा के मुख पर गाड़ दी। वह कहने लगा, “पिछले मास, जब मैं बनारस में था, नरोत्तम भैया की बैठक में मैंने दस-बारह लोग ऐसे देखे थे जिनके हाथ में ऐसी अँगूठी थी जैसी तुम्हारे हाथ में है। जब बहुत-से लोग एक जैसे कोई विशेष चिह्न लगाते या बनाते हैं तो संगठन की विद्यमानता को सिद्ध करते हैं।”

“परन्तु यह तुम कैसे कहते हो कि यह संगठन आतङ्कवादियों का है? यह तो तुम्हारे मन की कल्पना मात्र है।”

“मैं कहता ही नहीं प्रत्युत जानता भी हूँ। मेरे पास इसका प्रमाण भी है। फिर भी मैं तुम्हें या तुममें से किसी को फँसाने नहीं जाऊँगा। मैं मानता हूँ कि ये हत्याएँ तुम लोगों ने भूल से की हैं। मैं तुम्हारी इस भूल से कम-से-कम कुछ लोगों को बचाना चाहता था। इसी कारण कल राय साहव से मिलने का प्रयत्न करता

रहा। तुम जानती हो, मिलने में मैं सफल नहीं हो सका। जो होना था उसे मैं रोक नहीं सका।”

पूर्णमा का मुख पीला पड़ गया। उसके होंठ नीले पड़ गये थे और वे कांप रहे थे। मधुसूदन ने अपना कहना जारी रखा :

“एक रात मैं बहुत थका हुआ था। नरोत्तम भैया से मिलने गया। वह बैठक में नहीं थे। मैं उनकी प्रतीक्षा में एक कोने में बैठ गया। सर्दी कुछ अधिक थी, चादर जो ओढ़कर बैठा तो नींद आ गयी। मुझे नहीं मालूम कब तक सोया रहा। धीरे-धीरे मैं चैतन्य होने लगा। इसके साथ ही कानों में किसी के बातें करने की झनझनाहट आने लगी। कोई कह रहा था, ‘इलाहाबाद के कलक्टर ने तो अन्धेर मचा रखा है। उसे सबक सिखाना चाहिए। अगली पूर्णिमा को उसके यहाँ नाच और दावत होगी। बस, दवाई की पाँच खुराकें उसके लिये भेजनी चाहिए। नाच के समय ही ठीक रहेगा।’

“इसके उत्तर में नरोत्तम कह रहा था, ‘परन्तु भीड़ में तो अपराधी और निरपराधी में भेदभाव नहीं हो सकता।’

“वही आवाज़ फिर बोल उठी, ‘अपराधी के जलसों में सम्मिलित होने वाले निरपराधी नहीं होते। सब लोग कलक्टर के अन्याय से तंग हैं, फिर भी उसके निमन्त्रण पर उनमें से सैकड़ों वहाँ जायेंगे। वे लोग कोई धर्म-कार्य करने नहीं जायेंगे। न ही वे नाच-कला को समझते होंगे। वे तो साहब की खुशामद करने के लिये वहाँ पहुँचेंगे।’

“इतने में नरोत्तम ने शायद मुझे देख लिया था। मैंने अपना मुख चादर से छिपा रखा था। वह बोला, ‘कौन हो जी तुम?’ उसकी आवाज़ में घबराहट के चिह्न थे।

“मैंने जो कुछ सुना उसे न सुना हुआ प्रकट करना चाहता था। इस कारण उठा नहीं। चादर में मुँह लपेटे पड़ा रहा। इस पर नरोत्तम के साथी ने चादर खींचकर मेरे मुख से उतार दी। अब जागने के अतिरिक्त और कोई उपाय न देख आँखें मलता हुआ उनकी ओर देखने लगा। नरोत्तम ने मुझे पहचानकर कहा, ‘ओह ! यह तो मधुसूदन दादा हैं।’ फिर मुझसे कहने लगे, ‘दादा, कब आये ? तुमने तो हमें डरा ही दिया था। हम समझे थे कोई चोर है।’

“मैंने बात टालने के लिए कह दिया, ‘चोर चोरी करने जाकर सोया नहीं करते, भैया !’

“मेरे इस प्रकार जवाब देने से वे निश्चिन्त हो इधर-उधर की बातों में लग गए।

“जब से मैं बनारस से आया हूँ, पिताजी बीमार थे। मुझे राय साहब से मिलने का अवसर ही नहीं मिला। मैं जानता था कि पूर्णमासी को कलक्टर साहब की

दावत है, परन्तु पिताजी की बीमारी के कारण सब भूल गया। कल जब तुमने चरणामृत के लिए हाथ बढ़ाया तो मैंने यह अँगूठी पहचान ली। विद्युत् की भाँति मेरे मन में वे सब बातें दौड़ गईं। पाँच खुराकें, अपराधी-निरपराधी, सबके लिये एक ही औषधि की बात याद आते ही मैं घबरा गया था और अरघा मेरे हाथ से नीचे गिर गया। पहले मैंने तुम्हें नहीं पहचाना, केवल हाथ में अँगूठी देखी; परन्तु जब अरघा ले जाने वाले की पीठ देखी तो जान गया कि तुम हो। परन्तु इसका तो मुझे स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि तुम राय साहब के घर ठहरी होंगी और जलसे में तुम्हारा ही नाच होगा। जब मैंने देखा कि तुम जलसे में नाचने जा रही हो तो मैंने विचार किया कि नरोत्तम अपनी बहन के जीवन को कभी खतरे में न डालेगा। मैंने सोचा कि शायद इसमें कोई 'एक्शन' नहीं होगा। परन्तु अब देखता हूँ यह मेरी भूल थी।"

"यदि कल भूल न करते तो क्या करते?"

"मैं तुम्हें कदापि नाचने न देता।"

"ओह!"

"राय साहब को वहाँ से घसीटकर घर ले आता।"

"खूब! और नरोत्तम भैया को?"

"नरोत्तम! क्या वह भी वहाँ था?"

पूर्णिमा हूँ पड़ी। यद्यपि अब उसके मुख पर घबराहट नहीं थी और मुख से हँसी भी निकल आई थी, फिर भी उसका चित्त प्रसन्न नहीं था। वह अनुभव करती थी कि मधुसूदन कुछ बातें आवश्यकता से अधिक जान गया है। यह तो वह निश्चय से कह सकती थी कि मधुसूदन उनका भेद नहीं खोलेगा। परन्तु बहुत-सी बातें अनजाने हो जाती हैं, जिनका परिणाम बहुत भयंकर हो सकता है। जिस सहज भाव से मधुसूदन उसको बता रहा था कि वह कितना जानता है, यदि वह यही बातें राय साहब अथवा किसी और को बता दे तो कितना अनर्थ हो जाएगा, यह विचार अब उसके मन को दुखित कर रहा था। वह आज मधुसूदन से खुलकर बातें करना चाहती थी। वह यह जानना चाहती थी कि उसे अथवा उसके दल के लोगों को उससे कितना सम्बन्ध रखना चाहिए। तुरन्त इस बात का निर्णय करने के लिए वह उस घर से कहीं बाहर चली जाना चाहती थी। उस स्थान पर उसे भय था। वहाँ बात करनी सुरक्षित नहीं थी। अतएव उसने मधुसूदन की आँखों में अपनी दृष्टि गाड़कर कहा, "मैं त्रिवेणी स्नान करने जाऊँगी।"

"अब! इस समय?"

"अभी तो ग्यारह बजे हैं और प्रयाग में आकर संगम-स्नान के बिना कैसे लौटूँगी?"

"परन्तु तुम्हें चोट जो लगी है। स्नान कैसे कर पाओगी?"

“चोट तो साधारण-सी है और आज अभी स्नान भी नहीं किया।”

पूर्णमा ने सूटकेस से धोती निकाली और चलने को तैयार हो गयी।

मधुसूदन वहीं खड़ा यह सब देख रहा था। पूर्णमा को स्नान के लिये जाने को तैयार देख विस्मय से पूछने लगा, “परन्तु, पूर्णमा, यह पूजा, मन्दिर, स्नान, ध्यान कब से सीखा है? तुम तो कर्म-काण्ड के नाम पर गालियाँ दिया करती थीं।”

“बुद्धि से तो अब भी वैसा ही समझती हूँ, केवल हृदय से मानने लगी हूँ।”

मधुसूदन चुप रहा। पूर्णमा ने खूँटी से तौलिया उतारते हुए कहा, “एक ताँगा कर लीजिये।”

मधुसूदन किराये का ताँगा ले आया। पूर्णमा उसमें बैठकर बोली, “आप आगे बैठ जाइये।”

“मैं?”

“हाँ, आपको साथ ले चलूंगी।”

“परन्तु मैं तो स्नान कर चुका हूँ और मुझे त्रिवेणी-स्नान में कुछ महत्त्व भी प्रतीत नहीं होता।”

“क्या सब बातें, जो हम कहते हैं, वे महत्त्वपूर्ण ही होती हैं? कभी-कभी साधारण सांसारिक बातें भी करनी पड़ती हैं। चलिए, बैठ जाइये।”

मधुसूदन ताँगे में कोचवान के समीप आगे बैठ गया।

ताँगा नदी तक नहीं जाता था। वह बाँध से इधर ही खड़ा हो गया। वहाँ से संगम तक पहुँचने में पैदल आधा घण्टा लगता है। पूर्णमा उतरकर चलने के लिए तैयार हो गयी। मधुसूदन अभी भी यह नहीं समझ सका था कि उसे साथ लाने में पूर्णमा का अभिप्राय क्या केवल एक साथी के लाने के अतिरिक्त कुछ और भी है।

जब दोनों ताँगे से कुछ दूर निकल गये तो पूर्णमा ने कहना आरम्भ किया, “यद्यपि मैं तीर्थ-स्नान में कुछ विशेषता नहीं समझती, परन्तु हमारे पूर्वजों ने तीर्थों को अति मनोरम स्थानों पर बनाकर मेरे जैसे नास्तिकों को भी वहाँ आने के लिये बाध्य कर दिया है।”

मधुसूदन ने धीरे से कहा, “यही तो ईश्वर-भक्ति अर्थात् आस्तिकता है।”

“क्या आस्तिकता है?”

“यही सुन्दर, मनोहर वस्तुओं तथा स्थानों को देखना और सौन्दर्य को अपने भीतर उत्पन्न करना।”

“क्या सुन्दर पदार्थों के देखने से अपने में सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है?”

“निःसन्देह! जिस बात का मन में चिन्तन किया जावे मनुष्य वैसा ही बनने लग जाता है। हाँ, यह सत्य है कि कई बातों के होने में बहुत समय लगता है। कुछ कार्य हैं जो एक-दो दिन में पूरे हो जाते हैं। कुछ ऐसे कार्य हैं जिनको पूर्णतः करने के लिए वर्षों की आवश्यकता होती है और कई काम ऐसे भी होते हैं जिनको करने

के लिए कई जन्म लग जाते हैं।”

“इतना समय ?” पूर्णिमा ने हैरानी में पूछा, “इतनी प्रतीक्षा के लिये किसमें धैर्य है ?”

“साधारण-सी बात के लिये, यथा अंग्रेजी भाषा सीखने के लिये, कई वर्ष लग जाते हैं; तो सुन्दर रूप, लावण्य अथवा सुन्दर हृदय प्राप्त करने के लिये अधीर होना क्योंकि ठीक हो सकता है और आत्मा को सुन्दर बनाने के लिये तो कई जीवनों का समय होना ही चाहिये।”

“परन्तु इसका प्रमाण क्या है कि ऐसा हो पायेगा ? यदि मुझे इसका निश्चय हो जाये कि लक्ष्मीनारायण की सुन्दर मूर्ति के सम्मुख बैठे रहने से मैं सुन्दर हो जाऊँगी तो मैं जीवन-पर्यन्त उसकी उपासना करती रहूँगी।”

मधुसूदन ने पूर्णिमा के मुख की ओर देखकर कहा, “परन्तु तुम तो पहले ही अति सुन्दर हो। प्रतीत होता है कि पिछले जन्मों में तुम किसी अतीव सुन्दर मूर्ति की उपासना करती रही हो जिससे तुम्हें इस जन्म में इतना सुन्दर रूप मिला है।”

पूर्णिमा ने बात रोककर कहा, “छिः ! संस्कृत पदों को प्रशंसा करना बहुत आता है। इसी से तो पण्डित लोग प्रायः खुशामदी होते हैं।”

“क्या सत्य कहना भी खुशामद कहाता है ?”

“बस, बस, ऐसी बातें ठीक नहीं।”

“तो क्या किसी भालू जैसे पुरुष के चरणों पर फूल चढ़ाना ठीक है ?”

“भालू ! कौन कहता है ? और फिर तुम तो सजीव हो, मूर्तिमान हो, पत्थर नहीं हो।”

“शारीरिक सौन्दर्य में तो वह पत्थर की मूर्ति मुझसे अच्छी है।”

“होगी। परन्तु उसमें हृदय नहीं। उसमें विचार-शक्ति नहीं। वह किसी का भला नहीं कर सकती। वह ईश्वर हो तो हो, पर संगी नहीं हो सकती। दुःख में, सुख में वह निष्ठुरों की भाँति एक समान देखती रहती है। विपत्ति में जब हमें सहानुभूति और सहायता की आवश्यकता होती है तब वह अपने स्थान पर अकड़कर बैठी रहती है। वह निर्दयी है, कठोर है और हृदय-शून्य है।”

“इन बातों को प्राप्त करने के लिये तो ठाकुरजी की मूर्ति की उपासना पर्याप्त नहीं। ठाकुर की मूर्ति सुन्दर है। उसकी उपासना से बाह्य सौन्दर्य मिलता है। मन के तथा हृदय के सौन्दर्य को प्राप्त करने के लिये अवतारों के जीवन की उपासना करो। अवतार सजीव थे। उनके चरित्र में जो सौन्दर्य था वह उनकी उपासना से मिल सकता है। वह सौन्दर्य भी ईश्वरीय शक्ति थी। इसी कारण तो रामायण, गीता तथा अन्य महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को पढ़ना भी ईश्वर की भक्ति करना है। यह भी आस्तिकता है।”

“तब तो आस्तिकता बहुत महत्व है। क्या-क्या पियर को पढ़ना भी ईश्वर-



भक्ति है ?”

“हाँ ! इसमें किंचित्मात्र भी सन्देह नहीं । सुन्दर बातों, सुन्दर भाषा और सुन्दर कृत्यों को पढ़ने से हम ईश्वर की उपासना करते हैं । सौन्दर्य ही परमात्मा है और परमात्मा ही सौन्दर्य है ।”

“बहुत विचित्र है । आपकी विवेचना मौलिक है । ऐसी आस्तिकता तो मैं एकदम स्वीकार कर लूँगी ।”

“स्वीकार क्या कर लोगी ? वह तो तुमने पहले ही स्वीकार की हुई है । जब तुम सुन्दर, प्राकृतिक स्थानों और दृश्यों को देखकर आत्मा में आनन्द अनुभव करती हो तो तुम नास्तिक कैसे हो सकती हो ? जब तुम महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़कर उनका अनुसरण करना चाहती हो तो तुम्हारा अपने-आपको नास्तिक कहना भूल है । तुम आस्तिक हो और इसीलिए शरीर, मन, वचन और कर्म से सुन्दर हो ।”

पूर्णिमा ने मुस्कराते हुए कहा, “वस ! वस ! फिर प्रशंसा आरम्भ हो गई ।”

इस समय वे नदियों के संगम-स्थान पर पहुँच गये थे । पूर्णिमा घाट पर पहुँच स्नान के लिये तैयार होने लगी । यहाँ नदी के बीच में लकड़ी के तख्त गाड़कर स्नान करने के लिये स्थान बने हुए हैं । स्त्रियों के लिये पृथक् स्थान बने हैं और पुरुषों के लिये पृथक् । पूर्णिमा मधुसूदन से अलग हो गयी ।

जब पूर्णिमा स्नान कर बाहर आई तो मधुसूदन गंगा के किनारे रेत पर बैठ उसके निर्मल जल में न जाने क्या देख रहा था । वह विचार में इतना मग्न था कि उसे पूर्णिमा का आना ज्ञात नहीं हुआ । उसे चैतन्य तब हुआ जब वह खिलखिलाकर हँसती हुई उसके पास बैठ गयी । मधुसूदन ने अचम्भे से पूछा, “क्यों, क्या हुआ ? हमने क्यों लगी हो ?”

“आप किस ध्यान में मग्न थे ? कई बार पुकारने पर भी आपको पता नहीं चला कि मैं आ गई हूँ ।”

“ओह ! तुमने पुकारा था ? मुझे नहीं पता चला । मैं सोच रहा था कि यह स्थान कितना सुन्दर है । जहाँ इस संसार में ऐसे सुन्दर स्थान हैं वहाँ पर भी लोग मन में इतना द्वेष और घृणा रखते हैं कि एक-दूसरे को मार डालने पर तैयार हो जाते हैं !”

पूर्णिमा की हँसी बन्द हो गई । वह गम्भीर हो गयी । यद्यपि वह यही बात करने के लिये मधुसूदन के साथ इतनी दूर आई थी, परन्तु जब वह बात समीप आ गई तो डर गयी । वह इस समय बोल नहीं सकी । मधुसूदन ने बहते गंगा-जल की ओर देखते हुए कहा, “हत्या करने से क्या और कैसे लाभ हो सकता है; ईश्वर की बनाई सुन्दर सृष्टि में सर्वोत्कृष्ट वस्तु मनुष्य का नाश करना किस प्रकार उचित हो सकता है—मैं यही बात समझने में लीन था । एक ओर गंगा की यह पवित्र धारा,

दूसरी ओर नर-रक्त-प्रवाह, जो कल कुछ भूले-भटके भाइयों ने नगर में बहाया है— दोनों में कितना अन्तर है। देखो, पूर्णिमा,” मधुसूदन ने गंगा की प्रशान्त धारा से अपनी दृष्टि उठाकर पूर्णिमा की आँखों पर, जिनमें बहते जल का प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा था, डाल दी, “पूर्णिमा, तुम इन लोगों से अलग क्यों नहीं हो जाती?”

“मैं! आप मुझे ही ऐसा क्यों कहते हैं? मैं तो मशीन का एक पुर्जा हूँ। बिना सारी की सारी मशीन का सुधार किये मुझे अलग करने से क्या होगा? मान लो मैं अलग हो भी जाऊँ तो क्या इससे पार्टी टूट जायेगी? हत्यायें तो होती ही रहेंगी।”

“यह ठीक है, परन्तु जब तुम इसमें विश्वास नहीं करतीं तो फिर इसमें क्यों पड़ी हो?”

“यह आपने कैसे जाना कि मैं इन बातों में विश्वास नहीं करती?”

“बड़े ही सहज उपाय से। जो संगीत और नृत्यकला जैसी सुन्दर और ईश्वरीय विद्याओं में प्रवीण है, जो सुन्दर स्थानों, विचारों और कामों को देख आनन्द अनुभव करती है, वह नर-हत्या जैसी भयानक और कठोर बात को कैसे अच्छा समझ सकती है?”

“परन्तु मैं तो इसे अच्छा समझती हूँ। क्योंकि यदि इस गंगा की निर्मल धारा में कोई मैला फेंकना आरम्भ कर दे तो क्या आप उसे मना न करेंगे? मना करने पर न माने तो क्या उसे बलपूर्वक न रोकेंगे?”

“जो इतनी स्वच्छ, पवित्र जल-धारा को अपवित्र करने आया है उसे यह समझा देना क्या पर्याप्त नहीं कि वह अनर्थ कर रहा है? मनुष्य को तुम पशु मत मानो। मनुष्य में बुद्धि है, ऐसा विश्वास करो। इस विश्वास से यदि हम समझाने का यत्न करेंगे तो कौन मूर्ख से मूर्ख मनुष्य होगा जो न मानेगा?”

“आपकी बात तो केवल आपके हृदय की शुद्धता का परिचय देती है। यह जन-साधारण की मानसिक अवस्था की सूचक नहीं। देखिये, अंग्रेज इस देश में राज्य करते हैं। इस देश को अपने अधीन रखने में उन्हें भारी आर्थिक व राजनैतिक लाभ हो रहा है। वे सदा इस यत्न में रहते हैं कि हम स्वतन्त्र न हो सकें। भला उनको समझाने से, कि उन्हें हमको परतन्त्र रखना उचित नहीं, वे कैसे मान सकते हैं? स्वार्थ उन्हें अन्धा किये हुए है। उनके अन्धेपन को दूर करने के लिये चीरे की आवश्यकता है। यह चीरा पीढ़ायुक्त तो होगा ही, परन्तु इसका परिणाम तीस करोड़ भारतवासियों की पीड़ा दूर करने वाला होगा।”

“जो कार्य खराब है उससे भला परिणाम कैसे निकल सकता है? यह प्रकृति के नियम के विरुद्ध है।”

पूर्णिमा ने मधुसूदन के मुख की ओर देखते हुए पूछा, “अच्छा, तो आप यह बतायें कि कल की कार्यवाही को आप खराब समझते हैं?”

“हाँ, बिल्कुल।”

“क्या कार्यवाही करने वालों को आप पुलिस के हवाले करना ठीक समझते हैं?”

“मैं उनको पुलिस के हवाले करने की अपेक्षा समझाना अधिक उचित समझता हूँ।”

“यदि समझाने पर वे न मानें तो?”

मधुसूदन असमंजस में पड़ गया। उसका मन कहता था कि हत्यारों को पकड़वा देना ही उचित है। परन्तु नरोत्तम, पूर्णिमा, ये हत्यारे नहीं हो सकते। नरोत्तम ने मधुसूदन के साथ बी० ए० पास किया था। बाद में उसने इतिहास का विषय लेकर एम० ए० पास कर लिया। पूर्णिमा ने इष्टर तक कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की थी। बाद में संगीत में रुचि होने के कारण वह अपना सब समय इसी कला को सीखने में व्यय करने लगी। नरोत्तम के सब साथी पढ़े-लिखे, सुशील और सभ्य परिवारों से सम्बन्ध रखते थे। वे हत्यारे कैसे हो सकते हैं। यह ठीक है कि उन्होंने चन्द मिनटों के अन्दर कई मनुष्यों की हत्या कर डाली थी, परन्तु फिर भी हत्या करने में पूर्णिमा की रुचि है, वह मान नहीं सकता था। यह काम उसकी बुद्धि में पाप था, परन्तु पूर्णिमा पापी है, यह उसका मन मानने को तैयार नहीं होता था। वह कुछ उत्तर नहीं दे सका। चुपचाप पूर्णिमा का मुख देखता रहा।

पूर्णिमा यह बात जानने के लिये मधुसूदन को वहाँ ले गयी थी और वह इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट चाहती थी। इस कारण उसने प्रश्न को फिर दुहराया, “यदि नरोत्तम भैया और उनके साथी आपके समझाने पर भी अपनी इस लीला को न छोड़ें तब आप क्या करेंगे? देखिये, यह आपको जान लेना चाहिये कि उनके मन में यह दृढ़ धारणा है कि वे ऐसा करने से देश-सेवा कर रहे हैं और आपकी युक्तिवाँ उनके विचारों को बदल नहीं सकती।”

दुबारा पूछने पर और पूर्णिमा को उत्सुकता से अपनी ओर देखते हुए पाकर मधुसूदन उत्तर देने पर बाध्य हो गया। वह धीरे-धीरे कहने लगा, “नरोत्तम को? नहीं! नरोत्तम को नहीं पकड़वा सकता।”

“नरोत्तम को क्यों नहीं और दूसरों को क्यों?”

“यह उपाय देश-सेवा का ठीक नहीं है, परन्तु नरोत्तम की बात दूसरी है।”

“कैसे दूसरी है?”

“कैसे?” इतना कह मधुसूदन अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और वापस चलने के लिये तैयार हो गया। पूर्णिमा भी उठ खड़ी हुई, परन्तु वह बिना पूर्ण उत्तर पाये छोड़ने वाली न थी। उसने मधुसूदन के साथ धीरे-धीरे चलते हुए फिर पूछा, “जो बात पाप है वह नरोत्तम द्वारा की जाने पर क्यों बुरी नहीं है?”

“पूर्णिमा, जाने दो इस बात को। इसका उत्तर पाने से क्या लाभ होगा?”

“और हानि ही क्या है ?”

“तो लो, सुनो। नरोत्तम पूर्णिमा का भाई है और पूर्णिमा मेरे....” इतना कहकर वह रुक गया।

पूर्णिमा के दिमाग में शरारत समाई हुई थी। वह बोली, “हाँ, हाँ, कह दीजिये न ! रुक क्यों गये ?”

“मैं कह रहा था, जब अपना हाथ कोई खराब काम करे तो उसे काट नहीं दिया जाता। उसका तो सुधार ही करना उचित है।”

“ओह ! तो आप मुझे अपना समझते हैं। धन्यवाद। परन्तु आपने अपने-आपको तो बुद्धि-रूप मान लिया और मुझे केवल एक हाथ। सत्य इससे उलटा क्यों नहीं ?”

“हाँ, उलटी बात भी हो सकती है, परन्तु युक्ति वैसी ही है। यदि किसी के विचार उलटे हो जायें तो उसको ठीक मार्ग पर भी तो समझाने से ही लाया जा सकता है।”

पूर्णिमा वार्तालाप के इस अन्तिम भाग से संतोष अनुभव कर रही थी। वह यही चाहती थी और मधुसूदन ने उसे सात्वना दी थी। अब उसने बात को पुनः घुमाव दिया और अकस्मात् खड़ी होकर मधुसूदन की ओर देखकर पूछने लगी, “मैं एक बात आपसे पूछूँ ?”

“हाँ, पूछो।”

“आप एक बार हमारी पार्टी में शामिल होकर उसके आन्तरिक कार्यों और उपायों का अध्ययन क्यों नहीं करते ?”

“मैं इस अध्ययन का लाभ नहीं समझता।”

“क्यों ?”

“इस कारण कि मैं हिंसावाद में विश्वास नहीं रखता।”

“आप देश के कभी स्वतन्त्र होने में भी विश्वास रखते हैं या नहीं ?”

“कभी ? क्यों नहीं। परन्तु अभी नहीं।”

“कब तक नहीं ?”

“जब तक हममें चरित्र उत्पन्न नहीं हो जाता।”

“और चरित्र बनाने का उपाय ?”

“प्राचीन आर्य संस्कृति का अवलम्बन।”

“तो क्या पृथ्वी-भर के दूसरे स्वतन्त्र देश आर्य सभ्यता का अवलम्बन किये हुए हैं ?”

मधुसूदन ने बिना विचारे उत्तर दिया, “नहीं, और उनकी स्वतन्त्रता क्षण-भंगुर है। उनकी सभ्यता का मरणकाल समीप है। जर्मन और रूस में काले-काले बादल उठ रहे हैं, जो बहुत शीघ्र ही संसार-भर में छा जाने वाले हैं। तदनन्तर अपने-आपको स्वतन्त्र समझने वाले अपनी यथार्थ स्थिति समझ जायेंगे। वे लोग,

जो केवल इन्द्रियों के सुख को परम सुख मानते हैं, जो सांसारिक विभूति को परमोन्नति समझते हैं, जो दूसरों को ठग लेने को अपनी शिक्षा का ध्येय समझते हैं, जो बाहरी सजावट को सौंदर्य मानते हैं, जो केवल मीठी बातें करने को शिष्टाचार समझते हैं और जो पाँच वर्ष के पश्चात् उद्वेग में आकर वोट डालने को स्वतन्त्रता मानते हैं, वे भारी भूल में हैं। समय आ रहा है जब उनको अपनी भूल का ज्ञान होने वाला है। शीघ्र ही उन तथाकथित स्वतन्त्र देशों के लोग अपने-आपको तोपों, बन्दूकों, टैंकों, हवाई जहाजों और अनेकानेक प्रकार के घातक यन्त्रों के अधीन सर्वथा पराधीन समझेंगे।”

पूर्णमा मधुसूदन की इस भविष्यवाणी को सुन रही थी और गम्भीर विचार में मग्न थी। वह सोच रही थी कि जब भारतवर्ष में आर्यों का साम्राज्य था तब कहीं वर्णाश्रम के झगड़े थे और कहीं ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि भड़क रही थी, कहीं ब्राह्मण श्राप देते फिरते थे तो कहीं क्षत्रिय बल-परीक्षा में देश-विदेश पर निष्प्रयोजन आक्रमण कर रहे थे। क्या यही सभ्यता है जिसकी प्रतीक्षा में मधुसूदन देशोद्धार के काम को स्थगित कर देना चाहता है ?

मधुसूदन की बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि वे तांगे के पास आ पहुँचे, इस-लिए वार्तालाप बन्द हो गया।

विवाह-प्रस्ताव

इस घटना को एक वर्ष व्यतीत हो चुका था। पुलिस के अथक प्रयत्न करने पर भी इलाहाबाद के कलक्टर के बँगले में विस्फोट करने वालों का पता नहीं चला। इलाहाबाद के कई लोगों को पकड़ा गया। कॉलेजों के अकेले रहने वाले विद्यार्थियों की भाग-दौड़ करवाई गयी। नगर के पढ़े-लिखे वेकारों और अविवाहितों की मर्दमशुमारी की गई। अभिप्राय यह कि जहाँ-जहाँ और समाज के जिस-जिस भाग में पड़्यन्त्रकारियों का होना सम्भव था वहाँ-वहाँ जाँच-पड़ताल की गई, परन्तु पुलिस को न तो कहीं बम के मसाले की बू आई और न ही कहीं किसी व्यक्ति में बम बनाने की योग्यता मिली। धीरे-धीरे खोज ठण्डी होने लगी। कलक्टर के बँगले में बम चलाने के विषय की जो पुलिस में फाइल आई थी उसमें अफसरों के सफर-खर्च के बिलों के अतिरिक्त और खोज के नाम पर कुछ नहीं था।

राय साहब कुंजविहारी ठीक तो हो गये, परन्तु उनकी मानसिक तथा शारीरिक अवस्था पहले जैसी नहीं हुई। साथ ही उनके मन पर कलक्टर साहब के बँगले की घटना का प्रभाव इतना गहरा पड़ा था कि वह उसका स्मरण कर काँप

उठते थे। मधुसूदन पहले की भाँति कभी-कभी उनसे मिलने आया करता था। एक दिन उन्होंने पूछा, “मधुसूदन, वह मालती वाई क्या तुम्हारी पहले से परिचित थी?”

“जी, राय साहब!” मधुसूदन का उत्तर था।

“क्या तुम जानते हो कि वह कौन है और क्या करती है?”

“जी हाँ। मेरा एक सहपाठी और मित्र है। उसका नाम नरोत्तमप्रसाद सक्सेना है। वह जब यहाँ कॉलेज में पढ़ता था तो हमारे घर में ही रहता था। वह बनारस का रहने वाला है और मालती उसकी छोटी बहिन है। उसका यथार्थ नाम पूर्णिमा है। वह एफ० ए० पास है और अब संगीत-विद्या सीखने में लगी हुई है। जब नरोत्तम हमारे यहाँ रहता था तो मेरी उससे घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी। मैं भी कई बार बनारस जाकर उनके घर ठहरा हूँ। वह लड़की बहुत ही सुशील, समझदार और कला-प्रवीण है।”

“तो वह हमारी कायस्थ विरादरी की लड़की है?”

“जी हाँ, परन्तु ये लोग बहुत ही स्वतन्त्र विचारों के हैं। पूर्णिमा के पिता का देहान्त पिछले वर्ष हुआ था। मैं उस समय उनके घर पर ही था। वह बहुत ही महान् विचारों के आदमी थे। छोटी-छोटी बातों, विरादरी के सम्बन्धों और सर्व-साधारण की सम्मति की तो उन्होंने कभी परवाह ही नहीं की थी। नृत्य-कला सीखने का पूर्णिमा को बहुत शौक था। जब उनको यह ज्ञान हुआ तब बिना किसी की राय की परवाह किये उन्होंने स्वयं पूर्णिमा के नाच सीखने का प्रबन्ध कर दिया। उनकी मुझ पर भी बहुत कृपा थी। नरोत्तम के पिता अच्छे-खासे धनी थे। इस पर भी एक बार जब वह इलाहाबाद में आये और मेरा उनसे परिचय हुआ तो वह हमारा घर देख नरोत्तम को हमारे यहाँ रहने के लिये कह गये। वह मुझे और पिताजी को नरोत्तम की संगति के अधिक योग्य समझते थे और बोर्डिंग हाउस के विद्यार्थियों तथा सुपरिटेण्डेंट के विषय में कुछ अच्छा विचार नहीं रखते थे। एक बार उनके एक मित्र ने कहा भी था कि नरोत्तम बोर्डिंग में न रहकर अपने मानसिक विकास में पूर्ण नहीं हो सकेगा, परन्तु उन्होंने उत्तर में कहा, ‘जो विकास बोर्डिंग हाउस के लड़कों का हो रहा है वह उन्हें ही मुबारक हो, मेरा लड़का उससे वंचित रहकर ही ठीक है।’”

राय साहब यद्यपि पूर्णिमा की कला-प्रवीणता से बहुत प्रसन्न थे तथापि उन्हें यह बात पसन्द नहीं थी कि उनकी विरादरी की एक लड़की सभा-समाजों में नाचती फिरे। उनको एक बात से सन्तोष था कि पूर्णिमा ने उनसे रुपया लेने से इन्कार कर दिया था।

इलाहाबाद के नये कलक्टर मुसलमान थे। उनका सदा यह प्रयत्न रहता था कि प्रत्येक बात में नगर के मुसलमानों को अग्रसर करें। परिणाम यह हुआ कि

राय साहब अब उनकी प्रतिष्ठा के उतने पात्र नहीं रहे जितना कि वह पहले थे। कुछ इनके मन में भी सरकारी कामों का उत्साह नहीं रहा था।

एक दिन राय साहब अपने मकान की बैठक में बैठे बड़ा-सा सिगार पी रहे थे। उस दिन कुछ धीमी-धीमी वर्षा हो रही थी, इस कारण वह घर से बाहर नहीं गये। प्रातःकाल से कोई मिलने वाला भी नहीं आया था। उनका मन कुछ उदास था और वह साल-भर पहले की बातों को याद कर मन में विचार कर रहे थे। पास एक तिपाई पर 'ऐश-ट्रे' और 'लीडर' दैनिक की नवीन प्रति पड़ी थी। राय साहब ने समाचार-पत्र को छुआ भी नहीं था। केवल सिगार के कश लगा-लगाकर धुआँ छोड़ने के अतिरिक्त वह और कुछ नहीं कर रहे थे।

इस समय मधुसूदन और पूर्णिमा कमरे में दाखिल हुए। राय साहब उनको इस प्रकार आये देख कुछ विस्मित हुए। कौच पर से उठते हुए पूर्णिमा को सम्बोधन कर बोले, "आइये, आइये, बैठिये। इस वर्षा में कहाँ घूम रही हैं?" फिर मधुसूदन से पूछा, "कहाँ पा गये हो इन्हें?"

पूर्णिमा कुर्सी पर बैठ गयी और मधुसूदन पास खड़ा-खड़ा ही कहने लगा, "आप इलाहाबाद में आई थीं और कहने लगीं कि आपके स्वास्थ्य का पता लेना है। सो हम यहाँ चले आये हैं।"

राय साहब ने सिगार को ऐश-ट्रे में रख दिया और पूर्णिमा की ओर घूमकर बोले, "धन्यवाद, वैसे तो अब ठीक हूँ परन्तु उस दिन की घटना भूल नहीं सकता। जब भी उसकी याद आती है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कितना भयानक दृश्य था। उफ ! लोगों की चीख-पुकार अभी तक कानों में गूँज रही है। और आपने तो पड़ा ही होगा कि पन्द्रह की मृत्यु तो वहीं हो गयी थी। छः अस्पताल जाते-जाते मर गये। यह तो भगवान् की कृपा थी कि आपने मुझे घर लाना ही ठीक समझा, नहीं तो मेरी भी समाधि वहीं कहीं बनी होती।"

कुछ देर ठहरकर राय साहब फिर कहने लगे, "मालतीदेवी, मैंने आपका परिचय पण्डितजी से पाया है और यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है कि आप हमारी विरादरी की लड़की हैं। पहले अवश्य मैंने आपको एक पेशेवर नाचने वाली समझा था। इसमें हमारा कुछ अधिक दोष नहीं। हमारे समाज की व्यवस्था ही ऐसी है कि इसमें भले घरों की स्त्रियों का जन-साधारण में नाचना-गाना अच्छा नहीं समझा जाता।"

इतने में राय साहब की दृष्टि मधुसूदन की ओर चली गई। वह अभी तक खड़ा था। उसे बैठने का संकेत कर फिर कहने लगे, "मैं तो नाचने-गाने को खराब नहीं समझता। बहुत-सी और भी बातें हैं जिनमें लोगों से मैं सहमत नहीं हूँ।"

पूर्णिमा ने कुछ खिन्न मन से कहा, "राय साहब, छोड़िये इन बातों को। लोगों को प्रसन्न रखते हुए तो कुछ भी नहीं हो सकता। आप इसे अच्छा समझते हैं, क्या

वह कम बात है? मैं तो इसी से सन्तुष्ट हूँ। जब आप जैसे माननीय और प्रतिष्ठित वृद्ध इसे खराब नहीं समझते तो इससे मेरा उत्साह और भी बढ़ गया है। मेरे मन में नाचना सीखने की प्रबल इच्छा थी और जब मेरे पिताजी ने मेरी इच्छा का नमर्थन किया तो मुझे संसार-भर के समाज की परवाह नहीं रही। मुझे और नरोत्तम भैया को विश्वास है कि पिताजी कभी गलती नहीं कर सकते थे। एक बात पिताजी ने अपने मरने से पूर्व मुझे कही थी। वह सदैव मेरे मन में रहती है। उन्होंने कहा था, 'जिस बात से तुम अपनी आत्मा का हनन नहीं करतीं उसके करने में लज्जा करने की आवश्यकता नहीं।' मेरा तो ऐसा विश्वास है कि संगीत से आत्मा उन्नत होती है, तो फिर इसमें लज्जा की कोई बात हो ही नहीं सकती।"

पूणिमा ने अब तिरछी नजर से मधुसूदन की ओर मुस्कराकर देखते हुए कहा, "परन्तु यह हमारे पण्डितजी हैं, वी० ए० हैं, नौजवान हैं, साहित्य और कला में प्रवीण हैं, स्वयं गायनाचार्य हैं, फिर भी मेरे नाचने को खराब समझते हैं। यह भरसक यत्न करते रहते हैं कि मैं यह सबकुछ छोड़कर विवाह कर लूँ और किसी के घर का चूल्हा सेंका करूँ।"

मधुसूदन हँस पड़ा, परन्तु कुछ बोला नहीं। राय साहब ने कुछ अचम्भे में पूछा, "तो क्या आप विवाह नहीं करेंगी? यह तो मैं अच्छा नहीं मानता।"

पूणिमा ने लापरवाही का भाव दिखाते हुए कहा, "आपका कहना ठीक भी हो सकता है और नहीं भी। यह आशा करनी उचित नहीं कि वे सब बातें जो आप मानते हैं अवश्य ही ठीक हों। आप तो समझते हैं कि प्रत्येक हिन्दू कन्या को विवाह कर ही लेना चाहिये। किन्तु मैं ऐसा नहीं समझती।"

अब मधुसूदन से नहीं रहा गया। वह बोल उठा, "मीठा-मीठा हजम और कड़ुआ-कड़ुआ थू—यही है न आपकी नीति?"

यह सुन राय साहब मुस्कराने लगे और बहुत ही मीठे स्वर से बोले, "परन्तु, मधुसूदन पण्डित, मीठा और कड़ुआ भी तो अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही होता है। सबका स्वभाव एक-सा नहीं होता, न ही वह सदैव एक-सा रहता है। जिसे तुम आज मीठा समझते हो उसे तुम कल कड़ुआ मान सकते हो। मनुष्य के स्वभाव के बदलने के साथ उसकी अच्छे-बुरे की धारणा भी बदलती रहती है।"

मधुसूदन ने फिर कहा, "किसी के कहने से न तो कोई बात सत्य होती है और न असत्य। जो जैसा है वह सदैव वैसा ही रहता है। हम भ्रम में पड़ सकते हैं परन्तु सत्य नित्य है और वह अपरिवर्तनशील है।"

पूणिमा ने उत्तर में कहा, "यह तो ठीक है, पर हम कैसे जानें कि अमुक निर्विकल्प सत्य है और अमुक असत्य। अब इसी बात की वास्तव विचार करें तो पता चल जायेगा। यह कैसे पता चले कि विवाह करना ही ठीक है? इसमें मतभेद तो है ही।"

“शास्त्र की कसौटी पर परखने से पता चल सकता है कि सत्य क्या है और असत्य क्या है।”

“मगर शास्त्र भी तो मनुष्य के बनाये हैं।”

“नहीं, ऋषियों के बनाये हुए हैं और वे त्रिकालज्ञ थे।”

“इसका प्रमाण ? एक तो किसी ने ऋषियों को शास्त्र लिखते देखा नहीं और फिर इसका क्या प्रमाण है कि वे त्रिकालज्ञ थे ही ?”

“विश्वास।”

पूर्णमा ने जब देखा कि मधुसूदन उत्तर-रहित हो गया है तो अपने विचारों को पुष्ट करने के लिये बोली, “विवाह करना अथवा न करना कोई अटल सिद्धान्त नहीं है। यह तो समाज का रिवाज है जो समय-समय पर बदलता रहता है। मेरे विषय में विवाह एक अनावश्यक-सी बात है।”

अब राय साहब ने उत्सुकता से पूछा, “क्यों ?”

“मैंने जिस काम की शिक्षा प्राप्त की है उससे मेरा निर्वाह भली-भाँति हो सकता है। घर-गृहस्थी के लिए न तो मैंने शिक्षा प्राप्त की है और न ही मुझे उसमें रुचि है।”

“कहती तो आप ठीक हैं, परन्तु यह माना जाता है कि विवाह तो परमात्मा के किये से होता है। इसमें शिक्षा, रुचि और प्रयत्न का प्रयोजन नहीं होता।”

“अच्छी बात है, तो फिर जब ईश्वर करेगा हो जायेगा। मुझे उसकी चिन्ता नहीं होनी चाहिये।”

“जैसी भगवान् की इच्छा।” अब इस बातचीत को समाप्त करने के विचार से राय साहब ने पूछा, “हाँ, तो आप कहाँ ठहरी हैं ? क्या फिर किसी गाने की पार्टी में आई हैं ?”

“नहीं, मैं सिनेमा-डायरेक्टर से मिलने आई थी। यहाँ पण्डितजी के घर पर ठहरी हुई हूँ।”

“सिनेमा-डायरेक्टर से भेंट हुई है ?”

“हाँ, हुई है। उन्होंने वचन दिया है कि एक-दो दिन में नियुक्ति हो जायेगी। अभी तो वह मुझे ‘मेरे भगवान्’ चित्र के लिये लेंगे।”

“क्या देंगे ?”

“तीन हजार रुपया। चित्र चार मास में समाप्त करना होगा।”

“बस !”

“मैं समझती हूँ कि अभी इतना ही ठीक है।”

“अच्छी बात है। यदि मेरे योग्य कोई काम हो तो बतलावें।”

“मेरे आने का एक आशय यह भी था कि आपसे प्रार्थना की जाय कि आप अपने स्वस्थ होने की खुशी में एक जलसा करें और मैं अपनी सेवायें उसके लिये

निःशुल्क दूँ।”

“अत्यन्त धन्यवाद ! परन्तु मैंने जलसों में सम्मिलित होना बन्द कर दिया है।”

“क्या मैं इसका कारण जान सकती हूँ ?”

“वात यह है कि पिछले साल जो घटना हुई थी उस पर मैंने बहुत विचार किया। यह बात तो सत्य है कि स्वर्गवासी कलक्टर साहब ने बहुत अन्याय किये थे। मैं यह सब जानता था, इस पर भी मैं दिन-रात उनकी सेवा में यत्नशील रहता था। उन्होंने कुछ बातें ऐसी की थीं कि जिनसे यदि वह एक साधारण व्यक्ति होते तो शायद दस वर्ष के लिये कारावास पाते। परन्तु कानून के एक सिरे को वह पकड़े बैठे थे और उसके पंजे से बचे हुए थे।

“शायद उस दिन जो कुछ हुआ वह एक दैवी घटना थी। जिसने भी वह कार्यवाही की, ईश्वर की प्रेरणा से की प्रतीत होती है। हमने जो कष्ट भोगा वह दुष्टता से संसर्ग रखने का फल था। आप यह सुनकर हैरान होंगी कि जितने भी मरे अथवा घायल हुए वे सबके-सब साहब के कृपा-पात्रों में से थे, उनके कामों में महयोग देने वाले थे। साहब का कुत्ता तो मर गया, परन्तु उसे पकड़े हुए चपरासी वाल-वाल बच गया। मरने वालों में कोई गरीब नहीं था, यद्यपि बहुत-से नौकर-चाकर मरने वालों को सिगरेट, पान तथा सुपारी वांट रहे थे। क्या यह अचम्भा करने की बात नहीं है ? मैं तो इस सबमें ईश्वर का हाथ देखता हूँ।

“मैंने इसी कारण सब सरकारी अफसरों और उनकी चापलूसी करने वालों से गम्बन्ध तोड़ लिया है। न मैं किसी दावत अथवा जलसे में सम्मिलित होता हूँ और न ही कोई उत्सव करता हूँ।”

पूर्णमा मुस्करा रही थी। मधुसूदन किसी गम्भीर विचार में मग्न था। राय साहब की बात समाप्त होने पर कहने लगा, “ये आपके विचार तो आतंक-वादियों को प्रोत्साहित करेंगे।”

“मैं किसी आतंकवादी का तो यह बात नहीं रहा। यह मैं हृदय से मानता हूँ, इस कारण आपको कह रहा हूँ। कोई भी काम ईश्वर की इच्छा के बिना नहीं होता। यदि ईश्वर को स्वीकार न होता तो बम फेंके हुए भी न फटते अथवा कुछ और गड़बड़ हो जाती, कोई मरता ही न अथवा निरपराधी मर जाते और न जाने क्या हो जाता।”

इस पर पूर्णिमा ने आँखें नीची किये हुए पूछा, “तो आपके विचार में आतंक-वादियों का यह आयोजन बहुत सफल रहा ?”

“प्रत्यक्ष में तो ऐसा ही प्रतीत होता है।”

“राय साहब ! आप डर गये हैं।”

“हाँ, परन्तु बम से नहीं, ईश्वर के न्याय से।”

“परन्तु न्याय में साधन तो बम ही थे।”

“मैं साधनों से नहीं डरा, मैं तो ईश्वर के कोप से डर गया हूँ। मैंने उन लोगों से सर्वथा सम्बन्ध तोड़ लिए हैं।”

पूणिमा ने पुनः बात घुमाकर कहा, “तो आप भले लोगों से तो सम्बन्ध रखते हैं। पार्टी में उनको ही बुला लीजियेगा। क्या इतने बड़े नगर में बीस-तीस भी ऐसे नहीं मिलेंगे जिनको आप ईश्वरीय कोप से मुक्त समझते हों?”

“हैं तो। परन्तु जीवन-भर तो चापलूसों में व्यतीत किया है, अब दूसरों से परिचय कठिन हो गया है।”

“परिचय करने का इससे अच्छा अवसर और कहाँ मिलेगा? देखिये, पण्डितजी गायेंगे और मैं नाचूंगी। मेरा विचार है कि देखने वाले निराश नहीं होंगे।”

“परन्तु....”

“परन्तु क्या?”

“यही कि आप हमारी विरादरी की लड़की हैं। मुझे आपको पब्लिक में नाचते देख लज्जा लगती है।”

“यदि मैं आपकी विरादरी की न होती तो?”

“बात यह है कि मैं आपसे अधिक आशा रखता हूँ। अभी तो आप यहाँ कुछ दिन हैं ही। इस विषय पर फिर विचार करेंगे।”

“अच्छी बात। आपसे हम फिर मिलेंगे।”

इतना कह हाथ जोड़ प्रणाम कर दोनों उठ खड़े हुए। राय साहब भी उठ खड़े हुए। अकस्मात् मधुसूदन को एक ओर ले जाकर वह धीरे-धीरे कुछ कहने लगे। कई मिनट तक बताते रहे। मधुसूदन के मुख पर गम्भीरता प्रकट होने लगी। सिर झुकाये वह राय साहब की बातें सुनता रहा। अन्त में उन्होंने उसके कंधों पर हाथ रखकर कुछ ऊँचे स्वर में कहा, “मेरा यह काम तुम्हें करना होगा। मैंने निश्चय कर लिया है। यदि तुम यत्न करोगे तो सफलता अवश्य होगी। बताओ, कब तक उत्तर लाओगे?”

“कल इसी समय।”

“अच्छी बात, नमस्कार।”

मधुसूदन ने हाथ जोड़ विदा ली और दोनों घर से बाहर निकल आये।

: २ :

सूर्योदय अभी नहीं हुआ था, परन्तु मधुसूदन ने पूजा समाप्त कर गाना आरम्भ कर दिया। तम्बूरा निकाल स्वर मिलाने लगा—आ...आ...आ। जब गला कुछ स्थिर हुआ तो गाना आरम्भ किया :

निर्विकल्प निर्विकार, निराधार निराकार।

आदि देव हो अनन्त, पायो न तेरो पार॥

विवाह-प्रस्ताव

तुम सबके पालनहारे, सबके रखवारे ।
 पूर्ण जगत है माया, तुम पूर्ण जगदाधार ॥
 हम दीन हीन अनाथ, हैं आश्रय तुम्हारे ।
 निर्वलों के हो रक्षक, तुम पतित-पावन हार ॥

पूणिमा अभी तक अपने कमरे में सो रही थी। वह स्वभाव से देर तक सोने वाली थी। फिर भी मधुसूदन का जादू-भरे स्वर में तानालाप सुनकर उठ बैठी। जहाँ इतने मीठे स्वर में भैरव राग गाया जा रहा हो वहाँ एक दूसरे गाने वाले के शरीर में सुस्ती और नींद समायी रहे, असम्भव है। वह उठी, बिखरे वालों को ठीक कर मधुसूदन के कमरे के दरवाजे पर आ गई। मधुसूदन दरवाजे की ओर पीठ किये बैठा था। उसके सम्मुख दीवार पर कृष्ण की मूर्ति बनी थी। आँखें मूंद वह अपने भजन में लीन था। उसे प्रतीत नहीं हुआ कि दरवाजे के बाहर से कोई उसे देख रहा है। वह गा रहा था :

अहिल्या को तारकर, भीलनी उभारकर,
 द्रौपदी की लाज रख, भक्तन कष्ट निवारे ।
 गहरे भवसागर से, टूटी सी नौका के,
 खेवट मतवारे को, पार लगावन हारे ॥

पूणिमा कुछ देर तक दरवाजे पर खड़ी भजन सुनती रही। फिर दवे पाँव अपने कमरे में वापस चली आई। वहाँ पहुँच उसने अपने सूटकेस में से घुंघरू निकाल पाँवों में बाँध लिये और बहुत धीरे-धीरे पाँव रखती हुई, जिससे आवाज़ सुनाई न दे, वापस मधुसूदन के कमरे पर पहुँची। एक मिनट तक दरवाजे पर अटकी रही। फिर कमरे में चली गई। मधुसूदन गा रहा था :

मनमोहन श्याम हमारे ।
 शरणागत की लाज रखो, हम आये द्वार तिहारे ।
 मनमोहन।

पूणिमा ने धीरे-धीरे पाँवों से ठनका देना आरम्भ किया। मधुसूदन का इस पर भी ध्यान भंग नहीं हुआ। पूणिमा का नाचना आरम्भ हो गया। मधुसूदन गाता गया :

सखा-सखी सब विरह-भरी बातें करें मन भर भर के ।
 आओगे, कब आओगे, वृन्दावन के रखवारे ॥
 मनमोहन।

छन-छन-छनन, छन-छन-छनन-छन पूणिमा अब हाव-भाव सहित नाच रही थी। उसे नाचते हुए कोई नहीं देख रहा था। कृष्ण की मूर्ति और आँखें मूंद उसका उपासक दोनों उसके नाचने से अविचलित थे। और कोई था ही नहीं। परन्तु वह किसी को दिखाने के लिये अथवा किसी का ध्यान आकर्षित करने के लिये

नहीं नाच रही थी। कोयल का गाना, मोर का नाचना, किसी दूसरे के लिये नहीं होता। यह उनकी अपने मन की तुष्टि के लिये होता है। यही बात पूर्णिमा की थी। किसी सभा में वह शायद इतने सुन्दर रूप, हाव-भाव न बना सकती जो यहाँ सहज भाव से बन जाते थे। गाना जारी था :

नाच रहीं, नाच रहीं; सब सखियाँ तेरी आशा में।

ओ मधुर बंसरी वाले, आ मीठी तान सुना रे ॥ मन''''''''।

नाच में और गाने में समय व्यतीत होते देर नहीं लगती। दिन निकल आया था। मधुसूदन के पिता श्यामाचरण मन्दिर से लौट आये थे। तम्बूरे के स्वर के साथ मधुसूदन का मधुर स्वर में भगवत्-भजन और उसके साथ घुँघरुओं की झंकार उसे पुत्र के कमरे में ले आये। वहाँ का दृश्य देख वह चकित रह गया। मधुसूदन आँखें मूँदे गा रहा था। पूर्णिमा उसकी पीठ की तरफ नाच रही थी। श्यामाचरण ने ऐसा अलौकिक नृत्य पहले कभी नहीं देखा था। मधुसूदन के गाने की प्रशंसा वह पहले कई बार सुन चुका था, परन्तु पूर्णिमा को अथवा किसी को भी नाचते उसने पहले कभी नहीं देखा था। उसने सुना था कि दक्षिण में वैष्णवों के मन्दिरों में नृत्य और कीर्तन होते हैं। क्या वे भी ऐसे ही बढ़िया होते हैं, वह नहीं जानता था। उसे यह सबकुछ बुरा प्रतीत नहीं हुआ। एक बात जो उसके मन में आ रही थी वह यह थी कि पूर्णिमा भगवत्-भक्ति में लीन है अथवा मधुसूदन की भक्ति में। वह उसे मधुसूदन के चरणों में फूल चढ़ाते और चरण-रज माथे पर लगाते देख चुका था। इसी संशय में पड़ा हुआ वह अचम्भे में देख रहा था। चकित हुआ, जहाँ था वहीं जड़वत् खड़ा रह गया। कितनी ही देर तक वह हृदय को शांत करने वाला गाना सुनता रहा और मन की सच्ची भक्ति प्रकट करने वाले नृत्य-चित्र देखता रहा। मधुसूदन और पूर्णिमा अपने काम में इतने लीन थे कि उन्हें श्यामाचरण की उपस्थिति वहाँ बहुत देर तक ज्ञात न हुई।

अकस्मात् पूर्णिमा की दृष्टि दरवाजे के बाहर गयी। उसने देखा कि मधुसूदन के पिता विस्मय की मूर्ति बने खड़े हुए हैं। वह एकदम ठहर गयी, फिर जोर से हँस पड़ी और छन-छन करती हुई वेग से अपने कमरे में चली गयी।

एकदम नाच बन्द होने, किसी के जोर से हँसने और फिर भाग जाने के शब्द से मधुसूदन का ध्यान टूट गया। उसका मधुर स्वप्न भंग हुआ। वह धूमकर देखने लगा। पिता दरवाजे में खड़ा भागती पूर्णिमा की ओर देख रहा था। मधुसूदन आसन से उठ खड़ा हुआ। मूर्ति को हाथ जोड़, शीश नवा, प्रणाम कर पिताजी की ओर घूमा। नमस्कार कर पूछने लगा, "क्या था, पिताजी?"

श्यामाचरण ने मुस्कराते हुए कहा, "वही! नरोत्तम की पगली बहिन, पूर्णिमा।"

"पूर्णिमा नाच रही थी क्या?"

“तो तुम्हें नहीं मालूम ?”

“हाँ होगी, वह होगी ! मुझे प्रतीत हो रहा था—वृन्दावन के समीप यमुना-तट है। विरह-भरे ग्वाल-बाल, सखा-सखी कृष्ण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। किसी ने कहा, वह श्यामसुन्दर रास में अवश्य आयेंगे। कुछ लोग नाच-नाचकर उस मुरली की तान से मधुवन को सजीव कर देने वाले का आह्वान करने लगे हैं। खट से पर्दा गिरा और सबकुछ लोप हो गया। हाँ, तो पूर्णिमा नाच रही थी, पगली-सी !”

श्यामाचरण हँस पड़ा और धीरे-धीरे अपने कमरे की ओर चल पड़ा।

मधुसूदन ने तम्बूरे पर कपड़ा चढ़ा दिया। करताल को एक ओर रख दिया और कमरे से बाहर निकलकर पूर्णिमा के कमरे की ओर चला आया। पूर्णिमा ने कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया था। वह उससे कुछ पूछना चाहता था; परन्तु किवाड़ बन्द देख पुनः अपने कमरे में लौट आया और रामायण का पाठ करने लगा।

: ३ :

दोपहर के समय जब भोजन हो चुका तो उस समय पूर्णिमा आज के दिन पहली बार मधुसूदन के सम्मुख हुई थी। मधुसूदन अपने कमरे में बैठा कुछ पढ़ रहा था। इन दिनों वह आयुर्वेद का अध्ययन कर रहा था। पूर्णिमा जब वहाँ आई तो मधुसूदन उसे देख मुस्कराने लगा। उसे मुस्कराते देख वह हँस पड़ी। मधुसूदन ने पूछा, “क्यों हँस रही हो ?”

“आप भी तो हँसने लगे थे।”

“हाँ, परन्तु मेरे हँसने का तो कारण है।”

“क्या है ?”

“पहले तुम बताओ।”

“नहीं, पहले आप मुस्कराये थे, इसलिये पहले आप बताइये।”

“अच्छा, सुनो। तुम भगवान् को नहीं मानतीं न, परन्तु भगवत्-भजन में आनन्द अनुभव करती हो। ये परस्पर विरोधी बातें क्यों हैं ? अधिकांश लोग ऐसे हैं जो अपने मन की बात नहीं जानते। तुम भी ऐसी ही हो। यह क्या हँसने का विषय नहीं ?”

पूर्णिमा इससे कुछ गम्भीर हो उठी और चुप रही तो मधुसूदन ने पूछा, “भला, तुम क्यों हँसी थीं ?”

“इसलिये कि आप सदा से मुझे गलत समझते आये हैं। जिस कारण आप मुस्कराये थे वह भी आपकी भूल थी। आपकी भूलों को देख मुझ हँसी आया ही करती है।”

“नहीं, मैं समझता हूँ तुम इस कारण नहीं हँसी थीं। कुछ और बात है।”

“हाँ, और भी बात है।”

“वह क्या ?”

“वह यह है कि आप बुद्ध हैं।” ऐसा कहकर वह फिर हँस पड़ी।

मधुसूदन भी हँसने लगा। एकाएक वह चुप हो गया और पूछने लगा, “भला जानूँ तो मैं बुद्ध कैसे हूँ ?”

“संस्कृत पढ़ने से संसार का ज्ञान नहीं होता। यही बुद्धपन है।”

मधुसूदन को कुछ याद आया। इस कारण उसने बातचीत के विषय को बदल दिया और कहा, “अच्छा, तो कल जो राय साहब से वार्तालाप हुआ था, उससे तुमने उनको कैसा समझा है ? क्या वह भी बुद्ध हैं ?”

“नहीं, प्रत्युत वह बहुत चतुर हैं। उनकी बाबत मैं कुछ विशेष ज्ञान तो रखती नहीं। हाँ, उनकी बातों से पता चलता है कि वह पूरे-पूरे चापलूस, खुशामदी और कारोबारी आदमी हैं। यह जान पड़ता है कि उन्होंने स्वयं बहुत कुछ धन पैदा किया है। सब धनी लोगों की भाँति वह भी स्वार्थपरता में लिप्त हैं।”

मधुसूदन राय साहब का यह चित्र खिंचा देख बोला, “मैं समझता हूँ तुम्हारा यह अनुमान बहुत अंशों में गलत है। मुझे राय साहब का निजी अनुभव है। वह अति विशालहृदय, दयावान और परोपकारी जीव हैं। यह ठीक है कि वह व्यापार में बहुत कड़ा व्यवहार करने वाले व्यक्ति हैं, साथ ही यह भी सत्य है कि वह निजी जीवन में बहुत ही नम्र और सभ्य व्यवहार करने वाले हैं। मुझ पर तो उनकी असीम कृपा रही है। वह सरकार के आदमी हैं सही, पर आत्मा उनकी स्वतन्त्र है और कई बार वह सत्य के लिये अफसरों से झगड़ चुके हैं। नगर में कोई भी ऐसा आदमी नहीं है जो कभी भी राय साहब से सहायता लेने के लिये आया हो और निराश लौटा हो।”

“तब तो वह सचमुच ही भद्र पुरुष हैं। परन्तु मेरी दृष्टि में तो ये छोटे-मोटे दान-धर्म के काम कुछ भी महत्त्व नहीं रखते। मैं तो देश-सेवा, देश-हित और देशोन्नति को ही सर्वोपरि समझती हूँ। मन्दिर बनवाने, प्याऊ लगवाने अथवा साधुओं को कम्बल बाँटने इत्यादि बातों को उनके सम्मुख कुछ नहीं समझती।”

“देश-सेवा इत्यादि सब बातें अच्छी हैं, परन्तु लोगों की व्यक्तिगत सेवा भी कुछ कम बात नहीं है। जब भूखे के पेट में रोटी जाती है तो उसका आनन्द वही अनुभव कर सकता है जो कभी भूखा रहा हो। कम्बल बाँटने का महत्त्व वही समझ सकता है जो कभी जाड़े में बिना कपड़े के रह चुका हो। गरीबों की राजनीति रोटी, कपड़ा और मकान ही है।”

“परन्तु परीक्षा के योग्य बात तो यह है कि देश-सेवा के कामों तथा देश-सेवकों के विषय में वह क्या सोचते हैं और वे उनकी कितनी सहायता कर सकते हैं ?”

“उनके घर में देश के सब नेताओं को मान से देखा जाता है। कई बार पण्डितजी उनसे हजारों रुपये चन्दा ले जा चुके हैं। उनको एक बार समझाने की

विवाह-प्रस्ताव

आवश्यकता होती है। जब वह किसी काम की अच्छाई को समझ जाते हैं तो फिर सहायता करने में संकोच नहीं करते।”

“उनका क्रांतिकारी दल के विषय में क्या विचार है?”

“यह तो मैं नहीं जानता। इसके जानने का कभी अवसर ही नहीं मिला। हाँ, तुम्हारी बात उनके विचारों को मैं जानता हूँ।”

इतना कहकर मधुसूदन ने तिरछी नज़र से पूर्णिमा की ओर देखा। वह सम्मुख रखे कागज़ पर पैनिसल से कुछ चित्र खींच रही थी। अपने विषय की बात सुन वह उत्सुकता से मधुसूदन की ओर देखने लगी। मधुसूदन ने कहना जारी रखा, “वह तुम्हें स्वर्ग की देवी समझते हैं।”

“ओह ! तब तो वे मेरी पूजा करते होंगे ?”

“हाँ, जब से उनको ज्ञात हुआ है कि तुम उनकी विरादरी में से हो, वह तुम्हारी बातों में विशेष रुचि प्रकट करने लगे हैं। कल ही तुम्हारे विवाह के विषय में बहुत कुछ पूछ रहे थे।”

“कल ! क्या पृथक् होकर मेरी ही बातें हो रही थीं ?”

मधुसूदन ने प्रकट में कुछ झिझक दिखाते हुए कहा, “अ.....अ.....हाँ।” पूर्णिमा अब और जानने के लिये उत्सुक हो उठी। वह बोली, “क्या पूछते थे ?”

“बता दूँ ? सुनोगी ?”

“हाँ, हाँ, सुन तो रही हूँ।”

“वह पूछते थे कि पूर्णिमा का विवाह निश्चित हुआ है या नहीं। मेरे यह कहने पर कि ‘अभी नहीं’, तो कहने लगे, ‘इसका निश्चय पूर्णिमा की माँ करेगी अथवा भाई।’ मैंने उत्तर दिया, ‘पूर्णमा स्वयं।’ तब उन्होंने एक लड़के की बात की।”

पूर्णमा मुस्कराकर पूछने लगी, “और वह कौन महापुरुष हैं ? क्या आप उनको जानते हैं ?”

“हाँ, बहुत भली-भाँति जानता हूँ। बहुत धनी हैं, प्रसिद्ध हैं, सुन्दर हैं, सुशील हैं और अनेक गुण-सम्पन्न हैं।”

“ओहो ! तब तो उनकी बात विचार करने योग्य है।” इतना कह पूर्णिमा खिलखिलाकर हँस पड़ी।

मधुसूदन ध्यानपूर्वक पूर्णिमा के मुख पर देख रहा था। वह उसके मन की बात समझना चाहता था। परन्तु हँसी ने उसके मन के भावों को आच्छादित कर दिया था। इस आच्छादन को दूर करने के लिये उसने फिर कहा, “हाँ, यह प्रस्ताव तिरस्कार-योग्य नहीं। उस लड़के के धनी होने के विषय में मैं इतना कह दूँ कि वह तुमको विवाह होते ही एक हजार रुपया मासिक जेब-खर्च देने को तैयार है, और अपने मरणोपरान्त अपनी आधी सम्पत्ति लिख देगा। प्रसिद्धि उसकी इतनी है कि

नगर के बच्चे-बच्चे के मुख पर उसका नाम है।”

“क्या वह कोई राजनैतिक नेता है?”

“क्या तुम समझती हो कि केवल राजनीति का क्षेत्र ही ऐसा है जहाँ प्रसिद्धि प्राप्त की जा सकती है?”

पूर्णमा ने कुछ गम्भीर भाव धारण कर कहा, “परन्तु आपने यह नाई का काम कब से आरम्भ किया है?”

मधुसूदन ने हँसते हुए कहा, “नाई का काम? हाँ, जब से पूर्णिमादेवी के लिए वर ढूँढ़ने की आवश्यकता हुई है।”

“अच्छा, तो अब अपने नाईपन को बन्द करो। मुझे इन बातों में रुचि नहीं।”

“नाराज हो गई हो? बताओ, इसमें मेरा क्या दोष है? तुमने स्वयं ही तो एक दिन कहा था कि भैया और माँ इस विषय में तुम्हारी इच्छानुसार ही करेंगे। यदि तुमने अपने लिए पति ढूँढ़ने का काम अपने हाथ में न लिया होता और भारतवर्ष में प्रचलित प्रणाली के अनुसार यह काम तुम्हारी माता अथवा भाई के हाथ में होता तो इस प्रकार की अरुचिकर बातें सुनने की तुम्हें आवश्यकता न होती।”

“अच्छा, तो समाज के इस नियम का उल्लंघन करने के लिए मुझे दण्ड दिया जा रहा है? बहुत अच्छी बात है। मैं अपनी स्वतन्त्रता की कीमत देने के लिए तैयार हूँ। आपने मुझे और जो बुरा-भला कहना है कह लीजिये।”

मधुसूदन ने क्षमा माँगने का भाव दिखाते हुए कहा, “बुरा-भला! और तुमको? यह कैसी बात कह रही हो, पूर्णिमा? तुम अपने-आपको नवयुग की लड़की मानती हो तो फिर नवयुग की ठोकड़ों से डरती क्यों हो? साथ ही, तुमने स्वयं ही तो पूछा था, और मैंने तुम्हें गाली कब दी है? एक मनुष्य की सच्ची प्रशंसा तुम नहीं सुन सकती?”

“सुन क्यों नहीं सकती! बात यह है कि कोई धनी मनुष्य सज्जन भी हो सकता है इसमें मुझे सन्देह है। धन और सौजन्य एक स्थान पर नहीं हो सकते, ऐसी मेरी धारणा कई वर्षों से बनी हुई है। इसे आप निर्मूल नहीं कर सकते। मेरा विश्वास है कि धन का एक स्थान पर एकत्रित हो जाना ही इस बात का सूचक है कि कहीं स्वार्थ, अन्याय, पाप और दुष्टता उपस्थित हैं।”

“परन्तु मैं धनवानों की तो प्रशंसा नहीं कर रहा। तुम्हारी बात प्रायः सत्य हो सकती है, सदैव नहीं। ऐसे एक-आध धनी का होना असम्भव नहीं जो उक्त दुर्गुण न रखता हो। यह सज्जन तुम्हारी विरादरी के हैं। जीवन को सुखी रखने के लिए धन एक मुख्य साधन है और वह बहुत धनी हैं। विवाहित जीवन में बुद्धियुक्त धन का व्यवहार सुख और शान्ति की गारण्टी है। और वह महानुभाव तुम्हें प्यार करेंगे, तुम्हारा आदर करेंगे। उनके मन में किंचित्मात्र भी पाप, झूठ

और दगा नहीं है। वह निष्कलंक हैं। उन.....”

पूर्णमा ने कानों में अँगुली डालकर कहा, “बस, बस, और अधिक प्रशंसामय कविता न करो। संस्कृत पदों में यही तो दोष है कि प्रत्येक स्त्री को मेनका और प्रत्येक पुरुष को धर्मावतार बना देते हैं। मुझे आपकी इन बातों पर विश्वास नहीं होता और विश्वास करके कहूँगी भी क्या.....”

मधुसूदन ने उसे बात समाप्त करने नहीं दी। वह जानता था कि पूर्णमा कहेंगे कि उसने तो चुनाव कर लिया है। वह उसके पहले के चुनाव की इस नये प्रस्तावित वर के मुकाबले में तुलना करवाना चाहता था। वह कहने लगा, “मानो चाहें न मानो, विश्वास करो अथवा न करो, परन्तु सुन तो लो। सुन लेने में क्या दोष है?”

इस पर पूर्णमा बोली, “सुनूँ क्या? मैं सब समझ गई हूँ। बताऊँ वह महा-पुत्रप, धर्म-मूर्ति, कुबेर के समान धनी, संसार के नियम का उल्लंघन करनेवाला कौन है?”

“हाँ, कौन है?”

“मेरी बिरादरी में है, धनी है, सुशील है, इलाहाबाद में विख्यात है, मुझे भली-भाँति जानता भी है, दया और न्याय की मूर्ति, पचास वर्ष का बूढ़ा भी है। क्यों, ठीक है न?”

“यह तुमने कैसे जाना?”

“और वह राय साहब कुंजबिहारी माथुर हैं। क्यों, कैसा ठीक समझा?”

“ओह!”

“आप मुझे मूर्ख समझते हैं न! परन्तु मैंने कितना ठीक अनुमान लगाया है।”

“मैंने तो तुम्हें मूर्ख कभी नहीं समझा। अच्छा, तो श्रीमतीजी का क्या उत्तर है जो मैं उनसे कह दूँ?”

पूर्णमा खिलखिलाकर हँसी और बोली, “इसी कारण तो मैंने आपको बुद्ध कहा था।”

मधुसूदन बुद्ध बनकर मन-ही-मन प्रसन्न था। इस पर भी वह अभी और स्पष्ट उत्तर चाहता था। उसने कुछ तेज आवाज़ में कहा, “कैसे बुद्ध हैं? तुम्हारे मन की बात न जानने से बुद्ध बन गया क्या? मैं तो समझता हूँ कि तुम स्वयं भी अपने मन की बात को स्पष्ट रूप में नहीं पढ़ सकी हो। इसी कारण तो टालमटोल कर रही हो।”

इस पर तो पूर्णमा को क्रोध आ गया। वह उद्देश में कहने लगी, “टालमटोल कर रही हूँ? नहीं, बिल्कुल नहीं। यदि मैं आपके स्थान पर होती तो कल ही राय साहब को उत्तर दे देती। कह देती, ‘आपका यह प्रस्ताव धर्म-शास्त्र और मानव-शास्त्र के विपरीत है। आप विवाहित हैं इस कारण आपको ऐसा विचार

करते भी लज्जा आनी चाहिए। आपके इस प्रस्ताव के स्वीकार होने की कोई आशा नहीं।' साथ ही यह कह देती, 'मैं पूर्णिमा को कई वर्षों से जानता हूँ। वह धन के लोभ से अपने विचारों को बदल नहीं सकती। वह दृढ़निश्चयी है और फिर धन तो कुछ बहुत उत्तम पदार्थ भी नहीं है। धनी के पास रखा धन मजदूरों के रक्त से रंजित होता है। ऐसे धन को हाथ लगाना भी वह पाप समझती है।''

इतना कह पूर्णिमा ठहर गयी, परन्तु वह अपने मन के आवेश को न रोक सकने के कारण फिर कहने लगी, "और आप तो मेरे विचारों से भली-भाँति परिचित हैं। मेरे ये विचार आज से कई वर्ष पूर्व बने थे। एक बार जब भैया बी० ए० की परीक्षा के लिये आपके घर में रहते थे और भैया के निमन्त्रण पर आप बनारस आये थे और हमारे घर पर ठहरे थे, उस समय मैं मैट्रिक में पढ़ती थी। एक दिन पिताजी ने माताजी को कहा था, 'मधुसूदन बहुत अच्छा लड़का है। मैं जीता रहा तो पूर्णिमा का उससे विवाह कर दूँगा।' आप जानते हैं कि पिताजी के विचार अधूरे ज्ञान पर नहीं हुआ करते थे और न ही वह उन्हें शीघ्र, बिना मनन किये, कभी अपनाते थे। मैं तो तभी से अपना भाग्य आपके साथ जुड़ा पाती हूँ। अब जब मुझे इलाहाबाद में कई मास रहना है तो भैया और माताजी ने मेरे रहने के लिये आपका घर, जहाँ कोई दूसरी स्त्री नहीं है, क्यों चुना है? आप पर उन लोगों का कितना विश्वास है, क्या इसका अनुमान आप नहीं लगा सकते? माताजी कहा करती हैं कि वह आपको इतनी ही अच्छी तरह जानती हैं जितना भैया को। मैं तो आपको राय साहब के मुकाबले में लाखों गुणा अधिक प्रतिष्ठित, विश्वास-योग्य, देश और जाति के लिये आवश्यक और लाभकारी मानती हूँ। एक धोखा, फरेब, रिश्वत और खुशामद से धन पैदा कर धनी बने हुए बूढ़े ठेकेदार को घृणा से देखती हूँ, जिसका सरकारी अफसरों से सम्पर्क है, जो सरकार की नीति में सहायक है और जिसके कारण उसे सरकार की ओर से उच्च पदवी से विभूषित किया गया है। वह व्यक्ति मेरी दृष्टि में कीड़े-मकोड़ों से अधिक महत्त्व नहीं रखता। यह सब-कुछ आपको ज्ञात होना चाहिये था। फिर भी आपने मुझ पर सन्देह किया कि मैं धन-वैभव के लोभ में अपने विचार परिवर्तन कर सकती हूँ। यह आपने मेरा भारी अपमान किया है।''

इतना कहते-कहते पूर्णिमा की बड़ी-बड़ी आंखों में आँसू भर आये। मधुसूदन ने बहुत ही विनीत भाव से कहा, "पूर्णमा, क्षमा करो। मेरा यह आशय विल्कुल नहीं था। मेरा तुमसे परिचय तो चिरकाल से है। मैं तुम्हारे विचारों को जानता भी हूँ, परन्तु तुम्हारे पिताजी का यह विचार और उस पर तुम्हारी इस धारणा का मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं था। तुम मेरा मान करती हो, आदर करती हो और मुझे अपना समझती हो, तुम्हारी माता और भाई भी मुझ पर कृपा-दृष्टि रखते हैं, यह सब ठीक है; फिर भी यह मैं कैसे समझ सकता था कि तुम लोगों का विचार मेरे

प्रति ऐसा भी है। यथार्थ में मैंने इस रूप में तो कभी विचार किया भी नहीं था। मेरे लिये यह एक नवीन समाचार है कि तुम्हारा-मेरा विवाह होगा। यह....”

अब पूर्णिमा, जिसकी आँखों से अभी-अभी आँसू छलक उठे थे, फिर हँसने लगी। अपना हाथ मधुसूदन के मुख पर रखकर बोली, “वस, वस, अब इस विषय को छोड़ो।”

इतने में श्यामाचरण हाथ में एक चिट्ठी लिये पहुँच गया। यह पत्र राय साहब ने नौकर के हाथ भेजा था और इसका उत्तर माँगा था।

मधुसूदन ने चिट्ठी खोली और पढ़कर पूर्णिमा के हाथ में दे दी। उसमें लिखा था, ‘जो काम करने को हमने तुम्हें कल कहा था उसका उत्तर जो कुछ हो भेज दो।’

पूर्णिमा ने चिट्ठी मधुसूदन को देते हुए कहा, “जो ठीक जान पड़े सो लिख दीजिये।”

मधुसूदन कुछ देर तक सोचता रहा। पश्चात् उसने एक कागज़ लेकर उस पर उत्तर लिख दिया। उसने लिखा, ‘आपके प्रस्ताव के स्वीकार होने की किंचित्मात्र भी आशा नहीं। यथार्थ बात यह है कि मुझे यह ज्ञात नहीं था कि उसके विवाह का निश्चय हो चुका है। मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ कि आपको गलत बात बताई गई, परन्तु इसमें मेरा कोई दोष नहीं। मुझे यह बात मालूम नहीं थी।’

जब वह यह उत्तर लिख रहा था तो पूर्णिमा उठकर अपने कमरे में चली गई। मधुसूदन चिट्ठी लिखकर, लिफाफे में बन्द कर मकान के बाहर खड़े राय साहब के नौकर को दे आया। जब तक वह लौटकर आया तब तक श्यामाचरण भी वहीं खड़ा था। मधुसूदन के आने पर वह बैठ गया। मधुसूदन भी चटाई पर बैठ गया।

श्यामाचरण ने जब से पूर्णिमा को मधुसूदन के कमरे में नाचते देखा था तब से अनेकानेक विचार उसके मन में उठ रहे थे। वह मधुसूदन से उन सबका स्पष्टीकरण करना चाहता था। मधुसूदन भी पिता के मुख पर गम्भीर मुद्रा देखकर समझ गया था कि कुछ विशेष बात है जिसके लिये वह यहाँ बैठा है। चटाई पर बैठ उसने कागज़, कलम, दवात आदि सब डैस्क में बन्द कर दिये और बात को टालने के विचार से तम्बूरा निकालकर स्वर करने लगा।

श्यामाचरण ने बात आरम्भ कर दी, “बेटा, राय साहब ने क्या पूछा था? नौकर कहता था राय साहब ने तुरन्त उत्तर माँगा है।”

मधुसूदन यद्यपि यह जानता था कि अभी इस विषय पर बात न की जाय तो भी वह पिता से कोई बात छिपाने की क्षमता नहीं रखता था। पिता के प्रश्न पूछने पर वह न तो कोई बात छिपा सकता था और न छिपाना चाहता था। अतएव कहने लगा, “कल राय साहब ने पूर्णिमा के विवाह के विषय में मुझसे पूछा था। मैंने उत्तर दिया था कि अभी निश्चय नहीं हुआ। इस पर उन्होंने उससे अपने

विवाह का प्रस्ताव किया। मैंने आज पूर्णिमा का विचार इस विषय में जानने का यत्न किया और जो कुछ उसने बताया है सो लिख दिया है।”

श्यामाचरण ने कुछ अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, “पूर्णिमा से क्यों पूछा था ? उसके भाई अथवा माता से पूछना चाहिये था।”

मधुसूदन ने मुस्कराते हुए कहा, “पिताजी, आजकल पढ़े-लिखे लोगों में ऐसा ही रिवाज है। लड़के-लड़कियाँ स्वयं निर्णय करते हैं और माता-पिता प्रायः निर्णय को स्वीकार कर लेते हैं।”

“यह तो क्रिस्तानों का ढंग है। हिन्दू समाज में ऐसा होना ठीक नहीं। परन्तु पूर्णिमा ने क्या उत्तर दिया है ?”

“मैंने राय साहब को लिखा है कि आपके प्रस्ताव के स्वीकार होने की कोई आशा नहीं।”

इस पर तो मधुसूदन के पिता के अचम्भे का ठिकाना न रहा। वह पूछने लगा, “तो क्या उसने राय साहब को अस्वीकार कर दिया है ? उन जैसा धनी, धर्मात्मा और विशालहृदय पुरुष उसे कहाँ मिलेगा ?”

मधुसूदन ने साधारण भाव से ही उत्तर दिया, “परन्तु उनकी आयु बहुत बड़ी है और उनका विवाह भी हो चुका है।”

“इससे क्या होता है ? पुरुष तो कई विवाह कर सकता है और उसके लिये आयु का भी कुछ झगड़ा नहीं।”

“आज का शिक्षित समाज तो ऐसा नहीं मानता।”

“भाड़ में जाय तुम्हारा शिक्षित समाज। यह तो पूरा दुराचार का मार्ग है। जब लड़कियाँ अपने लिये वर देखती फिरती हों और पुरुष की उनका वर बनने में योग्यता और अयोग्यता की परीक्षा करती हों तो कितना अनर्थ होने की सम्भावना है।”

मधुसूदन की इच्छा थी कि पिता के साथ वाद-विवाद न करे। इस कारण उसने केवल इतना ही कहा, “जो कुछ भी हो। अब तो ऐसी प्रथा चल गई है और इस प्रथा को रोकने की मुझमें अथवा आपमें सामर्थ्य नहीं।”

श्यामाचरण ने कुछ चिन्तित भाव से कहा, “परन्तु ऐसे शिक्षित लोगों से तुम्हारा सम्पर्क अच्छा नहीं। आखिर हमें तो अपने समाज में रहना है। वहाँ नाता-रिश्ता भी करना है। तुम अब बड़े हुए हो। पढ़-लिखकर योग्य हुए हो। किमी अच्छे ब्राह्मण परिवार में तुम्हारे भी तो विवाह की बात होगी ही। ऐसी अवस्था में इस शिक्षित समाज के लोगों से तुम्हारा मेल-जोल तुम्हारी उन्नति में बाधक होगा।”

मधुसूदन ने अब भी बात टालने के विचार से कह दिया, “इन लोगों से सम्बन्ध सर्वथा तो टूट नहीं सकता। नरोत्तम और उसकी माता ने पूर्णिमा को कुछ

समय तक यहाँ रहने के लिये भेजा है। देखिये, वे हम पर कितना विश्वास करते हैं, हमें कितना अच्छा समझते हैं। अन्यथा भरे नगर में एक धनी आदमी के लिये और कोई स्थान नहीं क्या? जब वे हम पर विश्वास करते हैं तो हम उनसे कैसे तटस्थ हो सकते हैं?"

"परन्तु इसमें तो उनकी ही हानि है।"

"वह कैसे?"

"एक विवाह-योग्य युवा लड़की को ऐसे घर में रहने भेज दिया है जहाँ और किसी स्त्री का वास भी नहीं है। इससे तो उसके लिये वर ढूँढ़ना कठिन हो जायेगा।"

"जहाँ तक मुझे पुणिमा की बातों से पता चला है वह यह है कि उसके लिये वर का निश्चय हो चुका है। यह भी एक कारण है जिससे राय साहब के प्रस्ताव के स्वीकार होने की कुछ भी आशा नहीं।"

"ओह! तब तो और भी आवश्यक है कि वह ऐसे स्थान पर न रहे। उसका भावी पति क्या समझेगा?"

"उसका यहाँ आना उसके भावी पति की अनुमति से ही है।"

ये सब बातें श्यामाचरण जैसे प्राचीन विचारों के मनुष्य के लिये नितान्त अनोखी और नवीन थीं। वह नहीं समझ सकता था कि ऐसा भी हो सकता है। वह कहने लगा, "परन्तु यह कैसे हो सकता है? मेरी तो समझ में यह नहीं आ सकता। परन्तु वह यहाँ आई किसलिये है?"

"यहाँ एक फिल्म-कम्पनी में उसे नाचने का काम मिला है। यह काम चार मास तक चलेगा और तब तक वह यहाँ रहेगी।"

यह सुनकर तो श्यामाचरण की हैरानी का कुछ ठिकाना नहीं रहा। उसे क्रोध भी आया, परन्तु ये सब बातें उसे इतनी चकाचौंध करने वाली थीं कि उसके मुख से कोई बात निकलते नहीं बनी। वह अवाक् मुख उठ खड़ा हुआ और मधुसूदन के कमरे से बाहर हो गया।

: ४ :

श्यामाचरण इस नवीन युग में भी प्राचीन विचारों को पकड़े बैठा था। वह नवीन सभ्यता को पापमय समझता था। उसके विचार में कोट-पतलून पहनना एक ब्राह्मण का चमार के हाथों खाने के समान था। वह संसार की प्रगति से सर्वथा पृथक् था। इसका कारण यह था कि जब से उसने मन्दिर का काम सँभाला था वह एक प्रकार से बाहरी संसार से, जो डाक-गाड़ी में बैठा भागा चला जाता था, सर्वथा पृथक् हो गया था। उसका प्रातःकाल पूजा-पाठ में व्यतीत होता था, दोपहर रामायण पढ़ने में और सायंकाल मधुसूदन से बातचीत करने तथा यजमानों के घर संस्कार, पूजा-पाठ इत्यादि कराने में। दिन-रात इसी प्रकार व्यतीत होते जाते थे।

मधुसूदन बाहरी संसार की रेलगाड़ी में बैठा तेज़ी से आगे चला जा रहा था; परन्तु घर के वातावरण के कारण अथवा शास्त्रों के अध्ययन करने से अथवा कुछ पूर्व-जन्म के कर्म-फल से वह नवीन जगत् की रेलगाड़ी में बैठा हुआ भी प्राचीन सभ्यता-रूपी जन्म-स्थान से सम्बन्ध रखे हुए था।

पूर्णिमा का उनके घर में रहना श्यामाचरण को रुचिकर नहीं था। वह यह जानकर कि यह लड़की नाचने-गाने का काम करती है उसे पतित समझने लगा था। विशेषकर एक लड़की जिसकी सगाई हो चुकी है, कैसे दूसरे के घर में महीनों रहकर और एक पर-पुरुष के चरणों पर फूल चढ़ाकर अथवा उसकी चरण-रज मस्तक पर चढ़ाकर पतिव्रता कही जा सकती है, यह बात उसकी समझ में नहीं आती थी। इस प्रकार के आचरण से वह मधुसूदन की संगति में रहकर उसे कलंकित किये बिना नहीं रहेगी; अपनी इस कल्पना के कारण वह अधीर हो उठा। वह जानता था कि राय साहब कुंजबिहारी मधुसूदन पर बहुत प्रभाव रखते हैं। इस कारण मन-ही-मन उसने उनके पास जाने का निर्णय कर लिया।

उक्त घटना के तीन-चार दिन बाद की बात है। पूर्णिमा और मधुसूदन स्टूडियो गये हुए थे। श्यामाचरण ने कपड़े पहने और राय साहब के घर जा पहुँचा। राय साहब बैठक में बैठे सिगार पी रहे थे। पण्डितजी को देखते ही बोले, “आइये; पण्डितजी, कैसे आना हुआ? तबीयत तो ठीक है?”

श्यामाचरण आशीर्वाद देकर समीप ही एक कुर्सी पर बैठ गया और कहने लगा, “यदि आपको कुछ अवकाश हो तो एक परामर्श करना है।”

“हाँ, हाँ। मुझे इस समय कुछ काम नहीं। फरमाइये, क्या बात है?”

श्यामाचरण ने इधर-उधर की बात किये बिना मतलब की बात आरम्भ कर दी। बोला, “आप पूर्णिमा को जानते हैं न?”

“हाँ।”

“वह आजकल हमारे घर में रहती है।”

“हाँ, मैं जानता हूँ।”

“वह फिल्म-कम्पनी में नाचने का काम करती है।”

“तो क्या हुआ?”

इस प्रकार के दो टूक उत्तर से श्यामाचरण घबरा गया। उसका विचार था कि राय साहब इस सब बात को नहीं जानते। इस पर भी उसने हार नहीं मानी। कहने लगा, “परन्तु, राय साहब, मधुसूदन का क्या होगा?”

राय साहब ने अभी भी अपनी दृढ़ता स्थिर रखते हुए कहा, “होगा क्या? कुछ नहीं होगा। पण्डितजी महाराज, यह आजकल की लड़कियाँ बहुत चतुर हैं। पढ़ने-लिखने में लड़कों से कम नहीं। बातचीत करने में और अपना भला-बुरा सोचने में तो ये उनसे अधिक योग्य होती हैं। रहा मधुसूदन। क्या आपको अपने

नड़के पर विश्वास नहीं? भाई, मुझे तो मधुसूदन पर इतना विश्वास है जितना कि अपने पर। उसका मन अति निर्मल है। उसमें पाप का लेशमात्र भी अंश नहीं है।”

“आपका यह कहना सर्वथा सत्य है, परन्तु प्रलोभन प्रबल होने पर तो देवताओं को भी डगमगा देते हैं। देखिये, मैं आपको एक-दो आँखोंदेखी घटनाओं का वृत्तान्त बताता हूँ। पिछले वर्ष मैं एक दिन बीमार था। मधुसूदन मन्दिर में पूजा करने गया था। मेरी इच्छा हुई कि मैं एक बार मन्दिर में जाकर देख आऊँ। मैं वहाँ गया तो देखा कि मधुसूदन मन्दिर में खड़ा है। उसके पाँव के सम्मुख फूल-पत्र धरे हैं और एक स्त्री भूमि पर मस्तक टेके मधुसूदन की चरण-वन्दना कर रही है। पश्चात् उस स्त्री ने उसकी चरण-रज को सिर पर चढ़ा लिया और उठकर चल पड़ी। वह पूर्णिमा ही थी।

“अभी तीन-चार दिन की बात है कि मैं पूजा समाप्त कर मन्दिर से घर पहुँचा तो मधुसूदन के गाने के साथ घुँघरू बजने का शब्द हो रहा था। मैं मधुसूदन के कमरे में गया तो देखा कि मधुसूदन आँखें मूँदे भजन गा रहा था और पूर्णिमा खड़ी नाच रही थी। यह सबकुछ और भी बुरा है क्योंकि पूर्णिमा की सगाई कहीं हो चुकी है।”

राय साहब ने कुछ सोचते हुए पूछा, “कहाँ हो चुकी है?”

“यह तो मैं नहीं जानता। हाँ, इतना मधुसूदन कहता था कि पूर्णिमा का फिल्म-कम्पनी में नाचने का काम करना तथा उसका हमारे घर में रहना उसके भावी पति की अनुमति से हो रहा है।”

राय साहब के मुख से निकल गया, “ओह !”

श्यामाचरण इस ‘ओह’ का अभिप्राय नहीं समझ सका। वह अचम्भे में राय साहब का मुख देखने लगा। राय साहब ‘ओह’ कहकर फिर गम्भीर विचार में मग्न हो गये। कुछ देर तक श्यामाचरण उनका मुख देखता रहा। यह मुख वार्तालाप के आरम्भ में कठोर था, पश्चात् गम्भीर हो उठा और अब धीरे-धीरे प्रफुल्लित हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि उनके मन में प्रकाश हो रहा है और मधुसूदन और पूर्णिमा का व्यवहार उनके लिए दिन के समान स्पष्ट हो उठा है।

राय साहब खिलखिलाकर हँस पड़े। उन्होंने प्रसन्न-वदन श्यामाचरण की ओर देखकर कहा, “पण्डितजी, बहुत-बहुत बधाई। आपके लड़के का विवाह पूर्णिमादेवी से निश्चित हो चुका है। जाइये, अब विवाह की तैयारी कीजिये।”

श्यामाचरण चकित-सा राय साहब के मुख की ओर देखता रह गया। यह बात तो उसको स्वप्न में भी सम्भव प्रतीत नहीं होती थी कि कैसे एक ब्राह्मण लड़के का विवाह कायस्थ लड़की से हो सकता है। उसने राय साहब को केवल मज़ाक करते समझकर कहा, “राय साहब, यह विषय हँसी करने योग्य नहीं है। मुझे ऐसी

चातों सुनकर दुःख होता है। मैं उच्च कुल का ब्राह्मण हूँ। मेरा विवाह लखनऊ के तिवारियों के घर हुआ था और मैं अपनी सन्तान को जाति से बाहर विवाह करने नहीं दूँगा। साथ ही यह धर्म के विपरीत है। शास्त्र ऐसे विवाह की आज्ञा नहीं देते।”

राय साहब ने कुछ गम्भीर होकर कहा, “आपके शास्त्र तो मैं जानता नहीं। हाँ, परन्तु जहाँ तक मुझे प्रतीत होता है, पूर्णिमा और मधुसूदन में विवाह का वचन हो चुका है।”

“मैं ऐसा नहीं होने दूँगा।”

“क्यों?”

“ब्राह्मण और कायस्थ में विवाह नहीं हो सकता।”

“तो ब्राह्मण कायस्थ हो जावेगा।”

“यह कैसे हो सकता है?”

“जैसे हिन्दू मुसलमान हो सकता है।”

“यह तो अनर्थ है।”

“फिर क्या किया जाये? आपमें इस अनर्थ को रोकने की शक्ति है क्या?”

“हाँ, है।”

“कैसे?”

“मैं लड़के को घर से बाहर निकाल दूँगा।”

राय साहब हँस पड़े। कहने लगे, “पण्डितजी महाराज, आपने आज तक लड़के के लिये क्या किया है जो घर से निकाल देने पर आप नहीं करेंगे? उसके खान-पान, भोजन, शिक्षा इत्यादि में आपका कितना भाग है जिससे आज उसे वंचित कर देंगे? यथार्थ में आपके आश्रय वह न कभी था और न है।”

यह सुन श्यामाचरण घबरा उठा। अब एक अन्तिम उपाय सोचकर वह बोला, “तो क्या आप इसमें मेरी सहायता नहीं करेंगे?”

“मैं सहायता क्यों करूँ?”

“इस कारण कि यह अनर्थ है, अनुचित है। जिसको आपने शिक्षा देकर इतना योग्य बनाया है, उसका अहित है।”

“मैं ऐसा नहीं समझता। मेरे विचार में तो यह विवाह बहुत ही उचित और दोनों पक्षों के लिए हितकर है।”

श्यामाचरण इस कथन से दंग रह गया। अभी भी वह यह समझ रहा था कि राय साहब यह सबकुछ व्यंग्य के भाव से कह रहे हैं। वह सोच रहा था कि राय साहब के स्वयं पूर्णिमा से विवाह कर लेने के प्रस्ताव के ठुकराये जाने के पश्चात् उनका इस मूर्ख युवती पर हँसी करना अधिक सम्भव है। परन्तु जब वह उनके मुख की ओर देखता था तो उसे उस पर कोई हँसी-मजाक अथवा व्यंग्य की रेखा

प्रतीत नहीं होती थी। वह बहुत हैरान था। एक बार अपने मन के संशय को दूर करने के लिए उसने कहा, “मैं आपके विचारों को समझता हूँ। आपके विवाह-प्रस्ताव को ठुकरा देने के पश्चात् आपका व्यवहार ऐसा होना ही चाहिए, ताकि इन मूर्खों को विवाह कर जीवन-भर पश्चात्ताप की अग्नि में जलने दिया जाये। परन्तु यह प्रतिकार आपको उससे तो नहीं लेना चाहिए जिसे आपने पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है तथा पढ़ा-लिखाकर इतना योग्य बनाया है। यही समय है कि जब उसे इस गड़बड़े में गिरने से बचा लिया जाये।”

राय साहब ने माथे पर त्योंरी चढ़ाकर कहा, “पण्डित, तुम तो सर्वथा मूर्ख हो। तुम यह समझते हो कि मैं इतना कुचक्री हूँ कि बदला लेने के लिए इतनी दूर की योजनाएँ करूँगा। सुनो ! मैं तुम्हें अपने मन की बात बताता हूँ। मैंने पूणिमा को जब देखा और समझा तो उसे एक अमूल्य रत्न पाया। मैं एक सांसारिक जीव हूँ, और इतनी बढ़िया वस्तु को पाने, अपने पास रखने और उसे किसी दूसरे के पास न जाने देने की इच्छा मुझमें प्रबल हो उठी। मेरे प्रस्ताव का यही कारण था। इसके पश्चात् मधुसूदन का उत्तर आया कि उसकी सगाई हो चुकी है। मैं यह समझ नहीं पाया कि इससे उसका क्या अभिप्राय था। अब जब तुम्हारी बातों को सुनता हूँ तो मुझे विश्वास-सा हो गया है कि उसका ढूँढ़ा हुआ वर तुम्हारे लड़के के अतिरिक्त और कोई नहीं। यदि यह ठीक है तो मुझे इससे रोष नहीं, प्रत्युत प्रसन्नता होगी। मधुसूदन को तो मैं घर का ही आदमी समझता हूँ। उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध मैंने ऐसे किया है मानो वह मेरा लड़का है। इससे पूणिमा फिर भी मेरे घर में ही रहेगी। यही मेरी प्रसन्नता का कारण है।”

श्यामाचरण इन बातों से यह तो समझ गया कि राय साहब व्यंग्य तथा प्रतीकार के भाव से बात नहीं कर रहे, परन्तु यह उसकी बुद्धि में नहीं आया कि अन्तर्जातीय विवाह को वह अच्छा क्यों समझते हैं। वह गम्भीर विचार में पड़ गया और खड़ा हो नमस्कार कर अपने घर की ओर चल पड़ा।

आतंकवाद

बनारस में गायघाट पर एक मकान की दूसरी मंजिल की एक कोठरी में एक दीपक जल रहा था। इस विजली के युग में सरसों के तेल का दीपक जलाकर पढ़ना अवश्य विचित्र घटना थी। लकड़ी की खूंट पर मिट्टी के दीये में तेल भरा था और उसमें रुई की एक मोटी-सी बत्ती अपने पेट की कालिख को आकाश की ओर फेंक रही थी, मानो अपने पाप-कर्मों से अपने से भी ऊँचों को काला करने का

यत्न कर रही हो। खूंट के पास चटाई पर बैठा एक युवक ध्यान से कुछ कागज पढ़ रहा था। युवक घोती और कुर्ता पहने हुए था। बाल कुछ लम्बे हो गये थे, परन्तु दाढ़ी-मूँछ की हजामत बनी थी। कमरे में और कोई नहीं था।

जिन कागजों को वह पढ़ रहा था उनमें से एक पर उसका विशेष ध्यान था। वह बार-बार उसे पढ़ता था और फिर चटाई पर रखकर सोचने लगता था। कई बार पढ़कर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। उसने पास रखी एक जेब-घड़ी में समय देखा और फिर पढ़ना आरम्भ कर दिया। थोड़ी देर बाद सीढ़ियों पर किसी के चढ़ने का शब्द हुआ। वह दरवाजे की ओर ध्यान से देखने लगा। एक युवक अंग्रेजी पोशाक पहने भीतर दाखिल हुआ। खूंट के पास बैठे युवक ने उसे देख कहा, “आओ भैया, आ गये? बहुत अच्छा हुआ कि तुम सबसे पहले आये हो। परन्तु दीदी नहीं आ रहीं क्या?”

नये आने वाले ने कहा, “पूर्णिमा तपस्विनी के घर गई हुई है। वहाँ से वे दोनों इकट्ठी आवेंगी। दादा, तुम आज कुछ चिन्तित प्रतीत होते हो। क्या बात है?”

“बहुत गड़बड़ हो रही है, नरोत्तम भैया। यथार्थ में इन लोगों से यह आशा नहीं थी। देखो! तनिक इस पत्र को पढ़ो। यह मुझे लिखा गया है परन्तु मेरा तो कोई भी काम पार्टी के सदस्यों से छिपा नहीं है। तुम इसे पढ़ सकते हो।”

नरोत्तम ने पत्र पढ़ना आरम्भ किया। लिखा था :
दादा धीरेन्द्र !

मैं यह भली-भाँति जान गया हूँ कि पार्टी में देश-भक्ति की ओट में गुलछरें उड़ाये जा रहे हैं। पार्टी में लड़कियों के होने से बहुत-से सदस्य व्यभिचार और विषय-वासना में फँस गये हैं। इस अवस्था के पैदा होने में सबसे अधिक दोष तुम्हारा है। तुमने सबसे पहले तपस्विनी से सम्बन्ध उत्पन्न कर उसे पतित किया। अब तुम्हारी दृष्टि पूर्णिमा पर है। तुम पार्टी का बहुत-सा धन इन लड़कियों पर खर्च कर देते हो और इस विषय-लोलुपता में फँसे हुए पार्टी के काम को भूल रहे हो। अतएव, मेरा और मेरे जैसे विचार के और लोगों का भी यह कहना है कि तुम पार्टी के नेतृत्व से त्यागपत्र दे दो ताकि पार्टी में संशोधन हो सके। यदि तुमने स्वयं ऐसा न किया तो मुझे ये सब बातें पार्टी में रखनी होंगी। आज यह सबकुछ हो जाना चाहिए। नये वर्ष में हम नये नेता के अधीन काम करेंगे।

—कमल

नरोत्तम ने चिट्ठी पढ़कर नेता को वापस कर दी और विस्मय में उसका मुख देखने लगा। नेता ने कहा, “मुझे त्यागपत्र देने में कुछ भी आपत्ति नहीं, परन्तु धमकी से मान जाने का अभिप्राय तो यह होगा कि वास्तव में मैं दोषी हूँ। साथ ही मैं यह नहीं चाहता कि लड़कियों के विषय में बातें भरी सभा में हों। इसी सोच

में पड़ा हुआ था कि तुम आ गये। अब तुम अपनी राय बताओ कि क्या किया जाय ?”

नरोत्तम ने तुरन्त उत्तर दिया, “डरकर त्यागपत्र देना मेरी सम्मति से ठीक नहीं और मैं चाहता हूँ कि सब बातें प्रकट हो जावें तो और भी ठीक होगा। यह सभा पर छोड़ दिया जाय कि वह किसको दोषी समझती है। जो भी दोषी हो उसे दण्ड देना चाहिए। त्यागपत्र देने से तो पार्टी में फूट पड़ जायगी और हम सबके गले फाँसी लगने में देरी नहीं रह जायगी।”

धीरेन्द्र, जो नरोत्तम की बातों को ध्यान से सुन रहा था, कहने लगा, “तुम कहते तो ठीक हो, परन्तु तुम कमल को भली-भाँति नहीं जानते। वह बड़े जीवट का आदमी है। बहुत तू-तू मैं-मैं में मुझे डर है कि कहीं गोली न चल जाय।”

नरोत्तम ने कुछ क्रोध में कहा, “दादा, तो हम भी चूड़ियाँ पहनकर नहीं बैठे हुए। हम भी जान पर खेल जाना जानते हैं।”

इस पर धीरेन्द्र ने कहा, “इस तरह आपस में लड़कर मरने से क्या लाभ? यदि मरना ही है तो और क्या कम स्थान हैं! भारतवर्ष में तो पग-पग पर अपमान किया जा रहा है। कहीं भी जाकर ‘एक्शन’ कर मरा जा सकता है। अच्छा, सुनो! मैं न तो त्यागपत्र दूँगा और न ही इस पत्र को सभा में उपस्थित करूँगा। यदि उसने लांछन लगाये तो फिर इसका निर्णय सभा में हो जायगा।” इतना कह नेता ने घड़ी की ओर देखा। अभी समय में पाँच मिनट शेष थे।

अब सीढ़ियों पर कुछ और लोगों के आने की आहट हुई। इस समय कई युवक और दो युवतियाँ आईं। नेता ने उनको देख, आकर बैठने को कहा। ये लोग अभी बैठ ही रहे थे कि कुछ और लड़कियाँ आ गईं। इनमें पूर्णिमा भी थी। नेता ने फिर घड़ी की ओर देखा। अभी नौ वजने में दो मिनट थे। इक्का-दुक्का युवक-युवतियाँ अभी आ रहे थे। नौ वजे के पूर्व युवकों का एक गिरोह और आया। कमरा खचाखच भर गया। नेता ने घड़ी फिर देखी। अब कुछ सेकण्ड बाकी थे। सबसे अन्त में एक युवक दरवाजे में आ खड़ा हुआ। वह अपने बैठने के लिए उचित स्थान ढूँढ़ रहा था। नेता ने कुछ ऊँची आवाज़ में कहा, “कमल भैया, आगे चले आओ।” इस पर भी वह युवक कमरे के एक कोने में जा बँठा।

अब समय हो गया था। नेता ने आवाज़ दी, “रामदीन!” इस आवाज़ के साथ ही नीचे का दरवाजा बन्द होने का शब्द हुआ और एक हष्ट-पुष्ट काले रंग का पुरुष सीढ़ियों से ऊपर चढ़कर कमरे में आ गया। संकेत पाते ही उसने अपनी जेब से मुट्ठी-भर अंगूठियाँ निकालकर नेता के सम्मुख रख दीं। नेता ने उन अंगूठियों को गिन डाला। सब इक्कीस थीं। ये अंगूठियाँ नेता ने एक डिबिया में, जो उसके सम्मुख कागजों के पास रखी थी, बन्द कर दीं। अब उसने उपस्थिति गिन डाली। अपने समेत इक्कीस युवक-युवतियाँ उपस्थित थे। नौ लड़कियाँ थीं और

ग्यारह लड़के। इक्कीसवाँ नेता स्वयं था। यह प्रारम्भिक कार्यवाही हो जाने पर नेता उठ खड़ा हुआ और उसने कहना आरम्भ किया :

“प्रिय साथियो, आज हमारी पार्टी का वार्षिक अधिवेशन है। इसमें पिछले वर्ष की कार्यवाही मंजूरी के लिए आपके सम्मुख रखी जायगी और पश्चात् नये वर्ष का कार्यक्रम बनाया जायगा। सबसे पहले पार्टी के मन्त्री आपको पिछले वर्ष की रिपोर्ट सुनायेंगे।”

इतना कह नेता अपने स्थान पर बैठ गया। नरोत्तम ने जेब से कागजों का एक पुलिन्दा निकाला और खड़े होकर पढ़ना आरम्भ कर दिया। वह प्रारम्भिक और साधारण विवरण सुनाकर विशेष बातों की ओर आया।

“इस वर्ष सभासदों की संख्या में दो की वृद्धि हुई। इनके नाम माया और मोहिनी हैं। ज्यों-ज्यों सभासदों की संख्या बढ़ती जाती है, पार्टी के नेता का उत्तरदायित्व भी बढ़ता जाता है। यह अधिकाधिक आवश्यक होता जाता है कि नवीन सभासदों को भली-भाँति परखकर सम्मिलित होने की आज्ञा दी जाय। इस समय सभासदों की पूरी संख्या बयालीस है। इन बयालीस व्यक्तियों की रक्षा का भार नेता पर है। यदि एक भी डरपोक, कायर अथवा धोखेवाज़ इस पार्टी में आ गया तो सबकी जान खतरे में पड़ जावेगी। इस कारण नये सभासदों का प्रवेश इतने वेग से नहीं हुआ जितना पहले वर्षों में होता रहा है। नये सभासदों को पार्टी में सम्मिलित करने में यह कठिनाई तब तक दूर नहीं हो सकती जब तक पार्टी को छोटे-छोटे हिस्सों में विभक्त न कर दिया जाय। इस विषय की आयोजना को पिछले वर्ष पार्टी ने स्वीकार नहीं किया था। अब नये वर्ष की आयोजनाओं में पुनः विचार के लिए इसको रखा जाय।

“इस वर्ष धन की बहुत कठिनाई रही। वह इस कारण नहीं कि पिछले वर्षों से इस वर्ष की आय कम थी, प्रत्युत इस कारण कि इस वर्ष कार्यक्रम को अधिक विस्तृत कर दिया गया है। चन्दा केवल दो सौ पैंतालीस रुपये हुआ। शेष रकम पैदा करने के लिए तीन डाके डाले गये। तीनों सफल रहे। फिर भी रुपया कुछ अधिक नहीं मिला। सफलता इस रूप में समझनी चाहिए कि तीनों काम इतनी सफाई से किए गये कि किसी प्रकार की जान व माल की हानि नहीं हुई। इन उपायों से भी जब आवश्यकतायें पूर्ण नहीं हो सकीं तो पूर्णिमा दीदी ने एक फिल्म कम्पनी में नौकरी करके रुपया एकत्रित किया। मैंने भी एक बीमा कम्पनी का काम करना आरम्भ कर दिया है। इस प्रकार इस वर्ष चन्दा दो सौ पैंतालीस रुपया, पूर्णिमा की आय का भाग जो पार्टी को मिला एक हजार पाँच सौ रुपया, मेरी आय का भाग एक हजार रुपया, डाकों से प्राप्त धन आठ हजार चालीस रुपया। इस प्रकार कुल आय दस हजार सात सौ पच्चासी रुपये हुई।

“कुल व्यय दस हजार तीन सौ रुपये हुआ, जिसका ब्योरा इस प्रकार है—

दो हजार तीन सौ रुपया सफर-खर्च और आठ हजार रुपया कारखाने का खर्चा। इसमें रिवाँल्वर, कारतूस और कुछ बन्दूकों की खरीद भी सम्मिलित है। सबसे अधिक व्यय उस मशीनरी के लगाने में हुआ है जिसमें बन्दूकों की नालियाँ बनाई जा सकती हैं। बकाया चार सौ पिच्चासी रुपये की रकम हाथ में है।

“इस वर्ष डाके के अतिरिक्त लाल चिट्ठियाँ देश-भर में बाँटी गईं। बहुत-सा सफर-खर्च इसी काम में हुआ है।”

इतना कह नरोत्तम ने कागज लपेट नेता के सम्मुख रख दिए और अपने स्थान पर बैठ गया। अब नेता ने सबको सम्बोधन कर कहा, “रिपोर्ट पढ़ दी गई है। यदि किसी को इस पर कोई आपत्ति हो तो वह कर सकता है।”

इस पर एक कोने में बैठा हुआ एक युवक, जिसको नेता ने पहले कमल कहकर सम्बोधित किया था, उठ खड़ा हुआ। उसने पूछना आरम्भ किया, “कुल आय जो पूर्णिमा को फिल्म कम्पनी से हुई, कितनी थी?”

“तीन हजार रुपया।” नेता ने उत्तर में कहा।

“वह सब रकम पार्टी को क्यों नहीं दे दी गई?”

“उसने कुल आय नहीं दी।”

“क्यों नहीं दी?”

“उसकी इच्छा ऐसी ही थी।”

“मैं पूछना चाहता हूँ कि यदि किसी सदस्य को कहीं से पार्टी के लिए धन लाने के लिए कहा जाय तो क्या उसका किसी प्रकार यह अधिकार हो जाता है कि वह उसमें से कुछ रख ले?”

नेता ने तुरन्त उत्तर दिया, “नहीं।”

इस पर कमल ने फिर पूछा, “पूर्णिमा को डेढ़ हजार रुपया रख लेने की इजाजत क्यों दी गई है?”

नेता ने अब खड़े होकर कहना आरम्भ किया, “पूर्णिमा पार्टी के कोष के लिए न तो चन्दा माँगने गई थी और न ही डाका डालने। अन्य कई सदस्यों की भाँति वह फिल्म कम्पनी में रोजगार के रूप में काम करती थी। उसने अपनी आय का पचास प्रतिशत ही देना उचित समझा है।”

अब प्रश्नकर्ता ने विषय को बदल डाला और पूछा, “इस वर्ष में कोई राज-नैतिक ‘एक्शन’ क्यों नहीं किया गया?”

नेता ने खड़े-खड़े ही उत्तर देना आरम्भ कर दिया—“इस वर्ष परिस्थिति अनुकूल नहीं थी। आतंक के कार्य तो तभी सफल होते हैं जब जन-साधारण की मानसिक अवस्था आतंक के कामों को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हो। गांधी-आंदोलन के कारण सर्व-साधारण की रुचि दूसरी ओर लग रही है। ऐसी अवस्था में मैंने यही उचित समझा कि हम चुपचाप तैयारी करते जायें। अब सत्याग्रह-

आंदोलन के लिए क्षेत्र प्रस्तुत किया जा रहा है। यह आंदोलन निश्चय रूप में असफल होगा। तब हमारे 'एक्शन' का समय आयेगा। इतने समय तक हम लोगों को साधन इत्यादि एकत्रित करने में संलग्न रहना चाहिए।

"मैं समझता हूँ कि भाई कमल के प्रश्नों का उत्तर दे दिया गया है। यदि किसी और को कुछ पूछना हो तो पूछ सकता है।"

अब कमल के समीप बैठा हुआ एक युवक उठ खड़ा हुआ। वह पूछने लगा, "इस वर्ष केवल दो लड़कियों को ही पार्टी में सम्मिलित किया गया है। क्या किसी पुरुष ने अपने-आपको सदस्य बनने के लिए प्रस्तुत नहीं किया?"

"हमारी पार्टी का नियम यह है कि पार्टी में रंगरूट, सदस्यों की सिफारिश पर लिए जाते हैं। जब किसी सदस्य को यह प्रतीत होता है कि अमुक व्यक्ति हमारी पार्टी का सदस्य बनने योग्य है तो वह नेता को इस बात की सूचना देता है और नेता उस व्यक्ति के मन के भावों की तथा उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियों की परीक्षा करता व कराता है। परीक्षा का परिणाम ठीक होने पर वह व्यक्ति सदस्य बना लिया जाता है। इस वर्ष किसी उपयुक्त पुरुष के लिए किसी भी सदस्य की सिफारिश नहीं आई।"

"मैंने मिस्टर राम आपटे का नाम आपके पास भेजा था। वह क्यों नहीं लिया गया?"

"वह हमारी पार्टी में रहने के लिए ठीक व्यक्ति नहीं है।"

"उसमें क्या दोष है?"

"वह खुफिया पुलिस में है।"

"यह गलत है।"

"मैंने भली-भाँति जाँच-पड़ताल करवा ली है।"

"आपने भूल की है।"

नेता ने इसका तो कुछ उत्तर नहीं दिया, परन्तु रिपोर्ट पास करने का प्रस्ताव उपस्थित कर दिया। उसने कहा, "इस वाद-विवाद से अब कुछ लाभ नहीं है, मन्त्री ने जो पिछले काम की रिपोर्ट उपस्थित की है, उसे स्वीकार किया जाय।"

इस प्रस्ताव के उपस्थित होते ही कमल उठकर कहने लगा, "मैं रिपोर्ट के स्वीकार किये जाने का विरोध करता हूँ। रिपोर्ट को स्वीकार करने का अभिप्राय यह होगा कि हम सब पिछले वर्ष की कार्यवाही पर सन्तोष प्रकट करते हैं और उसे अस्वीकार करने का अर्थ यह होगा कि हमें पिछले वर्ष के काम पर सन्तोष नहीं है और साथ ही हम नेता पर, जो हमारी पार्टी का पूर्णरूपेण कर्ता-धर्ता है, अविश्वास का प्रस्ताव करते हैं। मैंने जो प्रश्न अभी पूछे थे और जिनका उत्तर नेता ने दिया है उनका अभिप्राय भी यह था कि आप लोगों को पार्टी में मची हुई धाँधली का नमूना दिखाया जाय।

“यदि आप पार्टी में अकर्मण्यता का कारण जानना चाहते हैं तो आपको नेता के निजी जीवन का अध्ययन करना होगा। यह पार्टी कर्मवीरों की है, विषय-लोलुप, कामुकता में रत, वासना के दासों की नहीं। जिस पार्टी में ऐसे नेता हों वहाँ क्या काम हो सकता है? जब हम पार्टी के लिए धन प्राप्त करने के लिए डाका मारते हैं तो हम वहाँ से प्राप्त धन में से अपने लिए कुछ रख नहीं लेते तो फिर पूर्णिमा ने जब इसी लक्ष्य को सम्मुख रखकर फिल्म कम्पनी में काम किया तो उसे प्राप्त धन में से क्यों पचास प्रतिशत रख लेने की छूट दे दी गई? इसी प्रकार कुछ और खर्चे हैं जो पार्टी के फण्ड से किए गये। तपस्विनी को कलकत्ते जाने का खर्चा दिया गया। मैं पूछना चाहता हूँ ऐसा क्यों किया गया? तपस्विनी वहाँ केवल अपनी चिकित्सा करवाने गई थी और चिकित्सा भी ऐसे रोग की थी जो नेताजी महाराज की कृपा से हुई थी। मैं...”

अभी कमल ने अपना कहना समाप्त भी नहीं किया था कि नरोत्तम बीच में खड़ा हो गया और कुछ कहना ही चाहता था कि नेता ने उसे बैठ जाने की आज्ञा दी। नेता ने कहा, “शांति! शांति! इस सभा का मैं प्रधान और प्रबन्धकर्ता हूँ। जब तक मैं बोलते हुए सदस्य को बन्द नहीं करता तब तक कोई दूसरा सदस्य बीच में नहीं बोल सकता। मैं कमल को, यदि वह चाहे तो, अपना वक्तव्य जारी रखने की आज्ञा देता हूँ।”

कमल ने फिर कहना आरम्भ किया, “मुझे और अधिक नहीं कहना। मैं केवल इतना और कहना चाहता हूँ कि नेता का जीवन हमारी पार्टी की कुछ लड़कियों ने पतित कर दिया है और हम उसके प्रबन्ध और काम को सन्तोष से नहीं देख सकते। मेरा प्रस्ताव यह है कि पिछले वर्ष की रिपोर्ट स्वीकार न की जावे। इस प्रकार नेता और अन्य कार्यकर्ताओं पर मैं अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत करता हूँ। पश्चात्, हम नया नेता चुनेंगे।”

जब कमल इतना कह चुका तो नरोत्तम, जिसकी आँखें क्रोध से लाल हो रही थीं, उत्तर देने के लिये उठा। परन्तु नेता ने उसे यह कहकर बैठा दिया कि अभी उसे कुछ कहना है। नेता ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा, “जहाँ तक रिपोर्ट के स्वीकार करने का सम्बन्ध है मैं उसका स्पष्टीकरण करूँगा, परन्तु जो लांछन मुझ पर लगाये गये हैं यद्यपि पिछले वर्ष में कार्य-शिथिलता का कारण वे ही बताये जाते हैं, तो भी उनके व्यक्तिगत होने से मैं उनको सभा में लाने की स्वीकृति नहीं देना चाहता।”

कमल ने कहा, “कार्य और कारण का सम्बन्ध अटूट है। एक पर बहस नहीं की जा सकती जब तक दूसरे का उल्लेख न किया जाय।”

उत्तर में नेता ने फिर गम्भीर भाव से कहा, “कमल भैया ने कुछ ऐसी बातें कह डाली हैं जो मेरे तथा कुछ अन्य सदस्यों के निजी चरित्र से सम्बन्धित हैं।

अच्छा तो यह होता कि उनका उल्लेख न किया जाता। अब भी मेरी सम्मति यही है कि इन बातों को छोड़ दिया जाय और केवल पिछले वर्ष के काम पर ही ध्यान दिया जाय। परन्तु यदि एक पक्ष के लोग ऐसी असम्भ्यतापूर्ण बातें करेंगे तो मुझे उनका उत्तर देने वालों को भी कहने का अवसर देना होगा।”

अब वह युवक, जो कमल के समीप बैठा था और जिसने पहले अपने एक मित्र के सदस्य न बनाये जाने के विषय में आपत्ति उठाई थी, खड़ा हो गया और बोलने लगा, “मैं कमल भैया की बात का समर्थन करता हूँ कि कार्य और कारण को पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता। यह ठीक है कि पिछला वर्ष तो व्यतीत हो चुका और उसमें किये गये कामों को अथवा अपव्यय किये गये काल को वापस लौटाया नहीं जा सकता, परन्तु इतना अवश्य किया जा सकता है कि भविष्य में ऐसा न हो सके। हमारा विश्वास है कि नेता तथा उसके साथियों के कारण पिछले वर्ष में कुछ भी काम नहीं हो सका और जब तक वे अधिकारी बने रहेंगे, कुछ भी काम नहीं हो सकेगा। इसलिये इस बात की आवश्यकता पड़ जाती है कि हम उनके व्यक्तिगत जीवन की आलोचना करें। हमारी पार्टी कोई मजहबी सभा नहीं जहाँ पर बाहरी जीवन ही के साथ दूसरों का सम्बन्ध हो। आर्य-समाज तथा सनातन-धर्म सभा में या और ऐसी ही संस्थाओं में तो चन्दा देना, सन्ध्या-हवन करना, मन्दिर में जाना इत्यादि बातें हैं जिनसे सभासदों का मूल्य लगाया जाता है। वहाँ एक वकील झूठा मुकदमा करता हुआ भी, एक दूकानदार झूठ बोलता हुआ भी समाज में प्रतिष्ठित माना जा सकता है। कारण यह है कि वहाँ सदस्यों के निजी जीवन की समाज में आलोचना नहीं हो सकती। इसके विपरीत हमारी पार्टी में प्रत्येक सदस्य अपना सर्वस्व पार्टी के हाथ में दे बैठा है। प्रतिक्षण हमारा जीवन मौत के मुख में रहता है। ऐसी स्थिति में हम किसी एक भी सदस्य की एक भी भूल स्वीकार नहीं कर सकते।

“केवल डाके डालने से हमारी पार्टी का ध्येय पूरा नहीं हो सकता। न ही केवल लाल चिट्ठियाँ बाँटना ही पर्याप्त है। क्रान्तिकारी आन्दोलन इस प्रकार नहीं चल सकता। इसमें सजीवता होनी चाहिये। पिछले वर्ष इलाहाबाद के कलक्टर के बंगले वाला ‘एक्शन’ सफल हुआ तथा उसका प्रभाव भी बहुत पड़ा। इस प्रकार की चमत्कारिक बातें ही इस आंदोलन को सजीव रख सकती हैं। प्रतीत होता है, हमारा नेता मोह-ममता में फँस गया है। वह वासना में लिप्त होने से पिछले वर्ष कोई नया कार्यक्रम नहीं बना सका। मैं ऐसा नेता चाहता हूँ जिसका मस्तिष्क विजली की भाँति काम करता हो, जिसका हृदय वज्र की भाँति कठोर हो, जिसके कान लड़कियों के मिठे वचनों के लिये लालायित न होकर अस्त्र-शस्त्रों की शंकार सुनना चाहते हों, और जो प्रेमालाप के कोमल उपचारों को दूर हटाकर रण-क्षेत्र में आ जाना चाहता हो।

“इन शब्दों के साथ मैं कमल के प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।”

नेता ने उठकर कहा, “जब इतना कुछ कहा जा चुका है तब दूसरे पक्ष को सफाई देने का अवसर न देना अन्याय होगा। इस कारण मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि अब चित्र का दूसरा रूख भी देख लें। पहले कारणों पर ही विवाद होगा।”

अब नरोत्तम के स्थान पर पूर्णिमा उठी। पूर्णिमा के क्रोध की मात्रा नरोत्तम से कम नहीं थी। हाँ, अन्तर यह था कि वह दृढ़ निश्चय से उठी थी और उक्त बातों का उत्तर धमकियों से न देकर केवल युक्तियों से ही देना चाहती थी। नरोत्तम से यह सम्भव नहीं था। एक तो वह पुरुष होने से उद्दण्डता का उत्तर उद्दण्डता में देना सुगम समझता था। दूसरा, वह सब बातों से परिचित नहीं था। पूर्णिमा ने कहा, “अन्तिम वक्ता और मिस्टर कमल ने जो कुछ अभी कहा है मैं उससे सोलह आने सहमत हूँ। मैं भी चाहती हूँ कि हमारी कोई भी बात एक-दूसरे से छिपी न रहे। मैंल को छिपाने से दुर्गन्ध बढ़ती ही है, घटती नहीं। इस कारण जो कुछ गंदगी है वह आज ही निकाल बाहर करनी चाहिये। दुष्टता करने वाले, पार्टी में अत्याचार, झूठ और ठगी फैलाने वाले को पार्टी से बाहर कर देना ही उचित होगा। परन्तु प्रश्न तो यह उपस्थित होता है कि नेता इसमें दोषी है भी या नहीं।

“मैं आपके सम्मुख उस समय का वृत्तान्त रखना चाहती हूँ जब वहिन तपस्विनी पार्टी में सम्मिलित हुई थी। सबसे प्रथम मिस्टर कमल ही उससे प्रेम प्रकट करने लगे थे। तपस्विनी वहिन ने उसके इस चलन को ठीक नहीं समझा और उसे ऐसी बातें करने से रोक दिया। एक-दो बार तो कमल डाँटा भी गया। इस पर भी जब वह नहीं माना तो तपस्विनी ने उसे एकान्त में मिलना-जुलना बन्द कर दिया। उन दिनों की सब बातें उसने मुझे बता दीं और मुझे अपने साथ रखने लगी। एक दिन हम मकान नं० तीन में डुप्लीकेटर पर चिट्ठियाँ छाप रही थीं कि कमल आ गया। काम लगभग समाप्त हो चुका था। छपे पर्चों को कायदे में रखते-रखते कमल ने बिना मेरी उपस्थिति का ध्यान किये तपस्विनी से बहुत ही अश्लील भाव में बातचीत करनी आरम्भ कर दी। मैंने उसे मना किया। वह तपस्विनी का मुख चुम्बन करने के लिए लपका। मेरे हाथ में डुप्लीकेटर में स्थाही लगाने का वेलन था। मैंने उसी को दे मारा। वेलन कमल के घुटने पर इस जोर से लगा कि वह वहीं बैठ गया। वह चल नहीं सकता था। उसे ताँग में बैठाकर घर भेजा गया। आपमें से बहुतों को स्मरण होगा कि सन् १९२८ के आरम्भ में कमल तीन महीने तक टाँग के दर्द से बीमार रहा था।”

यह बात सुन सब लोग हँसने लगे।

पूर्णमा ने फिर कहना आरम्भ किया, “तपस्विनी ने इस घटना की सूचना नेता को दे दी थी और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, कमल को नेता ने स्पष्ट बता दिया था

कि यदि उसने अपने आचरण को न सुधारा तो पार्टी की ओर से उस पर नियमानु-कूल कार्यवाही की जायगी। परन्तु कमल कब मानने वाला था। वस, बीमारी के दिनों में ही उसकी घनिष्ठता मिलिन्द कुमारी से हो गई। आपको ज्ञात होगा कि इस वर्ष के आरम्भ में उसने पार्टी में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की थी, परन्तु नेता की जाँच-पड़ताल से पूर्व ही वह बीमार हो गयी और कॉलेज छोड़कर घर चली गई। वहाँ उसका देहान्त हो गया। उसकी बीमारी का हाल और कारण कमल को भली-भाँति ज्ञात है। यदि पार्टी इसकी बाबत जाँच करना चाहे तो मिलिन्द की सहेलियाँ, जो यहाँ कॉलेज में पढ़ती हैं, इस विषय पर बहुत प्रकाश डाल सकती हैं। चूँकि मिलिन्द हमारी पार्टी की सदस्या नहीं बन सकी इसलिये पार्टी उसके विषय में जाँच करने में कदाचित् कुछ लाभ न मानती हो, परन्तु इससे एक बात का निश्चय तो अवश्य हो जायगा कि नेता और पार्टी की स्त्री-सदस्याओं पर लांछन लगाने वाले का अपना चरित्र कैसा है।”

यह सुनकर कमल क्रोध में आ गया और बैठ-बैठा ही कहने लगा, “यह झूठ है, सर्वथा झूठ है। इसका कोई प्रमाण नहीं।”

दूसरे सदस्यों ने ऑर्डर ! ऑर्डर ! की आवाजें करनी शुरू कर दीं। नेता ने उठकर कहा, “कमल भैया, जब तुम बोल रहे थे तब मैंने सबको शांत रखा और किसी को तुम्हारे कहने में विघ्न डालने नहीं दिया। अब तुमको भी वैसा ही करना चाहिये। किसी के केवल कहने मात्र से न तो कोई बात सत्य हो सकती है, न असत्य। सत्य-असत्य का निर्णय तो प्रमाणों पर होगा।”

पूर्णमा ने अपना कथन जारी रखा, “इसी वर्ष में मिलिन्द के चले जाने के पश्चात् श्रीमान्जी की कृपा-दृष्टि मुझ पर पड़ी। मैंने इससे चिट्ठी-पत्री से बात-चीत आरम्भ की। मैं समझती थी कि इसकी दुष्टता को एक-न-एक दिन प्रकट करना होगा। इस कारण लिखित में आई बात से यह इन्कार नहीं कर सकेगा। मेरे साथ जो इसकी चिट्ठी-पत्री हुई है वह मेरे पास अब भी मौजूद है।” इतना कहकर पूर्णिमा ने अपने ब्लाउज के नीचे से कागजों का पैकेट निकाला। ठीक उसी समय, जब पूर्णिमा यह कागजों का पैकेट नेता को दे रही थी, खट से एक गोली चली जो कागजों के पैकेट को छेदती हुई सामने दीवार में जा लगी। गोली चलाने वाला कमल था। वह शायद और गोली चलाता परन्तु नरोत्तम ने लपककर कमल को जा दबाया। इस समय सभा में भारी गड़बड़ मच गयी। प्रायः सबने अपने-अपने रिवाल्वर निकाल लिये। यदि इस समय नेता गुत्थमगुत्था होते हुए नरोत्तम और कमल के सम्मुख स्वयं न खड़ा हो जाता तो निश्चय ही कमल के पक्ष के लोग नरोत्तम को और नरोत्तम के पक्ष के लोग कमल को गोलियों का निशाना बना देते। उसके पश्चात् उस छोटे से कमरे में रक्त-प्रवाह चल जाता। नेता ने अपने शरीर से उन दोनों को आड़ में करते हुए जोर से कहा, ‘ऑर्डर !’ नेता की जबान

में कुछ जादू का प्रभाव था। इसी सम्मोहिनी शक्ति के कारण वह नेता बन सका था। सब लोगों का ध्यान उस ओर खिंच गया। नेता ने फिर तेज़ आवाज़ में कहा, “शटअप एण्ड हैंड्स अप।” पार्टी के सदस्यों में नियम और नेता की आज्ञा का पालन अनिवार्य था। इसलिये सदस्यों में इसका स्वभाव-सा हो गया था। अतएव प्रायः सबने तुरन्त रिवाल्वरों को जेब में रख लिया और हाथ खड़े कर नेता की ओर देखने लगे।

इतने समय में नरोत्तम ने कमल के हाथ से रिवाल्वर छीन लिया था और कमल पीत-मुख हाँफता हुआ भूमि पर बैठ गया था। नरोत्तम ने उसका रिवाल्वर नेता के हाथ में देकर कहा, “यह अब तुम्हारा कैदी है। इसके साथ उचित न्याय होना चाहिए।”

नेता ने सबको बैठ जाने के लिये कहा। जब सब बैठ गये तो उसने कमल को खड़े होने की आज्ञा दी। या तो कमल की टाँगें उसे उठाने में अशक्त थीं या वह नेता की आज्ञा की अवहेलना करना चाहता था, वह उठा नहीं। नेता ने उसकी दयनीय दशा का विचार कर कहा, “यदि कमल चाहे तो इस विषय की बात अभी बन्द कर दी जाय और इसकी जाँच के लिये कुछ सदस्यों की एक छोटी कमेटी नियुक्त कर दी जाय जो पूरी पार्टी के सम्मुख अपनी सम्मति उपस्थित करे।”

कमल अब भी नहीं उठा। वह चुपचाप बैठा सोचता रहा। इस पर उसका साथी द्विवेदी उठा और कहने लगा, “हम छोटी-बड़ी कमेटियों की नियुक्ति में समय का अपव्यय समझते हैं और चाहते हैं कि इस विषय के सम्बन्ध में जो कुछ भी होना है अभी हो जाय।”

नेता ने अन्य सदस्यों का मत जानने के लिये सबकी ओर देखा। नरोत्तम ने बैठे-बैठे ही कह दिया, “मैं भी चाहता हूँ कि अभी निर्णय हो जाय। नित्य-प्रति की खच-खच हमें पसन्द नहीं।”

नेता ने जब यह स्थिति देखी तो रक्तपात होने की सम्भावना को रोकने के लिये एक प्रस्ताव रखा। उसने कहा, “इस विषय पर पुनः वातचीत होने से पूर्व मैं चाहता हूँ कि आप सब लोग अपने-अपने रिवाल्वर, चाकू और छुरियाँ निकालकर यहाँ जमा कर दें। मैं नहीं चाहता कि इस विषय में प्रमाणों और युक्तियों के साथ अस्त्र-शस्त्रों की शक्ति से भी अपना-अपना पक्ष सिद्ध किया जाय।”

इस प्रस्ताव पर सब एक-दूसरे का मुख देखने लगे। सबसे पूर्व नेता ने अपनी जेब में से एक चाकू निकालकर सम्मुख रख दिया। पश्चात् नरोत्तम ने अपना रिवाल्वर निकाला और नेता के सम्मुख रख दिया। पूर्णिमा और दूसरी सदस्याओं ने नरोत्तम का अनुकरण किया। इसके पश्चात् धीरे-धीरे सबने अपने-अपने हथियार निकाल नेता के सम्मुख रख दिये।

नेता ने इन हथियारों को सम्मुख रखी सन्दूकची में बन्द कर दिया। अब उसने

पूर्णमा को अपना वक्तव्य समाप्त करने को कहा। वह बोली, “ये चिट्ठियाँ, जो मैंने नेता को दी हैं, सब-की-सब लिखने वाले की बहुत ही पतित मानसिक अवस्था प्रकट करती हैं। मजबूर होकर मुझे एक-दो चिट्ठियाँ आपको पढ़कर सुनानी पड़ेंगी। मेरी इच्छा नहीं थी कि इन्हें इस प्रकार पढ़ा जाय। मैं तो केवल नेता के सम्मुख रखने के लिए ही इन्हें अपने साथ लेती आई थी। मैं चाहती थी कि पार्टी में से एक या दो न्यायकर्ता नियुक्त कर दिये जाते और वे इस विषय में जाँच-पड़ताल कर दोषी के लिए दण्ड निश्चित करते। परन्तु जब आप चाहते हैं कि यह बात स्पष्ट सबके सम्मुख रखी जाय तो कम-से-कम एक चिट्ठी मैं पढ़ देना चाहती हूँ।”

इतना कहकर पूर्णमा ने चिट्ठियों के बंडल में से एक चिट्ठी निकालकर पढ़नी आरम्भ की—“मिस्टर कमल लिखते हैं—‘प्रिय वंदनी ! तुम प्रेम, प्रेम बहुत कहती हो। मैं कहता हूँ कि प्रेम शब्द धनी लोगों ने तथा शक्तिशालियों ने अपने पाप-कर्मों को छिपाने के लिए एक सुनहरी पर्दा बना रखा है। यथार्थ में शारीरिक आकर्षण ही सबकुछ है। तुम सुन्दर हो, मैं तुमको पाना चाहता हूँ, यही यथार्थ प्रेम है। और मैं सब प्रकार से तुम्हारे योग्य भी हूँ।’”

‘मैं आत्मा का आत्मा से मेल नहीं मानता। शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति ही सर्वोपरि है। जैसे धूर्त शक्तिशालियों ने परमात्मा का ढोंग रच रखा है वैसे ही उन्होंने स्त्रियों को अपने पंजे में फँसा रखने के लिए प्रेम का जाल बिछा रखा है। ...जब एक स्त्री अपनी सब शारीरिक कामनाओं, इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति एक पुरुष द्वारा होती देखती है तो वह उसको अपना प्रेम-भाजन, पति, स्वामी, देवता अर्थात् सबकुछ मान लेती है। ...छोड़ो इन मानसिक दुविधाओं को। संसार में जीवन चिरकाल नहीं रहेगा। जीवन के चार दिन हैं। आओ, एक बार हम इस आनन्दमय सागर में डुबकी लगा लें। कल के लिए छोड़ना ठीक नहीं। जितना सुख-आनन्द पाना है उसके लिए यही समय है। नहीं तो पीछे हाथ मलती रह जाओगी ...’

“मैं और अधिक नहीं सुनाना चाहती। यदि ऐसी चिट्ठियों तक ही बात रहती तो चिन्ता की बात न होती। परन्तु कमल तो क्रियाशील व्यक्ति है, कोरी बातों तक ही नहीं रह सकता। हाँ, एक भूल वह करता रहा है। वह भूल यह थी कि इस पार्टी में जो अन्य सदस्य हैं उनको वह अपने से अधिक दुर्बल और अकर्मण्य मानता है। एक बार अपनी इच्छाओं को कार्यरूप में परिणत करने के यत्न में उसे तीन महीने तक खाट पर लेटना पड़ा। दूसरी बार उसे मेरे साथ एकान्त में मिलने का स्थान निश्चित कर अपने बायें हाथ की उँगली खोनी पड़ी। मैं फिल्म कम्पनी के काम से इलाहाबाद में थी। उस समय उसके पत्र-पर-पत्र आ रहे थे। अन्त में एक पत्र में उसने सायंकाल को किले की दीवार के नीचे यमुना की सड़क पर मुझे

अकेले बुलाया। मेरे न पहुँचने पर धमकी दी।”

इस समय पूर्णिमा ने एक और चिट्ठी लेकर पढ़नी आरम्भ की। लिखा था, ‘प्रिय! यह अन्तिम बार विनती कर रहा हूँ। नियत स्थान पर आज अवश्य आना, अन्यथा यह बात तुम भूल नहीं सकतीं कि मैं इस संसार में जान हथेली पर रखकर घूमता हूँ। जो मनुष्य मरने से नहीं डरता वह क्या कुछ नहीं कर सकता? मेरे सम्मुख तुम्हें पाने से बढ़कर और कोई बात नहीं। निश्चित स्थान पर मिलना, अन्यथा अनिश्चित स्थान पर मिलने की शक्ति भी रखता हूँ।’

“भैया के मित्र पं० मधुसूदन, जिनके घर मैं ठहरी हुई थी, मेरी सहायता के लिए किले तक जाने को तैयार हो गये। उनके हाथ में केवल एक डण्डा था। मैं उनसे पृथक् वहाँ पहुँची। सायंकाल का समय था। कमल ने मधुसूदन को वहाँ टहलता देखा तो वह घबरा गया। जब मैं वहाँ पहुँची तो पण्डितजी को वहाँ से टलता न देख कमल उनके पास पहुँचा और पूछने लगा, ‘आप यहाँ किस मतलब से आये हैं?’

“पण्डितजी ने लापरवाही से उत्तर दिया, ‘आपको क्यों बताऊँ?’

“इस पर कमल बहुत चकराया और जेब से पिस्तौल निकालकर बोला, ‘इसलिए।’

“परन्तु उसने पण्डितजी का गलत अनुमान लगाया था। पूर्व इसके कि पिस्तौल वाला हाथ उठता पण्डितजी का डण्डा इतने जोर से हाथ पर पड़ा कि पिस्तौल हाथ से निकलकर दस कदम के अन्तर पर जा गिरा। पण्डितजी ने लपककर पिस्तौल पर अपना पाँव रखा और डण्डा तानकर खड़े हो गये। पण्डितजी ने धमकी देकर कहा, ‘भाग जा साले, नहीं तो पुलिस के हवाले कर दूंगा।’ कमल इतनी धमकी से नहीं डरा। वह पण्डितजी की ओर लपका, परन्तु उनका डण्डा उससे अधिक सचेत था। उसने डण्डा रोकने के लिए हाथ उठाया। डण्डा बायें हाथ की उँगली पर इतने जोर से लगा कि उसको वहाँ से भाग जाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं मिला। वह पिस्तौल मेरे पास अभी तक मौजूद है और पण्डितजी के डण्डे का चिह्न उसकी उँगली पर जीवन-भर रहेगा।”

पूर्णिमा का कथन समाप्त होने पर तपस्विनी ने नेता से आज्ञा माँगी और कहना आरम्भ किया, “मेरे विषय में जो कुछ कमल ने कहा है वह सर्वथा असत्य है। पूर्णिमा ने जो कुछ कहा है उसका मेरे पास एक प्रमाण भी है। मुझे भी कमल ने एक पत्र लिखा था, परन्तु मैंने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। इस कारण उसने भी और कोई पत्र नहीं लिखा। मेरे कलकत्ता जाने के विषय में यह बात गलत है कि मैं बीमार होकर गई थी। बात यह थी कि बहिन कमलिनी को, जो बाबू महेश्वरलालजी की लड़की को पढ़ाती थी, बाबूजी का रिवाँल्वर चुराने के लिए नियुक्त किया गया था। कमलिनी ने कुछ दिन की बाबू-साहब के यहाँ से

छुटी ले ली और उनकी स्त्री को बताया कि वह अपने एक रिश्तेदार के यहाँ कलकत्ता जा रही है। मैं उसके साथ कलकत्ता गई। वहाँ सरकारी अस्पताल में कमलिनी केवल बहाना कर दवाई लेने जाती थी। कुछ दिन के पश्चात् कमलिनी का टिकट लेकर मैं दवाई लेने जाने लगी। इसके पश्चात् मैं वहाँ अस्पताल में दाखिल हो गई, परन्तु मैंने कमलिनी का ही नाम वहाँ पर लिखवाया था। इस बीच में कमलिनी चोरी से बनारस आई और एक दिन यहाँ रही। इस समय में वह रिबॉल्वर चुराकर फिर कलकत्ता चली गई। इस सारे झंझट का आशय यह था कि यदि कमलिनी पर सन्देह हो तो उसकी 'एलिबी' बनाई जा सके। इस बात को कितना बिगाड़कर आपके सम्मुख रखा गया है। जब मैं कलकत्ता गई थी तो मेरा खर्चा पार्टी के फंड में से दिया गया था।"

अब नेता ने कहा, "जहाँ तक लड़कियों के सम्बन्ध की बात है वह आप सुन चुके हैं। कमल ने जो पत्र तपस्विनी को लिखा था वह भी यहाँ उपस्थित है। जिसको पढ़ना हो पढ़ सकता है। अब एक-दो बातें और आपके सम्मुख रखनी हैं। एक तो यह कि पूर्णिमा का फिल्म कम्पनी में काम करना हमारे डाका डालने के कार्य से सर्वथा भिन्न है। दोनों में अन्तर यह है कि पहला काम कानून के विपरीत है, दूसरा नहीं। दूसरी बात यह है कि डाका डालने में पार्टी की सब शक्ति उस पर लगा दी जाती है, परन्तु फिल्म कम्पनी में काम करने में पार्टी का किञ्चित्मात्र भी हाथ नहीं। तीसरा अन्तर यह है कि उस काम के करने में सारी पार्टी अपने-आपको खतरे में डाल देती है, पूर्णिमा के फिल्म कम्पनी में काम करने से ऐसी कोई सम्भावना नहीं थी। और भी बात है। डाका डालना पार्टी की मंजूरी, राय और योजना के अनुसार होता है, पूर्णिमा ने अपनी इच्छा से फिल्म कम्पनी में काम करना स्वीकार किया था। इसलिए अपनी आय में से जो भाग भी उसने दिया है वह हमें धन्यवादपूर्वक स्वीकार करना चाहिए। आपमें से भी तो कुछ लोग अपना-अपना निजी काम करते हैं और उस आय में से केवल बहुत कम अंश पार्टी में देते हैं। पूर्णिमा ने तो पचास प्रतिशत दिया है।

"पूर्णमा ने डेढ़ हजार रुपया पार्टी को दिया है। नरोत्तम ने पिछले छः मास में दो हजार पैदा किया है और उसमें से उसने एक हजार पार्टी को दिया है।

"इस अवस्था में मैं यह प्रस्ताव करता हूँ कि पिछले वर्ष की कार्यवाही पास कर दी जाय।"

अब इस प्रस्ताव पर राय ली गई। पन्द्रह सदस्य रिपोर्ट को स्वीकार करने के पक्ष में थे और पाँच सदस्य विपरीत। इन पाँच में एक कमल भी था।

जब यह बात स्वीकार हो चुकी तो नेता ने खड़े होकर कहा, "जो अभियोग कमल पर पूर्णिमा और तपस्विनी ने लगाये हैं उनका निर्णय अभी शेष है। इस विषय में मैं आपसे सम्मति लेना चाहता हूँ। प्रश्न यह है कि क्या कमल पार्टी में

गड़बड़ मचाने के दोष में अपराधी है ? जो उसे अपराधी मानते हैं वे हाथ खड़ा करें ।”

कमल को अपराधी ठहराने वाले पन्द्रह सदस्य थे और निर्दोष ठहराने वाले पाँच । ये पाँच वही थे जो रिपोर्ट को अस्वीकार करने की सम्मति दे चुके थे ।

नेता ने फिर कहा, “पार्टी के अपराधी सदस्य को दण्ड देने का पूर्ण अधिकार नेता को है । मैं कमल को क्या दण्ड दूँ इस विषय में मैं फिर किसी समय निर्णय करूँगा । इस समय आपके निर्णय से कि कमल अपराधी है मैं कमल को केवल यह आज्ञा देता हूँ कि वह बिना मुझसे मिले बनारस से बाहर न जाय, और यदि उसने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया तो उसको प्राण-दण्ड दिया जायेगा ।”

: २ :

उत्तम दिन पार्टी मीटिंग समाप्त होने के साथ ही नेता ने कमल को गायघाट वाले मकान में अगले दिन दो बजे दिन को आने की आज्ञा दी ।

अगले दिन कमल नियत स्थान पर पहुँच गया । उस समय वहाँ पर नरोत्तम भी उपस्थित था । कमल ने पहले आते ही यह आपत्ति उठाई कि नरोत्तम यहाँ क्यों है । नेता ने यह कहकर कि पार्टी के मन्त्री का होना आवश्यक है, अपनी बात आरम्भ कर दी । उसने कहा, “कल की बातों को सुनकर और तुम्हारी लिखी चिट्ठियों को देखकर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि तुम्हारा पार्टी में रहना उचित नहीं ।”

कमल ने कहा, “मेरी सफाई तो ली नहीं गई । कल का वोट अनियमित है ।”

“तुमने अपनी सफाई क्यों नहीं दी ?”

“व्यर्थ थी । उपस्थित लोगों में लड़कियाँ अधिक थीं और वे लड़कियों का पक्ष अवश्य लेतीं । बीस की उपस्थिति में नौ लड़कियाँ थीं और एक नरोत्तम था । यदि सब-के-सब शेष लड़के मेरे पक्ष में सम्मति देते तो भी तुम अपने कास्टिंग वोट से मुझे दोषी ठहरा देते । ऐसी अवस्था में कुछ कहना व्यर्थ था ।”

“देखो कमल, तुम अभी अपनी सफाई दे सकते हो और यदि तुम मुझे विश्वास दिला दो कि तुम पर जो दोषारोपण किया गया है वह मिथ्या है तो मैं तुम्हें निरपराध सिद्ध कर दूँगा और तुम्हारे लिए कोई दण्ड नियत नहीं करूँगा ।”

“मैं निरपराध हूँ । मुझे अपने मन में इसका किञ्चित्मात्र भी संशय नहीं । तुम मानो चाहे न मानो मुझे इसकी चिन्ता नहीं । मैं अब तुम्हारी पार्टी में नहीं रहूँगा । मैं अपनी नई पार्टी बनाऊँगा ।”

“तुम जानते हो कि कोई सदस्य लड़कर पार्टी से बाहर नहीं हो सकता । पार्टी से निकाले जाने का अर्थ है संसार से निकाल दिया जाना । इस कारण यदि अब भी तुम अपनी सफाई दे सको तो मैं तुम्हें पार्टी में सम्मिलित रहने दे सकता हूँ और फिर यदि तुम्हारी स्वतन्त्रता से काम करने की इच्छा होगी तो पार्टी का

एक भाग तुम्हारे अधीन किया जा सकता है। इस प्रकार तुम्हारी यह कामना, कि तुम नेता बनकर काम करो, पूरी हो जायेगी।”

“परन्तु बात यह है कि कोई बात अपराध है अथवा नहीं, यह अपने-अपने विचारों पर निर्भर है। कोई समय था कि श्रीकृष्ण रुक्मिणी को हर लाया था और उसे पाप नहीं माना गया। द्रौपदी पाँच पतियों के पास रहती हुई भी पवित्र मानी गयी। ये सब बातें आजकल के लोगों को स्वीकार नहीं। ऐसा करने वाले को अपराधी माना जाता है। इसी प्रकार जो कुछ मैंने किया है वह मैंने अपने मन में ठीक समझकर किया।”

“परन्तु, कमल, तुम एक बात को भूल रहे हो। किसी पर ज़बरदस्ती कभी भी उचित नहीं मानी गयी। यदि तपस्विनी अथवा पूर्णिमा तुम्हारे संग विवाह कर अथवा बिना विवाह के रहना पसन्द करतीं तब तो तुम पर कोई दोषारोपण न करता। तुम्हारा दोष तो यह है कि तुमने उनके मन के विपरीत उनका पति बनने का यत्न किया। इस पर जब असफल रहे तो उनको धमकियाँ देने लगे।”

“देखो धीरेन्द्र, मैं स्त्रियों को पुरुषों के मनोरंजन की सामग्री समझता हूँ। इसी कारण मैंने लड़कियों का पार्टी में सम्मिलित होना स्वीकार किया था। इसमें उनकी इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न ही नहीं उठता।”

“यदि यह बात थी तो तुमने मुझ पर जो दोष लगाये थे उनका अभिप्राय क्या था?”

“यदि तुम यह सब दुराचार चोरी-चोरी न करके स्पष्ट रूप में मान जाते तो मैं तुमको अपने विचार के अनुकूल समझता और तुमसे झगड़ा न करता।”

“चोरी तो तब की जाती है जब किसी पाप का अस्तित्व हो। मेरा व्यवहार तो सब सदस्यों के साथ एकसमान है। तपस्विनी की बात तुम्हें ज्ञात हो गई है। पूर्णिमा का विवाह शीघ्र ही होने वाला है। इससे तुम समझ सकते हो कि मेरा उनसे कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं जो छिपाया जाना आवश्यक है। यह तो तुम्हारा भ्रम है कि मेरा उनसे ऐसा सम्बन्ध है अथवा रहा है। परन्तु मैं पूछता हूँ यदि तुम स्वयं अपने उस व्यवहार को दुराचार नहीं मानते तो जब तुम किसी दूसरे को, सत्य अथवा असत्य ही, वही काम करते देखते हो तो नाराज क्यों होते हो? यह तो और भी बुरा है।”

“कुछ भी हो, मैं तो ऐसा ही समझता हूँ।”

“इसी कारण तो पार्टी ने तुम्हें दोषी माना है। यदि तुम्हारा पार्टी के बाहर अथवा भीतर किसी स्त्री से सम्बन्ध होता और उस सम्बन्ध में स्त्री की स्वीकृति भी होती तो तुम दोषी न माने जाते। यदि तुम किसी स्त्री पर, जो पार्टी के बाहर की होती, बलात्कार करते अथवा करना चाहते तो तुम्हें दोषी ठहराने के लिए पार्टी को कष्ट करने की आवश्यकता नहीं थी। तुमने पार्टी की सदस्याओं पर बलात्कार

करने की इच्छा और प्रयत्न किया। यह तुम्हारा दोष है। तुमने अभी तक इस बात को झूठ नहीं बताया, प्रत्युत तुम्हारी बातों से यह प्रतीत होता है कि तुमने ऐसा आचरण किया और तुम अपने इस आचरण को बुरा नहीं मानते। इसमें तीन दोष हैं। एक तो यह कि तुमने पार्टी के सदस्यों को अकारण तंग किया, उनकी स्वतन्त्रता में बाधक हुए। दूसरा अपराध यह है कि उन हथियारों से, जो तुमको पार्टी ने दिये हैं, तुमने पार्टी के सदस्यों को मार डालने का यत्न किया। तीसरा अपराध यह है कि तुमने जानबूझकर अथवा अनजाने, बिना प्रमाण रखे, झूठे दोषारोपण किये। ये सब पार्टी में अनियमितता फैलाने वाली बातें हैं। बताओ, तुम इन बातों को मानते हो?"

"मैंने जो कुछ किया है वह किसी प्रकार भी पार्टी के नियमों के विरुद्ध नहीं किया। पार्टी का सम्बन्ध केवल उन कार्यों से है जिनके लिए पार्टी बनाई गई है। पार्टी पुलिस का अंग नहीं। मैं जो कुछ भी निजी रूप से करता हूँ, वह चाहे पार्टी के सदस्यों से हो अथवा पार्टी के बाहर वालों से हो, उनके लिए सब प्रकार से देश और समय के कानून से दण्ड पा सकता हूँ और पाने के लिए तैयार हूँ। पार्टी को पुलिस का काम हाथ में लेने की क्या आवश्यकता है?"

"जहाँ तक पार्टी के बाहर के लोगों से तुम्हारे व्यवहार का सम्बन्ध है तुम ठीक कहते हो। यद्यपि तब भी कुछ लोग तुम्हें पार्टी का एक अच्छा सदस्य न मानते, तो भी पार्टी तुम्हारे पर न्याय करने न बैठती। परन्तु पार्टी के अन्य सदस्यों पर तुम्हारी ज़बरदस्ती पार्टी सहन नहीं कर सकती।"

"पार्टी के इस व्यवहार के लिये कौन-सा नियम है?"

"वह नियम यह है कि पार्टी के सब सदस्य समान अधिकार और स्वतन्त्रता रखते हैं। जैसा तुम कर सकते हो, दूसरे भी तुम्हारे साथ वैसा ही कर सकते हैं। अगर पार्टी दूसरों को तुम्हारे पर पिस्तौल का वार नहीं करने देती तो तुम्हें भी इस प्रकार का उद्घाटनपूर्ण कार्य करने नहीं दे सकती। जब दूसरे तुम पर तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल बल-प्रयोग नहीं कर पाते तो तुम भी पार्टी की स्त्री-सदस्याओं पर उनकी इच्छा के प्रतिकूल बलात्कार कैसे कर सकते हो? यह तो एक सामान्य सामाजिक नियम है, जिस पर प्रत्येक को चलना चाहिये, चाहे वह हमारी पार्टी का सदस्य हो अथवा न हो।"

"मिस्टर धीरेन्द्र, यह फिलॉसफी मेरी समझ में नहीं आती। मैं तो एक बात जानता हूँ। वह यह कि जब कभी भी पार्टी ने मुझे किसी जान-जोखिम के काम पर नियुक्त किया है, मैंने वह काम निर्भीकता से पूरा किया है। किसी लड़की से मेरा कैसा व्यवहार है इसमें हस्तक्षेप करने का पार्टी को अधिकार नहीं।"

धीरेन्द्र ने अभी भी कमल को सीधे मार्ग पर लाने की आशा नहीं छोड़ी थी। वह फिर बोला, "हमारी पार्टी एक छोटा-सा समाज है। समाज में रहते हुए मनुष्य

को पूर्ण रूप से समाज के नियमों के अधीन रहना होता है। तुम समाज के नियमों को भंग करके समाज में नहीं रह सकते।”

“समाज मनुष्य के लिए बनाया गया है या मनुष्य समाज के लिए? यदि समाज मनुष्य के लाभ के लिए है तो उसको मनुष्य की स्वतन्त्रता पर हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं।”

“मनुष्य समाज के बिना नहीं रह सकता, इस कारण समाज बनाना पड़ता है। समाज बनाते समय मनुष्य को कुछ अंशों में अपनी स्वतंत्रता समाज के अधीन करनी पड़ती है। समाज में सुखपूर्वक रहने के लिए सबसे प्रथम नियम यह है कि तुम समाज के दूसरे सदस्यों पर अत्याचार नहीं कर सकते।”

“यह कौन निर्णय करे कि अमुक काम अत्याचार है, अमुक नहीं?”

“इसके लिए समाज के बहुमत से नियम जो बने हुए हैं।”

“बहुसंख्या तो मूर्खों की होती है। यदि बहुमत से सब बातें निश्चय की जायें तो संसार उन्नति की अपेक्षा अवनति की ओर जाने लगेगा।”

“यह तुम्हारा भ्रम मात्र है। कभी-कभी ऐसा होता है कि स्वार्थी लोग जन-साधारण को भूल में डालकर ऐसे नियम बना लेते हैं जो उनके स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। परन्तु यह सदैव नहीं हो सकता। समय-समय पर महापुरुष जन-साधारण को स्वार्थी लोगों के प्रभाव से मुक्त करते रहते हैं। वे उन नियमों को तोड़ते रहते हैं जो समाज-हित के विपरीत समुदाय विशेष के लाभार्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त सर्व-साधारण भी सामान्यतः अपने हितों को समझता है। इस प्रकार मनुष्य तथा समाज दोनों उन्नति की ओर जाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। परन्तु स्वार्थी लोगों द्वारा सर्व-साधारण की आँखों पर डाला हुआ पर्दा सदा नहीं रह सकता।”

“परन्तु जब तक सर्वसाधारण की बुद्धि पर पर्दा है तब तक तो समाज के नियम अन्यायपूर्ण ही कहे जा सकते हैं।”

“इस अन्याय के विरुद्ध तुम अपनी आवाज़ उठा सकते हो।”

“क्या हज़रत ईसा को जब फाँसी दी गई थी वह समाज के अन्याय को अपने विचारों के प्रसार द्वारा मिटा पाया था? क्या सुकरात को जब विष का प्याला पिलाया गया था उसने कम युक्तियाँ दी थीं? उनसे क्या लाभ हुआ? समाज के नियम अन्यायपूर्ण थे। वे प्रायः अन्यायपूर्ण ही होते हैं। इसका कारण यह है कि समाज के नियम बहुमत पर आधारित होते हैं और बहुमत प्रायः मूर्खतापूर्ण होता है।”

“तुम्हारे कथन में कुछ सचाई अवश्य है, परन्तु ये सब युक्तियाँ तुम्हारे व्यवहार पर लागू नहीं होतीं। हज़रत ईसा अथवा सुकरात ने कोई ऐसा काम नहीं किया था जो सर्व-साधारण पर अत्याचार कहा जा सके। वे अपने विचारों का प्रचार करते थे। उन्होंने किसी व्यक्ति को बलपूर्वक अपने विचार मनाने का यत्न

नहीं किया। उन पर जो दोषारोपण किया गया था वह कुछ स्वार्थी लोगों के झूठ प्रचार के कारण था। जन-साधारण उन धूर्त साथियों द्वारा मिथ्या मार्ग पर ले जाया गया था। परन्तु तुम्हारा व्यवहार तो ईसा और सुकरात से सर्वथा उलटा है। तुमने पूर्णिमा और तपस्विनी को अपने विचार का बनाना चाहा। उनको तुम्हारे विचार पसन्द नहीं आये। इस पर तुम बलपूर्वक उनको अपने मतानुकूल बनाना चाहते थे। ऐसी अवस्था में तो अन्याय करने वाले तुम हो, न कि पार्टी, जो तुम्हारे इस बल-प्रयोग को पसन्द नहीं करती।”

“परन्तु यह तो हम नित्य करते हैं। भारतवर्ष में अंग्रेज राज्य करते हैं। वे पग-पग पर भारतवासियों के साथ अन्याय करते हैं। हम उनको समझाते हैं कि वे ऐसा न करें। वे नहीं मानते और हम गोली तथा बम चलाकर उनको मार डालते हैं। हम बलपूर्वक अंग्रेजों को इस अन्याय करने से रोकते हैं, यही बात मैंने की थी। समाज में मिथ्या विचारों तथा प्रथाओं के कारण तपस्विनी और पूर्णिमा किसी ऐसे से विवाह करना चाहती हैं जिनको मैं उनके योग्य नहीं समझता। मैं अपने-आपको उनमें से एक के तथा दोनों के सर्वथा योग्य समझता हूँ। मैंने उनको समझाने का यत्न किया। वे नहीं मानीं। इस पर मुझे उनको बलपूर्वक मनाने का इतना ही अधिकार है जितना तुम या तुम्हारी पार्टी को अंग्रेजों पर बम या बन्दूक अथवा रिवाल्वर चलाने का।”

“मिस्टर कमल, तुम्हारी मानसिक अवस्था सर्वथा मलिन हो गई है। इस कारण तुम सत्य और झूठ में निर्णय नहीं कर सकते। मोटी-सी बात भी तुम्हारी समझ में नहीं आ सकती। क्या तुम इतना भी नहीं समझ सकते कि पहले अंग्रेजों ने हम पर अत्याचार किया है? वे बल से हम पर राज्य कर रहे हैं। हम तो केवल उनके अत्याचार का विरोध करने के लिए बल का प्रयोग करते हैं। जैसे तुमने तपस्विनी को बल से अपने वश में करने का यत्न किया, उस पर पूर्णिमा ने तुम्हें डुप्लीकेटर का रूल दे मारा। सच तो यह है कि तुमने बल का प्रयोग पहले किया था और पूर्णिमा ने पीछे। अतएव तुम दोषी हो और वह नहीं।”

“तुम तो बहुत कम दूर तक विचार करते हो। मैं कहता हूँ कि समाज में मिथ्या विचारों के प्रचार के कारण तपस्विनी ने मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया था। मेरा प्रस्ताव सर्वथा स्वाभाविक था। वह उसे मान जाना चाहिये था।”

धीरेन्द्र को कमल के बार-बार वही बात करने पर क्रोध आने लगा। इस पर भी उसने एक अन्तिम प्रयत्न करते हुए कहा, “क्या तुम यह भी नहीं समझ सकते कि तपस्विनी तुम्हारे विचारों को न मानते हुए भी तुमको अपने विचार मानने के लिए बल का प्रयोग नहीं कर रही थी? तुम यह समझते थे अथवा समझते हो कि किसी भी स्त्री के साथ तुम सहवास करने का अधिकार रखते हो। वह समझती है कि कोई भी पुरुष यह असीम अधिकार नहीं रखता। बिना स्त्री की अनुमति के

वह उससे विवाह नहीं कर सकता। जहाँ तक समझने और मानने का प्रश्न है तुम दोनों स्वतंत्र हो, परन्तु न तो वह और न तुम अपने विचार बलपूर्वक एक-दूसरे को मनवा सकते हो। समाज इस प्रकार का बल-प्रयोग किसी भी सदस्य से सहन नहीं कर सकता। इसलिए प्रत्येक के हितार्थ इस प्रकार की निरंकुशता तथा उच्छृङ्खलता रोकी गई है। बल का प्रयोग पहले तुमने किया है। सामाजिक नियमों के कारण अथवा किसी और कारण से तपस्विनी और अनेक अन्य नर-नारियों के ऐसे विचार हैं। तुम इस विचार के विपरीत प्रचार कर सकते हो। यहाँ तक तो कोई भी पक्ष अपराधी नहीं। अपराध तो तब बन जाता है जब कोई भी पक्ष अपने विचार मनवाने के लिए दूसरे पक्ष के साथ बल का प्रयोग करता है।”

“मैं ऐसा नहीं मानता। जब-जब भी समाज में सुधार हुआ है बल के प्रयोग से हुआ है। यदि लोगों में मत-परिवर्तन की प्रतीक्षा की जायगी तो यह प्रतीक्षा अनन्त काल तक होती रहेगी।”

अब तो नरोत्तम, जो अभी तक दोनों के इस वाक्-युद्ध को देख रहा था, चुप न रह सका। वह कहने लगा, “दादा, छोड़ो इस बहस को। लातों के भूत बातों से नहीं मान सकते। ऐसे सुधारवादियों को, जो बलप्रयोग को सदैव अपना अधिकार समझते हैं, बल से ही सीधे मार्ग पर लाना चाहिए। व्यक्तिगत बातों और विचारों से पार्टी ऊँची है। पार्टी की रक्षा एक व्यक्ति की रक्षा से, जो जानबूझकर भूल करता है, अधिक आवश्यक है। तुम अपना निर्णय सुना दो।”

कमल भी कुछ क्रोध में आ गया था। वह पिछले दिन नरोत्तम से हार चुका था। इस कारण प्रतिकार की अग्नि उसके मन में भड़क उठी थी। वह क्रोध में कहने लगा, “हाँ दादा, दे दो अपना निर्णय। परन्तु यह ध्यान रख लेना कि वह निर्णय, जिसको पूरा करने की शक्ति न हो, देना महामूर्खता होगी। मैं समझता हूँ कि तुम मुझे प्राण-दण्ड दे सकते हो, परन्तु यह भी विचार कर लेना कि तुम्हारी सारी पार्टी में मेरे प्राण लेने की शक्ति किसमें है।”

धीरेन्द्र ने सब सुनकर उत्तर दिया, “मैं सबकुछ समझता हूँ, कमल, मेरी इच्छा थी कि तुम्हें पार्टी के अन्दर ही रखा जाता, परन्तु तुम्हारे विचारों को सुनकर मैं यह सम्भव नहीं समझता। पार्टी से बाहर निकाल देने का अभिप्राय प्राण-दण्ड है, यह भी तुम समझते हो। हाँ, इस दण्ड को कम करने का अधिकार पार्टी के नियमों ने मुझे दे रखा है और मैं उस अधिकार का प्रयोग करना चाहता हूँ। इसलिए नहीं कि मैं तुम्हें प्राण-दण्ड दे नहीं सकता, प्रत्युत इस कारण कि तुम वीर हो और भारतमाता के वीर सपूतों की हत्या करना मैं पाप समझता हूँ। यह ठीक है कि तुम भूल कर रहे हो, परन्तु यह भूल ऐसी नहीं जिससे पार्टी का अस्तित्व संशय में पड़ जाय। अभी तक तुममें मुझे ऐसी कोई बात प्रतीत नहीं होती जिससे यह समझूँ कि तुम पार्टी के भेद को खोल दोगे और पार्टी के साथ दगा करोगे। इस

कारण मैं केवल यह निर्णय देता हूँ कि 'कमल हमारी पार्टी का सदस्य नहीं रहा। उसे हमारी पार्टी के नाम पर कोई भी काम करने का अधिकार नहीं है। नयी पार्टी की स्थापना, जिसके उद्देश्य हमारी पार्टी से समानता रखते हों, वह बनारस के बाहर कर सकेगा। यदि इस निर्णय को कमल ने न माना तो वह सजा पायेगा'।"

कमल जो मृत्यु-दण्ड पाने की आशा किये हुए था इस साधारण से निर्णय से उदास दिखाई देने लगा। वह बड़े जीवट का आदमी था। उसका अनुमान था कि उसे प्राण-दण्ड होगा और प्राण-दण्ड से बलपूर्वक बचने का वह पूर्ण प्रयत्न करके घर से चला था। परन्तु इस नवीन स्थिति के पैदा हो जाने के कारण उसकी सब योजनाएँ तथा तैयारियाँ धरी-की-धरी रह गयीं। साथ ही सारी पार्टी की रक्षा का भार उसके ऊपर छोड़ देना भी उसे विकट परिस्थिति में डालने के लिए कम नहीं था। ऐसी अवस्था में वह नहीं समझ सका कि क्या करे। यदि कोई उस पर रिवाँल्वर उठाता तो वह निःशस्त्र ही उससे भिड़ जाने की शक्ति और साहस रखता था। परन्तु अपने-आपको दूसरों की जान व माल का मालिक पाकर वह चकित था। जिस नेता को उसने एक ही दिन पूर्व लांछन लगाकर पार्टी में नीच और पतित सिद्ध करने का यत्न किया था, वही नेता उसको वीर कहकर सम्बोधन करता है, तथा पार्टी का सारा रहस्य जानते हुए भी और पार्टी से निकाले जाने पर भी उसको विश्वासपात्र मानता है। इन सब बातों से वह गहरे विचार में डूब गया और काफी देर तक चुपचाप बैठा रहा।

नरोत्तम एकदम इतना नम्र दण्ड सुन चकित रह गया। वह मन में पूर्ण निश्चय किये हुए था कि पूर्णिमा के अपमान करने वाले को वह स्वयं प्राण-दण्ड देगा। नेता पर उसे क्रोध आ रहा था क्योंकि वह आरम्भ से ही कमल के साथ बहुत नम्रता का व्यवहार कर रहा था। परन्तु पार्टी के नियमों से बंधे रहने के कारण नेता की आज्ञा-पालन के अतिरिक्त उसके लिए और कोई मार्ग नहीं था।

धीरेन्द्र चुपचाप गम्भीर भाव से कमल के मन के भावों को पढ़ रहा था। कमल धीरे-धीरे उठा। खड़ा होकर बोला, "दादा, मुझे तुमसे यह आशा नहीं थी। मैं इस दण्ड के विषय में अपने विचार तुम्हें कभी लिखूँगा। नमस्कार!" यह कहकर वह मकान के नीचे उतर गया।

उसके चले जाने के बाद नरोत्तम ने क्रोध में कहा, "भोले नेता, यह तुमने क्या किया है?"

"इस परिस्थिति में जो सबसे उपयुक्त बात थी वही मैंने की है।"

"इस दुष्ट को जीवित छोड़ना पार्टी के साथ अन्याय करना है।"

"प्राण-दण्ड कह देना सुगम था परन्तु उसे पूरा करना अति कठिन था। कौन मेरे निर्णय को पूरा करता?"

"मैं घर से इस बात के लिए तैयार होकर आया था। इसके पश्चात् मैं उसका

पीछा करता और उचित स्थान और समय देखकर उसका काम तमाम कर देता।”

नेता ने बड़ी गम्भीरता से कहा, “तनिक खिड़की खोलकर देखो कि कमल के साथ कौन-कौन हैं?”

नरोत्तम ने उठ खिड़की खोल दी और नीचे झाँकने लगा। खिड़की में से घाट स्पष्ट दिखाई देता था। गंगा के किनारे कमल द्विवेदी अपने अन्य पार्टी के सदस्यों से बातचीत कर रहा था। नरोत्तम ने नेता को यह बात सुनाई। नेता ने कहा, “देखो, वह अपनी जान की रक्षा के लिए पाँच आदमी अपने साथ लाया था। यदि तुम उसका पीछा करते तो स्वयं ही खतरे में फँस जाते और तुम्हें उनके पीछे भेजने का अर्थ था, तुम्हें प्राण-दण्ड देना।

“रात जिन चार सदस्यों ने कमल को निर्दोष कहा था वे सब उसके साथ यहाँ आये होंगे, इसमें किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं हो सकता था। यह छठा व्यक्ति कोई और है जो मेरी गणना में नहीं था। अब इन छः व्यक्तियों को मारने के लिए मुझे दस आदमी भेजने पड़ते। यह मैं उचित नहीं समझता।”

“मुझे भय है कि वे हमारी पार्टी को कहीं पुलिस के हवाले न कर दें।”

“जो होगा देखा जायेगा। अब तुम पार्टी के सब सदस्यों को सन्देश भेज दो कि गायघाट नं० १० पार्टी का मकान नहीं है।”

“तो क्या तुम इस मकान को छोड़ दोगे?”

“नहीं, अभी नहीं। इसमें भी रहस्य है।”

: ३ :

कमल जब धीरेन्द्र के मकान से बाहर निकला तो उसके साथी, जो उसकी प्रतीक्षा में बाहर खड़े बेचैन हो रहे थे, उसके चारों ओर आकर जमा हो गये। कमल का मुख विवर्ण हो रहा था, इससे सबने यह अनुमान लगाया कि कमल डर गया है। अविनाश द्विवेदी ने कमल की बाँह में बाँह डालकर कहा, “सुनाओ, क्या हुआ है?”

“कुछ भी नहीं। धीरेन्द्र मुझे समझाने का यत्न कर रहा था। जब मेरे विचार उसके विचारों के अनुकूल नहीं हुए तो उसने मुझे पार्टी से बाहर कर दिया है, वस।”

“तो तुम्हारा मुख पीला क्यों हो गया है?”

“इस कारण कि उसने मुझ पर बहुत भरोसा किया है। मुझे उसने कहा है कि वह मुझे इतना बेईमान नहीं समझता कि मैं तमाम पार्टी को दगा दूँगा। इस कारण मुझे पूर्ण स्वतन्त्रता है कि जहाँ चाहूँ जाऊँ। यदि नई पार्टी बनाना चाहूँ तो बना सकता हूँ परन्तु बनारस के अलावा और किसी स्थान पर।”

“यहाँ क्यों नहीं?”

“इसका एक ही अभिप्राय है कि दो संस्थाएँ एक स्थान में होने से परस्पर संघर्ष होने का भय है।”

“इस संघर्ष से हम नहीं डरते।”

“इसमें डरने का प्रश्न नहीं, प्रत्युत दोनों पार्टियों के हानि-लाभ का प्रश्न है। मैं समझता हूँ इसमें हमारा भी लाभ ही है। बनारस में कार्यक्षेत्र विस्तृत नहीं हो सकता।”

इस समय वे सब लोग चलकर गंगा किनारे पहुँच गये थे। वे एक नाव में सवार हो गये और उन्होंने उसको धारा में ले जाकर छोड़ दिया।

नाव में सब छः व्यक्ति थे—कमल, द्विवेदी तथा चार और। जब नाव धारा में चल रही थी तो कमल ने कहा, “आज हम एक नई पार्टी की नींव रख रहे हैं। हम सबके सब इस पार्टी के सदस्य होने का विचार प्रकट कर चुके हैं। मैं चाहता हूँ कि इस समय हम कसम खायें और सदस्य बनकर एक ऐसी संस्था को जन्म दें जो देश के कोने-कोने में फैल सके, हम अपने-आपको सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त कर सकें और देश को विदेशी जंजीरों से मुक्त करके यहाँ सर्व-साधारण के सुख की नींव डाल सकें।” यह सुनकर अविनाश द्विवेदी खिलखिलाकर हँस पड़ा।

गंगा के बीचोबीच नीचे की बहती हुई नाव किनारों के शोरगुल से दूर हो गई थी। इस निस्तब्धता में द्विवेदी की हँसी विचित्र प्रतीत हुई। नाव में बैठे सब द्विवेदी की ओर देखने लगे। कमल भी, जो अभी अपना कथन समाप्त नहीं कर सका था, चुप हो भाँचक-सा उसकी ओर देखने लगा। द्विवेदी ने इस प्रकार सबको अपनी ओर देखते हुए पाया तो कहने लगा, “देखो भैया कमल, लम्बे-चौड़े भाषण की आवश्यकता नहीं है। समस्त हिन्दू-धर्मावलम्बियों द्वारा पवित्र मानी हुई जाह्नवी की पीठ पर सवार होकर बहुत बड़े व्याख्यान देना अथवा सुनना व्यर्थ प्रतीत होता है। यहाँ तो हम कसम खायें और परस्पर साथ देने का वचन दें। वस, यही पर्याप्त है।”

कमल ने बात बीच में ही काटकर कहा, “द्विवेदीजी महाराज भावुकता में बहे जाते हैं। आखिर कवि जो हैं। कवि नास्तिक होते हुए भी भावुकता से वच नहीं सकते। परन्तु मैं तो यह मानता हूँ कि भावुकता सत्य से कोसों दूर है। हम बातचीत करने के लिए इस नाव में इस कारण आये हैं कि सुनने वाले यार-लोगों से दूर रहें, न कि इस कारण कि यह पवित्र स्थान है। बीसियों नगरों का मेल पेट में रखे हुए यह केवल मूर्खों की ही पूज्य हो सकती है। कुछ भी हो, सबसे पूर्व हमें कसम खानी चाहिए कि हम पार्टी की उन्नति और सलामती के लिए सदैव तन, मन और धन से प्रयत्नशील रहेंगे।” इतना कहकर कमल ने अपना दाहिना हाथ आधा उठाकर, जैसे महात्मा बुद्ध को उपदेश देने के समय की मूर्ति में देखा जाता है, कहना आरम्भ किया, “मैं अपनी मान-मर्यादा की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं इस पार्टी की सुरक्षा और उन्नति के लिए यत्न करता रहूँगा।”

इसके पश्चात् एक-एक कर सब लोगों ने ऐसे ही कसमें खाईं। अविनाश द्विवेदी ने सबसे अन्त में कहा, “मैं पवित्र काशी की भूमि में, माँ गंगा की गोद में बैठा हुआ

आकाश की ओर मुख किये हुए, सूर्य भगवान् की मनोहर छवि को साक्षी रखकर कहता हूँ कि मैं अपने साथियों से कभी दगा नहीं करूँगा ।”

उसकी शपथ सुनकर सब हँसने लगे । द्विवेदी ने अब गम्भीर भाव में सबकी ओर देखकर कहा, “कॉमरेड्स, इसमें हँसने की कौन-सी बात है ? जैसे तुममें से प्रत्येक ने एक ऐसी वस्तु की कसम खाई जो तुमको प्रिय है, इसी प्रकार प्रकृति की इस समय की छटा मुझे अति प्रिय है और मैं इसकी कसम अधिक विश्वास-योग्य समझता हूँ ।”

कमल ने कहा, “मिस्टर द्विवेदी, यह हँसी करने का अवसर नहीं है ।”

“भैया, मैंने मज़ाक नहीं किया । यथार्थ में प्रायः लोग सौगन्ध का अर्थ नहीं समझते । आप अपनी मान-मर्यादा को इतना प्रिय मानते हैं कि उसको खोना आपको दुःखदायी होता है । इस कारण आप उसकी सौगन्ध खाते हैं । उसकी सौगन्ध का अभिप्राय यह है कि कभी भी आप अपना कर्त्तव्य भूलने लगे तो आपको स्मरण हो आये कि ऐसा करने से आपकी अति प्रिय वस्तु खो जाने का डर है । इसी प्रकार मुझे प्रकृति की यह शोभा अति प्रिय है और मैं समझता हूँ कि इसकी याद मुझे पथ-भ्रष्ट नहीं होने देगी । जैसे वह मनुष्य जिसका भूल जाने का स्वभाव हो किसी काम को याद रखने के अभिप्राय से अपने रूमाल को गाँठ दे लेता है, उसी प्रकार मुझे प्रकृति का यह अथवा दूसरे ऐसे सुन्दर दृश्य पथभ्रष्ट होने से रोकेंगे ।”

कमल ने कुछ उद्विग्न होकर कहा, “मिस्टर द्विवेदी, तुम तो मूर्तिपूजा की ओर लुढ़कते चले जाते हो ।”

“कुछ भी कहो, मेरे लिए तो इससे बड़ा ज़ामिन नहीं मिलेगा ।”

कमल ने सौगन्ध की बात को छोड़कर पार्टी के उद्देश्यों की ओर ध्यान दिया । वह बोला, “पार्टी का उद्देश्य केवल एक है । वह है सबकुछ, जो पुराना है, नष्ट कर डालना और नवीन संसार के लिए मैदान साफ करना । यह मैं नहीं कह सकता कि नवीन संसार का क्या रूप होगा । यह उस संसार के निर्माताओं का काम होगा । हमारा काम है प्राचीन कूड़ा-कंकट को साफ करना । जब से मनुष्य ने पेड़ों पर रहना छोड़ा है तब से ही वह भूल पर भूल करता चला आ रहा है । पिछले काल के मनुष्यों में इतना साहस और बुद्धि नहीं थी कि वे बुराई को जड़ से उखाड़कर सुधार करें । वे सदैव जोड़ ही लगाते रहे हैं । जहाँ कहीं उन्हें दोष प्रतीत हुआ वहीं पर पलस्तर लगाकर मरम्मत कर दी । परिणाम यह है कि हमारे समाज की प्रारम्भिक त्रुटि, जो ऊपर से तो बहुत चिकनी-चुपड़ी प्रतीत होती है, खोखली करती जाती है । परिवार सम्बन्धी, समाज तथा देश सम्बन्धी, सब नियम मिथ्या आधार पर बने हैं और इनको जड़ से उखाड़ फेंकना हमारी पार्टी का काम है । जब यह हो जाएगा तब हम नई सृष्टि की रचना करने में सफल हो सकेंगे ।”

द्विवेदी ने, कमल को उक्त कथन बहुत उत्साह और जोश में कहते सुन,

तालियाँ बजानी आरम्भ कर दीं। कमल को इस पर भारी क्रोध चढ़ आया। वह बोला, “क्या तुम इस उद्देश्य से सहमत नहीं?”

“वाह! सहमत न होता तो तालियाँ क्यों बजाता? यदि तुम मेरे मत के विपरीत कहते तो मैं तुम्हें गंगाजी में न डुबो देता।”

“तो तुम मजाक नहीं कर रहे?”

“किञ्चित्मात्र भी नहीं।”

यद्यपि कमल को यह बात कुछ ठीक प्रतीत नहीं हुई तो भी इस समय बात समाप्त करने के आशय से आगे कहने लगा, “इस उद्देश्य से यदि कोई सहमत न हो तो हाथ खड़ा करे।”

किसी ने हाथ खड़ा नहीं किया। इससे कुछ उत्साहित हो कमल ने फिर कहना आरम्भ किया, “मेरी सम्मति में हमें अपना केन्द्र मिरजापुर में बनाना चाहिए। इस पर जिसको आपत्ति हो बोले।”

कोई नहीं बोला।

कमल ने कहा, “अब सबसे आवश्यक बात निर्णय के लिए उपस्थित कर रहा हूँ। वह है इस पार्टी का नाम रखना।”

द्विवेदी ने बिना एक क्षण की भी प्रतीक्षा किये कह दिया, “गंगा।” सब हँस पड़े।

द्विवेदी ने अब अत्यंत गम्भीर भाव धारण कर कहा, “मित्रो, आप हँसते क्यों हैं? क्या यह नाम उपयुक्त नहीं?”

कमल ने जोश में कहा, “नहीं।”

“क्यों नहीं?”

“गंगा की हमारी पार्टी से कुछ भी समानता नहीं।”

“है क्यों नहीं? गंगा संसार-भर का मैल पेट में डालकर उसे पवित्र करती जाती है। मैं चाहता हूँ कि हमारी पार्टी भी संसार-भर की बुराइयों को भस्म कर डाले।”

कमल ने नम्रता से कहा, “भैया अविनाश, कविपन को मन से कुछ देर के लिए दूर कर बात करो।”

द्विवेदी ने केवल यह उत्तर दिया, “मेरी राय में तो यही नाम उपयुक्त है। इस पार्टी का जिस स्थान पर जन्म हो रहा है उसकी स्मृति को हरा-भरा रखने के लिए यह नाम सर्वोत्तम है।”

उपस्थित युवकों में से एक ने कहा, “मेरी सम्मति में हमारी पार्टी का नाम ‘इण्डियन नियो-रिवोल्यूशनरी पार्टी’ रखा जाय।”

द्विवेदी के अतिरिक्त सबने इसको स्वीकार किया। अतएव यह नाम निश्चित हो गया।

कमल ने कहा, “एक काम करने को और रह गया है। नेता का चुनाव भी हो जाना चाहिये।”

नाम का प्रस्ताव करने वाले युवक ने फिर कहा, “हमारा नेता अविनाश द्विवेदी...।”

द्विवेदी एकदम खड़ा हो गया। उसके खड़े होने से नाव डगमगाने लगी। सब एकदम बोल उठे, “अरे—रे—रे—!”

द्विवेदी ने अपने-आपको स्थिर करते हुए कहा, “नहीं साहब, मैं नेता नहीं बनना चाहता। मुझे तो कभी कवि-सम्मेलन करना होगा तो प्रधान बना दीजियेगा। आपकी नियो-रिवोल्यूशनरी पार्टी का नेता मैं होने के सर्वथा अयोग्य हूँ। मेरी सम्मति में कमल भैया इसके सर्वथा योग्य हैं।”

यह प्रस्ताव, कि कमल नेता हो, स्वीकार हुआ। इस प्रकार कमल की उत्कट इच्छा पूर्ण हुई।

जब सब बातें तय हो गयीं तो द्विवेदी ने कहा, “इस पार्टी में सबसे पहला प्रस्ताव यह पास होना चाहिए कि इसमें किसी स्त्री को सम्मिलित नहीं किया जायेगा।”

एक युवक बोल उठा, “यदि यह हुआ तो कवि महाराज की कविता नीरस रह जायेगी।”

द्विवेदी ने इसका उत्तर देते हुए कहा, “संसार-भर की स्त्रियाँ जो जीवित हैं, कविता पार्टी के बाहर रहकर कर लूँगा।”

कमल ने कहा, “जब-जब कोई नया व्यक्ति सदस्य बनने आवेगा तो उस पर विचार करते समय यह भी देख लिया जाएगा कि वह स्त्री है अथवा पुरुष। कई बार स्त्री के शरीर में पुरुष-हृदय छुपा होता है और कभी पुरुष-रूप में स्त्री का निर्मल हृदय। इस कारण निश्चित नियम बनाना ठीक नहीं।”

: ४ :

धीरेन्द्र बनारस से कानपुर जा रहा था। सेकण्ड क्लास के डिब्बे में प्रवेश करते ही एक युवक पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह युवक बंगाल प्रान्त का रहने वाला, गठे हुए शरीर का था। एड़ी से चोटी तक स्फूर्ति से भरा हुआ था। एक क्षण के लिए भी निश्चल नहीं रह सकता था। उसने भी धीरेन्द्र को डिब्बे में आते देखा था। आते ही उसने चरण-स्पर्श कर धीरेन्द्र को नमस्कार किया और धीरेन्द्र ने पीठ पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

गाड़ी स्टेशन से चल पड़ी। धीरेन्द्र ने पूछा, “सतीश, किधर जा रहे हो?”

“किधर आप जा रहे हैं।”

“मैं ! भला किधर जा रहा हूँ ?”

“मिरजापुर। आपने ही तो बुलाया है।”

“मैंने ? और मिरजापुर को यह उलटा मार्ग क्यों ?”

“मैं इस गाड़ी में बैठ गया था। मुगलमराय पर दूसरी गाड़ी का मेल नहीं था। मैंने समझा इलाहाबाद से लौट आऊँगा।”

“खूब ! परन्तु मैंने तुम्हें कब बुलाया है ? क्या तुम्हें कोई चिट्ठी मिली है ?”

“हाँ।” इतना कह सतीश बाबू ने अपने सूटकेस को सीट के नीचे से निकालकर अपने घुटनों पर रखकर खोल डाला और चिट्ठी ढूँढ़ने लगा। एक चिट्ठी, जो मिरजापुर से भेजी गई थी, निकाल उसने धीरेन्द्र के हाथ में रख दी।

लिखा था :

‘वहुत शोक है कि आपमें से कोई भी यहाँ वार्षिक अधिवेशन पर नहीं पहुँच सका। इस अधिवेशन में पार्टी के काम में बहुत परिवर्तन हो गया है। मेरी अनुमति से कमल के नेतृत्व में एक पृथक् पार्टी बना दी गई है। उसके भी लक्ष्य वही होंगे जो हमारी मुख्य पार्टी के हैं। मैं चाहता हूँ कि तुममें से कोई मिरजापुर में कमल से मिल ले। मैं भी वहाँ पहुँचने का विचार रखता हूँ। यदि तुम या कोई और सदस्य ३० अप्रैल को मिरजापुर पहुँच जाए तो नवीन पार्टी के साथ तुम लोगों का सम्बन्ध निश्चित कर दिया जाये। यदि मैं वहाँ न पहुँच सका तो तुम स्वयं सब बातें तय कर लेना।

—धीरेन्द्र’

धीरेन्द्र यह चिट्ठी पढ़कर अवाक् रह गया। वह मन में सोचने लगा कि कमल ने यह चाल चलकर पार्टी के अस्त्र-शस्त्रों पर हाथ साफ करने का यत्न किया है। यह तो आकस्मिक घटना थी कि सतीश अपर इण्डिया एक्सप्रेस से यात्रा कर रहा था और धीरेन्द्र से उसकी भेंट हो गई। धीरेन्द्र ने चिट्ठी सतीश के हाथ में देकर कहा, “यह चिट्ठी मेरी लिखी हुई नहीं है, ये हस्ताक्षर भी मेरे नहीं हैं।”

अब हैरान होने की बारी सतीश की थी। वह घबराकर पूछने लगा, “क्या माजरा है ?”

“क्या तुमको मन्त्री नरोत्तम की चिट्ठी नहीं मिली ?”

“नहीं, अभी तक नहीं मिली।”

“तुम हारान बाबू से मिलकर चले हो ?”

“हाँ, यह तो है ही। बिना उनकी आज्ञा के कोई मैमनसिंह से बाहर नहीं जा सकता।”

“तो उन्होंने कुछ नहीं बताया ?”

“उन्होंने केवल यह कहा था कि नरोत्तम के वहाँ एक-दो दिन में पहुँचने का समाचार था।”

“ओह !”

“परन्तु हम सबने यही उचित समझा कि नियत तिथि को मिरजापुर पहुँचकर सारी परिस्थिति को समझ लेना चाहिए। आज तक जितने भी काम हुए हैं

आपके सुप्रबन्ध में नियमानुसार तथा समय पर सुरक्षा से हुए हैं। हारान बाबू का विचार है कि जितने भी लोग कारखाने में काम करते हैं वे सब प्रकार से छिपे रहने चाहियें। उनका इधर-उधर भागना ठीक नहीं। इस कारण उन्होंने मुझे भेजा है कि आपसे मिलकर सबकुछ निर्णय कर लिया जावे।”

धीरेन्द्र ने कहा, “यह चिट्ठी मैंने नहीं लिखी। प्रतीत होता है, कमल ने यह जालसाजी की है। नरोत्तम ने यह उचित समझा है कि स्वयं मिलकर वार्षिक अधिवेशन का वृत्तान्त आपको बतावे। उसने पत्र में लिखना उचित नहीं समझा। बात यह है कि कमल, द्विवेदी, मोहन, नरेन्द्र और कृष्ण लड़कर पार्टी से पृथक् हो गये हैं। उन्होंने पार्टी पृथक् बना ली है और उसका नाम ‘इण्डियन नियो-रिवोल्यूशनरी पार्टी’ रखा है। कुछ सभासद और भी बाहर से भर्ती किए गये हैं। हमारी पार्टी का सम्बन्ध उनसे किञ्चित्मात्र भी नहीं है। केवल हमारा जासूस द्विवेदी उनमें है। परन्तु यह प्रतीत होता है कि कमल ने यह चिट्ठी उससे भी चोरी लिखी है, अन्यथा इसका भी हमें पता चल जाता।”

“तो अब मुझे क्या करना चाहिए?”

“अभी तक तो तुम हमारी पार्टी के सदस्य हो। उसी के नियमों से बँधे हो। यदि तुम लोग भी पार्टी छोड़ना चाहते हो तो तुमको भी सूचना दे देनी चाहिए। उस समय मैं बताऊँगा कि क्या करना चाहिये। अभी तो परिस्थिति वैसी ही है जैसी पहले थी। तुम्हारे लिये नेता के अतिरिक्त किसी अन्य सदस्य की आज्ञा माननीय नहीं है। तुम्हारे स्थानीय नेता हारान बाबू हैं। मेरा विचार है कि इस नवीन परिस्थिति की सूचना उन्हें कर दो और फिर उनके कहने के अनुसार काम करो।”

सतीश इस नयी अवस्था से कुछ घबरा गया। वह कहने लगा, “हारान बाबू क्या कहेंगे, मैं नहीं जानता। परन्तु जब मैं इतनी दूर आया हूँ और आपसे भेंट भी हुई है तो क्या मैं जान सकता हूँ कि कमल और उसके साथी पार्टी से पृथक् क्यों हुए हैं?”

“हाँ, क्यों नहीं। यद्यपि नरोत्तम सब बात हारान बाबू को बता देगा, फिर भी मेरे तुमको बताने में कोई हानि नहीं है। कमल ने वार्षिक अधिवेशन में नेता तथा मन्त्री पर कुछ लांछन लगाये। कुछ अन्य सदस्यों ने उस पर स्त्री-सदस्याओं को दिक करने का लांछन लगाया। प्रश्न पार्टी के सम्मुख रखा गया और बहुमत से यह निर्णय हुआ कि मैं उसको दण्ड दूँ। मैंने उसको पार्टी से बाहर निकल जाने का दण्ड दिया है। तब उसने अपने साथियों को लेकर एक नई पार्टी बनाई है।”

“ऐसी परिस्थिति में तो उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये था।”

“अभी तक उसका व्यवहार ऐसा नहीं था कि उसे प्राण-दण्ड दिया जा सके; परन्तु वह झूठी चिट्ठी लिखना शायद उसे इस दण्ड का भागी बना रहा है। इस पर भी मैं विचार करूँगा। मैं पार्टी के सदस्यों के साथ पूरी सहानुभूति का व्यवहार

करना चाहता हूँ।”

इसके पश्चात् इधर-उधर की बातें होने लगीं। गाड़ी के इलाहाबाद पहुँचने पर सतीश उतर गया। जाते समय उसने कहा, “मैं कमल से मिलने का विचार नहीं रखता। अब सीधा वापस मैमनसिंह जाऊँगा।”

परन्तु ऐसा नहीं हो सका। कमल ने सतीश को स्टेशन पर ही मिलने का प्रबन्ध कर रखा था। गाड़ी के मिरजापुर पहुँचने पर भी सतीश नीचे नहीं उतरा। उसके पास वापसी टिकट था और वह सचमुच ही मैमनसिंह वापस जा रहा था। कमल स्वयं स्टेशन पर उपस्थित था। उसने निश्चय किया हुआ था कि उस दिन वह नव कलकत्ते से आने वाली गाड़ियों को स्टेशन पर ही देखेगा। अपर इण्डिया एक्सप्रेस का सम्बन्ध इलाहाबाद की इसी गाड़ी से था और यह दिन में सबसे प्रथम गाड़ी थी। कमल को पहली ही गाड़ी में कार्यसिद्धि हुई।

यद्यपि वह हारान बाबू के आने की आशा लगाये हुए था, इस पर भी हारान के दाहिने हाथ सतीश को देख निराश नहीं हुआ। परन्तु जब उसने देखा कि सतीश गाड़ी से नीचे उतरने के लिए उत्सुक प्रतीत नहीं होता तो वह गाड़ी में घुस आया और जोर से पुकारकर बोला, “हैलो, मि० सतीश।”

सतीश कमल को देख चौंका। उसका विचार था कि वह बिना दिखाई दिये निकल जायेगा। परन्तु कमल को डिव्वे में आता देखकर हैरान था कि क्या करे। कमल ने उसे सोचने का अवकाश भी नहीं दिया और कहने लगा, “भाई, मिरजापुर स्टेशन आ गया है।”

“अच्छा ! ओह, आप यहाँ कैसे आये हैं ?”

“तो तुम यहाँ नहीं आये क्या ?”

“नहीं।”

“तो किधर से आना हो रहा है ?”

“कानपुर से, नेता ने बुलाया था।”

“भेंट हुई ?”

“हाँ।”

कमल मुँह देखता रह गया। अब उसे विचार करने की आवश्यकता पड़ी। उसने जो जाली चिट्ठी भेजी थी वह उनको मिली या नहीं और अगर धीरेन्द्र ने उसका पार्टी से निकाला जाना प्रकट कर दिया होगा तो ? कुछ देर विचार कर बोला, “मैमनसिंह से कब चले थे ?”

“तीन दिन हुए। कल कानपुर पहुँचा था। आज जा रहा हूँ।”

“यह गाड़ी तो मुगलसराय रह जायेगी।”

“हाँ, वहाँ दिन-भर ठहरकर शाम को पंजाब मेल पकड़ लूँगा।”

“यहीं पर क्यों नहीं ठहर जाते ?”

“यहाँ क्या है?”

“सेवक का मकान है।”

“ओह ! आप मिरजापुर के रहने वाले हैं। परन्तु मेरा कार्यक्रम तो नेता ने बना दिया है। मैं वहीं ठहरेगा।”

जिस बात के जानने की कमल को उत्कट इच्छा लग रही थी वह पूरी नहीं हुई। समय कम था। अतएव उसने सतीश के साथ मुगलसराय तक जाने का निश्चय कर लिया। वह गाड़ी से उतरकर वहाँ का टिकट खरीदने चला गया।

सतीश को अब सम्पूर्ण परिस्थिति पर विचार करने का अवसर मिल गया। उसने मन में अपने व्यवहार को निश्चित कर लिया।

जब तक कमल टिकट लेकर वापस डिब्बे में आया सतीश सचेत हो गया था।

“मुझे तुमसे बहुत आवश्यक काम है। इस कारण मैंने यही उचित समझा कि तुम्हारे साथ मुगलसराय तक चलूँ।” कमल ने कहा।

“मुझसे काम है?”

“नेता ने तुम्हें मेरे विषय में सब बात बता दी होगी?”

“तुम्हारे विषय में ? कुछ भी नहीं।”

अब कमल ने धूरकर सतीश की ओर देखना आरम्भ किया। शायद वह उसके मन की बात जानने का यत्न कर रहा था। सतीश ने कमल की आँखों से आँखें मिलाकर पूछा, “क्यों, क्या देख रहे हो, कमल?”

“यही कि तुम मुझे बना रहे हो क्या?”

“तुम्हें ? नहीं, बनाने का प्रयोजन?”

“चलो कुछ भी हो। मैं स्वयं तुम्हें सबकुछ बता देना चाहता हूँ। मैंने पार्टी छोड़ दी है।”

“यह कैसे हो सकता है ? एक बार जो पार्टी का सदस्य बन गया वह इस जन्म में उससे बाहर नहीं हो सकता।”

“परन्तु मेरे विषय में हो गया है। मुझे तुम्हारे नेता ने निकाल दिया है, यद्यपि मैं छोड़ने को पहले ही तैयार था।”

“क्यों?”

“मेरा उनसे मतभेद हो गया था।”

“मतभेद ! किस बात में?”

“इस बात में कि तुम्हारे नेता पूँजीवाद में विश्वास रखते हैं। उन्होंने सिद्धान्त रूप में यह मान लिया है कि पार्टी के सदस्य अपना-अपना निजी काम कर सकते हैं।”

“और तुम ऐसा नहीं मानते?”

“बिल्कुल नहीं। मैं साम्यवादी समाज की श्रेष्ठता को मानता हूँ।”

सतीश गम्भीर विचार में पड़ गया। कुछ सोचकर उसने पूछा, “क्या नेता ने किसी को आजकल अपना काम करने की स्वीकृति दी है?”

अब कमल चकराया। यथार्थ में कई सदस्य पहले ही अपना काम करते थे। फिर भी उसने अपना आशय स्पष्ट करने के लिए कहा, “पूर्णमा, नरोत्तम की ब्रह्मिणी, सिनेमा में नाचने वाली का काम करती थी। उसको वहाँ से तीन हजार रुपया मिला। उस आय में से उसने केवल डेढ़ हजार रुपया पार्टी को दिया और जेब अपनी जेब में रख लिया है। यदि इसी प्रकार सबको स्वीकृति दे दी गई तो सब सदस्य अपना-अपना काम करने लगेंगे और पार्टी के काम की ओर कोई भी ध्यान न देगा।”

“परन्तु अभी तक तो तुम भी ऐसा ही करते थे। ज़रा यह तो बताओ कि अपने देहान्त के समय तुम्हारे पिता तुम्हारे लिए कितनी सम्पत्ति छोड़ गये हैं?”

“कीमत तो नहीं बता सकता। केवल दो मकान मिरजापुर में हैं। एक गाँव में तिहाई भाग भी है। कुछ आभूषण और बैंक में रुपया भी है।”

“इस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी तुम्हारे अतिरिक्त कोई और भी है?”

“नहीं।”

“तो यह सब सम्पत्ति तुमने पार्टी को दे देने का विचार उपस्थित किया होगा?”

“नहीं।”

“ओह ! अच्छा, फिर क्या हुआ?”

“देखो सतीश बाबू, हम लोग पार्टी के लिए डाके डालते हैं। अपनी जान हथेली पर लिये घूमते हैं परन्तु जो कुछ डाके में मिलता है सब पार्टी को दे देते हैं। उसमें से स्वयं कुछ भी नहीं रखते। परन्तु पूर्णमा को आय का पचास प्रतिशत रखने की स्वीकृति दे दी गई है।”

“ओ हो ! तो फिर आपने पार्टी को त्याग दिया?”

“नहीं। मैंने पार्टी के अधिवेशन में नेता के इस काम की घोर निन्दा की। इस पर पूर्णमा ने मेरी निन्दा की।”

सतीश ने अब अचम्भा प्रकट कहते हुए कहा, “आपकी ! और पूर्णमा ने ! भला सुनें तो उसने क्या कहा?”

“कहा क्या था। वही बात जो स्त्रियाँ प्रायः शत्रुओं के विपरीत कहा करती हैं। कहने लगी, मैं दुराचारी हूँ। मैं उसको पतित करने का यत्न करता रहा हूँ।”

“और यह सब असत्य था?”

“सत्य-असत्य की बात तो मनुष्य के अपने निजी विचारों पर निर्भर है। अपने विचारानुकूल न मैं कभी दुराचारी था और न अब हूँ।”

“तो तुमने उसे फाँसने का यत्न किया था ?”

“निःसन्देह ।”

“परन्तु वह नहीं फँसी ।”

“यह तुमने कैसे जाना ?”

“यदि फाँस गई होती तो शोर न मचाती, चुपचाप अपनी बात छिपाती ।”

“ठीक है । इस पर पार्टी ने मुझे दोषी ठहराया और नेता ने मुझे निकाल बाहर किया ।”

“तो अब ?”

“अब मैंने नई पार्टी बना ली है । इस समय तक उसके दस के लगभग सदस्य बन चुके हैं । द्विवेदी, मोहन, नरेन्द्र और कृष्ण तो पहली पार्टी को त्यागकर आये हैं । शेष बाहर से भर्ती किये हैं ।”

“अब इस पार्टी को तो तुमने सब सम्पत्ति दे डाली होगी ?”

“क्यों ?”

“इसलिए कि तुम साम्यवादी समाज के पक्षपाती हो न । और सब सदस्य जो इसमें सम्मिलित हैं वे भी अपनी सम्पत्ति जमा करा चुके होंगे ।”

“नहीं, अभी यह होना सम्भव नहीं ।”

“क्यों नहीं ? यदि तुम एक उदाहरण बन जाओ तो फिर सबके लिए सम्भव हो जावेगा । सबसे पूर्व अपनी पूरी सम्पत्ति पार्टी के कोष में दे डालो । फिर जो कुछ आप पैदा करो सब पार्टी को देना आरम्भ करो । यदि ऐसा करोगे तो तुम्हारी पार्टी बहुत धनी हो जायेगी और काम खूब सुभीते से चलेगा ।”

“मैं तो भले यह कर भी दूँ, परन्तु दूसरे सदस्यों के लिये यह सम्भव नहीं है । इनमें दो सदस्य तो खूब धनी हैं । वे अपनी पूर्ण सम्पत्ति देने पर कभी प्रस्तुत नहीं होंगे ।”

“तो उनको निकाल बाहर करो ।”

“बहुत कठिन है ।”

“खैर, जैसी इच्छा । मैंने तो केवल इस विचार से कहा था कि तुम साम्यवादी हो न । मुझसे क्या काम है ? मैं तो तुम्हारी पार्टी का सदस्य नहीं बन सकता ।”

“क्यों ?”

“मैं तुम जैसा साम्यवादी नहीं हूँ ।”

“तुम कैसे साम्यवादी हो ?”

“मैं उस समाज का निर्माण चाहता हूँ जहाँ व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज के अधीन हो । समाज का हानि-लाभ व्यक्तिगत हानि-लाभ से ऊँचा समझा जावे । समाज के लिए क्या अच्छा और क्या खराब है, इस बात का निर्णय समाज का बहुमत करे । अल्पमत या तो बहुमत के अनुकूल आचरण करे अन्यथा समाज को

छोड़ दे। विचार-प्रसार का अधिकार सबको हो परन्तु आचरण-स्वतन्त्रता बहुमत के अधीन हो।”

“इस प्रकार तो संसार की उन्नति रुक जावेगी।”

“तुम्हें संसार की चिन्ता क्यों लग रही है? तुम अपनी चिन्ता करो। संसार अथवा समाज अपनी आप सोच लेगा।”

“तुम्हारे विचार प्रकृति के नियम के विरुद्ध हैं।”

“होने दो। मैंने प्रकृति की गुलामी का वचन नहीं दिया है।”

“ऐसा समाज कितने काल तक स्थिर रह सकेगा? धीरे-धीरे सब बुद्धिमान लोग इसको छोड़कर बाहर हो जायेंगे।”

“यदि समाज के बाहर लोगों की संख्या अधिक हो जायगी तो समाज के भीतर अल्पमत रह जायगा और इस अल्पमत को बाहर वालों के अनुकूल आचरण कर लेना होगा। यही उन्नति का मार्ग है।”

“इस प्रकार तो सदैव गड़बड़ मचती रहेगी।”

“संघर्ष ही मनुष्य समाज का जीवन है। इसी से समाज उन्नति करता है।”

कमल इस वाक्युद्ध से चकराने लगा था। वह इन बातों के जंगल में अपना प्रयोजन भूल रहा था। इस कारण वह कुछ काल विचार में लीन हो गया। अब पुनः बात करने लगा। उसने कहा, “मुझे सभासदों की इतनी आवश्यकता नहीं। मुझे तो अस्त्र-शस्त्रों की आवश्यकता है। हारान बाबू से मैं इस बात में सहायता चाहता हूँ।”

“हमने अस्त्र-शस्त्रों की दुकान तो खोली नहीं जो आपके पास बेचने के लिये तैयार हो जावें।”

“बेचने के लिये? खरीदने को क्या मेरे पास दाम नहीं हैं? मैं तो आपके कारखाने पर अपना अधिकार समझता हूँ। इस कारखाने में जो रुपया लग रहा है उसके एकत्र करने में मेरा भी भाग है। प्रायः जितने भी डाके डाले गये हैं सबमें मैं सम्मिलित था।”

“तुम्हारा कहना सर्वथा सत्य है, परन्तु इसके लिए मेरे अथवा हारान बाबू से बातचीत का कुछ भी लाभ नहीं होगा। इन बातों का अधिकार नेता को है। उनसे मिलो तो शायद तुम्हारा कुछ काम बन सके।”

“तो तुम लोग इसमें मेरी कुछ सहायता नहीं कर सकते?”

“मैंने तुमको अभी बताया है कि मैं समाज को व्यक्ति से ऊपर मानता हूँ। यदि मेरी सम्मति तुम्हारे पक्ष में हो, तो भी तुमको बिना पार्टी की स्वीकृति के कुछ लाभ नहीं हो सकता। पार्टी ने इस विषय में सर्व अधिकार नेता को दे रखे हैं।”

“देखो, मैं तुम्हारे सम्मुख एक प्रस्ताव रखता हूँ। यह प्रस्ताव तुम हारान बाबू के सामने रख देना। वह चाहें तो नेता की स्वीकृति ले लें। प्रस्ताव यह है कि

हमारी पार्टी को वह सशस्त्र कर दें और हमारी पार्टी भी कारखाने को आर्थिक सहायता देती रहेगी।”

“कह दूंगा, परन्तु इसकी स्वीकृति की आशा नहीं है।”

“आशा क्यों नहीं?”

“इस कारण कि तुम्हारी और हमारी पार्टी का लक्ष्य एक नहीं है।”

निराशा

वार्षिक अधिवेशन में कमल और उसके साथियों की उद्विग्नता का पूर्णमा के मन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। वह क्रांतिकारी दल की बहुत दृढ़ भक्तिनी थी। इस अधिवेशन ने उसकी भक्ति की जड़ को हिला डाला। वह इस बात का अनुमान भी नहीं लगा सकती थी कि एक आदमी इतनी सीधी-सी बात को समझने में भी असमर्थ है कि पार्टी के दूसरे सदस्यों पर अत्याचार नहीं करना चाहिये। सबसे अधिक अखरने वाली बात यह थी कि कमल ने बिना प्रमाण के तपस्विनी और उस पर नेता को वासना के जाल में फँसाने का झूठा लांछन लगाया था। यह सत्य है कि वह हिन्दू स्त्रियों की भाँति घर के भीतर बैठकर अपना जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं करती थी। उसे पुरुषों तथा लड़कों की संगति में जाने, बैठने और घूमने में संकोच नहीं होता था। वह अपने-आपको इतना ही स्वतन्त्र समझती थी जितना कि कोई भी यूरोपियन महिला। इस पर भी वह अपने सती-धर्म पर दृढ़ थी। इस बात में वह हिन्दू समाज के विचारों को सर्वश्रेष्ठ समझती थी। कमल ने अपनी चिट्ठी-पत्रों में उसे इस विचार से डिगाने का भरसक प्रयत्न किया था। उसने अनेक युक्तियाँ देकर उसे सती-धर्म पर दृढ़ रहने की मूर्खता, व्यर्थता और हानियाँ बताने की चेष्टा की थी, परन्तु इसका पूर्णमा के मन पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ था। यह एक बात थी जिसमें वह यूरोपियन विचार या यों कहो कि आधुनिक प्रवृत्ति के साथ मेल करना पसन्द नहीं करती थी।

इसका कारण उसके हिन्दू संस्कार थे अथवा कुछ और, इसकी विवेचना व्यर्थ है। हाँ, यह ठीक है कि वह मधुसूदन से प्रेम करने लगी थी। मन में उसे अपना पति मान चुकी थी। अब वह किसी अन्य को उस स्थान को ग्रहण करने की स्वीकृति नहीं दे सकती थी।

ऐसी अवस्था में उसके प्रिय विचार को बलपूर्वक बदलने का यत्न करने वाले के लिये उसके मन में घृणा उत्पन्न होना स्वाभाविक था। साथ ही जब उसने यह देखा कि क्रांतिकारी दल में सबसे अग्रसर होकर भाग लेने वाला ऐसा कहता है तो पार्टी

के कार्यक्रम पर भी उसको संशय होने लगा था।

अधिवेशन के कई दिन पश्चात् तक भी अपने मन में मची हुई इस हलचल को वह दूर नहीं कर सकी। बार-बार उसके मन में यह विचार उठता था कि कहीं पार्टी के सिद्धान्तों में ही तो गलती नहीं है। एक बात तो रह-रहकर उसके मन में आती थी कि पार्टी की सफलता अर्थात् देश का स्वतंत्र होना तब तक असम्भव है जब तक लोग चरित्रवान नहीं बनते। मधुसूदन ने उसे एक बार कहा था कि देश की पराधीनता का कारण अंग्रेजों की जबरदस्ती नहीं, प्रत्युत् हमारी चरित्रहीनता है। कमल जैसे लोगों के हाथ में देश का नेतृत्व देना कैसे देश के लिये उपकारी हो सकता है। यह निर्णय उसके मन में पक्का हो गया था कि पार्टी के सदस्यों में चरित्र उत्पन्न करना अत्यावश्यक है।

वार्षिक अधिवेशन के कुछ दिन बाद की बात है। एक दिन राय साहब कुंजबिहारी के विषय का एक समाचार वृत्त-पत्रों में छपा। समाचार तो केवल इतना ही था कि राय साहब कुंजबिहारी ने अपनी राय साहब की पदवी सरकार को वापस कर दी थी। इस छोटे से समाचार ने पूर्णिमा के मन में उथल-पुथल मचा दी। उसका विचार था कि राय साहब के मन से कलक्टर के बँगले की घटना अभी तक मिटी नहीं है और इस पदवी के त्याग में उनके मन पर इस घटना के प्रभाव का भारी भाग है।

पूर्णिमा सोचती थी कि यह भीरुता है या बहादुरी। यदि उनके मन में यह डर समा गया है कि राय साहब होने से वह सदैव क्रांतिकारी दल से मारे जाने के भय में हैं तो सत्य ही वह कायर हैं। हाँ, यदि उनके मन में यह विश्वास हो गया है कि सरकार से सहयोग करना और सरकार की दी हुई पदवी का धारण करना एक भारतीय के लिये उचित नहीं तो बात दूसरी है। इसे कायरता नहीं कह सकते। कुछ अंशों में यह बहादुरी कही जा सकती है। वह मन में निर्णय नहीं कर सकी थी कि राय साहब के इस पद-त्याग को वह क्या समझे।

वह अभी इसी उधेड़बुन में लगी हुई थी कि एक दिन उसे एक रजिस्टर्ड चिट्ठी मिली। चिट्ठी में एक हजार रुपये के नोट थे। चिट्ठी भेजने वाले राय साहब थे और नोटों के साथ यह संदेश भी था :

“प्रिय पूर्णिमा !

‘कल मधुसूदन से यह जानकर मुझे अत्यन्त खेद हुआ कि तुमको रुपये की सख्त आवश्यकता होने के कारण फिल्म कम्पनी में काम करना पड़ा था। उसकी बातों से कुछ ऐसा भी प्रतीत होता था कि शायद तुम्हें कुछ देर तक और भी काम करना पड़े। तुम्हारी आवश्यकता को मैं नहीं जानता और न ही मधुसूदन ने वह बताई है। जैसा कि मेरा अनुमान है तुम्हारा मधुसूदन से विवाह होने वाला है, इसलिए मैं तुम्हारा फिल्म कम्पनी में काम करना उचित नहीं समझता। मधुसूदन के पिता

को भी इसमें भारी आपत्ति है।

“मधुसूदन से मेरा विशेष सम्बन्ध है। मेरी कोई सन्तान नहीं और मैंने उसके पढ़ाने इत्यादि का प्रबन्ध ऐसे ही किया था जैसे मैं अपने लड़के का, यदि कोई होता तो, करता। इस कारण बहुत विचारोपरान्त मैंने यह रूपया तुम्हें भेजा है। मेरा विचार इतना ही रूपया प्रतिमास भेजने का है। तुम यह स्वीकार कर लेना क्योंकि यह मधुसूदन का भेजा हुआ समझना। आशा है, इससे तुम्हारी आवश्यकता पूर्ण हो जायगी और फिल्म कम्पनी में पुनः काम करने की तुम्हें आवश्यकता नहीं रहेगी।

“मैं कला को बुरा नहीं समझता, परन्तु इसका प्रदर्शन रुपये के बदले में और वह भी एक हिन्दू महिला द्वारा किया जाना, बुरा समझता हूँ। संगीत आत्मोन्नति का साधन है, परन्तु जब वह बाज़ार में टके-टके पर बिकने लगे तो प्रायः मनुष्य के पतन का कारण हो जाता है। शेष फिर लिखूंगा।

शुभाकांक्षी, कुंजबिहारी”

चिट्ठी में सेठ साहब ने अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा था। उनके पदवी-त्याग का उल्लेख तक नहीं था। वह जानते थे कि पद-त्याग से पूर्णिमा को प्रमन्नता होगी, परन्तु उन्होंने इसे ऐसे विस्मरण कर दिया मानो केवल पुराने कपड़े उतार दिये हों।

पूर्णिमा सोचने लगी कि सम्भव है वह भेंट सेठ साहब के अपने प्रेम का परिणाम हो, परन्तु उनमें और कमल में कितना अन्तर है। एक ओर तो सेठ साहब हैं जो उसे प्रसन्न करना चाहते हैं और उसके मन को किसी प्रकार की ठेस पहुँचाना नहीं चाहते। दूसरी ओर कमल है जो उसके प्रेम को बलपूर्वक प्राप्त करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है; वह देश, समाज और जाति में सुधार करने का दावा करता है। विपरीत उसके सेठ साहब तो केवल मानव-संसार में अपने-आपको एक बिन्दुमात्र मानते हैं। सम्भव है यह केवल बाहरी लिफाफेवाजी हो और कमल का व्यवहार मन, वचन और कर्म में एकता प्रकट करता हो। जो कुछ भी हो, सेठ साहब का व्यवहार निश्चित रूप से दूसरों के सुख और शान्ति को बढ़ाता है।

इस समय पूर्णिमा का ध्यान मधुसूदन की ओर भी गया। मधुसूदन में एक दैवी आकर्षण था। उस दिन की बात उसे बार-बार याद आती थी जब वह एक डंडा हाथ में लेकर कमल से भेंट करने अकेला चला गया था। मधुसूदन जानता था कि कमल के हाथ में पिस्तौल है। इस पर भी उसके मुख पर भय अथवा चिन्ता का लेशमात्र भी नहीं था। वह ऐसे ही चला गया था मानो बाज़ार से कुछ खरीदने जा रहा हो। दोनों की भेंट भी पूर्णिमा ने अपनी आँखों देखी थी। जब कमल ने पूछा, ‘आप यहाँ किस मतलब से आये हैं?’ तो कितना स्वाभाविक उत्तर था, ‘तुम्हें क्यों बताऊँ?’ और फिर इतनी सतर्कता कि पिस्तौल वाला हाथ जेब से निकला कि डंडा चला। कमल, जो उनकी पार्टी में बहुत ही चुस्त और बहादुर समझा जाता था,

अपनी पिस्तौल तक छोड़कर भाग गया था।

मधुसूदन के विषय में यह और ऐसी बीसियों ही अन्य स्मृतियाँ थीं जो पूर्णिमा के मन में गुदगुदी उत्पन्न करती थीं। इसके अतिरिक्त सज्जनता और चरित्र में चट्टान की भाँति दृढ़ संसार में विरले ही मिलते हैं।

पूर्णिमा इन विचारों में मग्न थी कि नरोत्तम कहीं बाहर से आया। उसने पूर्णिमा के सम्मुख बहुत-से एक-एक सौ रुपये के नोट पड़े देखे। उसने प्रश्नभरी दृष्टि से पूर्णिमा की ओर देखा। पूर्णिमा ने सेठ साहब की चिट्ठी भाई के हाथ में दे दी।

चिट्ठी पढ़कर नरोत्तम ने पूछा, “माँ को बताया है?”

“नहीं, अभी नहीं।”

“हाँ, तो दिखा दो।”

“भैया, तुम ही दिखा दो न।” इतना कहते-कहते पूर्णिमा के गालों पर लाली छा गयी।

नरोत्तम चिट्ठी लेकर माँ के पास चला गया। अब विचार होने लगा कि क्या किया जाय। रुपया वापस कर दिया जाय अथवा नहीं।

इसमें सन्देह नहीं था कि रुपये की आवश्यकता पार्टी को अभी भी थी। जिस कारण से पूर्णिमा ने सिनेमा में नौकरी की थी वह कारण तो बना ही था। एक और फिल्म कम्पनी से उसे निमंत्रण भी आ चुका था और वह इसी सम्बन्ध में कलकत्ते जाने वाली थी। अब इस पत्र ने नई उलझन उत्पन्न कर दी थी। नरोत्तम की माँ और नरोत्तम दोनों पूर्णिमा का मधुसूदन से विवाह हो जाना मन से चाहते थे। वे तो इस विवाह के लिये तब भी तैयार थे जब मधुसूदन पर सेठ साहब की कृपा-दृष्टि का उन्हें ज्ञान नहीं था। उन्होंने मधुसूदन को एक निर्धन पुजारी का लड़का जानते हुए चुना था। अब ऐसा प्रतीत होना था कि सेठ साहब अपनी सम्पत्ति का कुछ भाग अवश्य मधुसूदन को देंगे। इस परिस्थिति में कोई ऐसी बात, जिससे मधुसूदन को आर्थिक हानि की सम्भावना हो, वे नहीं कर सकते थे।

पूर्णिमा का विचार था कि वह यह रुपया पार्टी के कोष के लिये स्वीकार नहीं कर सकती। देने वाले को पार्टी की नीति का ज्ञान होना चाहिये। अपने लिये वह इसलिये स्वीकार नहीं कर सकती क्योंकि उसे आवश्यकता नहीं। यदि मधुसूदन को सेठ साहब देना चाहते हैं तो दें। उसे वह यहाँ क्यों भेजते हैं।

नरोत्तम की राय थी कि यदि सेठ साहब यह रुपया मासिक भेजते रहें तो पार्टी के बहुत-से काम सफलतापूर्वक हो सकेंगे। सेठ साहब को पार्टी के विषय में बताने की वह जरूरत नहीं समझता था। वे अपने विचारानुकूल कोई खराब काम तो करते नहीं। यदि किसी कारण से यह भेद खुल भी गया और सेठ साहब को इसमें आपत्ति हुई तो वे कह देंगे कि उनको पहले जान लेना चाहिये था। रुपया

भेजते समय उन्हें यह पूछना चाहिए था कि किस काम के लिये धन की आवश्यकता है।

पूर्णिमा का विचार इसके विपरीत था। वह कहती थी कि रेत पर भीत बनाने से वह कब तक खड़ी रह सकती है। यदि बाद में सेठ साहब को ज्ञात हुआ कि उनके रुपये से बम बना-बनाकर उनके इष्ट मित्रों पर ही चलाये जाते रहे हैं तो उनके मन में कितना दुःख और क्लेश होगा। वह अकारण उनको दुःखी करना नहीं चाहती थी। यदि पार्टी के नेता का विचार हो कि सेठ साहब को कम-से-कम कुछ ज्ञान पार्टी के कार्यक्रम का कराया जा सकता है तो उसको मधुसूदन से मिलकर नेठ साहब से बात कर लेनी चाहिये। वह इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहती थी।

इस प्रकार यह बहस कई दिन तक चलती रही। धीरेन्द्र बनारस से बाहर चला गया था। यदि वह वहाँ होता तो कोई तदबीर निकाली जा सकती थी। अन्त में यह निश्चय हुआ कि पूर्णिमा स्वयं जाकर मधुसूदन से सलाह कर रुपया वापस कर दे, और पार्टी के अतिरिक्त सब बात वर्णन कर दे। उसकी माँ ने यह भी नमझाया कि जो भी बात की जाय नम्रता और सभ्यता से होनी चाहिए। मीठा बोलने में कुछ व्यय नहीं होता परन्तु इससे संसार में दुःख की मात्रा को बहुत कम किया जा सकता है।

: २ :

यद्यपि श्यामाचरण को सेठ साहब से बात करते समय कुछ उत्तर नहीं बन आया था, फिर भी उसको पूर्णिमा से मधुसूदन का विवाह होना भला प्रतीत नहीं होता था। जब तक पूर्णिमा उसके पास रही वह कुछ नहीं कह सका। वह सेठ साहब को नाराज भी नहीं करना चाहता था। इस कारण उस समय तो उसने चुप रहना ही उचित समझा।

फिल्म कम्पनी में पूर्णिमा का काम समाप्त हुआ तो वह बनारस लौट गयी। अब श्यामाचरण के मन में विवाह की समस्या सुलझाने की इच्छा हुई। सबसे पहले उसके मन में यह विचार आया कि किसी ब्राह्मण-कन्या को ढूँढ़ना चाहिये जिसके माता-पिता उसे मधुसूदन को देने के लिए तैयार हो सकें। बाद में वह मधुसूदन को राजी करने का यत्न करेगा।

मधुसूदन की एक मौसी जिला फैजाबाद के एक गाँव में रहती थी। वह मधुसूदन की माँ से छोटी थी। उसके विवाह के समय श्यामाचरण एक बार उसे उसके घर मिलने गया था। बाद में परस्पर कोई सम्पर्क नहीं रहा। अब श्यामाचरण को उनकी आवश्यकता अनुभव हुई। एक दिन श्यामाचरण मन्दिर का काम मधुसूदन को सौंप अयोध्याजी स्नान करने के बहाने से घर से चला तो सीधे अपने साढ़ू के घर जा पहुँचा। वह बेचारा बहुत निर्धन, मामूली-सी भूमि पर काश्त कर निर्वाह करता था। उसके तीन लड़के और दो लड़कियाँ थीं। लड़के तो

दूसरे-तीसरे दर्जे तक शिक्षा प्राप्त कर गये थे और लड़कियाँ सर्वथा अनपढ़ थीं। उसकी आर्थिक दशा ऐसी थी कि वह बच्चों को अधिक शिक्षा देने की सामर्थ्य ही नहीं रखता था।

एक दिन एक ब्राह्मण देवता को हाथ में एक गठरी लटकाये द्वार पर पहुँचा देख लड़के भौचक्के हो गए। बड़ा लड़का, जिसकी आयु पन्द्रह वर्ष की प्रतीत होती थी, मकान के दरवाजे में बैठा रस्सी बट रहा था। श्यामाचरण लड़के के मुख को ध्यान से देख रहा था ताकि पहचानने का यत्न करे कि वह माँ के ऊपर आया है अथवा नहीं। उसकी माँ की आकृति उसे भली-भाँति याद थी। परन्तु माँ के साथ कोई समानता न पाकर उसने पूछकर निर्णय करना चाहा और बोला, “क्यों भाई, पं० देवकी मिश्र का मकान यही है?”

“हाँ, क्या बात है?”

“तुम देवकी मिश्र के लड़के हो? उनका बड़ा लड़का इतना बड़ा ही होना चाहिये।”

“हाँ।”

“तुम्हारे पिता कहाँ हैं?”

“फैजाबाद काम से गये हैं। शाम तक लौटेंगे। आप कहाँ से आये हैं?”

श्यामाचरण ने कहा, “भाई, तनिक खाट तो डलवा दो। बड़ी तेज धूप है।”

लड़के ने तनिक सशंक होकर पूछा, “आप कौन हैं? क्या काम है आपको?”

दरवाजे पर एक नीम का पेड़ था। दरवाजे के साथ एक टूटी-सी बाँस की खटिया खड़ी थी। श्यामाचरण ने एक हाथ में गठरी लटकाये रखी और दूसरे हाथ से खाट को घसीटकर नीम की छाया में डाल ली। गठरी को खाट पर रखकर उस पर बैठ गया। जूता उतारा और गठरी में से एक अंगोछा निकाल पाँव झाड़ डाले।

इतने निस्संकोच भाव से नये आने वाले को बैठता देख लड़का विचारमग्न-सा उसका मुख देखता रहा। इतने में दूसरा लड़का मकान के भीतर से बाहर आया। वह भी अपने भाई के पास खड़ा हो भाई का-मुख देखने लगा। श्यामाचरण ने इतमीनान से बैठकर कहा, “यह तुम्हारा भाई है? हाँ, तो क्या नाम है तुम्हारा?”

अब बड़े लड़के ने कुछ हौसला कर पूछा, “आप कहाँ से आये हैं और दादा से क्या काम है?”

अब तक श्यामाचरण आराम से खाट पर बैठ चुका था। पूछने लगा, “तुम्हारी माँ घर पर है?”

अब दोनों भाई एक-दूसरे का मुख देखने लगे। आखिर इतना बताने में कुछ हानि न समझ बड़ा बोला, “हाँ।”

“तो बेटा, तनिक उनके पास यह मेरी गठरी ले जाओ और उनको कहना कि

इलाहाबाद से उनके जीजा आये हैं।”

लड़का गठरी पकड़ने में संकोच करता रहा, परन्तु श्यामाचरण ने उसकी पीठ पर हाथ फेरकर उसे इतने काम के लिये राजी कर लिया। शायद श्यामाचरण की बातों का उस पर कुछ प्रभाव न पड़ता यदि गठरी में फल और मिठाई की झलक उसे न मिलती।

गठरी भीतर गई। श्यामाचरण की साली ने किवाड़ की ओट में खड़े होकर पहले पहचाना और फिर लड़कों को सांत्वना देकर उन्हें घर के भीतर बुलवा लिया।

“वाह जीजाजी, आज आपको हमारी सुध हुई सो परमात्मा का लाख-लाख धन्यवाद है। जब से वहिन का देहान्त हुआ आपने तो मिलना और चिट्ठी-पत्री भी बन्द कर दी थी। यह आपने इतनी अधिक मिठाई वगैरह लाने का कष्ट क्यों किया? हम गरीबों के यहाँ तो आप ऐसे भी आ जाते तो आपकी बहुत कृपा होती। रमेश के पिता आज फैजावाद गये हैं। हमारे पड़ोस में कुछ दिन हुए दंगा हो गया था। पुलिस वाले गवाह बनाकर ले गये हैं। सुनाइये, आप तो अच्छी तरह हैं? मधुसूदन का क्या हाल है? अब तो बड़ा हो गया होगा?”

श्यामाचरण ने भी बातों-बातों में अपने वहाँ पहुँचने का कारण वर्णन कर दिया। उसने कहा, “अयोध्याजी स्नान करने आया था। विचार आया कि आप लोगों को देख चलूँ। मधुसूदन की माँ के देहान्त के पश्चात् तो घर से निकलने को चित्त ही नहीं करता था। अब मधुसूदन बड़ा हुआ है। संस्कृत, अंग्रेजी दोनों पढ़ ली हैं। चौदह दर्जा तक पढ़ाई की है। अब चित्त को कुछ शान्ति हुई है और घर से बाहर पाँव रखने का अवसर मिला है। आप लोगों के अतिरिक्त मेरा कोई और सम्बन्धी भी नहीं है। अब आप ही को मधुसूदन के विवाह आदि का प्रबन्ध करना चाहिये। घर में कोई स्त्री होती तब भी कुछ बात थी। किसी स्त्री के न होने से अब तुम्हें ही उसकी माँ का भार सिर पर लेना होगा।”

“लड़के की आयु पच्चीस वर्ष की हो गई होगी और इतनी देर तक उसका विवाह नहीं किया! हमारे रमेश के लिये तो अभी से नाते आने लगे हैं और वह अभी पन्द्रह वर्ष से अधिक का नहीं है।”

“शहर की बात दूसरी है और देहात की दूसरी। वहाँ तो छोटी आयु में विवाह अच्छा नहीं समझा जाता।”

उस दिन श्यामाचरण वहीं रहा। शाम को उसका साढ़ आया तो फिर मधुसूदन के विवाह की चर्चा चली। निर्धन सम्बन्धी धनी सम्बन्धियों की भरसक सेवा-सुश्रूपा करते हैं। यद्यपि श्यामाचरण धनी नहीं कहा जा सकता था, फिर भी देवकी मिश्र के सम्मुख वह कुबेर के समान था। मिश्रजी ने अपने और पड़ोस के गाँव के कितने रिश्ते बताये। बहुत विचारोपरान्त पड़ोस के एक ब्राह्मण बी लड़की

का चुनाव किया गया। दूसरे दिन मधुसूदन की मौसी लड़की को बहाने से अपने घर बुला लाई। श्यामाचरण ने उसे पसन्द कर लिया। लड़की की आयु बारह-तेरह वर्ष की थी। पक्का गन्दुमी रंग, मोटी-मोटी आँखें और नाक, बाहर को निकले हुए होंठ और छोटी-सी ठुड्डी विशेष वर्णन के योग्य थी। लड़की के बाप से बातचीत होने लगी। श्यामाचरण ने कहा, “हमें दहेज इत्यादि कुछ नहीं चाहिए। लड़की चाहिए, केवल लड़की।”

इलाहाबाद जैसे नगर के एक मन्दिर के पुजारी को एक देहात की लड़की के लिये मिन्नत करते देख लड़की के पिता के मन में सन्देह हुआ कि दाल में कुछ काला है। उसने समझा, लड़का अवश्य अपाहिज होगा, अन्यथा पुजारी महाराज को दहेज के बिना ही विवाह की न सूझती। लड़की के पिता ने कहा, “मैं लड़का देखने इलाहाबाद आऊँगा।”

श्यामाचरण ने प्रसन्नता से कहा, “हाँ-हाँ ! अभी मेरे साथ चल सकते हैं।”
“नहीं, मैं दो-तीन दिन में आऊँगा और यदि काम पसन्द का हुआ तो नारियल-छुहारा उसी समय दे आऊँगा। परन्तु बारात इत्यादि कितनी बड़ी होगी ?”
“इसकी आप चिन्ता न करें। यह आपकी इच्छानुकूल हो जावेगा।”

लड़की का पिता इस आकस्मिक सौभाग्य के उदय होने से बहुत आनन्दित हुआ। फिर भी उसके मन में कुछ सन्देह बना ही रहा। श्यामाचरण तो उसी दिन लौट आया और लड़की का पिता शुभ मुहूर्त निकलवा अपने भाई-बन्धुओं में से चार को साथ लेकर एक दिन इलाहाबाद आ धमका।

मधुसूदन अपना संगीत का अभ्यास करके उठा ही था कि श्यामाचरण पाँच देहाती ब्राह्मणों को साथ लिये उसके कमरे में आ पहुँचा। श्यामाचरण ने आवाज दी, “बेटा !”

“हाँ पिताजी !” मधुसूदन ने तम्बूरा एक तरफ रख दिया और करताल को मेज पर रखकर खड़ा हो गया।

श्यामाचरण ने कहा, “बेटा, ये लोग तेरे मौसिया गाँव से आये हैं।”

“आइये, भगवन् ! पधारिये।” इतना कह मधुसूदन ने सबको कमरे में फर्श पर सम्मान से आसन दिया। वे सब लोग मधुसूदन की आयु, मुख का सौन्दर्य और तेज, और शरीर का गठन और वाणी की मिठास देखकर दंग रह गये। उनमें से एक ने पूछा, “बेटा, तुम्हारा क्या नाम है ?”

“पिताजी ने मेरा नाम मधुसूदन रख दिया है।”

मेहमानों में से एक कुछ हँसोड़ प्रकृति का था। बोला, “पिताजी ने ?”

“हाँ महाराज, माताजी का तो देहान्त ही हो गया था। बस, माता-पिता दोनों का स्थान पिताजी ने ही ले लिया था।”

सबके मुख गम्भीर हो गये। मधुसूदन ने उत्सुकता से पिताजी की ओर देख-

कर कहा, "पिताजी, मेरे मौसा कौन हैं?"

"बेटा, वह तो नहीं आये। ये लोग उन्हीं के गाँव के हैं। ये तुम्हें देखने आए हैं।"

"मुझे देखने?" मधुसूदन का मस्तक ठनका। उसे कुछ सन्देह हो गया कि इन लोगों के आने में उसके पिता का हाथ अवश्य है। कुछ दिन हुए जब वह दो दिन के लिए कहीं बाहर गये थे, अवश्य इसी प्रबन्ध के लिए गये होंगे। परन्तु वह क्या करे? यह तो झगड़े की बात होगी। इस पर भी उसे अपना व्यवहार निर्धारित करते देर न लगी। उसने मन में कहा कि वह पूर्णिमा के अतिरिक्त किसी से विवाह नहीं कर सकता। इतना सोच वह उठ खड़ा हुआ। पिता ने अचम्भे से पूछा, "क्यों, कहीं जा रहे हो?"

मधुसूदन ने रूखेपन से उत्तर दिया, "जी नहीं, मैं अपने-आपको इनको दिखा रहा हूँ।"

पिता ने विस्मय में पूछा, "दिखा रहे हो?"

"जी हाँ। ये लोग मुझे देखने आये हैं न! जैसे भेड़-बकरी को खरीदने के समय देखा जाता है वैसे ही ये मुझे देखने आये हैं तो भली-भाँति देख लें और यदि इनका विचार हो तो घोड़े की भाँति भागकर दिखा दूँ ताकि इनको प्रतीत हो जाय कि लंगड़ा तो नहीं हूँ।"

श्यामाचरण को मधुसूदन के उजड़पन पर क्रोध तो बहुत आया परन्तु भीतर-ही-भीतर उसे पी गया। हँसते हुए बोला, "बेटा, यह बात नहीं। भला कौन है जो तुम्हें लंगड़ा-लूला समझेगा? मेरा देखने से अभिप्राय था, तुम्हें मिलने आये हैं।"

आये हुआँ में से एक ने श्यामाचरण के कहने का समर्थन करते हुए कहा, "हाँ-हाँ! बेटा, तुमसे मिलने ही आए हैं। बैठो, तनिक एक-दो बातें तुमसे पूछेंगे। हम देहातियों की बातों से नाराज़ न होना। हम तुम लोगों जितनी बातें नहीं कर सकते, परन्तु बुद्धि तो भगवान् की दी हुई है। वह हममें भी कुछ है ही।"

मधुसूदन मुस्कराता हुआ बैठ गया। उसने कहा, "हाँ, बातचीत भी कर लीजिये। आपकी बुद्धि में मुझे संशय नहीं, परन्तु अपनी बुद्धि का परिचय भी तो आपको देना चाहता हूँ अन्यथा आपका यहाँ आना कैसे सफल होगा?"

"एक विचार से तो हमारा आना सफल ही हुआ है। हम जैसी आशा करते थे वैसे ही तुम्हें पाया है। परन्तु एक बात हमारी समझ में नहीं आयी कि तुम्हारे जैसे सुन्दर, ओजस्वी और पढ़े-लिखे लड़के का अभी तक विवाह क्यों नहीं हुआ?"

मधुसूदन ने अभी भी व्यंग्य के भाव से कहा, "आप जैसी आँखें और परख यहाँ के लोगों में नहीं है न! नहीं तो अब तक मेरे घर लड़के हो जाते। आप क्या समझते हैं मेरी कितनी आयु होगी?"

यह बात सुन देहाती विस्मित हो मधुसूदन का मुख देखने लगे। एक ने मन

में बहुत अन्दाज़ा लगाकर कहा, “मेरे विचार में तुम पच्चीस-तीस साल के होंगे।”

“पच्चीस-तीस ? आप पच्चीस और तीस में कुछ अन्तर ही नहीं मानते। अजी, यदि पच्चीस वर्ष की आयु में विवाह हो तो तीस तक घर में तीन लड़के होने चाहिये और यदि पन्द्रह वर्ष में विवाह हो तो तीस वर्ष में घर में पोता हो जाना चाहिए।”

श्यामाचरण बातों की प्रगति देख मन-ही-मन क्रोधित हो रहा था। जब आयु का प्रश्न आया तो वह और भी घबराया, क्योंकि उसके विचारानुकूल तो सत्य ही लड़के का विवाह चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में हो जाना चाहिये था। उसने बातों को दूसरे ढर्रे पर ले जाने के लिए कहा, “आप जानते हैं कि नगरों में तो बिना पढ़े-लिखे काम नहीं चलता और पढ़ने के लिए समय चाहिए। लड़के ने शास्त्री की परीक्षा पास की है और फिर अंग्रेज़ी का बी० ए० भी किया है। इतना पढ़ने के लिए कितना ही तो धन चाहिए और कितना ही समय। मधुसूदन की आयु चौबीस वर्ष और कुछ मास ही है, अधिक नहीं।”

इस पर देहाती देवताओं में से एक बोल उठा, “तो पण्डितजी, हमने सबकुछ देख लिया। अब हम बाहर चलकर आपसे बातचीत करेंगे।”

श्यामाचरण भी मन से यही चाहता था। वह इन लोगों को मधुसूदन से और बात करने देना नहीं चाहता था। उसका विचार था कि यदि सबकुछ निर्णय हो जाये तो मधुसूदन को मानना ही पड़ेगा, और यदि पहले उसकी सम्मति ली गई तो वह अवश्य इन्कार कर देगा। ऐसा विचार कर उसने कहा, “हाँ, हाँ ! चलिये।”

“परन्तु,” मधुसूदन ने उन सबको कहा, “आपने मेरे साथ बातचीत तो की ही नहीं। यदि आपको कुछ और नहीं पूछना तो मैं ही पूछ लूँ ?”

इस पर वे सब एक-दूसरे का मुख देखने लगे। मधुसूदन ने पूछना आरम्भ कर दिया। उसने पिताजी के हस्तक्षेप से पूर्व ही बातचीत आरम्भ कर देनी उचित समझी। उसने पूछा, “क्या मैं आप लोगों के यहाँ शुभागमन का कारण जान सकता हूँ ?”

वे लोग अभी भी अचम्भे में थे और कुछ उत्तर नहीं दे सके।

मधुसूदन ने फिर पूछा, “आपने कहा था कि इतनी बड़ी आयु तक मेरा विवाह नहीं हुआ, तो क्या आप मेरे विवाह के सम्बन्ध में आये हैं ?”

इस पर पाँचों-के-पाँचों बोल उठे, “हाँ, हाँ ! क्यों नहीं !”

“ओह ! आपका बहुत धन्यवाद। आपने मुझ गरीब ब्राह्मण पर अनुपम कृपा की, परन्तु आपने एक बात तो बताई ही नहीं।”

“वह क्या ?”

“यही कि लड़की के बाप कौन हैं ?”

अब एक ने कहा, “क्या बात है ? लड़की मेरी है ।”

“आपका शुभ नाम क्या है ?”

“मेरा ?....”

इस पर श्यामाचरण के क्रोध का पारावार नहीं रहा और आवेश में बोल उठा, “बस ! बेहूदा बात मत करो ।”

मधुसूदन ने नम्रता से कहा, “परन्तु पिताजी, मैंने ज्योतिष जो सीखा है, उसका लाभ उठाना चाहिए या नहीं । हाँ तो साहब, आपका प्रचलित नाम क्या है ?”

लाचार ब्राह्मण देवता को कहना पड़ा, “भगवतीप्रसाद पांडे ।”

“पांडेजी महाराज ! आपकी लड़की की आयु कितनी है ?”

“ये बातें तो, बेटा, पूछी नहीं जातीं ।” श्यामाचरण ने कहा ।

“खैर ! होगी नौ-दस वर्ष की । वह कुछ पढ़ती है या नहीं ?”

लड़की के पिता ने कहा, “नहीं । ये बातें लड़के नहीं पूछा करते । तुम्हारे बाप ने लड़की देखी है और वह सबकुछ जानता है ।”

“परन्तु विवाह तो मेरा होना है । देखिये साहब, मैं आपको एक बात बता दूँ । मुझे आपके घर शादी नहीं करनी । मेरा विवाह दूसरे स्थान पर पक्का हो चुका है । पिताजी यह जानते हैं । फिर न जाने आप लोगों ने इनको क्या लालच देकर फँसा लिया है ।”

“लालच ? हमने तो कुछ लालच नहीं दिया । इसके विपरीत बात तो यह है कि पण्डितजी ने हमें लालच दिया है कि वह हमसे देहेज इत्यादि कुछ नहीं लेंगे ।”

“खैर, कुछ भी हो । मैंने आपको सब बात स्पष्ट रूप में बता दी है ।” इतना कह मधुसूदन उठ खड़ा हुआ ।

स्वयं शीघ्र ही आने को कह श्यामाचरण ने सबको बाहर चलने के लिए कहा । जब वे चले गये तो क्रोध में लाल आँखें कर बोला, “यह तुमने क्या किया है ?”

“यह बात तो मुझे आपसे पूछनी चाहिए थी । आपने मुझे पहले क्यों नहीं बताया कि आप मेरे लिए लड़की ढूँढ़ने गये थे ?”

“यह काम तो मेरा था और मैंने किया । तुमसे पूछने की क्या आवश्यकता थी ? सब लड़कों के पिता ऐसा ही करते हैं ।”

“क्या आपको ज्ञात नहीं कि मेरा विवाह निश्चित हो चुका है ?”

“मैंने तो निश्चय नहीं किया । तुम्हारे निश्चय करने से क्या होता है ।”

“विवाह तो मेरा होना है ।”

“हाँ, हाँ ! और तुम्हारे लिए ही तो ढूँढ़ने गया था ।”

“परन्तु आपको ज्ञात था कि मैंने लड़की ढूँढ़ रखी है, फिर आपने कष्ट क्यों किया ?”

“खाक ढूँढ़ रखी है। कायस्थ की लड़की से ब्राह्मण के लड़के का विवाह नहीं हो सकता।”

“क्यों नहीं हो सकता?”

“शास्त्र की आज्ञा के विपरीत है।”

“शास्त्र में तो लिखा है कि ब्राह्मण चारों वर्णों में किसी की भी लड़की से विवाह कर सकता है। मनु महाराज अपनी स्मृति में ऐसा ही लिखते हैं।”

“वह सत्युग की बात है।”

“परन्तु पिताजी, मनु महाराज तो ऋषि थे। वह त्रिकालज्ञ थे और उन्होंने जो कुछ लिखा है, सब कालों के लिए लिखा है।”

“होगा, मैंने मनुस्मृति पढ़ी नहीं।”

“तो फिर आपने शास्त्र की दुहाई क्यों दी?”

“मैं तो रिवाज को ही मानता और जानता हूँ।”

“तो आप आजकल के कलियुगी लोगों को ऋषि-महर्षियों से अधिक बुद्धिमान और धर्मात्मा समझते हैं?”

“हमें रहना तो इन्हीं लोगों में है न।”

“ये लोग मुझे और आपको क्या लाभ पहुँचा रहे हैं जो हम इनकी अन्याय और अधर्म की बातें तक मानने लगे?”

“मैं तो केवल एक गरीब पुजारी और पुरोहित हूँ।”

“इससे तो और भी आवश्यक हो जाता है कि हम धर्मशास्त्र को लोगों की उलटी-सीधी बातों से अधिक मानें।”

“तो तुम कायस्थ की लड़की से विवाह करना चाहते हो?”

“मैं उस अनपढ़, देहाती, गँवार लड़की से विवाह नहीं करूँगा।”

“तुम अनपढ़ से नाचने वाली को अच्छा समझते हो?”

“मैंने पांडेजी की लड़की को देखा नहीं और न ही उसके विपरीत कुछ कहता हूँ। मैं पूर्णिमा को सब प्रकार से अच्छा समझता हूँ।”

“तुमने नरक का मार्ग पकड़ा है और तुम मुझे भी उधर ही घसीटकर ले जाओगे।”

इतना कह श्यामाचरण बाहर जाने के लिए कमरे से निकल आया। परन्तु ज्यों ही उसने कदम ड्योढ़ी से बाहर रखा, सम्मुख पूर्णिमा को खड़े देखा। पूर्णिमा को देख उसके क्रोध की मात्रा नहीं रही। परन्तु पूर्णिमा ने श्यामाचरण के चरण स्पर्श किये। सेठ कुंजबिहारी के पत्र से उसे ज्ञात हो गया था कि उसके विवाह की बात मधुसूदन के पिता को मालूम हो गई है। इस कारण उसने आज पहली बार उसके चरण स्पर्श किये थे। श्यामाचरण क्रोध में तो बहुत था, परन्तु पूर्णिमा के इस कार्य ने उसके क्रोध को बाहर फूट पड़ने से रोक दिया। उसने आशीर्वाद नहीं दिया और

क्रोध में मुख ऊपर उठाये बाहर, जहाँ देहाती लोग बैठे थे, चला गया।

देहातियों ने भी पूर्णिमा को आते देखा था, और इतनी सुन्दर, युवा लड़की को निधड़क भीतर आते देख वे विस्मय में एक-दूसरे का मुख देख रहे थे। श्यामाचरण को क्रोध से लाल देख वे समझ गये कि वाप-बेटे में तू-तू मैं-मैं हुई है। श्यामाचरण उनके समीप बैठ गया, परन्तु कुछ बोला नहीं। पांडेजी ने कुछ देर श्यामाचरण के बोलने की प्रतीक्षा कर कहा, “पुजारीजी, तुमने हमको बहुत धोखा दिया है। जब तुम्हारे लड़के के ऐसे कुलच्छन थे तो तुमने हमें बुलाया क्यों? व्यर्थ मैं दस-बारह रुपये का खर्चा हुआ और तुम्हारे लड़के के ताने सुने।”

श्यामाचरण ने आँखें नीची किये हुए कहा, “पण्डितजी महाराज, अपने लड़के के इस व्यवहार के लिए क्षमा चाहता हूँ। मेरा विचार था कि वह आपत्ति नहीं करेगा, परन्तु संसार की प्रगति के साथ वह भी बह गया है। यही लड़की है जिससे वह विवाह करने का हठ किये हुए है। यह पढ़ी-लिखी है, सुशील है, और सब प्रकार से ठीक है परन्तु जन्म की कायस्थ है। मैंने बहुत समझाया, सिर पटका; परन्तु वह मानता ही नहीं। एक समय कहता था कि जब ब्राह्मण कुल की लड़की न मिले तो क्या किया जाये? इसी कारण मैं ब्राह्मण कन्या ढूँढ़ने गया था। आप लोगों को यहाँ आने का कष्ट दिया। अब कहता है कि यह लड़की अशिक्षित है। वह इस कायस्थ लड़की के मुकाबले में सर्वथा अयोग्य है।”

जब देहातियों ने यह जाना कि जिस लड़की से मधुसूदन ने अपना विवाह निश्चित किया है वह वही लड़की है कि जिसके सौन्दर्य और तेज पर वे विस्मय कर रहे थे तो चूप हो गये। उनमें एक बहुत ही विचारशील व्यक्ति भी था। उसने श्यामाचरण से कहा, “पुजारी, तुम महामूर्ख प्रतीत होते हो। जब तुम्हें मालूम था कि मधुसूदन के मन में ऐसी स्वर्गीय अप्सरा समाई है तो तुमने उसके लिए पांडेजी की कुरूप और गँवार लड़की को क्यों चुना और पसन्द किया? यदि झूठ-सच बोलकर वह इस विवाह के लिए राजी भी कर लिया जाये तो क्या विवाह के पश्चात् वह एक क्षण के लिए भी उसे प्रेम कर सकता है?” पांडेजी को सम्बोधन कर उसने कहा, “भगवतीप्रसाद, भले छूट गए हो। यदि लड़का वाप के सम्मुख संकोच कर मान भी जाता तो भाई, विवाह के पश्चात् तुम्हारी लड़की को कीड़े पड़ जाते। भला ऐसी सुन्दर लड़की के सम्मुख तुम्हारी सीधी-मादी लड़की की एक भी चलती? चलो, यहाँ से चलें। पुजारीजी की मूर्खता के कारण लड़की को कुएँ में ढकेलने जा रहे थे।”

इतना कह सब उठ खड़े हुए और श्यामाचरण को वहीं विचारमग्न छोड़ घर से बाहर निकल गये।

: ३ :

जब श्यामाचरण क्रोध से लाल-पीला होता हुआ बिना कुछ कहे बाहर चला

गया तो पूर्णिमा कुछ काल तक उसकी ओर देखती रही। उसके चले जाने के बाद उसने मधुसूदन की ओर देखा और उसका मुख विवर्ण देख चकित रह गई। उसने हाथ जोड़ नमस्कार कर पूछा, “क्या बात है? बाप-बेटा दोनों घोड़े पर सवार प्रतीत होते हैं?”

मधुसूदन ने उत्तर देने के स्थान पर प्रश्न कर दिया, “सुनाओ, कैसे आना हुआ!”

“वाह! पहले बैठाइये, कुशल समाचार बताइये, फिर आने के कारण की बात भी हो जायेगी। इतनी दूर से आई हूँ और आते ही पूछने लगे, ‘क्यों आई हो?’ पहले तो आप इतने अशिष्टाचारी नहीं थे।”

मधुसूदन अपनी अशिष्टता पर लज्जित हो कहने लगा, “पूर्णिमा, क्षमा करना। आज पिताजी से कुछ झगड़ा हो गया है। इसी कारण मन स्थिर नहीं था। आओ, बैठो। सामान भी साथ है क्या?”

अब पूर्णिमा ने बैठकर कहा, “पिताजी से झगड़ा किया, भारी भूल की।”

“हाँ, परन्तु क्या कहूँ? वह कुछ करने को कहते थे और मैं वह करना नहीं चाहता था।”

“वाह, कर क्यों नहीं दिया, जो वह कहते थे? जाइये, पहले उनसे क्षमा माँगकर उनका कहना कर दीजिये, फिर मैं बताऊँगी मैं क्यों आई हूँ।”

मधुसूदन ने बात को टालते हुए कहा, “छोड़ो उनकी बात को। उनको मैं मना लूँगा। हाँ, तो बताओ, अभी स्नान इत्यादि भी किया है या नहीं? क्या जलपान का प्रबन्ध कहूँ?”

“हूँ। नहीं बताऊँगी। पहले पिताजी को मनाना चाहिए। मैं तो अब आ ही गई हूँ और खा-पी लूँगी। परन्तु पिताजी को नाराज करना कितना खराब है। जाओ, पहले उनका कहना कर आओ।”

मधुसूदन उसे झगड़े का कारण बताना नहीं चाहता था। अतएव कहने लगा, “पूर्णिमा, आज कैंसी बातें कर रही हो? तुम इतनी दूर से आई हो। प्रातः पाँच बजे की गाड़ी से चली होगी और घर से तो चार बजे ही निकली होगी। जब तक तुम कुछ खा-पीकर निश्चिन्त हो जाओगी तब तक मैं पिताजी को मना लूँगा।”

“नहीं, मुझे मनाने की आवश्यकता नहीं है।” श्यामाचरण कमरे के दरवाजे के बाहर खड़ा दोनों का वार्तालाप सुन रहा था। इतना कहते-कहते वह कमरे में आ गया और क्रोध से लाल नेत्र किये दोनों को देखने लगा।

मधुसूदन ने बहुत नम्रता से कहा, “पिताजी, बैठकर तनिक सुन तो लीजिये। जो भी बात करनी हो उस पर पहले विचार कर लेना ठीक है। विचार करने से भूल से बचा जा सकता है।”

श्यामाचरण निर्णय नहीं कर सकता था कि पूर्णिमा के सम्मुख बात करे अथवा

न करे। फिर कुछ सोचकर मधुसूदन के पास बैठ गया। एक बात ने उसके मन पर गहरा प्रभाव डाला था। वह थी उस देहाती की बात कि पूर्णिमा जैसी सुन्दर लड़की के मुकाबले में पांडेजी की कुरूप लड़की को ला खड़ा करना मूर्खता होगी। परन्तु जिस बात के लिए उसका मन तैयार नहीं होता था, वह था कायस्थ की लड़की से ब्राह्मण का विवाह।

मधुसूदन ने पिता को बैठते देख पूर्णिमा से कहा, “पूर्णिमा, तुम इतने में स्नान इत्यादि कर लो।”

पूर्णिमा उठ पड़ी और बाहर जाने को ही थी कि श्यामाचरण ने कहा, “नहीं, तुम भी बैठ जाओ। अब आई हो तो सुन ही लो।”

अब पूर्णिमा बहुत असमंजस में फँस गई। वह नहीं जानती थी कि क्या करे, बैठे अथवा चली जाये। बाप-बेटे का मत एक नहीं था। इतना तो वह समझ गई थी कि कुछ उसी के सम्बन्ध की बात होगी। कुछ काल तक वह दोनों का मुख देखती रही। फिर यह विचार कर कि जो कुछ है वह सुन लेना ही ठीक है, बैठ गई। मधुसूदन चुप था। वह नहीं जानता था कि पिता-पुत्र का झगड़ा पूर्णिमा पर क्या प्रभाव डालेगा। सबसे कठिन बात यह थी कि झगड़े का विषय भी पूर्णिमा ही थी। श्यामाचरण का क्रोध अभी कम नहीं हुआ था। इस कारण उसी ने कहना आरम्भ किया, “देखो बेटा, यह अब चौबीस वर्ष से ऊपर हो गया है और बहुत यत्न करने पर फँसावाद से कुछ लोग इसके विवाह के लिए रिश्ता लेकर आए हैं। इसने केवल इन्कार ही नहीं किया, प्रत्युत् उनकी हँसी उड़ाई है। कितनी लज्जा की बात है।”

पूर्णिमा को जिस बात की आशंका हो रही थी वही हुई। वह समझ गई कि उसके विवाह के विषय में बातें हो रही थीं। वह कुछ नहीं बोली। चुप रही। मधुसूदन ने बहुत ही नम्रता से कहा, “पिताजी, आपने जब उनको बुलाया था तो पहले मुझसे पूछ तो लेते। मैं आपको कदापि उनको बुलाने की सम्मति न देता। अब उनके आने पर यह बताना कितना आवश्यक था कि उनके यहाँ मैं विवाह नहीं कर सकता। उनको झूठी आशा में फँसा रखना तो बहुत ही बुरी बात थी। अब वे जान गये कि यहाँ उनकी लड़की का विवाह नहीं हो सकता और उनको लड़की के लिए बर खोजने की स्वतन्त्रता है।”

“परन्तु मैं यही तो कहता हूँ कि तुम क्यों नहीं उनकी लड़की से विवाह कर सकते?”

“केवल इसलिए कि मैं नहीं करना चाहता।”

“क्यों नहीं चाहते?”

“मेरे पसन्द की वह नहीं है।”

पूर्णिमा यह वाद-विवाद सुन बहुत ही संकोच में पड़ गई। प्रतिक्षण वह वज्र

के समान श्यामाचरण का फतवा सुनने की प्रतीक्षा कर रही थी कि, 'पूर्णमा से विवाह नहीं होने दूंगा।'

श्यामाचरण ने पुत्र को डाँटकर कहा, "जब मैंने पसन्द की है तो तुम्हें आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"

"आप उस काल की बात करते हैं जब सात-आठ वर्ष के लड़के की शादी हो जाती थी। मेरा विवाह भी आप यदि उसी आयु में कर देते तो मैं आपत्ति न कर पाता। परन्तु अब इतना पढ़ने-लिखने के पश्चात् तो...."

"मैंने तुम्हें शास्त्र-वेद बढ़ाया था और तुमने अपने पिता की बात का उल्लंघन कर दिया। मुझे तुमसे यह आशा न थी।"

"परन्तु पिताजी, वेदों और शास्त्रों में यह कहीं नहीं लिखा कि माता-पिता कन्या का वर अथवा पुत्र की वधू तलाश करें।"

"तो तुम नहीं मानोगे?"

"मान तो रहा हूँ। आप हिन्दू-धर्म-शास्त्र का तो उल्लंघन न करें। देखिये, कृष्ण की बहिन सुभद्रा ने अपने लिए अर्जुन को बरा था। रुक्मिणी ने कृष्ण को वर अपने भाई और पिता के प्रबन्ध को उलट दिया था। सावित्री ने यह जानते हुए कि सत्यवान की मृत्यु एक वर्ष में हो जायगी उसे बरा और अपने निश्चय पर अटल रही। यह लोक-रिवाज तो तब से और उन लोगों के लिए बना है जिन्होंने वचन की शादी को अपनाया है। जब आपने मुझे इतना बड़ा कर दिया है तो विवाह में मेरी सम्मति लेनी ही चाहिए।"

"लोक-रिवाज भी एक धर्म है।"

"हाँ, परन्तु वह तो बदलता रहता है। देखिये, आज से दस-पन्द्रह वर्ष पहले आठ-नौ वर्ष के लड़कों का विवाह कर दिया जाता था। अब नहीं होता। पहले धोती-कुर्ता पहनने की प्रथा थी, अब कोट-पतलून की है। लोक-रिवाज तो बदलता हुआ धर्म है।"

श्यामाचरण जब कुछ उत्तर न दे सका तो उठ पड़ा और कमरे से बाहर निकलते हुए बोला, "तुम धर्म की नाव को डुबो दोगे।"

जब वह चला गया तो मधुसूदन का ध्यान पूर्णमा की ओर गया। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। आँखें बन्द थीं और वह होंठों को जोर से भीचकर बैठी थी। उसे श्यामाचरण के चले जाने का पता नहीं चला। मधुसूदन ने यह सबकुछ देखा और चौंककर कहा, "पूर्णमा ! रोती हो?"

"हैं !" पूर्णमा ने आँखें खोल दी और मधुसूदन के पिता को वहाँ न पाकर कहा, "हाँ, परन्तु ये दुःख के आँसू नहीं हैं।"

"ओह ! तो तुम पिता-पुत्र में झगड़ा सुन प्रसन्न हो रही थी। वाह, यह कहस की शिष्टता है?"

“क्या पिताजी मेरे साथ आपका विवाह पसन्द नहीं करते?”

“हाँ, नहीं करते।”

“क्यों?”

“केवल इस कारण कि तुम कायस्थ हो और मैं ब्राह्मण।”

“और आप भी ऐसा ही समझते हैं?”

“बस, यही जानने के लिए रो रही थीं ! अच्छा, अब बताओ, खान-पान कब होगा?”

“खान-पान सब हो चुका है। मैं स्नान कर घर से चली थी। स्टेशन पर होटल में खा लिया है और मैं समझती हूँ, बहुत अच्छा किया अन्यथा आज आपके झगड़े में ब्रत ही हो जाता। बताइये, आपने भी कुछ खाया-पिया है या नहीं?”

“अभी खाऊँगा, नहीं तो पिताजी भूखे रह जायेंगे।”

जब मधुसूदन खाना खाकर आया तो पूर्णिमा ने उसे अपने आने का कारण बताया। यह एक नई समस्या थी। मधुसूदन ने कहा, “सेठ साहब कभी-कभी उदारता में सीमा का भी उल्लंघन कर जाते हैं। एक दिन मुझे पूछते थे कि तुम्हारे फिल्म कम्पनी में नौकरी करने का प्रयोजन क्या था। मैंने साधारण रूप में कह दिया था कि कुछ रुपये-पैसे की जरूरत रही होगी। इसके पश्चात् फिर उनसे इस विषय पर बात नहीं हुई। अब तुम्हें एक हजार रुपया भेज दिया है। परन्तु तुम अब इसे वापस करने क्यों आई हो?”

“मैं तो वहीं से बीमा करके भेज देती, परन्तु यह विचार कर कि इसका प्रभाव उल्टा न हो, आपके हाथ भेजने का विचार किया है।”

“तुम इसे रख क्यों नहीं लेती? आखिर मैं इसे वापस करने क्यों जाऊँ? यह तो तुम्हें मिला है। तुम जानो, वह जानें।”

“मैं इस रुपये को रखना अपना भारी अपमान समझती हूँ। यह रुपया मुझे अपने लिए नहीं चाहिए। जिस काम के लिए चाहिए वह मैं सेठ साहब से बता नहीं सकती। और वह तो मेरा बजीफा लगा रहे हैं। लिखते हैं कि इतना रुपया प्रति-मास भेजा करेंगे। बताओ, यह रुपया मैं क्योंकर स्वीकार कर सकती हूँ?”

“तो तुम स्वयं जाकर उनको बता दो कि तुम फिल्म कम्पनी में नौकरी क्यों करती थीं और रुपया अमुक काम के लिए चाहिए। यदि वह चाहेंगे तो रुपया देंगे, नहीं चाहेंगे तो नहीं देंगे।”

“यह मैं बिना नेता की स्वीकृति के नहीं बता सकती।”

“तो फिर क्या किया जाये?”

“एक बात और भी है, सेठ साहब से रुपया मैं नहीं ले सकती। उनका मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव जितना अनुचित था उतना ही उनका यह रुपया भेजना अनुचित है। उन्होंने पत्र में लिखा था कि यह रुपया आपकी ओर से भेंट समझी

जावे। इस कारण यह आपकी माफत ही वापस होगा।”

“परन्तु यह रूपया मैंने तो भेजा नहीं और न मैं इसे लेकर जाऊँगा। मुझ पर सेठ साहब का बहुत अहसान है और मैं उन्हें इस मामूली-सी बात पर नाराज़ करना नहीं चाहता।”

“तो यह काम मेरी खातिर भी नहीं करेंगे?”

मधुसूदन निरुत्तर हो गया। वह पूर्णिमा के लिए क्या नहीं कर सकता था। इस पर भी उसने इतना कहा, “यदि तुम ऐसा कहती हो तो कर दूँगा। परन्तु यदि तुम भी साथ चलो तो बात कुछ सुगम हो जायेगी।”

“क्या आप मेरा उनके सम्मुख जाना उचित समझते हैं?”

“इस समय तो आवश्यक है। वैसे इसमें कुछ भी अनुचित नहीं। दूसरों की भूल को भुला देना उचित है।”

: ४ :

सेठ साहब भीतर सो रहे थे। ज्येष्ठ में दोपहर के समय सबसे बढ़िया काम किसी अंधरे ठण्डे स्थान में सोने के अतिरिक्त दूसरा नहीं। इलाहाबाद की सड़कें तपकर लाल हो जाती हैं, और विरले ही उस समय उन पर घूमते हुए दिखाई देते हैं। नौकर भी जो बैठक के बाहर बरामदे में पड़ा सुस्ता रहा था, इस असमय में मधुसूदन को आता देखकर प्रसन्न नहीं हुआ। परन्तु पूर्णिमा को साथ देख विवशना उनके आने की सूचना देने के लिए भीतर चला गया।

सेठ साहब पूर्णिमा का नाम सुनकर तुरन्त बैठक में आ गये और बोले, “आओ, आओ पूर्णिमा! इतनी धूप में कहाँ घूम रही हो? कल ही अखबार में निकला था कि कई लू से मर चुके हैं। बैठो। क्या पिओगी? शर्वत, लैमनेड या नींबू का रस?”

इस आवभगत के पश्चात् इधर-उधर की बातें होने लगीं। पूर्णिमा ने सेठ साहब को राय साहब की पदवी छोड़ने पर बधाई दी तो सेठ साहब ने पूछा, “तो तुम भी इसे अच्छा समझती हो?”

“हाँ। सरकार को सहयोग देना पाप है। आप इस पाप-कर्म से बाहर निकल आये हैं। यह अति हर्ष का विषय है।”

सेठ साहब ने कहा, “अब मधुसूदन और अन्य युवकों से मैं अपने कार्य की सराहना सुनता हूँ तो चित्त को शान्ति मिलती है, परन्तु दूसरे पक्ष के लोग वे भी हैं जो इसके विपरीत कहते हैं।”

“वे क्या कहते हैं?”

“अभी उस दिन यहाँ के सेशन जज मिस्टर ए० पी० सक्सेना आये थे। वह समझाने लगे। कहते थे, मैंने अच्छा नहीं किया। उनका कहना है कि मेरे इस पद-त्याग से सरकार को तो कुछ हानि होगी नहीं। उसे तो मेरे स्थान पर दस राय साहब बनने वाले मिल जायेंगे। यदि कुछ हानि होगी तो मुझे और बहुत अंशों

में साधारण जनता को। मैंने कभी-कभी लोगों की हाकिमों से सिफारिश कर उनको बहुत सुविधायें दिलवाई हैं। जज साहब समझते थे कि यह काम भी भारी उपकार का है और मैंने पदवी का त्याग कर अपनी उपकार करने की इस शक्ति पर आघात किया है। यद्यपि उनकी बातें सर्वथा सत्य प्रतीत होती हैं और उनकी युक्तियों को सुनकर मेरा दिल संशय में पड़ गया था, फिर भी जब तुम जैसे लोगों से मिलता हूँ तो उत्साह फिर बँध जाता है। परन्तु वह थोड़ा-सा भी उपकार, जो मैं लोगों का कर देता था, क्या वह अच्छा नहीं था? कभी-कभी यह प्रश्न भी मेरे मन में उठता है।”

“आपके स्थान पर जब दूसरा राय साहब बनेगा तो वह यह काम कर देगा। यथार्थ में ये बातें पत्तों में पानी देने के समान हैं। इनसे यथार्थ लाभ नहीं हो सकता। सब दुःखों का मूल देश की पराधीनता है। इन छोटे-छोटे लाभों के लिये देश को पराधीन रखने में सहायता देना किसी प्रकार भी उचित नहीं जान पड़ता।”

“परन्तु मेरे पद-त्याग से तो सरकार में शिथिलता आई नहीं। मुझसे भी अधिक सहायता देने वाले मैदान में आ गये हैं। देखो, जैसे-जैसे राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र होता जा रहा है वैसे-वैसे ही सरकार के अधिक सहायक भी पैदा होते जाते हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाले प्रायः हिन्दू हैं और सरकार की सहायता करने वाले प्रायः मुसलमान। इसका परिणाम यह हो रहा है कि सरकार के कामों में जितने मार्कों के स्थान हैं उन सब पर मुसलमान पहुँचते जाते हैं।”

“आपका कथन सर्वथा सत्य है। परन्तु मुसलमानों से प्रतिस्पर्धा करने के लिये हम देश को बेच नहीं सकते। आप यह तो शायद समझते ही होंगे कि मुसलमानों में भी ऐसे देशभक्त हैं जो सरकार के पिटू मुसलमानों को अच्छा नहीं समझते और ऐसे लोगों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ जाएगी। परन्तु थोड़ी देर के लिये मान भी लें कि मुसलमान राष्ट्रीयता के विरोधी बने रहेंगे तो हम मुसलमानों को विदेशियों का अंग ही समझेंगे और उनसे भी शक्ति छीनने का यत्न ऐसे ही करेंगे।”

“किन्तु इनकी संख्या बहुत अधिक है और इनसे विरोध खड़ा करना बुद्धिमत्ता नहीं होगी।”

“हाँ, परन्तु जब सब उपाय करने पर भी ये लोग विरोध करने पर डटे रहेंगे तो इनके साथ भी तो वैसा ही व्यवहार करना होगा जैसा अंग्रेजों के साथ उचित है। इनकी संख्या को कम करने के उपाय भी करने होंगे।”

“यह तो तुम्हारा बहुत लम्बा-चौड़ा कार्यक्रम है। परन्तु यह कैसे हो सकेगा?”

“देशभक्तों को अपने में शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। सफलता वीर और शक्तिशालियों के पाँव चूमती है। भीरु, निरुत्साही और शक्तिहीन लोगों के लिये संसार में स्थान नहीं है।”

“तो क्या सरकार के अच्छे-अच्छे पदों पर नियत होना शक्ति प्राप्त करना

नहीं है?"

"नहीं। क्योंकि इस शक्ति का स्रोत विदेशियों के हाथ में है। जब तक इस शक्ति का प्रयोग हम अपने ही लोगों के विपरीत करते हैं तब तक ठीक है परन्तु ज्योंही हम इसे देश की उन्नति में लगाना चाहते हैं हमसे शक्ति छीन ली जाती है। शक्ति के स्रोत को अपने अधीन करना ही शक्ति प्राप्त करना है।"

"सर्वथा शक्ति-शून्य होने से तो कुछ शक्ति पाना अच्छा ही होता है?"

"अच्छा तो होता है। परन्तु यहाँ तो न्यूनाधिक का प्रश्न नहीं। यहाँ तो शक्ति के प्रयोग के ढंग का प्रश्न है। एक पुलिस का सन्तरी अपने क्षेत्र में उतनी ही शक्ति रखता है जितना कि भारत-सचिव। अन्तर यदि है तो यह है कि सन्तरी अपनी शक्ति का प्रयोग वहीं पर कर सकता है जहाँ पर कि भारत-सचिव चाहता है, वह अपनी इच्छा से नहीं कर सकता। प्रत्येक सरकारी अफसर के पास वह सब शक्ति है जो भारत-सचिव उसे देना चाहे, परन्तु उस शक्ति का प्रयोग उसी ढंग से हो सकता है जिस ढंग से भारत-सचिव चाहता है, न कि अफसर। यदि कोई अफसर उस शक्ति को किसी ऐसे ढंग से प्रयोग करना चाहता है जिसे भारत-सचिव तथा ब्रिटिश पार्लियामेंट नहीं चाहती तो एक क्षण में उस अफसर को निकाल बाहर कर दिया जाता है।"

"तो तुम्हारे विचार मे यथार्थ शक्ति कानून और नियम बनाने की है?"

"जी हाँ, और उन कानूनों को कार्यरूप में लाने के लिए भी।"

"इसके लिए तो फौज और पुलिस की जरूरत है?"

"निःसन्देह। देश को अपने अधीन करने के लिए फौजी शक्ति की आवश्यकता है। यह शक्ति केवल बातों से नहीं मिल सकती। आप देखें कि भारत की सारी सेना कमांडर-इन-चीफ के अधीन है और वह भारत-सचिव के कहने पर काम करता है। भारत-सचिव से वह वगावत नहीं कर सकता, क्योंकि इंग्लैंड की फौजी शक्ति उसे ऐसा करने नहीं देगी।"

"तो तुम्हारा अभिप्राय यह है कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन करने वाले जब तक इंग्लैंड की फौजी शक्ति से अधिक शक्ति नहीं संग्रह कर लेते तब तक कुछ नहीं हो सकता? उसमें क्या यह अधिक सुगम और सम्भव नहीं कि हम इंग्लैंड की जनता को, जो पार्लियामेंट की बनाने वाली है, अपना हिमायती बना लें और इंग्लैंड की शक्ति के अधिक बने रहने पर भी हम स्वराज्य प्राप्त कर सकें?"

"यदि यह सम्भव होता तो बहुत अच्छा था, परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ और न ही इस अवस्था में होने की आशा है। यदि इंग्लैंड के कुछ एक व्यक्ति भारत में लूट-खसोट करते होते तो शेष जनता उन कुछ लोगों के विपरीत हो जाती और उनको हटाकर भारत की लूट बन्द कर देती, परन्तु यथार्थ बात तो यह है कि भारतवर्ष की लूट में प्रत्येक इंग्लैंड-निवासी को उसका भाग मिलता है। आज

वहाँ का जीवनमान जो इतना ऊँचा है वह भारतवर्ष की लूट के आश्रय पर ही है। यह रहस्य प्रत्येक इंग्लैंड-निवासी जानता है। इस कारण वे हमें अपने पंजे से छोड़ देने को कैसे तैयार हो सकते हैं?

“बहुत अधिक शक्ति की भी हमें इसलिए आवश्यकता नहीं कि इंग्लैंड का भारतवर्ष से अन्तर, भारतवर्ष की जनसंख्या और इसकी भौगोलिक परिस्थिति सब हमारे पक्ष में है। थोड़ी-सी शक्ति से भी हम बड़ी शक्ति का मुकाबला कर सकते हैं। सबसे आवश्यक बात यह है कि हम स्वयं तैयार हों।”

“पूर्णमा, तुम इतनी बातें कहाँ से जान गई हो? यद्यपि अभी मेरा मन पूर्ण रूप से तुम्हारे विचारों को ग्रहण नहीं कर सका तो भी तुम्हारी बातें, युक्तियाँ और तुम्हारा विश्वास चकित कर देने वाला है। मेरे पद-त्याग करने में मधुसूदन के विचारों का भारी हाथ है। अब तुम्हें भी इसी विचार का जानकर मुझे अपने किये पर जो कभी पश्चात्ताप हो जाता था वह दूर हो गया है।”

इसके बाद मधुसूदन ने उसके वहाँ आने का प्रयोजन प्रकट करने के विचार से कहना शुरू किया, “परन्तु यह तो आपसे लड़ने आई है।”

पूर्णमा बहुत देर से रुपये की बात आरम्भ करने का अवसर ढूँढ़ रही थी। मधुसूदन को इस चतुराई से बात आरम्भ करते देख बहुत प्रसन्न हुई। वह हँसते हुए कहने लगी, “लड़ने? नहीं-नहीं, मैं तो केवल साधारण-सी बात कहने के लिए आई हूँ।”

मधुसूदन ने भूमिका को अधिक स्पष्ट करने के लिए कहा, “साधारण-सी बात के लिए काशी से चलकर इलाहाबाद आना कौन मान सकता है?”

अब सेठ साहब ने कुछ उत्सुकता प्रकट करते हुए पूछा, “क्यों लड़ेंगी यह? मैंने कौन-सा अपराध किया है? यदि कुछ है तो बताओ, मैं क्षमा माँग लूँगा।”

पूर्णमा ने कहा, “नहीं, नहीं! क्षमा माँगने की कुछ आवश्यकता नहीं है। बात केवल यह है कि मुझे ये नहीं चाहिये।” इतना कहते हुए उसने एक हजार रुपये के नोट निकालकर सेठ साहब के सम्मुख रख दिये।

सेठ साहब ने कुछ खिन्न मन से कहा, “क्या नहीं चाहिए?”

“यह रुपया मैं स्वीकार नहीं करूँगी।”

“क्यों?”

“मुझे जरूरत नहीं।”

“तो फिर क्या हुआ? क्या मुझे अधिकार नहीं कि मैं अपना धन जिसको चाहूँ दूँ?”

“पूर्ण अधिकार है। मुझे इससे कब इन्कार हुआ है। मैं तो केवल यह कह रही हूँ कि मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है।”

“तो बिना आवश्यकता के ही रख लो।”

“क्यों?”

“इसलिए कि मैं दे रहा हूँ।”

“यह तो कोई कारण नहीं। मैं इस पर अपना कोई अधिकार नहीं समझती।”

“अधिकार तो है। मैंने तो लिखा था कि यह मधुसूदन की ओर से भेंट समझ लेना। मधुसूदन को मैं अपना लड़का मानता हूँ।”

पूर्णमा ने अब आँखें नीची किये हुए कहा, “इनकी भेंट स्वीकार करने का भी तो मुझे अधिकार नहीं है।”

“कैसे नहीं है? क्या तुम्हारी इससे सगाई नहीं हो गई?”

“नहीं, बिल्कुल नहीं।”

“तुम दोनों का विवाह तो होगा?”

“शायद नहीं।”

“क्यों, मधुसूदन तो कहता था कि सब तय हो गया है?”

“हाँ, हो गया था, परन्तु अब कुछ विचार बदल रहा है।”

इतना कह पूर्णमा उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़कर सेठ साहब को नमस्ते कह बैठक से बाहर चली आई। सेठ साहब ने देखा कि पूर्णमा की आँखों की पलकों पर आँसुओं की बूँदें झलक रही थीं। शायद इन्हीं को छिपाने के लिए वह उठकर एकदम बाहर चली गई थी। सेठजी मधुसूदन की ओर देखकर पूछने लगे, “क्या हुआ?”

मधुसूदन “कुछ मालूम नहीं, पूछने का यत्न करूँगा” कहकर पूर्णमा के पीछे-पीछे चला आया। पूर्णमा तंगी में बैठी हुई थी। उसने मधुसूदन को आते देख कहा, “मैं वापस स्टेशन पर जा रही हूँ। आप तो अब घर जाइयेगा न?”

मधुसूदन ने अचम्भे से पूछा, “स्टेशन पर? घर नहीं चलोगी क्या? गाड़ी जाने में तो अभी बहुत समय है।”

“नहीं, वेटिंगरूम में ठहर जाऊँगी।”

“घर पर ही ठहर जाना। गाड़ी के समय से पहले पहुँचा दूँगा।”

“नहीं। यदि आपकी इच्छा हो तो आप भी स्टेशन पर आइये, वहाँ से लौट आइयेगा।”

मधुसूदन तंगी में बैठ गया। जब वे वेटिंगरूम में पहुँचकर आराम से बैठ गये तो मधुसूदन ने वह प्रश्न किया जिसके पूछने के लिए वह अधीर हो रहा था, “तुमने सेठ साहब से जो कहा है उसमें कितनी सच्चाई है?”

पूर्णमा ने लापरवाही से कहा, “सच्चाई का परिमाण बताना मेरे लिए कठिन है। परन्तु है यह सत्य।”

“क्या सत्य है?”

“यही कि आपसे भेंट स्वीकार करने का अधिकार मुझे नहीं।”

“तो यह कब होगा ?”

“शायद कभी भी न हो।”

“क्यों नहीं होगा ? मेरा मन तो कहता है, अवश्य होगा।”

मधुसूदन ने इस समय फिर देखा कि पूर्णिमा की आँखों से जल छलकने ही वाला है। उसने कुछ समीप होकर पूछा, “पूर्णिमा, क्या बात है ? बतातीं क्यों नहीं ?”

पूर्णिमा ने कुर्सी कुछ दूर खिसकाते हुए कहा, “क्या आप इस बात की चर्चा छोड़ नहीं सकते ?”

मधुसूदन बहुत हैरान था कि पूर्णिमा को हो क्या गया है। उसे सन्देह हो रहा था कि पिताजी की बातचीत से पूर्णिमा निराश हो गई है। परन्तु जब वह अपने व्यवहार और अपनी बातचीत की ओर ध्यान करता था तो उसे पूर्णिमा के निराश अथवा क्रोधित होने का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता था। इसी कारण वह पूर्णिमा से स्पष्ट सुनना चाहता था। उसने फिर कहा, “चर्चा तो छोड़ सकता हूँ, परन्तु मन से तो यह सब निकाल नहीं सकता। यदि तुम्हारी यह इच्छा है कि तुम अपने स्थान पर रोया करो और मैं अपने स्थान पर, और हम दोनों यह न जान सकें कि हमारे इस रोने-धोने का कारण क्या है तो चर्चा अभी समाप्त हो सकती है। परन्तु यह कहाँ की बुद्धिमत्ता है ! हम गूँगे बालकों की भाँति तो हैं नहीं। मान लो कि अब हमारे विवाह में कोई अटल कठिनाई आ खड़ी हुई है तो क्या यह अच्छा न होगा कि मैं जान लूँ और असम्भव से अपना मस्तिष्क न लड़ाऊँ ?”

“तो क्या आप नहीं जानते ?”

“क्या ?”

“यही कि मेरे साथ आपके विवाह में भारी अड़चन उपस्थित हो गई है ?”

“नहीं, मैं तो कोई अड़चन नहीं देखता।”

“आपके पिताजी नाराज़ हैं।”

मधुसूदन ने प्रसन्न हो कहा, “बस ! या और भी कुछ ?”

“तो क्या यह कम बात है ?”

“वह नाराज़ नहीं हैं। उनका मेरे साथ इस विषय में मतभेद अवश्य है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यदि मैं इस विचार पर पक्का रहा तो वह मेरी बात नहीं मानेंगे।”

“परन्तु, श्रीमन्, मैं आपके और आपके पिता के बीच में दीवार खड़ी नहीं करना चाहती। मैं काँटा बनकर आपके घर नहीं आऊँगी।”

“यह तुमको किसने कहा कि ऐसा होगा। न तो मेरा पिताजी से झगड़ा होगा और न ही वह तुमसे नाराज़ होंगे। कुछ एक बातें हैं जो वह पुराने विचारों के कारण सुगमता से स्वीकार नहीं कर सकते। इसके लिए मुझे और सेठ साहब

निराशा

को उन्हें समझाना होगा। वस, जब एक बार उनको पता चल गया कि यह कार्य अच्छा है तो वह बहुत प्रसन्न होंगे।”

पूर्णमा ने मुख दूसरी ओर फेरकर कहा, “अच्छी बात है। जब वह प्रसन्न होंगे तो मैं भी अपना निश्चय बदल लूंगी। तब तक मेरा आपसे मेल-जोल ऐसा ही होना चाहिए जैसा भैया के किसी मित्र से हो सकता है।”

“परन्तु तब भी तो तुम हमारे घर में जाकर रही थीं। आज क्यों नहीं गई? यहाँ स्टेशन पर चार घण्टे गाड़ी के समय से पूर्व ही आ बैठी हो।”

“आज मेरे मन में भय था कि पिताजी कहीं मेरा अपमान न कर दें। पहले ही एक घण्टा बहुत कठिनाई से गुजारा था। मैं अपमान सहने की क्षमता रखती हूँ या नहीं, मैं नहीं जानती, और मैं अपने मन की दृढ़ता की परीक्षा यहाँ नहीं करना चाहती।”

“न सही। घर नहीं जा सकतीं तो कुछ हानि नहीं, परन्तु मैं यह कहना चाहता हूँ कि निराश होने का कोई कारण नहीं। तुम पिताजी को नहीं जानतीं। मैं उनकी प्रकृति को भली-भाँति समझता हूँ। जब मैंने अंग्रेजी पढ़नी आरम्भ की थी तब भी मेरा उनसे झगड़ा हुआ था, परन्तु सच बात समझ जाने पर फिर उन्होंने कभी आपत्ति नहीं उठाई। ऐसा ही अब होगा।”

“जब होगा तब देखा जायेगा। अब आप इन बातों को छोड़ दें। मैं इस विषय पर बात करना नहीं चाहती।”

इस विषय पर बात तो समाप्त कर दी गई, परन्तु इस प्रकार मन के उद्गारों को रोकने के पश्चात् क्या किसी और विषय पर बातचीत हो सकती थी? मधुसूदन जानता था कि जब मन में एक बात भरी हो तो दूसरी बातें मुख से नहीं निकल सकतीं। यदि दूसरी बातें की भी जायें तो उनमें रस उत्पन्न नहीं हो सकता और ऐसी बातें करने से मन पर उलटा प्रभाव पड़ता है।

मधुसूदन ने विषय बदलकर नरोत्तम के विषय की बात आरम्भ कर दी। उसका मुख-समाचार पूछने के पश्चात् माताजी की चर्चा हुई। यह भी समाप्त हुई। कुछ और इधर-उधर की बातों के पश्चात् सब विषय, जिन पर बातचीत सम्भव थी, समाप्त हो गये और पश्चात् दोनों अपने मन के विचारों में गोते खाने लगे। इस प्रकार एक घण्टे के लगभग व्यतीत हो गया। पूर्णमा बीच-बीच में कलाई पर बँधी घड़ी में समय देख लेती थी।

परन्तु इस प्रकार समय पहाड़-सा प्रतीत हो रहा था। वह व्यतीत होने में ही नहीं आता था। अभी गाड़ी के प्लेटफॉर्म पर आने में तीन घण्टे कुछ मिनट बाकी थे। “पढ़ने के लिए स्टॉल से कोई पत्र ही ले आइये। समय व्यतीत नहीं होता।”

मधुसूदन ‘दैनिक लीडर’ की एक प्रति ले आया, परन्तु मन को रोकने के लिए यह पर्याप्त नहीं था। आँखें तो शब्द, पंक्तियाँ और लेख-पर-लेख पढ़ रही थीं परन्तु

समझ में कुछ नहीं आ रहा था। आखिर पूर्णिमा ने समाचार-पत्र दूर फेंक दिया और आँखें मूँदकर सम्मुख रखी मेज़ पर सिर रख लिया। कुछ काल के पश्चात् उफ़ कहकर वह उठ खड़ी हुई और वेस्टिंगरूम में इधर-उधर घूमने लगी। अब मधुसूदन से न रहा गया। वह बोल उठा, “असम्भव को सम्भव करने का यत्न करना कितना कठिन है !”

“क्या असम्भव है ?”

“मन के विचारों को दवाना, विशेषतः जब वे विचार अत्यन्त दुःखदायक हों।”

“परन्तु जब उन विचारों को प्रकट करने से दूसरे को दुःख हो तो क्या केवल स्वयं दुःख सहना उचित नहीं ?”

“अपने प्रियजनों से यदि मुख बाँटना अच्छा है तो दुःख बाँटना क्यों अच्छा नहीं ?”

“दुःख बाँटने से यदि यह कम हो जाय तब भी बात है। परन्तु यह कम नहीं हो सकता। सम्भव है, और अधिक हो जाय।”

“बतलाने से दुःख मिट जाता है और प्रायः दुःख केवल भ्रम ही होता है। भ्रम मिटाने के लिये इसे प्रकट करना ही एक उपाय है। सम्भव है यह उस रस्सी के समान हो जो अँधरे के कारण साँप का रूप धारण कर लेती है। तो क्या यह उचित नहीं कि किसी को रोशनी दिखाने के लिये कह दिया जाय ? रोशनी होने पर भ्रम निश्चय ही दूर हो सकता है।”

“परन्तु वह रोशनी है किसके पास ?”

“इसका होना एक साधारण व्यक्ति के पास भी सम्भव है।”

“हाँ, तो आपके पास कौन प्रकाश डालने के लिये है ? मेरे मन में तो बात स्पष्ट है। इसमें भ्रम का लेशमात्र भी नहीं।”

“जो भ्रम में फँसे होते हैं वे प्रायः ऐसा ही समझते हैं। पिताजी की बात एक रज्जू की भाँति साँप समझ ली गयी है। यह भ्रम नहीं तो और क्या है ?”

“आपके पिताजी की बात तो एक ऐसी वटना थी जिसने कई और बातें मन में जागृत कर दी हैं। इन सबके कारण दिमाग में ऐसी हलचल मच रही है कि कुछ करते-धरते नहीं बनता।”

“तो इसका अर्थ यह है कि मन में कुछ और भी बात है। क्या उसकी चर्चा भी अनुचित है ?”

पूर्णिमा फिर कुर्सी पर बैठ गई थी और सिर को हाथों में पकड़कर कुर्सी की पीठ की तरफ झुक गयी, मानो उसमें तीव्र वेदना हो रही हो।

मधुसूदन ने उत्सुकता से पूछा, “क्यों, क्या बात है ?”

“सिर फटा जाता है। दिमाग में विचार अस्त-व्यस्त हो रहे हैं और मैं कह नहीं सकती कि इसका क्या परिणाम होगा ?”

“इसी कारण तो कह रहा हूँ कि जो कुछ बात है वह कह दो तो उसका उपचार ढूँढ़ा जाये।”

“कहने को तो बहुत कुछ आई थी, परन्तु अब कहते नहीं बनता। इस समय तो रहने ही दो। इस नई परिस्थिति के कारण अब चुप रहना ही ठीक है।”

“कौन-सी नई परिस्थिति?”

“बात यह है कि मैं अब आपसे अपना विवाह सम्भव नहीं समझती। यद्यपि पहले भी बहुत-सी आपत्तियाँ थीं फिर भी मैं उनको दवाती चली जाती थी। अब यह बात तो मेरे अधीन नहीं है। मैं इसको बदल नहीं सकती।”

“तो क्या तुम्हें मेरे कहने का विश्वास नहीं आता? मैं तो यह कह रहा हूँ कि पिताजी के विचार शीघ्र ही बदल जायेंगे। उन्होंने मुझसे राय किये बिना उन देहाती ब्राह्मणों को बुला लिया था। यदि वह पहले मुझको बता देते तो मैं उनको ऐसे समझा देता कि बात यहाँ तक न पहुँचती। अब भी पिताजी को तनिक बताने और समझाने की आवश्यकता है।”

“कुछ भी हो, जब मन में एक बार विप उत्पन्न हो जाता है तो वह फिर किसी भी प्रकार निकल नहीं सकता। सेठ साहब ने जो मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव किया था, क्या मैं भूल सकती हूँ? इतना तो मेरे मन पर सदैव अंकित रहेगा कि वह बहुत ही अदूरदर्शी हैं। इसी प्रकार, चाहे कुछ हो, यह बात मैं कभी नहीं भूल सकूँगी कि आपके पिता एक मूर्ख, गँवार ब्राह्मण कन्या को एक अच्छी-खासी पढ़ी-लिखी कायस्थ कन्या से अधिक योग्य समझते हैं। यह बात तो अब जीवन-भर मन में खटकती रहेगी कि मैं कायस्थ की बेटी हूँ और इस कारण ब्राह्मण देवता की आँखों में पतित हूँ।”

इतना कहते-कहते पूर्णिमा का मुख तमनमा उठा। अपने मन के आवेश को शान्त करने के लिये उसने आँखें मूँद लीं और मेज पर सिर रखकर विचारमग्न हो गयी।

मधुसूदन को उसके वाक्य मुख पर चाँट लगते हुए प्रतीत हो रहे थे। वह जानता था कि इसमें उसका कुछ भी दोष नहीं है, परन्तु ऐसे पिता का पुत्र होना ही दोष था। संसार चाहे टल जाय, परन्तु उसका पिता से सम्बन्ध अटूट है और उसके पिता के विचार बदल नहीं सकते, केवल दबाये जा सकते हैं। वह चुप कराये जा सकते हैं, परन्तु उनके मन के भावों को कैसे बदला जा सकता है। मधुसूदन जब यह बात सोचता था तो उसको पूर्णिमा का कथन सर्वथा सत्य प्रतीत होता था कि मन का विप निकाला नहीं जा सकता।

मधुसूदन के मन में बार-बार यह प्रश्न उठता था कि यदि पूर्णिमा के लिये पिता को छोड़ना पड़े तो क्या वह ऐसा कर सकता है। उसके दिल और बुद्धि में उन्ध-युद्ध चल रहा था। दिल कहता था, छोड़ दो। विचार कहता था, नहीं। पूर्णिमा

ने जब कहा था कि वह बातें तो बहुत करने आई थीं परन्तु अब नहीं कर सकती, यह उसके मन का सच्चा चित्र था। वह इस छोटी-सी घटना से एक ऐसे मार्ग पर धकेल दी गई है जो दूर से दूर होता जा रहा है। अभी से ही पूर्णिमा आत्मीयता का अभाव पाने लगी है। वह अब उसे दूसरा, अन्य अनुभव करने लगी है। इसी कारण वे बातें, जो वह उससे करने के लिये आई थी, नहीं कर सकती; ऐसा प्रतीत होता था कि वह उस आत्मीयता के सम्बन्ध को तोड़ने में अत्यन्त दुःख अनुभव कर रही है। मधुसूदन डरता था कि बार-बार इस दुःखद विषय पर बात करने से कहीं मन में विकार न बढ़े, इस कारण वह चुप था।

उस दिन बहुत कठिनाई से समय व्यतीत हुआ और गाड़ी आते ही पूर्णिमा उसमें जा बैठी। मधुसूदन ने गाड़ी छूटने से पहले केवल यह पूछा, “अब कब दर्शन होंगे?”

“जब भाग्य में बदे होंगे।” इस उत्तर के बाद फिर कुछ बात नहीं हुई।

: ५ :

“मैं पार्टी छोड़ना चाहती हूँ,” पूर्णिमा अपने भाई नरोत्तम से कह रही थी, “मुझे आपके कार्यक्रम में विश्वास नहीं रहा। मेरे विचार ईश्वर और आत्मा के विषय में भी बदल गये हैं।”

नरोत्तम ने गम्भीर भाव धारण कर कहा, “कब से?”

“यों तो परिवर्तन का आरम्भ बहुत दिन से हो गया था, परन्तु इसका अनुभव मैंने उस दिन किया जब आप टांडा में डाकखाना लूटने गये थे। उस रात मैंने स्वप्न में देखा कि वे सब-के-सब लोग जो डाका डालने गये हैं, एक मरुस्थल पर घायल पड़े हैं। उनके रक्त से रेत रंजित हो रही है। मैं डरकर उठ बैठी। उठने के पश्चात् भी वह दृश्य आँखों के सम्मुख घूमता रहा। विशेष रूप से तुम्हारा घायल मुख तो बार-बार मेरी आँखों के सम्मुख आने लगा था। मुझसे शान्त नहीं रहा गया। मैं अधीर हो उठी। फिर क्या हुआ, मैं नहीं कह सकती। मैं अपनी खाट से उठी और पूजा के कमरे में चली गयी। मैंने दीपक जलाया और भगवान् की आराधना करने लगी। माँ जैसे किया करती है, ठीक वैसे ही। तुम कह सकते हो कि यह संस्कारों का फल था। हो सकता है। इतना मुझे स्मरण है कि उस रात जो कुछ भी मैंने किया वह बिना सोचे-समझे किसी आन्तरिक शक्ति की प्रेरणा से किया था। मैं कहती थी कि ‘हे भगवान् ! अवकी वार इन लोगों को वचा दो। मैं फिर इनको ऐसे काम पर नहीं भेजूँगी।’

“कितनी ही देर तक मैं प्रार्थना करती रही। सिर भगवान् के चरणों में रख पड़ी रही। इस समय एक विचित्र घटना घटी। मुझे ज्ञात हुआ कि मूर्ति में कुछ चंचलता, चपलता उत्पन्न हो गई है। मैंने बहुत ध्यान से मूर्ति की ओर देखा। मूर्ति में मधुसूदन, आपके मित्र, खड़े दिखाई दिये। आवाज़ भी उन्हीं की थी। वह

कह रहे थे, 'देशोद्धार डाके डालने से नहीं होगा। यह तुमको पतित कर देगा और पतित दूसरों का उद्धार नहीं कर सकते।'।

"मेरे मुख से अकस्मात् निकल गया 'मधुसूदन', परन्तु वह तो पुनः वैसी ही स्थावर पत्थर की मूर्ति थी। मुझे लज्जा आई। परन्तु, भैया, आप लोगों की जान का डर मुझे वेचैन कर रहा था। मैंने मूर्ति के चरणों पर फिर सिर रखकर कहा, 'अव रक्षा करो, भगवान्, फिर ऐसा नहीं होने दूंगी।'।

"चिरकाल तक मैं ऐसे ही पड़ी रही। ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई मेरी पीठ पर हाथ फेर रहा है। ऐसा प्रतीत होता था कि मुझे कोई आशीर्वाद दे रहा है। मैं इस आशीर्वाद का सुख-स्वाद लेती रही और हिली नहीं। मुझे भय था कि पहले की भाँति फिर यह आनन्दमय स्वप्न टूट न जाय। कुछ काल पश्चात् 'पूर्णमा, उठो! अब चिन्ता की बात नहीं,' यह आवाज मेरे कान में आई।

"मैं उठी। मैंने देखा कि दादा मेरी पीठ पर हाथ फेर रहे थे। इस प्रकार मैं ठाटु-पूजा करती पकड़ी गयी थी। दादा मेरी घबराहट देखकर हँस पड़े। मैंने अपनी घबराहट को छिपाने के लिये पूछा, 'भैया कहाँ हैं?'

'वह और अन्य सब सही-सलामत हैं। परन्तु, पूर्णमा, यह तुम्हारे मन में आज भय क्यों उत्पन्न हुआ है? तुम मोह-ममता में फँस गयी हो। नरोत्तम से तुम्हारा विशेष नेह क्यों है? इसीलिये न कि तुम दोनों एक ही कोख से उत्पन्न हुए हो? क्या एक ही खेत में पैदा होने से दो गेहूँ के दानों में कोई विशेष ममता होती है? यदि नहीं तो फिर तुम्हें क्यों है? यदि तुम कृष्ण को भगवान् मानती हो,' इतना कहते-कहते दादा ने सामने की मूर्ति की ओर संकेत किया, 'यदि उन्हें तुम अपने ने बड़ा नमस्जती हो तो उन्हीं का कहना क्यों नहीं मानती? वह गीता में कहते हैं, 'भाई, बन्धु, माता, चाचा, ताऊ सब ऐसे नहीं हैं जैसे दिखाई देते हैं। यह नन्वन्धु जरीर का है और शरीर नञ्वर है। अनश्वर आत्मा है और वह न किसी का भाई है, न मामा। आज जो तुम्हारा भाई है, पिछले जन्म में कहाँ था और तुम्हारा क्या था, कौन जान सकता है।' फिर वही कृष्ण एक और स्थान पर कहते हैं, 'काम का ध्येय ही काम की सार्थकता को सिद्ध करता है। अच्छा काम वह है जिसका प्रयोजन अच्छा है। बुरे प्रयोजन की सिद्धि के लिये किया गया काम बुरा ही होता है।' जब ऐसा है तो फिर तुम भीरुता के गड़हे में क्यों गिर पड़ी हो?'

"मेरे मन में दादा की बातों से सन्तोष नहीं हुआ था। उस समय से मेरे और पार्टी के लोगों के विचारों में भेद उत्पन्न हुआ है। यदि भगवान् की प्रार्थना से कुछ नहीं बनता तो चित्त को शान्ति क्यों मिलती है? इसके अतिरिक्त मैं समझती हूँ कि आतंकवाद में दोष है। कमल के व्यवहार ने मेरे बदलते हुए विचारों को बदलने में सहायता दी है। वह अपनी दुष्टता को समझता ही नहीं। दुष्टता करने को वह अपना अधिकार मानता है और उससे रोकने वाले को वह अपनी स्वतंत्रता का

विरोधी समझता है। मैं समझती हूँ कि कमल की सृष्टि में कारणरूप वे सिद्धांत हैं जिन पर हमारी पार्टी बनी है। यह भी हो सकता है कि हमारी पार्टी ही ऐसी हो जहाँ ऐसे दुष्ट प्रकृति के लोगों को स्थान मिलता हो। मुझे यह सब गड़बड़ प्रतीत होता है।”

नरोत्तम चुपचाप पूर्णिमा के उद्गारों को सुनता रहा। वह जानना चाहता था कि उसके विचारों में कुछ गम्भीरता भी है या केवल उथलापन। इस लम्बी वक्तृता को सुनकर भी नरोत्तम उसके आंतरिक भावों को नहीं समझ सका। उसने पूर्णिमा को धूरकर देखते हुए पूछा, “तुम देश की स्वतन्त्रता को भी आवश्यकता समझती हो अथवा नहीं?”

“समझती क्यों नहीं। विना राजनैतिक स्वतंत्रता के मानसिक और आत्मिक उन्नति स्थिर नहीं रह सकती।”

“मैंने समझा था कि सबकुछ ठाकुरजी की भक्ति में ही लीन हो गया है। अब देश को स्वतंत्र करने के लिये ठाकुरजी की पूजा को तुम किम प्रकार आवश्यक समझती हो?”

“मन को दृढ़, सुन्दर और सामर्थ्यवान बनाने के लिए ईश्वर की भक्ति ही परमावश्यक है।”

“महमूद गज़नवी के आक्रमण के समय, जानती हो, क्या हुआ था? लोग सोमनाथ के मन्दिर में पूजा से अपने हृदय की दुर्बलता ही दूर करते रह गये थे और यवन हज़ारों नर-नारियों को दास बनाकर गज़नी ले गया और वे वहाँ के बाज़ारों की शोभा बढ़ाने लगे।”

“हाँ, परन्तु साथ ही यह भी जानती हूँ कि शिवाजी ने भवानी की पूजा से ऐसा वर प्राप्त किया था कि असफलता मिर पर पाँव रख उनसे दूर भाग गयी थी। भैया, मुसलमानों के आक्रमण के समय देश में कोई वास्तविक नेता नहीं था। नेता के अभाव का कारण देश में ब्राह्मणों तथा बौद्ध-भिक्षुओं का मिथ्या उपदेश था। देश को परतन्त्रता से मुक्त करने के लिए देश में अच्छे नेता की आवश्यकता है। अच्छे नेता तब उत्पन्न होंगे जब हमारा समाज समष्टि रूप में उन्नत होगा। जितना समाज उन्नत होगा उतने ही उच्चकोटि के नेता उसमें उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसे पतित समाज में, जहाँ जात-पाँत के वेहूदा बन्धन हैं, जहाँ छूत और अछूतों का झगड़ा है, जहाँ शिक्षा केवल नाममात्र को है, जहाँ पढ़े-लिखे विदेशी आचार-व्यवहार के भक्त हैं और अनपढ़, जिनकी संख्या असीम है, मूर्ख, गँवार, अज्ञानी पुरोहितों, मुल्लाओं और पुजारियों के अधीन हैं, वहाँ भला किसी महान् पुरुष का उत्पन्न होना कैसे सम्भव हो सकता है? जहाँ नेता स्वयं धूर्त, ठग, स्वार्थी और दुराचारी हों वहाँ देशोद्धार होना केवल स्वप्नमात्र है।”

नरोत्तम ने मुस्कराते हुए कहा, “यह सबक मधुसूदन ने पढ़ाया है क्या?”

पूर्णमा मधुसूदन का नाम सुनकर सन्न रह गई। बात ठीक थी। वह जो कुछ कह रही थी सब मधुसूदन के बोये हुए बीजों का फल था। परन्तु वह स्वयं भी ऐसा ही समझने लगी थी। इसके अतिरिक्त वह इस समय मधुसूदन के विषय में कुछ भी मोचना अथवा कहना नहीं चाहती थी। इसलिए वह क्रोध में बोली, “मैं मधुसूदन वगैरह कुछ नहीं जानती। मैं तो केवल यह कहती हूँ कि मेरा कहना यदि ठीक है तो राजनैतिक दल बनाने से पूर्व सामाजिक उन्नति के लिए यत्नशील होना चाहिये। हिन्दू-समाज को एक बार पुनः उच्चतम पदवी पर पहुँचा दिया जाए, तब भगवान् की कृपा से कोई अच्छा नेता यहाँ उत्पन्न होगा और देश का उद्धार सुगमता से हो जाएगा। इस समय तो कमल जैसे नेताओं के उत्पन्न होने की ही सम्भावना है। ऐसे लोगों की जहाँ समाई है मैं वहाँ नहीं रहना चाहती। आज से मैं समाज-सुधारक बनूँगी और समाज की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न करूँगी।”

“विदेशी राज्य-सत्ता सामाजिक सुधार को अच्छा नहीं समझती। इस कारण निष्पक्षता के बहाने वह उन लोगों को प्रोत्साहन देती रहती है जो समाज में परिवर्तन नहीं चाहते। तुम स्त्री जाति को पुरुषों के समान पदवी दिलाना चाहती हो। सरकार तुम्हारा पक्ष नहीं लेगी, प्रत्युत् तुम्हारा विरोध करेगी। वह यह कहेगी कि तुमने ऐसी बातें की हैं जिससे प्रचलित प्रथा के मानने वालों के मन को ठेस पहुँचती है। इस कारण तुम अशान्ति फैलाती हो और तुम दण्ड की भागी हो। बताओ, ऐसी अवस्था में समाज-सुधार कैसे हो सकता है? सरकार हमारी प्रत्येक अच्छी बात को जानकर अथवा अनजाने, विरोध करती है। यहाँ तक कि धार्मिक स्वतन्त्रता, जिसको सरकार ने दे रखा है, यथार्थ में झूठी है। समझो, तुम अपने घर में बैठकर भगवत् भजन कर रही हो और तुम्हारे पड़ोस में यदि किसी मुसलमान को तुम्हारे भजन पसन्द नहीं और वह विरोध करता है तो तुम फसाद की जड़ मानी जाओगी। अभिप्राय यह है कि जब भी तुम कोई सुधार की बात करोगी तो निश्चय वह पुराने विचार के लोगों को स्वीकार नहीं होगी और तुम अशान्ति पैदा करने के अपराध में पकड़ी जाओगी।”

“मैं पकड़-धकड़ से नहीं डरती। देखो, चोर-डाकू भी पकड़े जाते हैं और राजनीतिक कार्यकर्ता भी। इसका अभिप्राय यह नहीं कि राजनीतिक कार्यकर्ता भी डाके डालने लगें। दोनों को पकड़कर जेल में डाल देने से दोनों काम एक समान नहीं हों जाते। इसी प्रकार सामाजिक उन्नति आधार है। राजनीतिक उन्नति स्वयं उसके पीछे हो जाएगी। अतएव, यदि कष्ट ही भोगना है, यदि अपना सर्वस्व ही स्वाहा करना है तो जाति के पतन के कारणों को मिटाने के लिए यत्न करना चाहिए, न कि बाहरी बातों में परिवर्तन उत्पन्न करने के लिए।”

नरोत्तम ने अब कुछ खिन्न मन से कहा, “मैं तुम्हारी बात नहीं समझा। क्या तुम पूजा-पाठ, मन्दिर, प्याऊ और आत्मा-परमात्मा के झगड़ों को मूल समस्यायें

समझती हो और देश में स्वदेशी राज्य स्थापित करना पत्तों को पानी देना ? क्या तुम यह साधारण-सी बात भी मानती हो या नहीं कि भारत में प्रजातन्त्र राज्य हो, प्रजा के प्रतिनिधि प्रजा के हित के लिए राज्य करें ?”

“भैया, तुम्हारा स्वभाव है कि तुम कई परस्पर विरोधी बातों को मिलाकर रख देते हो। इस कारण तुम्हारे परिणाम वास्तविक सत्यता को नहीं पहुँचते। भला तुम ‘प्रजा-हित के लिए राज्य’ और ‘प्रजा के प्रतिनिधियों का राज्य’ पर्याय-वाचक कैसे समझते हो ? क्या यह सम्भव नहीं कि प्रजा स्वयं अज्ञानी, असभ्य और पतित होने से प्रतिनिधि भी ऐसे ही चुन देगी और फिर उनसे चलाई गई राज्य-सत्ता प्रजा-हित के लिए नहीं होगी ? क्या प्रजा का आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक विकास अधिक आवश्यक एवं प्रथम स्थान नहीं पाता ? जिनसे तुम प्रतिनिधि चुनने को कहते हो क्या उनमें अपना हित-अहित पहचानने की शक्ति उत्पन्न करना प्रारम्भिक बात नहीं है ? हाँ, मैं समझती हूँ कि सामाजिक उन्नति करना प्रथम कार्य है। भारत-जैसे पतित देश में राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए यत्न करना पत्तों को पानी देने के समान है।”

नरोत्तम पूर्णिमा की अकाट्य युक्तियों को सुन मन-ही-मन प्रसन्न था, परन्तु वह हार मानने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने अपने निरुत्तर होने को छिपाने के लिए हँसी-मजाक का आश्रय लिया। वह कहने लगा, “ओह, अब तो हमारी दीदी बहुत समझदार हो गई है। मधुसूदन ने उसे सिखा-पढ़ाकर योग्य बना दिया है। अच्छा, दीदी, बताओ, अब तुम्हारा विवाह कब कर दिया जाए ? जिस दिन तुम्हारा विवाह...”

पूर्णिमा को विवाह से चिढ़ हो गई थी। उसने गम्भीर वार्तालाप को इस प्रकार हँसी में बदलते देख पाम रखी दवात को नरोत्तम पर दे मारा—“तुम टेढ़ी-मेढ़ी बातों को यहीं नहीं छोड़ोगे, तो यह लो।” यह कह वहाँ से उठकर वह हँसती हुई भागी।

दवात नरोत्तम के कंधे से टकराकर खुल गई और उसका कुर्ता और धोती स्याही के रंग से लथपथ हो गये। अपने कपड़ों की दुर्दशा देख नरोत्तम ने केवल यह कहा, “हट, चुड़ैल !”

माँ इधर ही आ रही थी। पूर्णिमा भागती हुई उससे टकरा गई। माँ ने उसे बेतहाशा भागते हुए देख पूछा, “अरी ! यह क्या हो रहा है ?”

कमरे से नरोत्तम बाहर निकल अपने रंगे कपड़ों को दिखाता हुआ बोला, “हो क्या रहा है, दीदी अपने विवाह की खुशी में होली खेल रही है।”

पूर्णिमा दाँत दिखाकर ‘ई ई’ करती हुई वहाँ से भाग गई।

माँ नरोत्तम को सिर से लेकर पाँवों तक दवात के रंग से रंगा देख हँस पड़ी। परन्तु शीघ्र ही रोककर कहने लगी, “लला, एक दिन तुम ही इलाहाबाद क्यों नहीं

चले जाते ? जाओ और सब काम तय कर आओ ।”

नरोत्तम ने मुस्कराते हुए कहा, “हाँ, अब तो जाना ही होगा, नहीं तो यह मेरे सब कपड़े रंग देगी ।”

डाके की योजना

मधुसूदन जब पूर्णिमा को विदा कर स्टेशन से लौटा तो उसका सिर घूम रहा था । इसके पूर्व वह अपने मन में यह समझ रहा था कि पूर्णिमा से विवाह निश्चित ही है । यह विचार उसके लिए कितना आनन्दप्रद था । उसे ऐसा प्रतीत होता था कि उसके जीवन की रात्रि-वेला समाप्त होकर सौभाग्य-सूर्य उदय होने वाला है । प्रभात कितनी आशाओं, आकांक्षाओं और योजनाओं से भरा होता है । पाँ फटते ही मनुष्य दिन-भर का कार्यक्रम बनाने लगता है । उसमें मनोहर, सुन्दर, आनन्दप्रद कामों की शृङ्खला बाँध लेता है । परन्तु यदि इन सब मनसुवों के बना लेने पर उसका स्वप्न टूट जाए, प्रभात केवल स्वप्न का प्रभात ही रह जाए और मनुष्य पुनः अपने-आपको निशा के अँधकार में पड़ा हुआ जान ले तो कितनी निराशा होती है । इसी प्रकार मधुसूदन की अवस्था हो गई थी । वह अनुभव कर रहा था कि वह अभी भी रात के घोर अँधेरे में पड़ा है और उसे हाथ पसारे नहीं सूझता । वह उस नाविक की भाँति अनुभव कर रहा था जिसकी नाव रात को सोते-सोते किनारे से खुलकर मंझधार में जा पड़ी हो, अँधेरे में उसे किनारा न दिखाई देता हो और उसके चप्पू गुम हो चुके हों, नाव तीव्र धारा में बही जाती हो और नाविक को ज्ञात नहीं कि कब भँवर आ नाव उलट जाएगी । ऐसी अनिश्चित अवस्था में पड़ा हुआ मधुसूदन स्टेशन से लौटा था ।

कई दिन तक वह घर से बाहर नहीं निकला । उसने पिता से फिर अपने विवाह के विषय में बातचीत नहीं की और उसके पिता ने भी इस विषय में मौन साधे रखा । यथार्थ में दोनों इस विषय पर बात करने से डरते थे । श्यामाचरण समझता था कि लड़के पर यदि बहुत दबाव डाला गया तो वह हाथ से निकल जाएगा और शायद घर छोड़ दे । मधुसूदन समझता था कि विचार-परिवर्तन भीतर से हो सकता है, बाहर से दबाव डालने से तो हठ बढ़ जाता है । इसी प्रकार दिन गुजर रहे थे । जब कई दिन इस प्रकार गुजर गए तो श्यामाचरण के मन में चिन्ता सवार हुई । मधुसूदन घर से तो क्या, अपने कमरे से भी बाहर नहीं निकलता था । इससे वह बीमार हो सकता था । एक दिन श्यामाचरण ने मधुसूदन से कह ही दिया, “आजकल तुम घूमने नहीं जाते, क्या बात है ?”

“आजकल बाहर कुछ काम नहीं है।” इतना कह मधुसूदन अपने काम में लग गया।

श्यामाचरण कुछ काल तक पुत्र की ओर देखता रहा। फिर कुछ साहस कर कहने लगा, “और घर में कौन-सा बड़ा काम है? दिन-भर क्या करते रहते हो?”

इसका उत्तर उसे एक शब्द में मिला, “स्वाध्याय।”

“क्या स्वास्थ्य अधिक आवश्यक नहीं है?”

“हाँ।”

“तो सुबह-शाम टहल आया करो।”

“बहुत अच्छा।” मधुसूदन बात को टालना चाहता था।

“और हाँ, कल राय साहब ने तुम्हें पूछा था।”

यह केवल बहाना था। श्यामाचरण चाहता था कि मधुसूदन घूमा-फिरा करे, परन्तु राय साहब के याद करने से मधुसूदन ने यह समझा कि वह अवश्य पूर्णिमा के विषय में पूछेंगे। मन में यह सोच कि शायद वह कोई मार्ग बता सकें जिससे विगड़ा काम बन जाए, उसने घर से निकलने का निश्चय कर लिया।

जब वह सेठ साहब की बैठक में पहुँचा तो वहाँ दूसरा ही ढंग देखा। दिन के ग्यारह बज चुके थे, परन्तु सेठ साहब अभी सोने की पोशाक में थे। सम्मुख जले सिगरेटों के टुकड़े और जली दियासलाइयों का ढेर लगा हुआ था। सिर के बाल बिखरे हुए और मुख का रंग पीला था। बहुत परेशान प्रतीत होते थे। मधुसूदन को नमस्कार कर सामने खड़ा देख बितर-बितर उसकी ओर देखने लगे। उनकी ज्योतिहीन आँखों को देख मधुसूदन घबरा गया और प्रश्नभरी आँखों से उनकी ओर देखने लगा।

सेठ साहब, जैसे अकस्मात् बात याद आई हो, पूछने लगे, “इतने दिन कहाँ रहे हो?”

“घर पर ही था। क्या बात है?”

“भाई, ग़ज़ब हो गया है।” इतना कह सेठ साहब अपने स्थान से उठ इधर-उधर घूमने लगे।

मधुसूदन ने समझा, शायद चोरी हो गई है। उसने पूछा, “क्या कुछ गुम हो गया है?”

“नहीं, अभी गुम नहीं गया, परन्तु जानें में सन्देह भी नहीं है।” यह कह राय साहब फिर कुर्सी पर बैठ गए और एक नई सिगरेट जला ली।

मधुसूदन बहुत हैरान था और यह जानने के लिए बहुत उत्सुक था कि क्या हो गया है। फिर भी उसने पहले सांत्वना देना उचित समझा। वह कहने लगा, “आपने चाय पी है या नहीं?”

“भाई, आज किसी वस्तु में रुचि नहीं होती।”

सेठ साहब की स्त्री शायद मधुसूदन की आवाज सुन बाहर चली आई थी। कहने लगी, “वेटा, इनको समझाओ न। रात भी इन्होंने कुछ नहीं खाया और रात-भर ऐसे ही घूमते-घूमते काट दी है।”

मधुसूदन ने और भी चिन्ता प्रकट करते हुए कहा, “माँजी, चाय बनाकर भेजो न। बिना खाये-पिये कैसे काम चलेगा?” फिर सेठ साहब की ओर देखकर बोला, “यह आप सिगरेटों का हवन किसलिए कर रहे हैं? इससे तो दिमाग और भी चकराने लगता है। छोड़िये इनको।”

सेठानीजी ने नौकर को चाय लाने के लिए कह दिया और फिर आकर बैठ गयीं। वह मधुसूदन की ओर ऐसे भाव से देख रही थीं मानो वह चाहती थीं कि वह सेठ साहब को धैर्य दे। उनसे बातचीत कर उनका ध्यान बदल दे। मधुसूदन कुछ काल तक सोचता रहा। फिर उसने पूछा, “माँजी, हुआ क्या है?”

“होना क्या था। एक चिट्ठी कल आई थी। वस, उसके बाद ही से यह घबराहट पैदा हो गई है। पूछने पर भी नहीं बताते कि क्या बात है।”

इस समय एक थाल में चाय लेकर नौकर वहाँ आ पहुँचा। सेठानीजी ने चाय बनानी आरम्भ कर दी। सेठ साहब कहने लगे, “मुझे नहीं पी जाएगी। देखकर मुझे मिचली होने लगती है।”

मधुसूदन ने कुछ जोर से कहा, “कुछ बात नहीं। कै हो जायगी तब भी ठीक है। पित्त निकल जाने से शांति हो जाएगी। ये सिगरेट फूँक-फूँककर आपने दिमाग खराब कर लिया है।”

सेठजी चाय पीने के लिए बाध्य हो गए और चाय ने लाभ भी किया। एक-आध टोस्ट और चाय की एक प्याली पीने पर उनको कुछ शांति हुई। अब सेठ साहब कहने लगे, “कल क्रांतिकारी दल वालों ने मुझे एक चिट्ठी लिखी है। वे लिखते हैं कि पचास हजार रुपया तुरन्त हमारे पास पहुँचा दो, नहीं तो परलोक भेज दिये जाओगे। ये वही दल वाले हैं जिन्होंने कलक्टर साहब के बँगले की घटना की थी।”

मधुसूदन ने पूछा, “तो आप डर गए हैं?”

“नहीं, उनकी चिट्ठी से तो नहीं डरा। हाँ, पुलिस वालों के व्यवहार ने मन को बहुत ठेस पहुँचाई है।”

पुलिस का नाम सुन मधुसूदन घबरा गया। वह उत्सुकता से पूछने लगा, “पुलिस ! पुलिस से क्या हुआ है?”

इस समय सेठ साहब दूसरा प्याला पी रहे थे। चाय का घूँट भरकर बोले, “कल जब मुझे यह चिट्ठी मिली तो मैं तुरन्त कलक्टर साहब के पास पहुँचा। मैंने उन्हें चिट्ठी दिखा दी और अपनी रक्षा के प्रबन्ध की माँग उपस्थित कर दी। उन्होंने उसी समय सुपरिंटेंडेंट खुफिया पुलिस को बुला भेजा और मेरी चिट्ठी उनके हाथ में दे दी। मुझे केवल यह कहा कि मैं घर जाकर आराम से बैठूँ। मैंने कहा, एक तो

मुझे फौरन पिस्तौल का लाइसेंस मिलना चाहिए और दूसरा, रात को स्पेशल गार्ड मिलना चाहिए। मेरी इस माँग को सुनकर कलक्टर साहब हँस पड़े और कहने लगे कि डरने की कोई बात नहीं। ये लोग आज शाम तक हिरासत में होंगे। मैंने कहा, यह तो बहुत अच्छी बात है परन्तु फिर भी पिस्तौल के लाइसेंस देने में क्या हर्ज है। उनका कथन था कि इस प्रकार घबराहट में तो लाइसेंस नहीं मिल सकता। उसके लिए मैं दरखास्त कर दूँ और तहकीकात के बाद विचार हो जाएगा। मैंने फिर कहा कि एक बार तो मेरे लिए लाइसेंस की मंजूरी मिल चुकी है। यह पिछले वर्ष की बात है, परन्तु तब मैंने उसकी जरूरत नहीं समझी थी। उस समय की तहकीकात मौजूद होगी। वही फाइल निकालकर देख ली जाए।

“कलक्टर साहब बोले, ‘उस समय और आज में अन्तर हो गया है।’

“मैंने पूछा, ‘क्या अन्तर हो गया है?’

“वह कहने लगे, ‘तब आप राय साहब थे। अब नहीं हैं। क्या यह इस बात का सुचक नहीं कि आपमें अन्तर आ गया है? उस समय आप सरकार के खैरखाह थे, अब आपने सरकार के द्वारा दी गई पदवी को ठुकरा दिया है।’

“मैंने तब भी बहुत नम्रता से कहा, ‘तो हुआ, क्या सरकार को पदवीधारियों की रक्षा की ही फिकर है और दूसरों की नहीं? मैं पाँच हजार में ऊपर वार्षिक इन्कम-टैक्स देता हूँ।’

“साहब ने कह दिया, ‘हम यह कुछ नहीं जानते। संसार में रोज अनेक मरते हैं और पैदा होते हैं। हमने सबका ठेका तो लिया नहीं।’

“मैंने कहा, ‘परन्तु जब मालूम हो जावे कि अमुक व्यक्ति की जान खतरे में है तो क्या आपका फर्ज नहीं कि उसके लिए जो कुछ आपके बस में है करें?’

“इस पर साहब त्योरी चढ़ाकर बोले, ‘देखिये, मेठ साहब, जब आपने पदवी का त्याग किया था तो आपने लिखा था कि आप सरकार की नीति के विरोध में ऐसा कर रहे हैं। जब आपको सरकार की नीति पसन्द नहीं तो उससे सहायता क्यों पसन्द है? अब आप जाइए और कांग्रेस में अपनी रक्षा के लिए कहिए।’

“इतना कह साहब ने उठकर मुझसे विदा होने के लिए हाथ आगे बढ़ा दिया। क्या यह मामूली बात है? यह अपमान साधारण नहीं। मैंने राय साहबी छोड़ी तो क्या हुआ? मैं टैक्स तो देता हूँ। मैं शरीफ हूँ। कानून को मानने वाला हूँ। इस पर भी इतनी दुल्हार मैं सहन नहीं कर सकता। अपनी बेवसी से लाचार हूँ, परन्तु मन में अपने से अत्यन्त ग्लानि हो रही है।”

मधुसूदन चुपचाप यह सब सुन रहा था। उसने कहा, “आपको इस बात पर इतना रंज नहीं करना चाहिए। यही अवस्था तो तैतीस करोड़ हिन्दुस्तानियों की है। यदि आपकी प्रतिष्ठा दूसरों से कुछ अधिक थी तो वह केवल इसलिए कि आपने देश की भलाई का विचार छोड़कर सरकार को सहायता देना स्वीकार

क्रिया हुआ था। ज्यों ही सरकार को यह ज्ञात हुआ कि आपके दिल में भी गरीब हिन्दुस्तानियों के लिए सहानुभूति उत्पन्न हो गई है तो तुरन्त आपको भी उस रियायत के अयोग्य समझा गया जिसके आप पहले योग्य थे। अब आप भी अन्य तैंतीस करोड़ के बराबर हैं। यह आपके लिए कोई दुःख की बात नहीं होनी चाहिए। तैंतीस करोड़ के सुख-दुःख, उनकी परतन्त्रता और उन पर किए जाने वाले अत्याचार में आप भी उनके साथी हैं।”

“परन्तु पण्डित, मुझे इस अपमान के साथ भारी दुःख इस बात का है कि मैंने व्यर्थ ही पुलिस में यह चिट्ठी दे दी। न वहाँ जाता और न अपमान सहता। यदि मेरी इस चिट्ठी पर कोई पकड़-धकड़ हुई तो मेरे लिए गंगाजी में डूब मरने की बात होगी। मैं पुलिस की सहायता करने गया था और वहाँ मुझसे कह दिया गया कि ‘तुम मरो चाहे जिओ, सरकार ने तुम्हारा ठेका तो लिया नहीं।’ इससे तो पचास हजार उनको दे देता तो ठीक रहता। कम-से-कम यह अपनी बेबसी का ज्ञान तो न होता।”

अब मधुसूदन का ध्यान फिर पुलिस की ओर चला गया। उसने पूछा, “उस चिट्ठी में और क्या लिखा था?”

“चिट्ठी में लिखा था कि पचास हजार रुपया दस-दस के नोटों में आज रात के बारह बजे गायघाट पर मकान नं० २० में पहुँचा दो, नहीं तो वही गत बनेगी जो डेढ़ वर्ष पूर्व कलक्टर साहब की हुई थी। साथ ही यह भी लिखा था कि यदि मैंने पुलिस में रिपोर्ट की तो मेरी खैर नहीं।”

गायघाट नं० २० सुनकर मधुसूदन एक गंभीर विचार में पड़ गया। वह निश्चयपूर्वक जानता था कि नं० २० का मकान पूर्णिमा के मित्र का है। उसे यह भी भली-भाँति विदित था कि कलक्टर के बँगले की कार्यवाही पूर्णिमा की पार्टी का काम था। तो क्या यह भी पूर्णिमा की पार्टी वालों का काम है? हाँ, हो सकता है। ऐसी पार्टी वालों को रुपये की आवश्यकता बनी रहती है और यह जान कि राय साहब देश की बातों से सहानुभूति रखने लगे हैं, वे समझ गए होंगे कि पुलिस में रिपोर्ट नहीं करेंगे।

जब राय साहब चिट्ठी का आशय वर्णन कर चुके तो कहने लगे, “इन दुष्ट पुलिस वालों को यह चिट्ठी दिखाकर क्या मैंने अच्छा किया है?”

“अच्छा हो भी सकता है और नहीं भी। अच्छा तो यों है कि आपने कानून की सहायता की। उन लोगों की बात भी तनिक विचार करें कि कितनी ठीक है। एकदम पचास हजार माँग लिया और फिर धमकी देकर। जो लोग उनके कार्यक्रम से सहानुभूति रखते हैं वे तो देंगे ही, दूसरों से धमकी देकर वसूल करना अन्याय है। इस जबरदस्ती का फल उनको मिलना चाहिए। परन्तु क्या पुलिस वाले उनको पकड़ सकेंगे? मैं तो समझता हूँ कि यह अत्यन्त कठिन है। मुझे

पुलिस के इन कामों पर किंचित् भी विश्वास नहीं है। इसमें बुद्धिमान, चतुर लोग नहीं हैं। सभी उजड़ु, गँवार, कम पढ़े-लिखे इस महकमे में लिए जाते हैं। इसी ने आज तक पुलिस को अपने काम में कम सफलता मिली है। सरकार के अन्य महकमों की भाँति इसमें भी योग्यता, ईमानदारी इत्यादि की कुछ कीमत नहीं है। यहाँ भर्ती खास-खास जाति वालों की होती है, योग्य लोगों की नहीं। तरक्की सिफारिशों पर की जाती है, चतुराई के आधार पर नहीं। ऐसी अवस्था में अच्छा नहीं किये लोग किसी को भी न पकड़ सकें।”

“परन्तु पुलिस ने पंजाब और बंगाल में कितने ही पड़यन्त्रकारियों को पकड़ा है।”

“इसमें पुलिस की चतुराई तो क्या होगी, अधिकांश पड़यन्त्रकारियों की सूखता, फूट और विषय-वासना ही कारण उनके पकड़े जाने के होंगे।”

“कुछ भी हो, मेरा मन धड़कता है और भय है कि मैंने इन लोगों को पकड़वाने की कुँजी पुलिस के हाथ में दे दी है। यदि मुझे मालूम होता कि सरकारी अफसर इतने तोता-चश्म होते हैं और साधारण जनता से रत्ती-भर भी हमदर्दी नहीं रखते तो मैं कभी भी उनके पास न पहुँचता। मैं पचास हजार सुगमता से दे सकता हूँ।”

“परन्तु आप यह कैसे जानते हैं कि इतनी भारी रकम माँगने वाले यथार्थ में इसका उपयोग देशोद्धार के लिए ही करेंगे? क्या जानें वे भी साधारण चोर-डाकुओं की भाँति कोई हों। इतना रुपया ऐसे नहीं फेंका जा सकता। और सबसे बुरी बात तो धमकी की है।”

“इस धमकी ने ही तो मुझे झक मारने पर बाध्य किया था। यदि वे लोग मेरे पास आते और मुझसे सहायता के लिए कहते तो शायद मैं उनकी मुँहमाँगी मुराद पूरी कर देता।”

“राय साहब, आप छोड़िये इस पश्चात्ताप को। इसमें तो सन्देह नहीं कि इन लोगों ने अनुचित कार्यवाही की है। अब जो बात करने की है वह है अपनी रक्षा की। वे चाहें कितने ही देशभक्त क्यों न हों उनसे बचना आवश्यक है। आपको अपनी जान जोखिम में नहीं डालनी चाहिए और उनसे बचने का उपाय तुरन्त करना चाहिए।”

“मेरा विचार है कि आज तो वे रुपये की आशा में अपने मकान में होंगे। कल तक कुछ प्रबन्ध कर लूँगा।”

“नहीं, राय साहब, आप भूल कर रहे हैं। जिन लोगों ने कलक्टर के बँगले में जाकर वम चलाये थे और वहाँ से साफ बचकर चले गए थे, जो अभी तक पुलिस वालों को चकमा देते रहे हैं, वे साधारण लोग नहीं हो सकते। कौन कह सकता है कि चिट्ठी भेजने के समय से ही उनका कोई जामूस आपके पीछे लगा हो और

उसको यह मालूम हो गया हो कि चिट्ठी मिलने के पश्चात् आप कलक्टर से मिलने गए हैं। इससे वे सचेत हो गए हों और जब पुलिस उनको पकड़ने का प्रबन्ध बनारस में यदि कर रही हो वे यहाँ आ धमकें। एक बात तो निश्चय है कि वे लोग, यदि वही हैं जो कलक्टर के बंगले में बम चला गए थे, तो बहुत चतुर और निठुर हैं। उन्हें दोषी और निर्दोष में भेद करना नहीं आता। वे तो नदी की बाढ़ हैं, जो अपने सामने की सब वस्तुओं को बहा ले जाती है।”

इस चित्र से सेठ साहब घबराए और परेशानी से पूछने लगे, “क्या करना चाहिए?”

मधुसूदन ने उनके कान में कुछ कहा। इससे सेठ साहब का मुख गम्भीर हो गया और कहने लगे, “अच्छा, विचार करूँगा।”

“अवश्य करिए और इतने गुप्त ढंग से कि आपके नौकरों तक को पता न चले।”

सेठ साहब ने केवल ‘हूँ’ ही कहा।

मधुसूदन वहाँ कुछ देर और ठहरकर चल दिया। जब वह सेठ साहब के मकान से निकला तो उसके मुख की आभा विलीन हो चुकी थी। उसके मन में घोर संग्राम चल रहा था। वह मान लेना चाहता था कि पूर्णिमा की पार्टी का यह काम नहीं, परन्तु घटनाओं से और कुछ और बातों से उसकी धारणा असत्य सिद्ध हो रही थी।

मधुसूदन जानता था कि गायघाट नं० २० का मकान पूर्णिमा की पार्टी का मकान है। सेठ कुंजविहारी की उदारता और इतना धन देने की योग्यता पूर्णिमा को ज्ञात थी। पूर्णिमा जब सेठ साहब को रुपया वापस करने आई थी तो वह मधुसूदन को कुछ बतलाने वाली थी, परन्तु विवाह का मामला कुठाली में पड़ जाने से वह उसमें आत्मीयपन की कमी अनुभव करने लगी थी। इसी कारण वह जो बतलाने के लिए आई थी वह बतला नहीं सकी। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि जो बातें वह बताना चाहती थी वे बहुत अंतरंग थीं और केवल उन्हीं को बताई जा सकती थीं जिन पर प्रगाढ़ विश्वास किया जा सके? ये विचार मधुसूदन के दिमाग में बार-बार उठ रहे थे और पूर्णिमा को दोषी सिद्ध कर रहे थे। इस पर भी उसका मन कहता था कि पूर्णिमा और उसके साथी क्या इतने मूर्ख नहीं हो सकते कि वे इस प्रकार की वेहूदा और अपूर्ण योजना बनाएँ। इस योजना में सबसे बड़ी त्रुटि तो यह थी कि जब राय साहब स्वयं एक हजार रुपया मासिक देने के लिए तैयार थे तो इस मासिक सहायता को ठुकराकर सोने के अण्डे वाली मुर्गी को चीर डालने की बात करना पूर्णिमा और उसकी पार्टी के लोगों द्वारा सम्भव नहीं हो सकती। दूसरी मूर्खता की बात यह थी कि चिट्ठी में उन्होंने अपना यथार्थ पता दे दिया था। यदि यह सत्य है कि पूर्णिमा की पार्टी ने यह

कार्यवाही की है तो भारी गलती की है। इस बार उन्होंने स्वयं अपने-आपको पुलिस के हाथ में दे दिया है।

परन्तु यह कैसे हो सकता है कि एक ओर तो पूर्णिमा मासिक आय वापस कर दे और दूसरी ओर वही धन अपनी जान जोखिम में डालकर प्राप्त करने का यत्न करे। ये सब बातें उसके मन में आ रही थीं। वह समझता था कि वे मूर्ख हैं और फिर कहता था, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यह काम किसी और का है।

इसी प्रकार की उधेड़बुन में वह इलाहाबाद की सड़कों पर लक्ष्यहीन होकर घूम रहा था। दोपहर के समय गरमी के मौसम में कड़कती धूप में घूमना उसके दिमाग को और भी खराब कर रहा था। वह एक प्रकार से पागल हुआ चला जा रहा था। वह नहीं जानता था कि कहाँ जा रहा है। मन की प्रेरणा के बिना भी कभी-कभी शरीर काम करता है। यही बात इस समय मधुसूदन के साथ हो रही थी। उसके पाँव उसे रेल के स्टेशन की ओर लिए जा रहे थे। जब वह स्टेशन पहुँचा तो उसे चैतन्य हुआ। वह तीसरे दर्जे के मुसाफिरखाने में खड़ा था। वह वहाँ धूप में वचने के लिये पहुँच गया था। वहाँ एक स्टॉल से उसने वर्फ के पानी का एक गिलास पिया। इसने उसके मन को स्पष्ट रूप में परिस्थिति को समझने की शक्ति दी। वह मन से पूछने लगा, 'उसे क्या करना चाहिए?'

मधुसूदन को इस बात का निर्णय करने में अब देर नहीं लगी। उसने निश्चय कर लिया कि बनारस जाकर इलाहाबाद की परिस्थिति से उन्हें सूचित कर देना चाहिये। पूर्णिमा उससे नाराज होकर गई थी, परन्तु इस बात ने उसके मन में कुछ भी दुर्बलता उत्पन्न नहीं की।

वह पूर्णिमा से प्रेम करता था। इससे उसका धर्म था कि उसे तथा उसके साथियों को खतरे से सचेत कर दे। यदि यह उनका काम है तो भी, और यदि उनका काम नहीं तो भी वहाँ जाकर बताने में हानि ही क्या है। ऐसा विचार कर उसने बनारस का टिकट खरीद लिया और स्टेशन के भीतर जा प्लेटफार्म के चक्कर काटने लगा। अभी गाड़ी आने में दो घण्टे थे। गाड़ी का सम्बन्ध ऐसा था कि वह बनारस में नौ बजे रात से पहले नहीं पहुँच सकता था। यदि सम्भव होता तो वह दिन के समय वहाँ पहुँचना अधिक पसन्द करता। परन्तु उसी दिन रात के बारह बजे से पहले सचेत करना था। रुपया रात के बारह बजे माँगा गया था, अतः पुलिस भी जो कार्यवाही करेगी वह रात के बारह बजे ही होगी।

मधुसूदन सोच रहा था कि गाड़ी यदि समय पर पहुँच गई तो भी पूर्णिमा इत्यादि को सचेत करने के लिये समय बहुत कम है। फिर भी वह यत्न करने पर तुला हुआ था। वह बेचैन अवश्य था, परन्तु डरा हुआ नहीं। मन ही मन अपने वहाँ पहुँचकर काम करने का कार्यक्रम बना रहा था। आठ बजकर पैंतालीस मिनट पर गाड़ी वहाँ पहुँचेगी। साढ़े नौ बजे तक नरोत्तम के घर पहुँच जाएगा

और घटना के समय से ढाई घण्टे पूर्व उनको चेतावनी दे देगा। परन्तु यदि वे लोग घर पर न हुए तो क्या होगा? सम्भव है, नौ बजे से पूर्व ही घर से निकल गए हों। इस अवस्था में वह गायघाट वाले मकान में जाकर उनसे मिलेगा।

गाड़ी में बैठे हुए भी उसका मन चंचल हो रहा था। सारे मार्ग-भर में उसे गाड़ी बहुत धीमी चलती हुई प्रतीत हो रही थी। आखिर यदि गाड़ी शीघ्र चल सकती है तो चलती क्यों नहीं; प्रत्येक स्टेशन पर यदि दो मिनट खड़े होने से काम चल सकता है तो आठ या दस मिनट क्यों खड़ी रह जाती है; और मुगलसराय स्टेशन पर गाड़ी का मेल क्यों नहीं रखा गया, एक घण्टा बनारस के लिए गाड़ी की प्रतीक्षा करनी पड़ती है—ये सब बातें ऐसी थीं जो मधुसूदन के मन में उठ-उठकर उसकी व्यग्रता की सूचना देती थीं।

: २ :

गाड़ी जब बनारस कैंट पहुँची तो नौ बज चुके थे। मधुसूदन को आज ज्ञात हुआ था कि गाड़ियाँ कभी-कभी 'लेट' भी हो जाती हैं। वह लपककर गाड़ी से उतरा और स्टेशन से बाहर निकल, इक्के में बैठ, चौक की तरफ चल पड़ा। इक्के वाले ने चार आने लेने को कहा। मधुसूदन का उत्तर था, "जल्दी ले चलो।"

इक्का भागा चला जाता था, परन्तु मधुसूदन को ऐसा प्रतीत होता था कि वह बहुत धीमे-धीमे चल रहा है। वह इक्के वाले से बोला, "भाई, ज़रा जल्दी चलो। चार आने इक्के के दिये हैं, ठेले के नहीं।"

इक्के वाले ने व्यंग्य के भाव से कहा, "ओ! आपके यहाँ हवाई जहाज़ को ठेला कहते हैं क्या?"

"नहीं, भाई, मुझे काम है, जल्दी करो।"

इक्का चौक में पहुँचा। मधुसूदन इक्के वाले को भाड़ा दे ही रहा था कि एक और इक्का, जो पीछे-पीछे भागा चला आया था, समीप ही आकर खड़ा हो गया। उसमें से एक आदमी उतरकर उसकी ओर बहुत ध्यान से देखने लगा। मधुसूदन उसका कुछ ध्यान न करते हुए चल पड़ा। वह आदमी लपककर उसके पास आया और पूछने लगा, "आप गायघाट जा रहे हैं क्या?"

मधुसूदन गायघाट का नाम सुन कुछ चौंका, परन्तु तुरन्त अपने-आपको काबू में कर बोला, "नहीं तो।"

वह आदमी बोला, "मैंने समझा था..."

मधुसूदन ने उसे डाँटकर पूछा, "क्यों समझा था?"

"मैं वहीं जा रहा हूँ। समझा था, साथ हो जावेगा।"

मधुसूदन ने उसे काटवाँ उत्तर दिया, "आपने गलत समझा था।" इतना कह-कर वह अपने मार्ग पर चल पड़ा। वह आदमी वहीं खड़ा रह गया।

मधुसूदन पूर्णिमा के मकान पर पहुँचा तो किवाड़ नीचे से बंद थे। ऊपर के

एक कमरे में रोशनी हो रही थी। यह अनुमान लगा कि पूर्णिमा अभी जागती है, उसने दरवाजा खटखटाने का विचार किया। इसी समय गली की लालटेन की धीमी रोशनी में उसे एक आदमी पीठ के पीछे से गुजरता प्रतीत हुआ। उसने घूमकर देखा तो ऐसा जान पड़ा कि यह वही इक्के वाला आदमी है जो गायघाट जाने के लिये साथी हूँद रहा था। मधुसूदन को विश्वास हो गया कि खुफिया पुलिस का आदमी उसके पीछे लग गया है। जिस गली में मधुसूदन खड़ा था वह गायघाट को नहीं जाती थी। इससे स्पष्ट था कि वह उसका पीछा कर रहा था। उसने दिल कड़ा कर आवाज दी, “मुनिये, मुनिये।”

वह आदमी लौटा और पूछने लगा, “आप मुझको बुला रहे हैं?”

“हाँ, आप तो गायघाट जा रहे थे न?”

वह आदमी कुछ घबरा गया प्रतीत होता था। बोला, “ओ ! हाँ ! हाँ ! क्या आप भी वहाँ चलिएगा?”

मधुसूदन ने हँसते हुए उत्तर दिया, “भले मनुष्य, यह मार्ग गायघाट को नहीं जाता। यह गली तो आगे जाकर बंद हो जाएगी।”

उसने अचम्भा प्रकट करते हुए कहा, “नहीं जाएगी? यह मार्ग बंद है? तो रास्ता भूल गया हूँ। धन्यवाद, साहब।” यह कहकर वह लौट पड़ा और गली से बाहर निकल गया।

मधुसूदन उसके अचम्भा प्रकट करने से धोखे में नहीं पड़ा था। इस कारण जब तक वह गली से बाहर न निकल गया, उसने किवाड़ नहीं खटखटाया। इस घटना से एक बात उसके मन में स्पष्ट हो गई कि शहर-भर में खुफिया पुलिस का जाल बिछा दिया गया है। इससे उसका बनारस आना और भी आवश्यक प्रतीत होने लगा था।

दरवाजा खटखटाते ही पूर्णिमा की माँ नीचे आ पहुँची। ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी की प्रतीक्षा में थी। मधुसूदन को दरवाजे पर खड़ा देख उसने अचम्भा प्रकट किया और बोली, “तुम कब आये?”

मधुसूदन ने मुख पर उँगली रख उसे चुप रहने का संकेत किया और भीतर आ किवाड़ बंद कर धीमी आवाज में पूछा, “नरोत्तम कहाँ है?”

“कलकत्ते गया है।”

मधुसूदन ने अचम्भे में कहा, “कलकत्ते ! और पूर्णिमा?”

“ऊपर। क्यों, क्या बात है?”

बिना उत्तर दिये वह भागता हुआ ऊपर चढ़ गया और कमरे के बाहर से ही आवाज देता हुआ कमरे के भीतर जा पहुँचा। पूर्णिमा की माँ भी हाँफती हुई वहाँ पहुँच गई। पूर्णिमा हैरानी से दोनों की ओर देखने लगी।

मधुसूदन ने खड़े-खड़े ही पूछा, “यह सब क्या बेहूदापन है?”

पूर्णमा ने कुछ न समझते हुए पूछा, “वेहूदा ! क्या वेहूदापन ? आप घबराये हुए क्यों हैं ? क्या हो गया है ? बतलाइये न, मुझे कुछ मालूम नहीं ।”

अब मधुसूदन हैरान था कि कहाँ से कहना शुरू करे । उसने सोचकर कहा, “जो आदमी स्वयं दे दे उससे छीनने का यत्न करना कहाँ की बुद्धिमत्ता है ?”

पूर्णमा अब भी कुछ नहीं समझी । उसने कहा, “मैं कुछ नहीं समझ सकी । आप पहले बैठ जाइये । घबराहट छोड़कर बातें करें तो पता चले कि क्या सुखता हो गई है ।”

मधुसूदन को विश्वास था कि पूर्णमा उससे असत्य नहीं कहती । इससे वह सोचने लगा कि शायद वह निर्दोष है । वह पास रखी चौकी पर बैठ गया और अपने आशय को समझाने के लिये विस्तार से कहने लगा, “कल सेठ कुंजविहारी को बनारस से एक चिट्ठी गई है । उसमें लिखा था कि क्रांतिकारी दल को पचास हजार रुपये की जरूरत है । उनको इतना रुपया गायघाट पर मकान नं० २० में आज रात के बारह बजे पहुँचा देने को लिखा है ।”

पूर्णमा ने आवेश में कहा, “यह चिट्ठी हमने नहीं लिखी ।”

“मकान नं० २० तो तुम्हारे नेता का मकान है न ?”

“है तो, परन्तु यह चिट्ठी उन्होंने नहीं लिखी । वह एक मास से बनारस में नहीं हैं । सबसे मुख्य बात तो यह है कि आजकल हम डाके डालकर रुपया इकट्ठा नहीं करते । यदि आपको मेरी बात पर विश्वास न हो तो मैं आपको वहाँ ले जाकर यह बात सिद्ध कर सकती हूँ ।”

“कहाँ ले जाकर ?”

“गायघाट पर ।”

“वहाँ अब तुम नहीं जा सकतीं ।”

“क्यों ?”

“वहाँ पुलिस पहुँच गई होगी । सेठ साहब ने चिट्ठी पुलिस के पास भेज दी थी ।”

“ओह !” इतना कहकर पूर्णमा अवाक् रह गई । वह कई मिनट तक नहीं बोली । पश्चात् उसका रंग पीला पड़ गया । होंठ कांपने लगे । वह उठी और पलंग के तकिये के नीचे से पिस्तौल निकाल कारतूस भरने लगी । यह देख मधुसूदन से नहीं रहा गया । उसने पूछा, “क्या कर रही हो ?”

पूर्णमा ने पिस्तौल भरते हुए कहा, “बहुत बुरा हुआ है । रुपया बारह बजे देने को लिखा था न ?”

“हाँ, परन्तु तुम क्या करने जा रही हो ?”

“बात यह है कि आज दादा की चिट्ठी आई है । उसमें उन्होंने लिखा है कि मैंने उन्हें कोई तार भेजा है और उस तार के अनुसार वह आज रात के साढ़े ग्यारह

बजे नम्बर २० के मकान में मुझसे मिलेंगे। मैं पार्टी के कामों में उदासीन हो रही हूँ, इस कारण मैंने तो कोई तार दादा को भेजा था और न ही उनसे मिलने वहाँ जा रही थी; परन्तु अब आपकी बातों से तो बात दूसरी ही प्रतीत होती है।”

“अब क्या प्रतीत होता है?”

पूर्णमा ने पिस्तौल भरकर उसे ‘लॉक’ लगा अपनी कमर में बँधी पेंटी में ठूँस लिया और जूता पहन तैयार हो गई। मधुसूदन ने फिर आग्रह कर पूछा, “तुम क्या करने जा रही हो?”

“वात यह है कि किमी जत्रु ने दादा को फँसाने का पड़्यंत्र रचा है। एक तरफ तो मेठजी को चिट्ठी ऐसे ढंग से लिखी कि वह अवश्य पुलिस में रिपोर्ट कर दें और पुलिस मुराग आसानी से लगा ले और दूसरी ओर दादा को लिख दिया कि मैं वहाँ उनसे उसी समय मिलना चाहती हूँ। दादा ने तो आने को लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि वह फँदे में फँस गये हैं। मैं चाहती हूँ कि उनको उस मकान में जाने से पूर्व ही रोक दूँ।”

“परन्तु आज तो नगर-भर में पुलिस धूम रही है। मेरा अनुमान है कि तुम्हारी गली भी उससे खाली नहीं है।”

“फिर क्या किया जाए? दादा को बचाने का यत्न तो करना ही होगा।”

“परन्तु इतनी रात गए तुम अकेली कैसे जाओगी? मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।”

पूर्णमा ने दो टूक जवाब दिया, “नहीं, यह आपका काम नहीं है।”

“तुम्हारा इस समय अकेला जाना सन्देहोत्पादक होगा और मैं यह नहीं होने दूँगा।”

“क्यों नहीं होने दोगे?”

“तुम पकड़ी जाओगी।”

“आपको इससे क्या?”

“मुझे कुछ नहीं।” मधुसूदन इस प्रकार का उत्तर सुन बहुत लज्जित हुआ। उसका मन फीका पड़ गया। वह इतनी भाग-दौड़ कर उसे सचेत करने आया था और इसका उपहार मिला, ‘आपको इससे क्या!’

कहने को पूर्णमा ने कह तो दिया, परन्तु जब इस वाक्य की कटुता का प्रभाव मधुसूदन के मुख पर देखा तो वह बहुत खिसियाई। बोली, “क्षमा करिये। मेरा अभिप्राय यह था कि आप इस मामले में कुछ नहीं कर सकते।” साथ ही मधुसूदन के चित्त को शान्त करने के लिए बोली, “माँ मेरे साथ जाएंगी। दोनों स्त्रियों का इकट्ठे जाना इतना सन्देहोत्पादक नहीं जितना किसी पुरुष का। आप यहीं ठहरें। हम बहुत जल्दी वापस आ जावेंगी।”

पूर्णमा की माँ भी तैयार हो गई। वे दोनों बहुत फुर्ती से मकान के बाहर

निकल गई। मधुसूदन को इस बात का संतोष था कि उसके बनारस आने से लाभ हुआ है, परन्तु पूर्णिमा का रूपान उससे बहुत अखरा। वह समझता था कि पिताजी के विवाह में आपत्ति उठाने को वह अभी भूली नहीं है। उसके मन में अब सन्देह होने लगा था कि शायद वह किसी अन्य से प्रेम करने लगी है, अन्यथा उसमें नाराज होने का कोई कारण नहीं हो सकता था। पूर्णिमा को उसने विश्वास दिलाया था कि पिताजी की आपत्ति मिट जायेगी। इस पर यदि उसे सन्देह था तो वह उसमें पूछ सकती थी कि पिताजी के न मानने पर उसका व्यवहार कैसा होगा। उसने यह जानने का यत्न भी नहीं किया। आखिर ऐसा होना भी चाहिए। उसका प्रेम होना और फिर स्थिर रहना कठिन-सा था। उन दोनों में बहुत मतभेद था। एक आतंकवाद में विश्वास रखती थी, दूसरा आतंकवाद को हानिकारक समझता था। परन्तु कुछ बात थी जिसको वह समझ नहीं सकता था और जिस कारण वह पूर्णिमा को प्रेम करता था। वह बात मतभेद से ऊपर थी। मतभेद रहते हुए भी वह पूर्णिमा की ओर खिंचता चला जाता था।

आज पूर्णिमा के रूपान ने उसके मन को भारी ठेस पहुँचाई थी और माँ-बेटी के चले जाने के पश्चात् वह वहीं कुर्सी पर बैठ आया ऐसे ही विचारों की उधेड़वुन में लगा हुआ था। अभी उनको गए पन्द्रह मिनट भी नहीं हुए थे कि नीचे ने दरवाजा खटखटाने का शब्द हुआ। मधुसूदन भागता हुआ नीचे गया। उसने सोचा था कि पूर्णिमा वापस आ गई है। अतएव उसने बिना पूछे दरवाजा खोल दिया। दरवाजे के बाहर धीरेन्द्र खड़ा था। वह मधुसूदन को खड़ा देख पूछने लगा, “पूर्णिमा ऊपर है?”

मधुसूदन ने उसे भीतर आ जाने को कहा और दरवाजा बंद कर दिया। इसके बाद उसने बताया कि पूर्णिमा और उसकी माँ उसी की तलाश में गायघाट गई हैं। धीरेन्द्र उलटे पाँव लौट जाने वाला था कि उसने उसे रोककर कहा, “ठहरिए, आप मत जाइए।”

धीरेन्द्र ने पूछा, “क्यों?”

“इसलिए कि आप उनको ढूँढ़ने जायें और वे आपको। क्या रात-भर आँख-मिचौनी का खेल होता रहेगा? आप यहाँ ठहरिए और मैं जाता हूँ।”

धीरेन्द्र ने भी यही उचित समझ मधुसूदन को जाने दिया। वह सीधे मार्ग से गायघाट पहुँचा। इसमें उसे दस मिनट से अधिक नहीं लगे। जब वह वहाँ पहुँचा तो सर्वथा मुनमान था। मधुसूदन का पूर्ण ध्यान पूर्णिमा और उसकी माँ की खोज में लगा हुआ था। उसे न तो यह ध्यान था कि वह स्वयं खतरे में है और न यह जानने की फुरसत थी कि कोई उसे देख रहा है अथवा नहीं। वह निधड़क मकान की ओर बढ़ा। उसकी इच्छा थी कि वह देखने का यत्न करे कि मकान के इधर-उधर तो कोई खड़ा नहीं है। उसका विश्वास था कि पूर्णिमा और उसकी माँ मकान

के समीप ही कहीं छिपी खड़ी होंगी। वह मकान के आगे से गुजरा। उसकी आँखें पूर्णिमा की तलाश में थीं और कान मकान के भीतर कोई शब्द, यदि हो तो, सुनने के यत्न में। यद्यपि बिल्कुल अँधेरा नहीं था तो भी दूर से आने वाली लैम्प की रोशनी में उसे सड़क पर रखे पत्थर दिखाई नहीं दिये। परिणाम यह हुआ कि वह पत्थर से ठोकर खाकर धम से जमीन पर गिर पड़ा। एक आदमी अँधेरे में छिपा खड़ा था। उसने लपककर उसे उठाया और कहा, “भैया, जरा देखकर चलो।”

मधुसूदन के घुटने पर चोट आई थी। इसकी उसे परवाह नहीं थी। फिर भी वह मकान के सम्मुख खड़ा हो घुटने को दवाने लगा। वह जानना चाहता था कि मकान में से कोई शब्द तो नहीं हो रहा। साथ ही इस प्रकार वह पूर्णिमा और उसकी माँ को वहाँ भली-भाँति ढूँढ़ लेना चाहता था। इतने में टॉर्च जलाकर किसी ने मधुसूदन के मुख पर रोशनी डाली। इसमें एक सैकण्ड से अधिक नहीं लगा। टॉर्च बुझाकर वह आदमी मधुसूदन के पास आकर खड़ा हो गया और बोला, “आखिर आप भी गायघाट आ ही गये न! खूब! अब तुम जेरे हिरासत हो।” इतना कह उसने कुछ शब्द किया कि अँधेरे में से पाँच-छः आदमियों ने निकलकर मधुसूदन को पकड़ लिया।

मधुसूदन के मन में तो आया कि भाग जाय, परन्तु फिर कुछ विचार कर खड़ा रहा। मधुसूदन को वे आदमी पकड़कर मकान के पिछवाड़े की ओर से सड़क पर ले गये। वहाँ एक मोटर-लारी खड़ी थी। उसमें उसे धकेलकर चढ़ा दिया गया। वहाँ तीन-चार वर्दी पहने पुलिस वाले बैठे थे। उन्होंने उसे हथकड़ी पहना दी और अपने पास बैठा लिया।

: ३ :

धीरेन्द्र बहुत उत्सुकता से पूर्णिमा की प्रतीक्षा कर रहा था। कभी-कभी उसके मन में संशय होता था कि मधुसूदन को भेजकर उसने ठीक नहीं किया। कारण यह था कि वह इन बातों में अनजान था। परन्तु अब हो ही क्या सकता था। लगभग आध घण्टे की प्रतीक्षा के बाद पूर्णिमा और उसकी माँ वहाँ आयीं। पूर्णिमा का मुख पीला पड़ गया था। वह अत्यन्त थकी हुई प्रतीत होती थी। परन्तु सम्मुख धीरेन्द्र को देखकर उसके मुख से निकल गया, “दादा! तुम आ गये? हम तो समझी थीं कि तुम पकड़े गये हो। ओ! खूब! बहुत खूब, तुम यहाँ आये।”

“परन्तु,” पूर्णिमा की माँ ने पूछा, “पकड़ा कौन गया है?” इतने में मधुसूदन का ध्यान आया तो उसने पूछा, “और वह कहाँ है?”

धीरेन्द्र को भी अब ध्यान आया और उसने पूछा, “क्या मधुसूदन तुम्हें नहीं मिला? वह तुम्हारे पीछे-पीछे गया था।”

पूर्णिमा का मुख विवर्ण हो गया—“वह हमारे पीछे गये थे? उफ! गजब हो

गया। अवश्य ही वह पकड़े गये हैं।” इतना कहते-कहते वह हताश खाट पर बैठ गई।

धीरेन्द्र ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, “प्रथम तो वह पकड़ा ही नहीं गया होगा। यदि ऐसा हो भी गया होगा तो वह शीघ्र ही छूट जाएगा। उसके खिलाफ तो कोई दोष लग नहीं सकता।”

पूर्णिमा को गश्त आ गया था और वह धीरेन्द्र की बातें नहीं सुन सकी। जब धीरेन्द्र ने यह अनुभव किया तो उसने पूर्णिमा को हिलाया। इस पर भी वह सचेत नहीं हुई। उसकी माँ पानी ले आई और उसने उसके मुँह पर छीटे दिये। धीरेन्द्र ने नाक में जोर से फूँक मारी। बहुत कठिनाई से पूर्णिमा की आँख खुली। जब उसे चेतना हुई तो उसकी आँखों से आँसुओं की धारायें बहने लगीं।

धीरेन्द्र ने पूर्णिमा की माँ से पूछा, “आप कैसे जानती हैं कि कोई पकड़ा गया है?”

“हम जब यहाँ से गईं तो पहले तपस्विनी के मकान पर पहुँचीं। वह घर पर नहीं थी। पता चला कि वह कलकत्ते गई है। वहाँ से हम सीधी गायघाट पहुँचीं। मधुसूदन ने हमें बताया था कि वहाँ पुलिस अवश्य होगी। इस कारण हम मकान पर जाने के बजाय गंगा के किनारे की ओर चली गईं। वहाँ एक तख्त पर बैठकर मकान की ओर देखने लगीं। थोड़ी देर बाद मकान के सम्मुख तीन-चार टॉर्च एक क्षण के लिए जलती दिखाई दीं। हम समझ गईं कि मधुसूदन का अनुमान ठीक था। हमने मकान के समीप जाना भयरहित नहीं समझा। अभी हम आपका पता लगाने का उपाय सोच रही थीं कि किसी के गिरने की ध्वनि हुई। यह ध्वनि मकान के सम्मुख ही हुई थी। इतनी दूर से हम अँधेरे में पहचान नहीं सकीं कि कौन था। पश्चात् किसी ने कहा, ‘भैया, जरा देखकर चलो।’ इसके एक ही क्षण पश्चात् फिर टॉर्च जली। तत्पश्चात् किसी ने कहा, ‘तुम हिरासत में हो।’ अब वहाँ कई आदमियों के भागने-दौड़ने का शब्द हुआ। धीरे-धीरे पाँव के चलने का शब्द विलीन हो गया। हमने समझा तुम पकड़े गये हो।”

दादा ने चिंतित भाव में कहा, “तुम लोगों ने भारी भूल की जो मेरे पीछे गई। तुम्हें यहीं ही प्रतीक्षा करनी चाहिए थी। मधुसूदन पकड़ा गया है, किन्तु उसके विपरीत कुछ मामला नहीं बन सकेगा। वह अवश्य छूट जायेगा। परन्तु यह तुमने किया क्या? मुझे बुलाया-क्यों था?”

पूर्णिमा बहुत धीमे स्वर में बोली, “मैंने आपको कोई तार नहीं भेजा। आज मधुसूदन से पता चला कि किसी ने सेठ कुंजबिहारी को एक पत्र लिखा था। उस पत्र में उसने पचास हजार रुपया आज रात के बारह बजे बीस नम्बर मकान में जमा करने के लिए लिखा था। सेठजी ने वह चिट्ठी पुलिस में दे दी। मधुसूदन को सन्देह हुआ कि चिट्ठी हमने भेजी है। अतएव वह हमें सचेत करने के लिये

भागे-भागे यहाँ आये। न जाने मन में क्या सोचते होंगे ?”

धीरेन्द्र सब वृत्तान्त सुन सन्न रह गया। वह बोला, “निःसन्देह यह दुष्टता कमल की है। उसका आशय मुझे फँसाने का था। मुझे तो पहले ही सन्देह हो रहा था। इसी कारण मैं जावेत था। जब मैं स्टेशन पर पहुँचा तो वहाँ विशेष चहल-पहल देखी। कई पुलिस वाले सफेदपोश और बर्दों में वहाँ उपस्थित थे। यह देख मैं सचेत हो गया और इस कारण मैंने पहले तुम्हारे ही मकान पर पहुँचना उचित समझा। नियत समय से पहले ही यहाँ चला आया। परन्तु कमल का वार खाली नहीं गया। कम से कम मेरा और आप लोगों का यहाँ रहना भय से रहित नहीं है। कल मेरे मकान मालिक से पूछताछ होगी और क्या जाने मधुसूदन ही कुछ कह बैठे। उधर सेठ साहब को जब मधुसूदन के पकड़े जाने का समाचार मिलेगा तो वह न जाने मन में क्या-क्या सोचेंगे। मेरी राय तो यह है कि अभी मकान खाली कर देना चाहिए। प्रातः तीन बजे कलकत्ते के लिये गाड़ी जाती है, वस उसी में चल देना चाहिए।”

पूर्णमा की माँ के लिये यह एक विकट समस्या थी। वह जब से इस घर में आई थी शहर से बाहर नहीं गई थी। अब इस प्रकार एकदम घर छोड़ने के लिए उससे कहा गया तो वह कुछ काल के लिए अनिश्चित अवस्था में खड़ी रह गई। इस समय फिर धीरेन्द्र की नेतृत्व-शक्ति ने अपना प्रभाव जमाया। उसने कहा, “माँजी, ऐसा ही करना चाहिए और तुरन्त।” इसके पश्चात् फिर आपत्त नहीं हो सकी। पूर्णमा और उसकी माँ के मन में यह विश्वास जम चुका था कि धीरेन्द्र बहुत दूरदेश है।

जल्दी-जल्दी दो सूटकेस आवश्यक कपड़ों और सामान से भरकर और विस्तर बाँधकर वे तैयार हो गईं और निर्विघ्न कलकत्ते के लिए उसी समय चल पड़ीं।

कलकत्ता अथाह सागर है। उसके जनसमूह में किसी के लिए छिपकर आयु व्यतीत कर देना कुछ भी कठिन नहीं। जैसे कि एक बूंद सागर में जाकर अपना अस्तित्व खो बैठती है वैसे ही बड़े नगरों में होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने काम में इतना व्यस्त है कि उसे दूसरे के विषय में जानने की फुरसत ही नहीं। पूर्णमा और उसकी माँ इस विशाल जनसमूह में विलीन हो गईं।

: ४ :

श्यामाचरण ने मधुसूदन को घर से जाने पर बाध्य किया था। वह गया तो फिर से नहीं लौटा। सायंकाल तक तो श्यामाचरण ने इस ओर ध्यान नहीं दिया, परन्तु ज्यों-ज्यों रात बीतने लगी उसकी चिन्ता बढ़ने लगी। अब उसे अपने किए पर पश्चात्ताप होने लगा। वह सोचता था कि मैंने लड़के के मन की बात में बाधा डालकर उसके ऊपर बहुत सख्ती की है। न जाने वह नाराज होकर कहाँ चला

गया है। कहीं आत्मघात न कर लिया हो। अब वह देवता से मिनत माँगता था, यदि वह अब आ जायेगा तो वह स्वयं पूर्णिमा से उसके विवाह का प्रवन्ध कर देगा।

मधुसूदन की प्रतीक्षा में इसी प्रकार की उधेड़बुन में चिन्तित मन से बड़े रात के ग्यारह बज गए। खाना बनाकर रखा हुआ ठंडा हो गया था। पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ। उसे जब भी काम से रात को बाहर रहने का अवसर हुआ था उसने सूचना भेज दी थी। इस बार उसकी कोई सूचना नहीं आई। सचमुच ही यह चिन्ता का विषय था।

श्यामाचरण मकान की निचली मंजिल पर किवाड़ की तरफ दृष्टि लगाए बैठा था। ग्यारह बजे से कुछ ही मिनट ऊपर हुए थे कि किवाड़ खुला। श्यामाचरण उठ खड़ा हुआ, परन्तु आने वाला मधुसूदन नहीं था। वह तो सेठ कुंजविहारी थे। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी और विधवा बहन थी। श्यामाचरण इन सबको इतनी रात गए आया देख हैरान रह गया। सेठ साहव ने श्यामाचरण को दरवाजे के पास ही खड़ा देख पूछा, “पंडितजी महाराज, अभी मोए नहीं !”

“आइए ! सेठ साहव, आइए ! कैसे इस समय आना हुआ ?” श्यामाचरण की हैरानी का कारण था सेठानी और उनकी बहन का साथ आना। वह उनको लेकर ऊपर की मंजिल पर चला गया। सेठ साहव ने ऊपर जाने से पूर्व दरवाजे की भीतर से साँकल चढ़ा दी।

सेठ साहव ने औरतों को कहा, “तुम मन्दिर में चली जाओ और मैं यहाँ रहूँगा।” फिर श्यामाचरण को कहा, “इन लोगों के लिए दो विस्तर वहाँ लगा दो और मधुसूदन कहाँ है ?”

श्यामाचरण ने हाथ जोड़कर कहा, “महाराज, नौकर तो चला गया है और मधुसूदन अभी बाहर से लौटा नहीं।”

“तो इनको कपड़े दे दो, ये स्वयं मन्दिर में विस्तर लगा लेंगी। आज रात हम तुम्हारे घर मेहमान रहेंगे।”

श्यामाचरण के विस्मय का ठिकाना नहीं था। वह भागा-भाग बगल के कमरे में गया। वहाँ से दो गद्दे और विस्तर का शेष सामान लेकर मन्दिर में जा, लैम्प जला, स्त्रियों को वहाँ छोड़ आया और स्वयं सेठ साहव के पास आ उत्सुकता से उनके कहने की प्रतीक्षा करने लगा। सेठ साहव ने फिर पूछा, “मधुसूदन कहाँ गया ?”

“साहव, वह कई दिन से घर से बाहर नहीं निकला था। आज दोपहर का खाना खाने के बाद मैंने उसे बहुत कुछ कहकर आपके घर भेजा था। तब से वह नहीं आया। उसी की प्रतीक्षा में नीचे बैठा था।”

“नहीं आया ! क्या दोपहर के बाद से नहीं आया ?”

“नहीं। घर से लगभग ग्यारह बजे गया था।”

“उसके बाद वह मेरे पास आया था। दो बजे दोपहर वह मेरे यहाँ से चला गया था। तब से अभी तक नहीं आया। क्या पहले भी कभी ऐसा हुआ है?”

“नहीं साहब, कभी नहीं। वह बिना बताए घर से इतना समय अनुपस्थित कभी नहीं रहा।”

सेठ साहब इससे बहुत ही गम्भीर विचार में पड़ गए। कुछ सोचकर बोले, “वह मेरे पास आया था अवश्य और उसके साथ मैंने बहुत कुछ बातें भी की थीं। उस समय उसकी बातें सर्वथा ठीक थीं। न तो उसके मन पर कोई चिन्ता प्रतीत होती थी और न ही उसके दिमाग में कोई खयाल था। वह पूरे होश-हवास में था। यहाँ तक कि मुझे यह बढ़िया सम्मति कि मैं अपने घर में रात को न सोऊँ, उसी ने दी थी। अब विचार करने पर प्रतीत होता है कि उसकी यह राय ठीक दिमाग से निकली हुई थी।”

इसके पश्चात् राय साहब कहते गए, मानो वह श्यामाचरण से अपनी सफाई पेश कर रहे हों—“पण्डितजी, आज मुझे कुछ डाकुओं ने मार डालने की धमकी दी है और लिखा है कि यदि मुझे जान बचानी है तो मैं उनको पचास हजार नकद दे दूँ।”

श्यामाचरण ने अचम्भे में पूछा, “पचास हजार?”

“हाँ, पचास हजार। मैंने यों तो पुलिस में रिपोर्ट कर दी है, परन्तु वे क्या कर रहे हैं और क्या नहीं कर रहे, मुझे मालूम नहीं। मैंने अपनी रक्षा का सबसे सुगम उपाय यही समझा है कि आज रात तो तुम्हारे घर काटूँ। कल फिर सोच लूँगा। हाँ, किन्तु यह स्मरण रहे कि किसी को भी विदित न हो कि मैं रात कहाँ रहा हूँ। नहीं तो यह तरकीब व्यर्थ हो जाएगी।”

“नहीं सेठजी, आप निश्चिन्त रहें। किसी को सन्देह तक नहीं होगा। परन्तु आप कुछ अनुमान नहीं लगा सकते कि मधुसूदन कहाँ गया होगा?”

“अभी कहना कठिन है। क्या कुछ झगड़ा हुआ था?”

“झगड़ा? अ...आ...हाँ। कुछ बात तो हुई थी।”

“क्या हुई थी?”

“कुछ दिन हुए मधुसूदन की मौसी के गाँव से कुछ लोग उसकी सगाई लेकर आए थे। इस बात पर झगड़ा हो गया था।”

“क्यों, इसमें झगड़ने की क्या बात थी? वहाँ उसका विवाह तो हो नहीं सकता था।”

“क्यों नहीं हो सकता था?”

“उसका विवाह तो पूर्णिमा से होने वाला है।”

“परन्तु सेठ साहब, वह कायस्थ की कन्या है और हम ब्राह्मण हैं।”

“इससे क्या बिगड़ जाता ? कायस्थ को ब्राह्मण बना लिया जाता ।”

“धर्मशास्त्र तो आपके अधीन नहीं हैं ।”

“आज धर्म पर चलता ही कौन है ? सरकार की तरफ से तो यह कानून हो गया है कि जात-पात तोड़कर विवाह हो सकते हैं ।”

“परन्तु सरकारी कानून धर्मशास्त्र के विपरीत होने से माननीय नहीं है ।”

“सरकारी कानून को न मानने वाले और धर्मशास्त्र को मानने वाले कर ही क्या सकते हैं ? समय की प्रगति को रोकने की शक्ति तुममें है क्या ?”

“यत्न तो कर सकता हूँ ।”

“निःसन्देह । परन्तु उस यत्न का फल अब भोगो । शायद वह घर से भाग गया है और न जाने कहीं आत्मघात कर बैठा हो । पंडितजी, आपको मैंने पहले भी समझाया था कि उन दोनों का विवाह हो जाना ठीक है, परन्तु आप नहीं माने । अब ईश्वर ही भला करे ।”

इसके पश्चात् दोनों गम्भीर विचारों में मग्न हो गए ।

: ५ :

उधर सेठ साहब के घर में एक घटना घट रही थी ।

मधुसूदन के चले जाने के पश्चात् सेठ कुंजविहारी लाल ने अपनी स्त्री से राय कर कि रात को घर में रहना उचित नहीं, तदनुसार सब प्रबन्ध कर दिया । घर में जितने जेवर थे सब एक डिब्बे में बन्द कर इलाहाबाद बैंक में जमा करा दिए । नकदी को जेब में और बैंक के हिमाव की किताबों को एक अटैची केस में बन्द कर चलने को तैयार हो गए ।

रात के दस बजे उन्होंने अपने नौकर भगौतीदीन को बुलाया और कहा, “चौकीदार से कह दो कि वह रात को सो जाता है । यदि आज भी ऐसा किया तो ठीक नहीं होगा । हाँ भगौती, देखना, आज तुम भी जरा मचेन रहना । आज दिन से ही अपशकुन हो रहे हैं । लक्षण अच्छे प्रतीत नहीं होने ।”

भगौती जिला मुल्तानपुर का एक विख्यात लठेन था । मुँठों पर हाथ फेरकर बोला, “हुजूर, आप कैसी बातें कर रहे हैं ? किमकी मजाल है कि उधर आँख भी उठाकर देखे ?”

“हाँ, सो तो ठीक है । फिर भी हांशियार रहना चाहिए ।”

जब भगौतीदीन चला गया तो घर की कहारी को भी शीघ्र ही छुट्टी दे दी गई । वह रात को अपने घर चली जाती थी और दिन-भर यहाँ काम करती थी । इस प्रकार जब सब बाहरी लोग चले गए तो सेठ साहब ने भीतर में किवाड़ बन्द कर लिए । मकान के पिछवाड़े में एक खिड़की थी जो एक गली में खुलती थी । यह मकान में आने-जाने का मार्ग नहीं था, फिर भी उसमें से कूदकर बाहर निकला जा सकता था । सेठ साहब अपनी स्त्री और विधवा वहन को साथ लेकर इस

खिड़की से कूदकर गली में पहुँच गए। यह गली एक दूसरी गली में खुलती थी। वहाँ से कुछ दूरी पर एक दूसरे बाज़ार में पहुँचकर सेठ साहब ने मधुसूदन के मकान का मार्ग लिया। सेठ साहब ने यह बात इतनी चोरी से की कि उनके अतिरिक्त किसी अन्य को कुछ भी मालूम नहीं हुआ।

चौकीदार सेठ साहब के मकान की ड्योढ़ी में लाठी बगल में दवाए खड़ा था। जब से उसने सेठ साहब की नौकरी की थी, कभी भी इस प्रकार उसकी ताड़ना नहीं की गई थी। आज की विशेष आज्ञा का अभिप्राय वह नहीं समझ सका। कुछ खिन्न मन और विचारमग्न वह खड़ा था। यह बात तो ठीक थी कि बीच-बीच में वह सो जाया करता था, परन्तु उसके इस सोने पर पहले कभी आपत्ति नहीं की गई थी। आज क्यों?

घंटा-घर में बारह बजे का घण्टा बज रहा था कि एक आदमी खाली हाथ उसके सामने आ खड़ा हुआ, “चौकीदार, क्या इस समय सेठ साहब के दर्शन हो सकते हैं?” नवागत ने कहा।

चौकीदार ने इस प्रकार अचानक एक आदमी को सम्मुख आ प्रश्न करते देख, विचार-भंग हो, लाठी को सँभाल लिया। परन्तु उसने देखा कि आने वाला कोई नवयुवक और भला मनुष्य प्रतीत होता है। वह खाली हाथ है और अकेला है। इस कारण चिन्ता की बात न जान बोला, “भाई, नहीं, इस समय सेठ साहब सो रहे हैं।”

“सो तो ठीक है, परन्तु हमें बहुत आवश्यक काम है।”

“इसको मैं क्या जानूँ। मैं तो यह जानता हूँ कि मुझे उन्हें उठाने की आज्ञा नहीं।”

“यह तो मैं कर लूँगा।”

“कैसे?”

“दरवाज़ा खटखटाकर।”

“यह मैं नहीं करने दूँगा। आप प्रातःकाल आइए।”

“भाई, रेलगाड़ी तो इस समय आई है। अब मैं रात-भर कहाँ रहूँ?”

चौकीदार ने इस पर पूछा, “आपका असबाब कहाँ है?”

आने वाले ने कुछ जोर से आवाज़ दी, “ओ कुली, इधर आ।” सड़क पर खड़ा एक आदमी सूटकेस लिए वहाँ पहुँच गया।

“अब भाई, तुम ही दरवाज़ा खटखटा दो न। मुझे नहीं ज्ञात था कि इतनी दिक्कत होगी।”

चौकीदार ने यह समझ कि यह कोई वास्तविक मेहमान है, मकान के मुख्य दरवाज़े का फाटक खटखटाया। भीतर से भगोतीदीन ने किवाड़ खोल दिया। वह दरवाज़े के साथ के ही कमरे में सोता था। पूछा, “क्या है, हो?”

चौकीदार ने कहा, “यह मेहमान आए हैं, सेठ साहब को इतला कर दो।”

भगौतीदीन ने आने वाले को ऊपर-नीचे से देखा और सन्देह का कोई कारण न पा कहा, “आइए, बैठक में आ जाइए। सेठ साहब ऊपर की मंजिल पर खुले में सोते हैं। देखता हूँ अगर वह जाग जाएँ तो।”

इस आमंत्रण पर आगंतुक भगौतीदीन के पीछे बैठक में चला गया। वहाँ जा उसने कुली को पुकारा। कुली सूटकेस लिए भीतर घुस गया। चौकीदार भी कुली के साथ भीतर चला गया। उसने मन में यह सोचा कि भगौतीदीन तो ऊपर की मंजिल पर सेठ साहब को सूचना देने चला जाएगा इसलिए इस अपरिचित आदमी को बैठक में अकेले रहने देना ठीक नहीं।

बैठक में पहुँच भगौतीदीन ने पूछा, “हुजूर का नाम क्या है और कहाँ से आना हुआ है?”

नये आने वाले ने कहा, “हाँ, यह मेरा कार्ड लेते जाओ।” इतना कह उसने एक टपा कार्ड उसके हाथ में दे दिया।

भगौतीदीन बैठक को लाँघ सीढ़ियों से ऊपर चला गया। चौकीदार ने अपने पीछे कुछ आवाज सुनी तो वह धूमकर ड्योढ़ी में चला आया। वहाँ पहुँचते ही तीन आदमियों ने उसे घेर लिया। पूर्व इसके कि वह कुछ बोले, एक ने उसके मुँह पर हाथ रख उसे बोलने से रोक दिया और अन्य दो ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिए। उसी समय कुली, जो बैठक में सूटकेस लिए खड़ा था, सूटकेस वहाँ रख ड्योढ़ी में चला आया। उसने अपनी कमर से एक रस्सा खोल चौकीदार के हाथ और पाँव कसकर बाँध दिए। फिर उसके मुँह में कपड़ा ठूस, उसे कसकर बाँध दिया।

भगौतीदीन ऊपर की मंजिल पर जाकर भीतर का किवाड़ खटखटाने लगा। बहुत खटखटाने पर भी जब कोई आवाज नहीं आई तो वह नीचे चला आया। उसने देखा कि बैठक में नया आने वाला चुपचाप और शांत भाव से खड़ा है। भगौतीदीन ने कहा, “हुजूर कोई बोलता नहीं। प्रतीत होता है गहरी नींद सो रहे हैं। आप यहीं ठहरिए। मैं बिजली का पंखा छोड़ देता हूँ। सुबह देखा जाएगा।”

आगंतुक ने कहा, “अच्छी बात है। तुम आराम करो। अब एक बजने वाला है, तीन-चार घण्टे में तो दिन हुआ जाता है। और हाँ, यह सुनो तो।” इतना कह उसने भगौती की तरफ हाथ बढ़ाया। भगौती उसकी तरफ बढ़ा ही था कि चौकीदार की भाँति उसे भी तीन आदमियों ने पकड़ लिया। भगौती एक बार तो छटपटायी परन्तु सम्मुख खड़े हुए आदमी के हाथ में पिस्तौल देख सहम गया और चुपचाप अपने-आपको बँध जाने दिया।

इन दोनों बँधे हुए सेवकों को उस कोठरी में बंद कर, जिसमें भगौती रहता

था, पाँचों के पाँचों आए हुए बैठक में इकट्ठे हो गए। भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया गया।

इन लोगों में सबसे पूर्व जो मेहमान बनकर आया था, वह कमल था। कुली द्विवेदी था और तीन आदमी नये थे।

कमल ने कलाई की घड़ी पर समय देखा। इस समय बारह बजकर तेरह मिनट हुए थे। तेरह मिनट में इतनी सफाई और सुगमता से अपने काम का एक भाग समाप्त कर कमल आगे चला। द्विवेदी को बैठक में खड़ा कर सबसे आगे सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। एक ने वह सूटकेस उठा लिया और पीछे-पीछे चल पड़ा। सीढ़ियाँ चढ़ ऊपर की मंजिल पर पहुँच उन्होंने देखा कि भीतर का किवाड़ बन्द है। कमल ने बिजली का स्विच जला रोशनी की और सूटकेस खोल एक लोहे की सलाख निकाल किवाड़ में फँसा दो-तीन झटके दिए। किवाड़ खुल गया। भीतर से साँकल लगी थी जो टेढ़ी हो निकल गई थी। चारों के चारों भीतर पहुँचे। खुली छत थी जिस पर तीन विस्तर लगे थे, परन्तु उन पर सोया हुआ कोई न था। खुली छत के एक तरफ दो-तीन कमरे थे। सबको ताले लगे थे। एक-एक कर सब खोले गये, परन्तु इनमें न तो कोई मनुष्य था और न ही कुछ नकदी। निराश हो कमल और उसके साथी नीचे चले आये। सीढ़ियों के एक तरफ एक किवाड़ था जो नीचे की मंजिल पर भीतर के कमरों को जाता था। यह भी भीतर से बन्द था। इसे भी ज्यों-त्यों कर खोला गया। एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा, इस प्रकार कई कमरे थे। सब भीतर से बन्द थे। कमल और उसके साथी एक-एक कर कमरों की तलाशी लेते गए और अगला कमरा खोलते गए। वर्तन, कपड़े और घर का सब प्रकार का सामान था, परन्तु नकदी व जेवरों का कहीं चिह्नमात्र भी नहीं था। यहाँ तक कि चाँदी का कोई वर्तन भी नहीं था। इस सब मेहनत के पश्चात् कमल और उसके साथी अन्तिम कमरे में पहुँचे और वहाँ की तलाशी लेते समय उन्होंने देखा कि पिछवाड़े की एक खिड़की भीतर से बन्द नहीं। उसे इस प्रकार खुला देख कमल समझ गया कि चिड़िया तो हाथ से उड़ गई है। वह गम्भीर विचार में पड़ गया कि ऐसा क्यों हुआ। अवश्य भेठ साहब को हमारे आने की सूचना मिल गई होगी। या यों कहो कि वह डरकर केवल हमारे आने की आशंका में ही भाग गए हैं। इसी विचार में मग्न वे सोचते हुए बैठक में पहुँचे।

कमल ने द्विवेदी से कहा, “यह डाका तो सर्वथा निष्फल रहा। और हाँ, तुमने अब तक क्या किया है?”

द्विवेदी ने कहा, “बैठक की सब अलमारियाँ, मेजों की दराज, कुर्सियों के तले, कोचो के गद्दे, अभिप्राय यह कि सब स्थान ढूँढ़ डाले हैं और एक भी मतलब की वस्तु नहीं मिली। इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं कि वह मतलब की वस्तुएँ कहीं

भीतर और जगह रखता है।”

कमल बोला, “प्रतीत होता है कि यह सेठ बहुत काँइयाँ है। एक रत्ती-भर भी तो सोना या चाँदी नहीं मिली और मजेदार बात तो यह है कि स्वयं और घर की सब स्त्रियाँ लापता हैं। उनका कहीं चिह्न-मात्र भी नहीं मिला।”

द्विवेदी ने कहा, “यहाँ से शीघ्र भाग जाना चाहिए। मुझे तो अब यहाँ ठहरने में अनिष्ट ही प्रतीत होता है।”

“हाँ।” यह आवाज बैठक के पीछे से आई। सबकी दृष्टि उस ओर घूम गई। कमल ने देखा कि एक पुलिस कांस्टेबल सीढ़ियों के दरवाजे में खड़ा है और उसके हाथ में एक डंडा है।

यह कांस्टेबल अपनी नित्य-प्रति की गश्त में सेठ साहब के मकान के पिछ-वाड़े की गली में से गुज़रा था। उसने सेठ साहब के मकान की खिड़की खुली देखी। सेठ साहब तो खिड़की को भींच गए थे, परन्तु जब कमल ने देखा कि खिड़की की साँकल नहीं लगी हुई तो उसने खोलकर देखा था कि वह किधर खुलती है। वह एक बार गली में झाँका भी था, परन्तु फिर नकदी की तलाश में खिड़की बन्द करना भूल गया था।

जब कांस्टेबल रामसिंह गली में से गुज़रा तो उसे खिड़की खुली देख सन्देह हुआ। वह वहाँ एक सेकण्ड तक खड़ा हो सोचने लगा कि क्या करे। ठीक इसी समय कमल कमरे में कुछ न पाने से निराश हो कह रहा था कि ‘कमबख्त ने न जाने जेवर कहाँ रखे हैं।’ पुलिस कांस्टेबल यह सुन समझ गया कि सेठ साहब के घर में चोर हैं। उसे यह नहीं ज्ञात था कि ये साधारण चोर नहीं हैं और अकेले इनसे निपटा नहीं जा सकेगा। अतएव वह कूदकर खिड़की में चढ़ गया। इस समय कमल इत्यादि बैठक में जा पहुँचे थे। वह इनके पीछे वहाँ पहुँच गया। वहाँ कमल और द्विवेदी में पूरा वार्तालाप उसने सुना था। उसने उनके मन में डर पैदा करने के लिए एकाएक ‘हाँ’ का शब्द जोर से कहा था।

द्विवेदी तो कांस्टेबल को देख एकदम बैठक के बाहर के दरवाजे की ओर लपका। वह यह सोच रहा था कि यदि सेठ साहब वहाँ से लापता हैं तो निःसन्देह उन्हें उनके डाका डालने की सूचना मिल चुकी है और उन्होंने पुलिस वालों से सहायता माँगी होगी। वह अपने मन में सोचता था कि जिस समय वे मकान में व्यर्थ की खोज कर रहे थे, उस समय सम्भव है कि मकान पुलिस वालों ने घेर लिया हो। वह मन ही मन कमल की योजना को दोषपूर्ण समझ रहा था। अतएव द्विवेदी तो एक ही छलाँग में दरवाजे को खोल बाहर हो गया, परन्तु कमल इस प्रकार भागने वाला नहीं था। वह सारी परिस्थिति को जानकर कुछ करना चाहता था। उसने जोर से कहा, “तुम आ गए तो लो।” इतना कहते-कहते कमल ने जेब से पिस्तौल निकाला। इसके निकालने में कुछ सेकण्ड लगे। रामसिंह समझ गया कि

पिस्तौल निकाला जा रहा है। वह कूदकर डाका डालने वालों में से एक के पीछे हो गया और उसे जोर से कमल की तरफ धकेल दिया। डाकू लुढ़कता हुआ कमल पर जा गिरा। इस समय तक कमल ने गोली चला ही दी। गोली कांस्टेबल को लगी तो, परन्तु निशाना चूक गया था। कमल ने छाती का निशाना साधा था, परन्तु हाथ हिल जाने से गोली छाती के बजाय बाएँ कंधे पर लगी। कांस्टेबल ने अपनी जान खतरे में देख स्वभाव के मुताबिक जेब से सीटी निकाल बजा दी। कमल ने यह समझा था कि कांस्टेबल बिना चूँ-चराँ किए ढेर हो जाएगा, परन्तु निशाना चूकता देख और कांस्टेबल को सहायता के लिए पुकारता देख वह घबरा गया। इन पर भी उसने फिर निशाना साधा। अब रामसिंह कूदकर दूसरे के पीछे जा खड़ा हुआ और निशाना इस बार भी व्यर्थ गया। गोली दीवार में जाकर लगी। इस पर कमल द्विवेदी के पीछे भागा। कमल के साथी भी भागे।

रामसिंह को बहुत पीड़ा हो रही थी। परन्तु जब उसने देखा कि कमल के अतिरिक्त और किसी ने रिवाल्वर अथवा गोली नहीं चलाई तो वह समझ गया कि उनमें से एक के पास ही पिस्तौल है। कमल भाग गया था। सबसे पीछे वह आदमी था जिसको उसने कमल पर धकेला था। रामसिंह ने उसको पकड़ लिया। उसने बहुत चीख-पुकार की, परन्तु रामसिंह ने एक ही बाँह से उसे ऐसी लपेट में लिया कि वह ज़मीन पर गिर पड़ा और फिर उसने उसे अपने नीचे दबोच लिया। एक-दो मिनट में उसने उसके सिर पर अपने डंडे के दो-तीन हाथ जमाकर उसे आधा बेहोश कर दिया। अब वह उठा तो उसने बैठक का दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लिया। दूसरी ओर सीढ़ियों को जाने वाले दरवाज़े को उसने बाहर से बन्द कर दिया। इस प्रकार डाकू को काबू में कर वह पुनः पिछवाड़े वाली खिड़की से कूदकर गर्नी और गर्नी में भागता हुआ बाज़ार में पहुँचा। वहाँ जा उसने जोर से फिर कई बार सीटी बजाई। दूर से एक और कांस्टेबल भागता हुआ आया। उसे लेकर वह पुनः सेठ साहब के मकान में पहुँचा।

इस समय सीढ़ियों की आवाज़ से पड़ोस के दो-एक रहने वाले भी वहाँ आ पहुँचे थे। जब सब भीतर गए तो उन्होंने देखा कि बेहोश डाकू कुछ होश सँभाल रहा है।

रामसिंह के कंधे के घाव से बहुत रक्त बह चुका था और वह कमजोरी अनुभव करने लगा था। वह एक तरफ कुर्सी पर बैठ गया और दूसरे कांस्टेबल से उसने उस आदमी को बाँध लेने के लिए कहा। पड़ोसियों ने भी सहायता की। एक ने सेठ साहब के टेलीफोन से थाने में इत्तला कर दी। दूसरे ने एक कपड़ा ला डाकू को बाँधने में हाथ बँटाया।

इसके बाद एक पड़ोसी, जो सेठ साहब के नौकर का नाम जानता था, जोर-जोर से 'भगौती ! भगौतीदीन' पुकारने लगा। परन्तु उसका कहीं पता नहीं था।

इस पड़ोसी ने भगौती की कोठरी को, जो ड्योढ़ी के समीप थी, जाकर देखा। कोठरी के बाहर से साँकल चढ़ी थी। उसने साँकल उतार किवाड़ खोला तो दो आदमियों को बँधा पड़ा पाया। उस पड़ोसी ने कांस्टेबल को बुला उन्हें दिखाया। दोनों के मुँह में कपड़ा ठूँसा हुआ था। इतने में थाने से लगभग दस-बारह पुलिस के लोग वहाँ पहुँच गए। उन्होंने सब मकान को अपने अधीन कर लिया। हैड कांस्टेबल ने सेठ साहब के बाबत पूछा, परन्तु इसका उत्तर कोई नहीं दे सका।

: ६ :

इलाहाबाद से दारागंज को जाते हुए मार्ग पर एक पुराने से मकान में कमल, द्विवेदी और उसके दो साथी बैठे थे। प्रातःकाल का समय था। कमल बहुत खिन्न मन था। उसकी पार्टी का यह पहला 'ऐक्शन' था और यही सर्वथा असफल रहा। सबने अधिक शोचनीय बात तो यह थी कि उनका एक साथी पकड़ा गया था। यह साथी मिरजापुर ज़िला के विन्ध्याचल गाँव का रहने वाला था। इसका नाम श्रीहर्ष था। यह ठाकुर नवयुवक, बीस-बाईस वर्ष की आयु का, देहात के स्कूल में दसवीं श्रेणी तक पढ़ा था। इसके पश्चात् इस समय तक बेकार था। कमल की संगति में आकर पार्टी में सम्मिलित हो गया था।

कमल कह नहीं सकता था कि वह नौजवान लड़का उनकी पोल खोल देगा अथवा पुलिस को चकमा दे देगा। यदि वह भेद खोलना चाहे तो इनकी पार्टी को बहुत कुछ हानि पहुँचा सकता है। कम से कम कमल की जायदाद तो ज़ब्त हो ही जायेगी।

इसी तरह के सोच-विचार में ये चारों आदमी बैठे एक-दूसरे का मुख देख रहे थे। आखिर द्विवेदी से न रहा गया। उसने कहा, "इसमें तो सन्देह नहीं कि सेठ साहब को हमारे आज रात के 'ऐक्शन' का समाचार मिल गया था। यह उन्हें किस प्रकार ज्ञात हुआ यह विचारणीय है।"

कमल ने आँखें नीचे किए हुए कहा, "क्या जाने?"

कमल ने जब यह कहा तो उसके गालों पर शर्म की सुर्खी प्रतीत हो रही थी। द्विवेदी को कुछ सन्देह तो हुआ परन्तु वह इन आँखें नीची कर उत्तर देने तथा गालों पर एक क्षण के लिए लाली के दौड़ जाने का कारण कुछ और ही समझा। उसने समझा कि कमल के नेतृत्व में यह पहला 'ऐक्शन' ही असफल हुआ, इस कारण वह लज्जित है। द्विवेदी ने ढाढ़स बँधाते हुए कहा, "अब जो हुआ सो हुआ। इस पर सोच करने से तो कुछ बनेगा नहीं। मेरा पता तो श्रीहर्ष क्या, पार्टी में कोई भी नहीं जानता। मेरा पूरा नाम भी श्रीहर्ष नहीं जानता। इस कारण यदि वह भेद खोल भी दे तो मेरी कुछ भी हानि नहीं कर सकता। इस पर भी मुझे उसके पकड़े जाने का अत्यन्त दुःख है और मुझे पार्टी के भविष्य की बहुत चिन्ता है।

मिस्टर कमल, अब आप क्या करने के लिए कहते हैं ?”

“मुझे तो कुछ नहीं सूझता ।”

“यदि इस समय धीरेन्द्र होता तो अवश्य अब तक लोगों की आज्ञा मिल चुकी होती कि हम क्या करें ।”

धीरेन्द्र के नाम पर कमल चिढ़ गया । उसने गुस्से में कहा, “धीरेन्द्र की इसमें क्या बात है ? वह कभी ऐसी परिस्थिति में पड़ जाता तो हम सबको वहीं छोड़कर भाग गया होता । वह डरपोक क्या कर सकता है ?”

द्विवेदी ने फिर कहा, “कमल भैया, इसमें नाराज होने की कौन-सी बात है ? उसकी योजना आज तक कभी सरकार के कान तक नहीं पहुँची और वह भीड़ पड़ने पर अपने मन को स्थिर रख सकता है । आखिर अब क्या किया जायें ? क्या तुम बता सकते हो ?”

“पहली बात तो यहाँ से निकल जाने की है । सब इकट्ठे नहीं जा सकते । इसी कारण, द्विवेदी, तुम तो यहाँ से प्रयाग स्टेशन पर जाकर सुल्तानपुर के मार्ग से लखनऊ पहुँच जाओ । मैं कलकत्ते जा रहा हूँ, और अपने लिए सोच लूँगा । और तुम दोनों लोग अकेले-अकेले पैदल यहाँ से निकल जाओ । अभी पन्द्रह दिन तक जहाँ कहीं मन में आवे छिपे रहो । पश्चात् हम लोग लखनऊ में मिलेंगे ।”

इधर ये लोग इस प्रकार के मनसूवे बाँध रहे थे और दूसरी ओर पुलिस वाले अपनी कार्यवाही में संलग्न थे । इस वार पुलिस ने पहले से अधिक चुस्ती दिखाई । कलक्टर के बँगले की घटना के समय तो पुलिस वालों को इतनी घबराहट हुई थी कि वे आवश्यक देख-रेख भी नहीं रख सके थे । इस भूल के कारण अफसरों से उनको भारी डाँट भी पड़ी थी । अतएव इस वार ज्यों ही थाने में खबर पहुँची, एक दर्जन कान्स्टेबल सेठ साहब के घर पहुँच गए । जब पुलिस अफसरों को यह ज्ञात हुआ कि डाका डालने वाले क्रान्तिकारी दल के हैं, तो उस समय पुलिस ने इलाहाबाद स्टेशन, लारियों के अड्डों और गंगा तथा जमुना के पुल पर पहरेदार बैठा दिये । कोई भी आदमी बिना देख-रेख के नहीं जाने दिया जाता था । परिणाम यह हुआ कि कमल के दोनों रंगरूट मोटरों के अड्डे पर शहर के बाहर निकलने के प्रयत्न में पकड़े गए । जब पुलिस अफसर ने, जो अड्डे पर उपस्थित था, उनसे प्रश्न किए तो वे घबरा गए और एक तो वहाँ से भाग पड़ा । वह कुछ पग पर ही पकड़ा गया । दूसरा चूँकि अपने विषय में ठीक उत्तर न दे सका इसलिए सन्देह में रोक लिया गया ।

कमल सीधा जमना पर पहुँचा । वहाँ कुछ नावें किनारे पर बँधी थीं । वह कुछ देर इधर-उधर देखता रहा । वहाँ कोई न था । उसने नाव चलाने के चप्पू ढूँढ़ने आरम्भ किए । एक नाव में दो चप्पू पड़े थे । वह उस नाव को किनारे से खोल, उसे हलका-सा धक्का देकर उसमें सवार हो गया । नाव को नदी के बीच में ले

जाकर उसने उसे मँझधार में छोड़ दिया। सूर्य निकलने और गरमी अधिक हो जाने से पूर्व वह दस-बारह मील आगे चला गया। वहाँ एक वीरान किनारे पर नाव को बाँध एक ओर चल दिया।

द्विवेदी ने कमल की युक्ति पर अमल करना सुरक्षित न समझ शहर के भीतर का मार्ग लिया। वहाँ वह अपने संबंधियों के घर पहुँच, कुछ काम से इलाहाबाद पहुँचने का वहाना कर, ठहर गया।

: ७ :

मेठ साहब सूर्य उदय होने से पूर्व ही ग्यामाचरण से विदा हो घर की तरफ चल पड़े। स्त्रियों को वह वहीं छोड़ आये थे। उनको कह दिया था कि कुछ देर मन्दिर में पूजा-पाठ कर चली आना। जब वह घर के सम्मुख पहुँचे तो पुलिस और मुहल्ले वालों की भीड़ देख मन में प्रसन्न हुए और चिंतित भी। प्रसन्न तो इस विचार से कि वह बहुत भारी मुसीबत से बच गए और चिंतित इस बात से कि न जाने घर में क्या ऊधम मचा होगा। वह मकान के दरवाजे पर पहुँचे तो लोग उनके गिर्द जमा हो गए। एक ने पूछा, “राय साहब, कहाँ थे आप?” लोग उनके पदवी त्याग देने पर भी उन्हें राय साहब कहकर ही पुकारते थे। “यहाँ तो बहुत गड़बड़ मच रही है।”

इतने में हैड कान्स्टेबल वहाँ पहुँच गया। वह भगौतीदीन और चौकीदार का वयान लिख चुका था। पुलिस को मकान की रखवाली के लिए छोड़ वह कैदी को लेकर थाने जाने ही वाला था कि मेठ साहब वहाँ पहुँच गए। हैड कान्स्टेबल मेठ साहब को वहाँ देख ठहर गया। वह बोला, “हुजूर, आप कहाँ थे? आपके घर तो डाका पड़ा है।”

मेठ साहब ने चिंतित भाव से पूछा, “अच्छा, कुछ हानि तो...”

“नहीं साहब, कुछ ख़ास हानि नहीं हुई। हमारा एक कान्स्टेबल घायल हुआ है। चोट मामूली है। इस समय अस्पताल भेज दिया है।” इतने में सुपरिंटेंडेंट पुलिस, इन्स्पेक्टर पुलिस, सिटी मजिस्ट्रेट और कलक्टर मोटरों में सवार हो वहाँ आ पहुँचे। कलक्टर की तो मेठ साहब को सही-सलामत देख जान में जान आई। वह सोच रहा था कि एक दिन पहले मेठ साहब सहायता के लिए आए थे, परन्तु उसने मज़ाक उड़ा दिया था। यदि अब मेठ साहब को कुछ हुआ तो उसकी बहुत बदनामी होगी। यही कारण था कि मेठ साहब को सही-सलामत देख उसे प्रसन्नता हुई थी।

जब वह हैड कान्स्टेबल से सारी घटना का वर्णन सुन चुका तो कलक्टर ने मेठ साहब से पूछा, “मेठ साहब, आप कहाँ थे?”

मेठ साहब ने कहा, “जब हुजूर ने मदद देने से इन्कार कर दिया तो मैंने यहाँ से टल जाना ही उचित समझा। अब मैं समझता हूँ कि मैंने ठीक ही किया था।”

“तो आप घटना के समय यहाँ नहीं थे ?”

“नहीं, मैं तो रात के दस बजे ही घर की औरतों के साथ यहाँ से चला गया था। रात मैंने अपने एक मित्र के घर गुजारी। यह सब हुजूर की मेहरबानी थी। यदि पुलिस रक्षा नहीं कर सकती तो अपनी रक्षा आप करनी पड़ती है।”

कुछ और देखभाल के पश्चात् केवल दो कान्स्टेबल वहाँ छोड़ पुलिस के अफसर अपने-अपने काम पर लौट गये। सेठ साहब ने अब घर के सब कमरे देखे और देखा कि सब सन्दूक, सब अलमारियाँ और प्रायः प्रत्येक वस्तु उलट-पुलट पड़ी है। इस पर भी कोई भी वस्तु चोरी नहीं गई। इससे स्पष्ट प्रतीत होता था कि डाकू नकदी की तलाश में थे जो वे नहीं पा सके। इस समय उन्हें मधुसूदन की दूरदर्शिता की याद आई। इस याद के साथ ही उसके लापता होने की चिन्ता भी लगी। सेठ साहब इस चिन्ता में कोच पर बैठे सिगार सुलगाकर कश लगाने लगे।

मुकदमा

क्राइम इन्वेस्टिगेटिंग डिपार्टमेंट अर्थात् खुफिया पुलिस के दफ्तर में आज विशेष चहल-पहल थी। इस महकमे के इन्स्पेक्टर पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र सेठ साहब के घर पर जो डाका पड़ा था उसके मामले की जाँच कर रहे थे और वह नवयुवक जो सेठ साहब के घर पर रामसिंह कान्स्टेबल द्वारा पकड़ लिया गया था, मिश्रजी के सम्मुख खड़ा था। मिश्रजी ने कुछ देर इस नवयुवक को सिर से पाँव तक देखकर कहा, “तुम सेठ साहब के घर पर पकड़े गए हो ?”

“मैं बिना अपने वकील से बातचीत किए कुछ नहीं बताऊँगा।”

मिश्रजी हँस पड़े और समीप रखी हुई कुर्सी पर बैठने का संकेत कर कहने लगे, “बैठ जाओ। आराम और शांति से विचार कर बात करो। घबराओ नहीं। यह तुम लोगों का भ्रम है कि हम तुम्हारे दुश्मन हैं। देखो भाई, हम भी हिन्दु-स्तानी हैं और हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र कराने वाले से हमारी पूरी सहानुभूति है। अन्तर केवल यह है कि तुम्हारे काम का ढंग हमें पसन्द नहीं है। तो भी तुम्हें व्यर्थ अथवा झूठ-मूठ में फँसाकर हमें क्या मिलेगा ? परन्तु यदि तुम इस बात के बताने में भी, कि तुमको पुलिस वालों ने घर के भीतर से पकड़ा है या बाहर से, वकील से राय करना आवश्यक समझते हो तो एक बात तो स्पष्ट ही है कि तुम सत्य बात के बताने में, या यों कहो कि, सत्य बात को ज्यों का त्यों बताने में संकोच करते हो। इस बात को समझने के लिए कि तुम कहाँ पकड़े गये थे, कानून की भारी योग्यता की आवश्यकता नहीं। यह एक सीधा-सा प्रश्न है और इसका

सीधा-सा उत्तर होना चाहिए। अच्छा, तुम कितना पढ़े हो?"

श्रीहर्ष अब सोच रहा था कि इनके प्रश्नों का उत्तर दे या नहीं। ये प्रारम्भिक प्रश्न थे। वह अभी सोच ही रहा था कि इन्स्पेक्टर ने फिर कहना आरम्भ किया, "देखो, इस चुप्पी से तो तुम यह प्रकट कर रहे हो कि तुम सत्य ही दोषी हो। तुम्हारे निर्दोष न होने से तो तुमने विश्वास करा दिया है। यदि तुम कहीं ऐसे ही पकड़ लिए गए होते तो साहब, तुम तुरन्त कह देते कि 'मैं तो निर्दोष हूँ।' क्या इतना बताने में भी कि तुमने कोई अपराध नहीं किया, वकील की जरूरत है? यदि तुम ऐसा समझते हो तो बिना कहे तुम अपने-आपको अपराधी सिद्ध कर रहे हो। यह ठीक है कि तुमने मुख से कुछ नहीं कहा, परन्तु जब हम लोगों को विश्वास हो जाता है कि हमने एक अपराधी को पकड़ा है तो फिर कानून की दृष्टि में प्रमाण बनाना तो हमारे बाएँ हाथ का करतब है। तुम्हारे साथ भी ऐसा ही होगा। फिर भी मैं चाहता हूँ कि एक अवसर तुम्हें और दूँ। बताओ, तुम्हारा नाम क्या है और तुम कहाँ के रहने वाले हो?"

श्रीहर्ष को मिश्रजी की युक्तियों ने संशय में डाल दिया। उसे संशय यह था कि यदि वह सत्य-सत्य सब बातें बता दे तो इससे उसे लाभ तो कुछ भी नहीं होगा। हाँ, पुलिस वालों को सुभीता हो जाएगा। उसे यह सुभीता पुलिस वालों को देना चाहिए या नहीं, यही दुविधा उसके मन में उत्पन्न हो रही थी और वह निश्चय नहीं कर सका था। इस समय उसने केवल कुछ कहने के विचार से ही कहा, "आप जो कुछ कहते हैं वह ठीक है या नहीं, मैं नहीं जानता। एक बात मेरी समझ में आती है कि आपको यह सबकुछ बताने से मुझे क्या लाभ होगा? कुछ भी तो नहीं।"

श्रीहर्ष की यह पहली बात थी जो उसने पकड़े जाने के पश्चात् की थी। पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र अपनी इतनी सफलता पर प्रसन्न थे। वह कहने लगे, "लाभ तो अवश्य होगा। लो सुनो। यदि तुमने कोई अपराध नहीं किया तो प्रश्नों का सीधा-सीधा उत्तर देने से तुम हमारे मन में विश्वास उत्पन्न करा दोगे और हम तुम्हें छोड़ देंगे। आखिर मुकदमा तो हमें ही बनाना है। और यदि तुम अपराधी हो तो सत्य-सत्य बताने से तुमको मुआफी मिल सकती है। यदि तुम अपराधी हो और पूरा ढण्ड भोगने के लिए तैयार हो, तब जो तुम्हारा मन कहे वह करो। परन्तु इतना याद रख लेना कि अपराधी के अपराध के प्रमाण उसकी सहायता के बिना भी मिल जाते हैं।"

इतना कहकर इन्स्पेक्टर कुछ काल के लिए चुप हो गया। वह सम्मुख बैठे नव-युवक के मुख पर उतार-चढ़ाव देख रहा था। अब वह फिर कहने लगा, "मेरी इस अन्तिम बात का शायद तुम्हें विश्वास नहीं होता। क्यों, ठीक है न? यदि विश्वास नहीं तो सुनो। तुम लोगों के सेठ साहब के मकान में डाका डालने की सूचना सेठ साहब को और उनसे हमको पहले ही पहुँच चुकी थी। यही कारण था कि तुमको

वहाँ पर न तो सेठ साहब मिले और न ही कुछ नकदी तथा जवाहरात। और जानते हो, यह सूचना किसने दी थी? तुम्हारे नेता ने। उसने एक चिट्ठी सेठ साहब को लिखी थी कि वह आप लोगों को पचास हजार रुपया दे दें अन्यथा उनके घर में डाका डाला जाएगा।”

“यह गलत है।”

“गलत है? यह देखो।” इतना कह इन्स्पेक्टर ने मेज़ की दर्राज से एक फाइल निकाल उसमें से एक चिट्ठी निकालकर दिखाई। श्रीहर्ष ने वह चिट्ठी दूर से ही देखी। वह अंग्रेज़ी में टाइप की हुई थी। अब वह फिर कहने लगा, “तुम कह सकते हो कि इससे क्या लाभ हुआ? देखो, इससे एक बात तो यह प्रतीत होती है कि तुम्हारा नेता समझदार आदमी नहीं है। एक तो इतना अधिक रुपया माँगा है कि कोई भी नहीं दे सकता। दूसरा, यह डाका डालने से पहले सूचना देना मूर्खता है और अपने साथियों को पुलिस के हाथ फँसाना है। इस बेसमझी के अतिरिक्त इससे एक बात यह भी हुई है कि हमने वह टाइपराइटर ढूँढ़ लिया है जिस पर यह चिट्ठी टाइप की गई थी। कल हमने शहर-भर के कई टाइपराइटरों के छापे दफ्तर में मँगवाये थे। यह जानना तो अत्यन्त सुगम था कि चिट्ठी इलाहाबाद से ही डाक में डाली गई थी। लिफाफे पर मोहर इलाहाबाद शहर के एक सव-पोस्ट ऑफिस की थी और हमने उसके समीप के तमाम दुकानदारों, दफ्तरों, टाइपिस्टों के टाइपराइटरों के छापे मँगवा लिए थे। हमने उससे यह पता कर लिया कि यह चिट्ठी किस मशीन पर टाइप की गई है और इस टाइपराइटर का मालिक हमें बता गया है कि इस चिट्ठी का टाइप करने वाला कौन है और कहाँ का रहने वाला है। अब सोचो कि यदि तुम चुप भी रहो तो तुम लोग फँस सकते हो या नहीं?”

श्रीहर्ष अभी भी चुप था। उसके मन में घोर युद्ध चल रहा था। वह इस चिट्ठी के विषय में कुछ नहीं जानता था। वह सोच रहा था कि यदि यह सत्य है तो निश्चय ही कमल ने भारी मूर्खता की है। वह सोचता था कि क्या इस मूर्ख नेता को वचाने के लिए वह अपनी जान जोखिम में डाल दे? फिर कभी उसके मन में यह आता था कि ये पुलिस वालों के झाँसे हैं। वास्तव में न कोई चिट्ठी लिखी गई है और न ही इनको कुछ पता चला है।

पण्डित ज्योतिप्रसाद मिश्र बहुत ही योग्य पुलिस अफसरों में से थे। वह उस नवयुवक को विचारमग्न देख समझ रहे थे कि बात बन रही है। उन्होंने समझा, लोहा गरम हो गया है, अब इस लोहे को पीटना चाहिए तो काम बन जाएगा। उन्होंने बिना श्रीहर्ष के कहने की प्रतीक्षा किए अपना कहना जारी रखा :

“क्या अब भी तुम समझते हो कि हम तुम्हें बहका रहे हैं? हाँ, पुलिस वाले ऐसा किया करते हैं परन्तु मैं उन लोगों में से नहीं हूँ। मुझे तुम्हारी मूर्त-जकल

देख, तुम्हारी सुकुमारता देख तुम पर दया आती है। तुम अभी अनजान हो और तुम्हें धोखे में डाल दिया गया है। यदि कोई और होता तो इतनी दिमागपच्ची करने की जरूरत नहीं थी। मुकदमा तो बन ही जाएगा। हाँ, यह तो हमने बताया ही नहीं कि उस टाइपराइटर के मालिक ने क्या कहा है। उसने बताया है कि दो दिन हुए मिरजापुर के ठाकुर ब्रजबिहारी सिंह का लड़का कमलजीत उसके पास आया था और एक चिट्ठी टाइप करने के लिए मशीन माँगी थी। वहीं उसकी बैठक में बैठकर उसने दो चिट्ठियाँ टाइप की थीं। उसने कागज पहचान लिया है और लिफाफे को भी पहचाना है। वह कमलजीत के पिता को जानता है। जब उसका पिता जीवित था तो कमल उसके साथ उनके घर आया करता था। इस कारण उस दिन उसके टाइप करने के लिए आने पर कुछ भी संदेह नहीं हुआ। अब तुम बताओ, हमने ठीक पता लिया है या नहीं।”

कमल का नाम और पूरा पता पुलिस वालों के हाथ में है, यह जान उसका मुख विवर्ण हो गया। वह धवरा उठा। उसके हाथ और होंठ काँपने लगे। मिश्रजी वह सब देख रहे थे। परन्तु यह प्रकट करते हुए कि वह उसकी बेचैनी को नहीं देख रहे, उन्होंने कहना जारी रखा, “इस समय यदि तुम स्पष्ट सबकुछ बता दोगे तो मैं तुम्हें मुआफी दिलवा दूँगा, अन्यथा आप लोगों के लिए फाँसी की डोरी तैयार हो चुकी है और कुछ महीने में वह आप सबके गलों में लटकती होगी। यह मन समझना कि हम आज प्रातःकाल से चुपचाप बैठे हैं। हमने तुम्हारे दो और नायियों को पकड़ लिया है। उनकी पहचान भी हो चुकी है। जिस पुलिस वाले को तुमने धाथिल किया था वह उन्हें पहचान चुका है। यदि तुम नहीं मानोगे तो उनमें से कोई अवश्य सरकारी गवाह बन जाएगा। अब तो केवल यह प्रश्न है कि तुम्हारी जान बचती है या उनमें से किसी की। क्या तुम उनको देखना चाहते हो? यह लो।” इतना कह इन्स्पेक्टर ने मेज पर रखी घण्टी बजाई जिसे सुन एक आदमी भीतर आया। इन्स्पेक्टर ने उसे कुछ संकेत में कहा। वह आदमी बाहर चला गया और कुछ ही समय में चार कांस्टेबलों के साथ कमल के साथी, जो मोटर वालों के अड्डों पर पकड़े गए थे, भीतर लाए गये। पुलिस वालों ने बन्दियों को सामने पेश कर सलाम की। इस पर इन्स्पेक्टर ने कहा, “इन्हें नम्बर ४ और नम्बर ५ की कोठरी में पृथक्-पृथक् बन्द कर दो।” कांस्टेबल ने सलाम की और बन्दियों को साथ ले कमरे से बाहर चले गए। जब सब लोग वहाँ से चले गए तो उसने फिर श्रीहर्ष से कहना आरम्भ किया, “क्यों महाशय, अब भी तुम्हें मेरे कहने का विषवास हुआ है या नहीं? मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं दूसरे पुलिस वालों जैसा नहीं हूँ। मुझे तुम लोगों से पूरी सहानुभूति है और मैं अपनी शक्ति के अनुसार तुम लोगों की सहायता करने के लिए तैयार हूँ। परन्तु मैं मशीन का एक छोटा-सा पुर्जा हूँ। मैं मशीन की गति को पलट नहीं सकता। मैं तुम्हें बचा सकता

हूँ और उसके लिए तुम्हें सब बात सत्य-सत्य बतानी होगी। अब यह अन्तिम अवसर है, वकील इत्यादि की बात छोड़ो। वकील प्रमाणों को बदल नहीं सकते। वे अपराध को मिटा नहीं सकते। वे तो केवल निरपराधों को, वह भी कभी; बचा सकते हैं। कानून की चक्की बड़ी प्रबल है। यह अपराधियों को, वे कितने भी कड़े क्यों न हों, निश्चय से पीस डालती है।”

श्रीहर्ष ने जब अपने दो साथियों को भी बँधा देखा और कमल का पूरा पता पुलिस वालों के हाथ में पाया तो अधिक मुकाबला करना व्यर्थ समझ बोला, “मैं आपको सत्य-सत्य तो बता दूँ, परन्तु...”

“परन्तु क्या ?”

“यही कि मेरे साथ कैसा व्यवहार होगा और दूसरे मेरे साथियों के साथ कैसे बीतेगी ?”

“हाँ, यदि तुम अब बिना देर किए सबकुछ बता दो तो मैं तुम्हें मुआफ़ी दिलवा सकता हूँ। तुम्हारे साथियों की बात ! उनके साथ भी रियायत का बर्ताव हो सकता है यदि वे बहुत लुकाव-छिपाव न करें और अपने किए पर पश्चात्ताप करें। साथ ही वचन दें कि वे फिर कभी ऐसी हरकत नहीं करेंगे।”

यह अन्तिम बात भी जब श्रीहर्ष के मार्ग से दूर कर दी गई तो वह सबकुछ बताने पर राजी हो गया। अब उसे कलम, दवात और कागज देकर एक कमरे में बन्द कर दिया गया और वह अपना बयान लिखने लगा।

इसके पश्चात् पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र ने अन्य दो नवयुवकों को, जो मोटर-बसों के अड्डे पर पकड़े गए थे, बुलाया। उनको इन्स्पेक्टर ने कहा, “अच्छा, तुन लोगों का नाम क्या है ?”

ये दोनों बहुत घबराए हुए थे। एक बोला, “मेरा नाम हरिमोहन पाण्डे है और इनका नाम राधाकृष्ण सिंह है। हम दोनों त्रिवेणी स्नान करने के लिए रात की गाड़ी से आए थे। प्रातःकाल स्नान कर हम घर को वापस जा रहे थे कि पुलिस वालों ने हमें पकड़ लिया।”

इन्स्पेक्टर ने मुस्कराते हुए कहा, “तुम बहुत सच्चे आदमी हो। तुमने सब बात एकदम बता दी है। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। हाँ, तो ज़रा यह भी बता दो कि तुम कहाँ के रहने वाले हो ?”

“हम दोनों मिरजापुर ज़िले के रहने वाले हैं। मैं मिरजापुर में पान की दुकान करता हूँ और यह वहाँ स्कूल की नौकरी की आशा में आया हुआ था। हम दोनों एक ही गाँव के रहने वाले हैं। इस कारण यह मेरे पास ही ठहरा हुआ था।”

“तुम बहुत ही अच्छे आदमी हो। भाई, यदि सब लोग तुम्हारे जैसे सीधी बातें करने वाले हों तो पुलिस वालों का काम ही बन जाए। हमारा जीवन सुगम

मुकदमः

हो जाए। हाँ भाई साहब, अब तुम यह बताओ कि तुम कमलजीत बाबू को जानते हो ?”

कमलजीत का नाम सुन दोनों अवाक् मुख इन्स्पेक्टर की ओर देखने लगे। इन्स्पेक्टर जोर से कहकहा लगाकर हँस पड़ा और बोला, “क्यों पाण्डेजी महाराज, बबरा क्यों गए ? कौन से दर्जा तक पढ़े हो ?”

“दर्जा पूछकर क्या करिएगा ? कहते लज्जा लगती है।”

“नहीं भाई, शर्म की क्या बात है ? पढ़ना चोरी करना थोड़ा ही है।”

“हाँ। नहीं, चोरी नहीं है। मैं हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस की बी० ए० की परीक्षा देने वाला था कि पिताजी के देहांत के कारण पढ़ाई छोड़नी पड़ी। तीन साल नौकरी की तलाश में शहर-शहर घूमता रहा। आखिर पनवाड़ी की दुकान कर ली है। इसमें रुपये-बाराह आने रोज मिल जाते हैं।”

इस कथा ने मिश्रजी को कुछ गम्भीर बना दिया। वह भी अण्डरप्रेजुएट ही थे। परन्तु पिता पुलिस में थे, इस कारण नौकरी सुगमता से मिल गई और उन्नति भी खूब की। एक लम्बी साँस लेकर पूछना जारी रखा, “और तुम ठाकुर साहब, क्या पढ़े हो ?”

राधाकृष्ण ने बहुत धीमे शब्दों में कहा, “मैं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का ग्रेजुएट हूँ। मुना था मिरजापुर में एक मास्टर की जगह खाली है। उसी के लिए यहाँ पर यत्न कर रहा था। यहाँ तो केवल पाण्डेजी के साथ चला आया हूँ और इस मुसीबत में फँस गया हूँ।”

“मुझे तुम लोगों से पूरी सहानुभूति है और मैं चाहता हूँ कि शीघ्र तुम लोगों को यहाँ से जाने की आज्ञा दे दूँ। परन्तु एक बात तो तुम बताते ही नहीं कि कमलजीत तुम्हारे साथ कहाँ से आया था या तुम उसके साथ कैसे हो गए थे ?”

इस काल में हरिमोहन पाण्डे ने अपने मन को स्थिर कर लिया था। वह बोला, “हम किसी कमलजीत को नहीं जानते। हमारा किसी इस नाम के आदमी से सम्बन्ध नहीं है।”

मिश्रजी ने एक बार फिर यत्न किया। वह बोले, “पाण्डेजी महाराज, देखो, झूठ बोलने से कोई वच नहीं सकता। यदि तुम्हें अपने कामों के अच्छे होने का विश्वास है तो निडर हो कह दो। मैं समझता हूँ कि इसी प्रकार तुम अपने प्रयोजन को सिद्ध कर सकोगे। जो काम चोरी-चोरी किया जाता है उसका प्रभाव नेक और लाभप्रद नहीं हो सकता।”

अब पाण्डेजी की हँसने की वारी थी। यद्यपि मुख का रंग उड़ गया था। दो दाँत निकालकर हँसते हुए उसने कहा, “इन्स्पेक्टर साहब, गानिये या न मतिये, यह आपके वश में है। परन्तु हमने जो कहा है, वह सत्य है और इसी बात को बार-बार कहने से कुछ लाभ न होगा।”

इन्स्पेक्टर ने इस बार गलती की थी। उसे उन दोनों को पृथक्-पृथक् पूछना चाहिए था। पाण्डेजी को अपनी बात पर दृढ़ देख उसे अपनी गलती भी सूझ गई। उसने तुरन्त हुक्म दिया कि इन लोगों को अपनी-अपनी कोठरियों में बन्द कर दिया जाये।

: २ :

मधुसूदन गायघाट से पकड़कर थाने ले जाया गया। दूसरे दिन प्रातःकाल हथ-कड़ियों में जकड़ा हुआ इलाहाबाद लाया गया। मार्ग में उसको बहुत कष्ट मिला था, परन्तु मधुसूदन को इस कष्ट का ध्यान नहीं था। वह तो पूर्णिमा और उसके साथियों की सोच रहा था : 'क्या यह सत्य है कि वह पत्र धीरेन्द्र ने लिखा था?' उसका मन कहता था, 'नहीं', और अब उसके मन के विचार की पुष्टि पूर्णिमा ने स्वयं की थी। हाँ, उसे एक नई बात प्रतीत हुई थी। वह यह कि पूर्णिमा का मन उससे दूर हो गया है। पूर्णिमा को अपने पकड़े जाने की सम्भावना बताये जाने पर यह कहता कि 'आपको क्या' इस प्रेम-बन्धन के ढीला पड़ जाने का सूचक है। एक समय था कि पूर्णिमा को पार्टी का एक आदमी उस पर बलात्कार करना चाहता था। वह हाथ में भरा पिस्तौल लिए हुए था। और जब मधुसूदन केवल एक डण्डा हाथ में लेकर उससे मुकाबले के लिए चला था तो पूर्णिमा ने उसे चेतावनी दी थी, परन्तु रोका नहीं था। उस समय वह मधुसूदन पर अपना अधिकार समझती थी। अब वह कहता कि 'आपको क्या' मन की एक विचित्र अवस्था को बताता था। अब वह मधुसूदन पर अपना कोई अधिकार नहीं मानती है। यह प्रेम के शिथिल हो जाने का सूचक हो सकता है।

साथ ही, धीरेन्द्र के लिए उसका अपनी जान पर खेल जाना मधुसूदन के मन में ईर्ष्या पैदा करने वाला था। उसे ऐसा ज्ञात हो रहा था कि उसका स्थान पूर्णिमा के मन में धीरेन्द्र ले रहा है।

'परन्तु,' मधुसूदन सोचता था, 'मुझे इसमें रोष करने की आवश्यकता नहीं है। विवाह के लिए कोई किसी को बाध्य नहीं कर सकता। वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है और मैं भी हूँ। यदि मैं उससे प्रेम करता हूँ तो वह यह भी आवश्यक हो जाता है कि उसके मन के भावों का आदर करूँ।'

मधुसूदन को विश्वास था कि इलाहाबाद पहुँचते ही वह छोड़ दिया जायेगा। उसके विपरीत तो कोई अपराध सिद्ध नहीं हो सकता। केवल किसी मकान के आगे से गुजरना कैसे अपराध हो सकता है। रहा उसका रात के बारह बजे बनारस की गलियों में घूमना। इसके लिए वह ऐसा बहाना बना देगा। झूठा तो वह होगा ही, परन्तु पूर्णिमा के लिए वह ऐसा कर सकता था।

वह एक बजे के लगभग पुलिस स्टेशन पहुँचा। वहाँ उसे तुरन्त खुफिया पुलिस वालों के हवाले कर दिया गया। उसके साथ बनारस से एक चालान भी

आया था जिसमें उस परिस्थिति का भी वर्णन था जिसमें वह पकड़ा गया था।

इन्स्पेक्टर ज्योतिप्रसाद के सामने मय चालान के उसे हाजिर किया गया। इन्स्पेक्टर के सम्मुख यह एक नई उलझन थी। इस समय तक श्रीहर्ष ने अपना लिखा हुआ वयान दे दिया था। उस वयान में गायघाट के मकान नं० २० का कहीं उल्लेख नहीं था। इन्स्पेक्टर ने श्रीहर्ष को उस चिट्ठी की याद दिलाई थी जो सेठ कुंजबिहारी को दी गई थी, परन्तु श्रीहर्ष ने बहुत गम्भीरता से उत्तर दिया था कि वह चिट्ठी और पचास हजार की वास्तु कुछ नहीं जानता। ज्योतिप्रसाद को श्रीहर्ष के इस कथन पर विश्वास था, परन्तु जब बीस नम्बर गायघाट स एक आदमी के पकड़े जाने की सूचना मिली तो वह उलझन में फँस गया। इस आदमी को किस प्रकार श्रीहर्ष के वयान में स्थान दे, यह प्रश्न उसके सामने उपस्थित हो गया।

इन्स्पेक्टर ने कुछ संशय में पड़े हुए भाव से पूछा, “तुम्हारा नाम?”

“मधुमुदन उपाध्याय।”

“कहाँ के रहने वाले हो?”

“इलाहाबाद के।”

“पिता का नाम?”

“श्यामाचरण उपाध्याय।”

“तुम बनारस में क्या कर रहे थे?”

“अपने एक मित्र से मिलने गया था। वह घर पर नहीं था। इस कारण घाट की तरफ जा रहा था कि कहीं गंगा के किनारे सो रहूँ।”

इस वर्णन से इन्स्पेक्टर सोचने लगा कि कोई निर्दोष पकड़ा गया है। परन्तु वह और गहराई में जाना चाहता था। इस कारण उसने पूछा, “तुम क्या काम करते हो?”

“मैं आयुर्वेद पढ़ता हूँ।”

“तुम्हारी योग्यता कितनी है?”

“मैं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का ग्रेजुएट हूँ।”

“ओह! तुम्हारे मित्र का क्या नाम है जिसे तुम मिलने गए थे?”

“नरोत्तमप्रसाद सक्सेना।”

“कहाँ रहता है?”

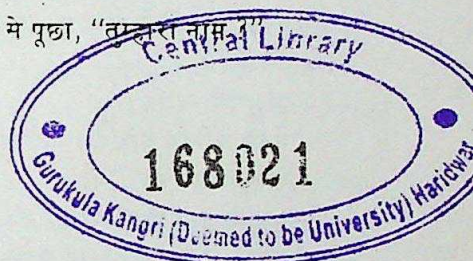
“ढुन्डीराज में।”

“तो तुम गायघाट पर इतनी दूर क्यों पहुँच गए?”

“बिना इच्छा के।”

“अच्छा, नरोत्तमप्रसाद से तुम्हें क्या काम था?”

“वह मेरा सहपाठी था। उससे मेरी घनिष्ठता है। मैं केवल मिलने के लिए



गया था।”

“तुम्हारा कोई जामिन है?”

“हाँ, सेठ कुंजबिहारी साहब।”

“कुंजबिहारी!” इतना कह इन्स्पेक्टर गम्भीर विचार में पड़ गया। उसने चालान पढ़ना आरम्भ कर दिया। चालान में लिखा था—‘कल शाम को यह नौजवान इलाहाबाद स्टेशन पर बहुत बेचैनी में घूमता हुआ देखा गया। बनारस कैट स्टेशन पर वह बेतहाशा भागकर बाहर निकला और इसके जाने को बहुत तेज भगाकर वह चौक में पहुँचा। यहाँ से वह दुन्डीराज में पहुँचा और एक मकान में घुसता हुआ देखा गया। पश्चात् वह गायघाट नं० २० के सामने सन्देहात्मक अवस्था में पकड़ा गया।’

यह चालान पढ़ इन्स्पेक्टर को प्रायः विश्वास हो गया कि यह युवक पचास हजार वाली चिट्ठी से सम्बन्ध रखता है। इस पर उसने पूछा, “तुम सेठ साहब को जानते हो?”

“हाँ, भली-भाँति।”

“उनसे अन्तिम बार कब मिले थे?”

“कल दोपहर को।”

“उन्होंने तुम्हें किसी चिट्ठी की वास्तव बताया था?”

“हाँ।” मधुसूदन को अब प्रतीत हुआ कि मामला इतना सरल नहीं जितना वह समझे हुए था।

“क्या कहा था उन्होंने?”

“उन्होंने कहा था कि उनको एक चिट्ठी मिली है जिसमें उनमें पचास हजार रुपया माँगा है और धमकी दी है। परन्तु वह चिट्ठी उन्होंने पुलिस में दे दी थी।”

“तो इसके बाद तुम बनारस चले गए?”

“हाँ।”

“तो पण्डितजी महाराज, यह तो सिद्ध हो गया है कि आपका वहाँ जाना ही चिट्ठी के सम्बन्ध में था।”

यद्यपि यह बात सत्य थी, परन्तु मधुसूदन यह समझता था कि उसके कथन से यह सिद्ध नहीं हो सकता। इस कारण मधुसूदन ने बहुत शांत चित्त से कहा, “आप भूल कर रहे हैं।”

“भूल?” ज्योतिप्रसाद बहुत भद्र और सभ्य होने पर भी था तो पुलिस के महकमे में। इस प्रकार बिना हुजूर, जनाब इत्यादि विशेषण के अपने-आपको गुलत सुनने का उसे अभ्यास नहीं था। उसने कुछ माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, “मैं भूल नहीं कर रहा, तुम झूठ बोल रहे हो।”

“अच्छी बात है, तुम सिद्ध करो कि मैं झूठ बोल रहा हूँ।”

ज्योतिप्रसाद के क्रोध का पारावार नहीं रहा। अब तो बात में से 'आप' शब्द भी लोप हो गया था और उसका स्थान 'तुम' शब्द ने ले लिया था।

इन्स्पेक्टर ने तमककर कहा, "तुम बहुत बदतमीज़ मालूम होते हो।"

मधुसूदन यद्यपि अपनी तरफ से साधारण ढंग से बातचीत कर रहा था तो भी उसने 'तुम' शब्द का प्रयोग केवल इस कारण किया था कि इन्स्पेक्टर ऐसे ही अट-शंट बोलने न लगे। परन्तु इसका प्रभाव वही हुआ जिसकी आशंका थी। वह एक बात जानता था कि प्रायः पुलिस वाले दवे हुओं को दवाते हैं। इस कारण उसने अभी भी दबना पसन्द नहीं किया। उसने कहा, "तुमने कौन भलमनसाहत का व्यवहार किया है? देखो, मैं नहीं जानता कि तुमने मुझे क्यों पकड़ रखा है? जब मैंने तुम्हें सब बातें बता दी हैं तो कहते हो कि मैंने झूठ बोला है। तुम्हारे पास जो कुछ भी प्रमाण मेरे झूठ बोलने का हो, वह मजिस्ट्रेट को बता देना। मेरे सम्मुख मेरे कथन पर टीका-टिप्पणी करने का तुम्हें अधिकार नहीं है।"

ज्योतिप्रसाद 'तुम'-'तुम' बार-बार सुनकर झल्ला उठा। आखिर उससे न रहा गया। उसने कहा, "तुम मुझे 'तुम'-'तुम' कहकर क्यों पुकारते हो?"

"जैसे तुम मुझे पुकार रहे हो वैसे ही मैं भी तुम्हें पुकार रहा हूँ। मैं तुम्हें आप कहकर क्यों पुकारूँ?"

"ओह! मुझे आप कहकर क्यों पुकारो? यह तुम पूछते हो न! तो लो सुनो। तुम क्रांतिकारी हो। तुमने सेठ साहब को चिट्ठी लिखी कि वह पचास हजार तुम्हें दें। जब तुमने देखा कि मामला पुलिस के हाथ में चला गया है तो अपने साथियों को सचेत करने के लिए तुम बनारस गए और वहाँ पर सबको सचेत कर भगा दिया। बताओ, तुमने यह सबकुछ किया है या नहीं? और यदि किया है तो तुम कितने मान के योग्य हो, यह स्वयं समझ सकते हो।"

मधुसूदन ने अभी भी शांति से उत्तर दिया, "तुम आदि से अन्त तक सब मन-घड़न्त कहानी कह रहे हो। इससे तू कितने मान के योग्य हो, यह तुम स्वयं विचार कर लो।"

"मेरी इस मनघड़न्त कहानी का प्रमाण तो तुम स्वयं अपने मुख से दोगे।"

"जब दूंगा, तब देखा जाएगा। अभी तो यह सब तुम्हारी कल्पना-मात है।"

"तो तुम नहीं बताओगे कि तुम बनारस किसलिए गए थे?"

"बताया तो है, अपने एक मित्र से मिलने गया था।"

"अच्छी बात है।"

इतना कह इन्स्पेक्टर ने घंटी बजाई। दो कांस्टेबल वहाँ आ पहुँचे। उसने आज्ञा दी, "इसको ले जाओ और डण्डा-बेड़ी चढ़ा दो।"

इसमें सन्देह नहीं कि मधुसूदन एक मजबूत शरीर वाला था। इस पर भी वह इस प्रकार के व्यायाम का, जो डण्डा-बेड़ी में करना पड़ता है, अभ्यासी नहीं था।

उसे थाने के एक कमरे में ले जाया गया। वहाँ पर दीवार में खूंटियाँ गड़ी थीं। खूंटियाँ फर्श से सात फुट ऊँची थीं और एक-दूसरे से दो फुट के अन्तर पर थीं। मधुसूदन को दीवार के साथ खड़ा कर उसका एक हाथ एक खूँटी के साथ बाँध दिया गया और दूसरा हाथ दूसरी खूँटी के साथ। इस प्रकार उसके हाथ सिर से ऊपर परन्तु एक-दूसरे से दूर बँध गए थे। अब उसके पैरों में बेड़ियाँ डाल दी गईं। इन बेड़ियों के बीच में एक दो फुट लम्बा डण्डा लगा हुआ था। परिणाम यह हुआ कि बेड़ियाँ लग जाने पर मधुसूदन अपने पैरों को दो फुट फैलाकर रखने पर बाध्य हो गया। जो लोग उसको बाँधने आए थे वे कोठरी का दरवाजा बन्द कर वहाँ से चले गए।

ज्योतिप्रसाद मिश्र का काम अभी समाप्त नहीं हुआ था। उसने अपने महकमे के एक आदमी को बनारस कुछ खास बातें नोट कराकर भेज दिया। स्वयं सेठ कुंजबिहारी साहव के मकान की तरफ चल पड़ा।

सेठ साहव के घर पूछने और सहानुभूति करने वालों का तांता बँधा हुआ था, परन्तु उन्होंने यह किसी को नहीं बताया कि रात वह कहाँ रहे। सब लोग अपना-अपना अनुमान लगा रहे थे, और सबके अनुमान गलत थे। कोई यह न समझ सका कि सेठ साहव श्यामाचरण जैसे गरीब ब्राह्मण के घर ठहरे थे।

सायंकाल इन्स्पेक्टर ज्योतिप्रसाद वहाँ पहुँचा। ज्योतिप्रसाद ने अपना परिचय दिया और बताया कि इस मामले में वह खोज कर रहा है। इस पर सेठ साहव सब दूसरे आदमियों को वहाँ से विदा कर अकेले इन्स्पेक्टर के साथ रह गए और उत्सुकता से उसका मुँह देखने लगे।

इन्स्पेक्टर ने बड़े अभिमान से कहा, “सेठ साहव, हमने इस मामले में बहुत कुछ पता पा लिया है। चिट्ठी लिखने वाले का पता मिल गया है। उसके वारण्ट जारी हो गए हैं। उसके कुछ साथी पकड़ लिए गए हैं। एक सरकारी गवाह भी बन गया है। अब आपसे कुछ बातों में सहायता चाहता हूँ। आशा है, आप मेरी मदद करेंगे।”

“हाँ, हाँ। इसमें भी भला कोई संदेह है !”

“हाँ, तो आप बताएँ कि कल दोपहर के समय आपसे कोई मिलने आया था ?”

सेठ साहव को अब मधुसूदन की याद आई। दिन-भर लोगों के आने-जाने में वह उसे भूल गए थे। उन्होंने उत्सुकता से कहा, “हाँ, क्या बात है ?”

“उसका नाम ?”

“मधुसूदन। हमारे मन्दिर के पुजारी का लड़का। वह कल से गायब है। क्या उसकी कुछ खबर है ?”

“खबर क्या, वह भी इसी पार्टी का मैम्बर है।”

“गलत है।”

“गलत नहीं, बिल्कुल ठीक है। कल रात के बारह बजे के लगभग वह उसी मकान के समीप घूमता हुआ पकड़ा गया है, जहाँ आपको रुपया पहुँचाने के लिए लिखा गया था।”

“सच?” सेठ साहब की हैरानी का पारावार नहीं था।

“बिल्कुल सच। वह अब जेरे हिरासत है। आप बताएँ कि आपने उसे बुलाया था या वह अपने-आप आया था?”

“वह अपने-आप आया था, परन्तु मुझे विश्वास नहीं आता। वह तो मुझे कह रहा था कि इतनी बड़ी रकम इन लोगों को कभी नहीं देनी चाहिए। क्या जाने वे क्या करते हैं और क्या नहीं।”

“आप अपने विश्वास को रहने दीजिये। वह बहुत ही धूर्त प्रतीत होता है।”

“धूर्त! तो आज ही वह ऐसा हो गया होगा। कल तक तो वह बहुत सरल प्रतीत होता था।”

“कुछ भी हो। हाँ, तो आपने उसे क्या-क्या बातें बताई थीं?”

“मैंने उसे चिट्ठी का आशय बताया था और पश्चात् उसने ही मुझे रात को घर से बाहर रहने की राय दी थी।”

“अच्छा! अब तो यह बात स्पष्ट हो गई है। चोर को कहा, चोरी कर और साधु को कहा, सचेत रहो।”

“परन्तु उसने यह भी कहा था कि नकदी और जेवर यहाँ से हटा देने चाहिए।”

“सेठ साहब, यही तो मैं कह रहा हूँ कि आपको चिट्ठी की वावत और चिट्ठी डालने वालों के प्रोग्राम की वावत सबकुछ विदित था। आपको तो कह दिया, सचेत रहो और शायद उनको भी यही कहने वह बनारस गया था।”

“इन्स्पेक्टर साहब, मुझे उस लड़के पर बहुत विश्वास है। मैं उसे बचपन से जानता हूँ। उसकी प्रत्येक बात मुझे ज्ञात है और मैं उसके बनारस जाने का कारण भी जानता हूँ।”

“आप कारण जानते हैं! कैसे?”

“वह मुझसे कभी कुछ चोरी नहीं रखता। उसने मेरे सामने कभी झूठ नहीं बोला। उसका एक मित्र बनारस में है और वह उसकी बहन से प्रेम करता है। वह उससे विवाह करना चाहता है। मुझे विश्वास है कि वह इसी काम से वहाँ गया होगा।”

“परन्तु जब वह यहाँ से गया था तो बहुत बेचैन था। स्टेशन पर पुलिस ने उसे बहुत धरवाई हुई हालत में देखा। बनारस में भी उसकी बेचैनी प्रत्यक्ष थी। इसके अतिरिक्त वह अपने मित्र के घर से दूर पकड़ा गया है।”

“उसकी वेचैनी की बात तो समझ में आ सकती है। वह कल अपने पिता से लड़कर गया था। उसका पिता इस लड़की के साथ उसके विवाह के लिए राजी नहीं है। इस कारण उसका वेचैन होना तो ठीक ही था। रहा उसका गायघाट पर पहुँचना, यह मैं नहीं बता सकता। सम्भव है, उसका लड़की से भी झगड़ा हो गया हो या कोई और ही बात हो। इतना मैं जानता हूँ कि वह मुझसे कुछ भी माँग सकता था। उसको मैं इससे भी अधिक दे सकता था। तब उसे मुझे धमकी देने की क्या आवश्यकता थी?”

इन्स्पेक्टर ने इसके उत्तर में केवल यह कहा, “कुछ भी हो, मुझे विश्वास है कि वह इस मामले से घना सम्बन्ध रखता है।”

यह कह मठ साहब की बातों पर विचार करता हुआ वह वहाँ से विदा हो गया।

वहाँ से वह अपने घर पहुँचा। वहाँ वह अपने पारिवारिक कामों में इतना व्यस्त हुआ कि उसे यह सर्वथा भूल ही गया कि मधुसूदन दीवार के साथ टँगा हुआ है।

रात को वह कुछ मित्रों के साथ सिनेमा देखने चला गया। वहाँ से वह लौटा तो थकावट से सो गया। प्रातःकाल स्नान इत्यादि से निवृत्त हो जब वह पूजा पर बैठा तो उसे मधुसूदन की याद आई। यह विचार आने ही कि शायद रात-भर वह वहाँ टँगा रहा होगा, वह वेचैन हो उठा। उसका ध्यान पूजा-पाठ में नहीं लगा। वह तुरन्त उठा और ताँगा कर सीधे थाने में पहुँचा। वहाँ गया तो एक और उल-झन में फँस गया। थाने में डी० आई० जी० और कलक्टर पहुँचे हुए थे। वे लोग इमी मुकदमे के सम्बन्ध में आए थे और इन्स्पेक्टर ज्योतिप्रसाद से मिलना चाहते थे। इन्स्पेक्टर जल्दी में दो कांस्टेबलों को मधुसूदन की खबर लेने के लिए भेज, स्वयं डी० आई० जी० के पास जा पहुँचा। वह उनको अभी श्रीहर्ष के वयान के विषय में ही बता रहा था कि उनमें से एक कांस्टेबल, जिसे उसने मधुसूदन की खबर लेने भेजा था, सामने आ खड़ा हुआ। उसका मुख भय से सर्वथा सफेद पड़ गया था। इन्स्पेक्टर उसकी यह डरावनी अवस्था देख घबरा गया। डी० आई० जी० को वहाँ ही छोड़ वह कांस्टेबल के पास पहुँचा। कांस्टेबल ने कान कहा, “हुजूर, मर गया है।”

इस सूचना ने इन्स्पेक्टर को इतना भयभीत किया कि वह वहीं बैठ गया। कलक्टर, जो इन्स्पेक्टर को देख रहा था, उसके मुख का रंग देख चकित रह गया। वह उठकर कांस्टेबल से पूछने लगा, “क्या हुआ है?”

कांस्टेबल ने बहुत भय के साथ इन्स्पेक्टर की ओर देखा, परन्तु कलक्टर ने डाँटकर कहा, “बताता क्यों नहीं?”

इन्स्पेक्टर ने डरते-डरते कहा, “हुजूर, एक मुलजिम डण्डा-वेड़ी में मर गया।

है।" इन्स्पेक्टर के माथे से पसीना टपक रहा था।

डी० आई० जी० और कलक्टर दोनों कांस्टेबल के साथ उस कमरे में गए जहाँ मधुसूदन फर्श पर पड़ा था। दो और कांस्टेबल वहाँ थे। उन्होंने डण्डा-वेड़ी उत्तार दी थी और मधुसूदन के हाथ-पाँव मल रहे थे। डी० आई० जी० ने चिंतित स्वर में पूछा, "क्या बात है? कुछ है उम्मीद?"

"हुजूर, मरा तो नहीं, मगर हालत खतरनाक जरूर है।"

इन्स्पेक्टर को, जो वहाँ आ पहुँचा था, कलक्टर ने कहा, "जल्दी डॉक्टर को टेलीफोन करो।" फिर वेहोश के पास पहुँचकर उसकी नाड़ी देखने लगा। जब वहाँ कुछ नहीं पाया तो छाती पर कान रखकर हृदय की खट-खट सुनने लगा। यहाँ कुछ आशाजनक लक्षण देख कहने लगा, "इसके हाथ ऊपर-नीचे हिलाओ।"

मधुसूदन को कुछ ऊँचा कर उसकी पीठ को हाथों से दबाकर वे साँस जारी करने का यत्न करने लगे। इसी प्रकार प्रयत्न जारी था जब डॉक्टर हाज़िर हो गया। उसने आते ही एक इन्जेक्शन लगा दिया। इस प्रकार एक घण्टे के प्रयत्न के पश्चात् मधुसूदन ने आँखें खोल दीं।

डी० आई० जी० यहाँ से छुट्टी पाकर दफ्तर पहुँचा और वहाँ इन्स्पेक्टर को डाँट-फटकार बताने लगा। बोला, "तुम कैसा बेहूदा काम करते हो। मुलज़िम को ऐसी कड़ी सज़ा दे, घर जाकर सो रहे थे। भगवान् का धन्यवाद करो कि बच गये हो, नहीं तो बात बिलकुल ही बिगड़ चुकी थी।"

"हुजूर, मुआफ़ करें। कल काम बहुत ज्यादा होने से मैं भूल गया था। अब फिर ऐसी भूल नहीं होगी।"

"आखिर यह है कौन जिसकी जान ही ले डाली थी?"

अब तो इन्स्पेक्टर ने एक तो अपनी निर्दयता को उचित सिद्ध करने के लिए और दूसरा अपने-आपको बहुत काठेन काम में व्यस्त बताने के लिए मधुसूदन को बहुत ही भयानक आदमी सिद्ध करने का पूरा यत्न किया। कहने लगा, "हुजूर, यह नेठ साहब के पास बैठने वालों में है। इसने क्रांतिकारियों को शायद यह आशा दिलाई थी कि सेठ साहब यह रकम चुपचाप दे देंगे। परन्तु जब उनको पुलिस में रिपोर्ट करते देखा तो अपने साथियों को चेतावनी देने चला गया और स्वयं ही पुलिस के फंदे में फँस गया। ऐसा प्रतीत होता है कि पार्टी के दो भाग हैं। एक भाग के लोग डाका डालने चले आए थे और दूसरा भाग रुपया वसूल करने वहाँ बैठा रहा था। यह भी प्रतीत होता है कि एक भाग का परिचय दूसरे भाग से नहीं है और दोनों में सम्बन्ध इसी युवक के द्वारा है। डाका डालने वाले भाग में से तीन आदमी पकड़े गए हैं और उनमें से एक तो सरकारी गवाह बनने को भी तैयार हो गया है। रुपया प्राप्त करने वाले भाग में से कोई नहीं पकड़ा गया, परन्तु दोनों में सम्बन्ध जिसके द्वारा है वह हमारे काबू में आ गया है। सम्भव है

कि यह दोनों विभागों का नेता हो।”

डी० आई० जी०, जो बहुत ध्यान से यह सब कथा सुन रहा था, इतने विषम पड़्यन्त्र का हाल सुन चकित रह गया। कहने लगा, “इन लोगों का संगठन बहुत दृढ़ प्रतीत होता है। इसी कारण शायद कलक्टर के बँगले की घटना का सुराग नहीं मिला।”

“हाँ हुजूर, मधुसूदन का, यही जो वेहोश हो गया था, सेठ कुंजबिहारी से बहुत मेल-जोल है और कलक्टर के बँगले की घटना के दिन सेठ साहब का ही सब प्रबन्ध था। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस लौंडे ने सेठ साहब को उल्लू बनाकर बम चलाने वालों को बँगले में घुसने का अवसर दिया होगा। हुजूर, यह अत्यन्त भयानक आदमी है और सेठ साहब का इस पर इतना विश्वास है कि वह इसको दोषी मानने के लिए तैयार ही नहीं होते।”

“परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या तुम ये सब बातें अदालत में सिद्ध कर सकोगे? यह विचार तो तुम्हारा सत्य प्रतीत होता है, परन्तु अदालत में तो विचार के साथ ठोस प्रमाण भी होने चाहियें।”

“इन्हीं प्रमाणों को पैदा करते-करते ही तो मेरे फाँसी गले में लटक चली थी। जहाँ तक डाका डालने वाले विभाग का सम्बन्ध है, सिवाय एक के शेष सब मुल-जिम्मों का पता चल गया है। कठिनाई यह है कि इस विभाग के लोग पार्टी के दूसरे विभाग से कोई भी परिचय नहीं रखते। दोनों विभागों की कुँजी मधुसूदन के हाथ में है। या तो यह ही बक उठे या कोई और आदमी पकड़ा जाये। मैंने कुछ और बातें जानने के लिए बनारस आदमी भेजा है। कल उनका पता चल जायेगा। एक युवक तो मिरजापुर के एक ज़मींदार का लड़का है, बहुत आवश्यक व्यक्ति है। उसका नाम कमलजीत है। उसके वारण्ट जारी हो चुके हैं, परन्तु वह अभी पकड़ा नहीं गया। यह वही युवक है जिसने रामसिंह पर गोली चलाई थी। एक और व्यक्ति है जिसे द्विवेदी के नाम से पुकारा जाता था। वह एक रहस्यमय व्यक्ति है। उसका पूरा नाम-धाम कोई नहीं जानता, परन्तु है वह बहुत समझदार और चतुर।”

“अच्छी बात। इस मुकदमे के सफल होने पर मिश्रजी, आप रायबहादुर तो अवश्य बन जायेंगे और इनाम वगैरह भी मिलेगा।”

“और, हाँ जनाब, ऐसे मुकदमे पर सरकार के कई लाख खर्च होंगे। उसमें से कुछ तो मेरे भी हिस्से में आना चाहिये।”

“हाँ, हाँ!” यह कहता हुआ डी० आई० जी० उठकर चला गया।

१४१

मधुसूदन को होश तो आ गया था, परन्तु उसके स्वास्थ्य को ऐसा धक्का पहुँचा कि डॉक्टर ने साफ-साफ कह दिया कि अगर अब इसको कोई दण्ड दिया

गया तो इसके दिल की हरकत बन्द हो जायेगी। महकमा पुलिस को पक्का विश्वास हो गया था कि यह युवक ही क्रांतिकारी दल का कर्ता-धर्ता था। परन्तु वह न तो कुछ बोला और न ही श्रीहर्ष, जो सरकारी गवाह बन गया था और जिसे मुआफी मिल चुकी थी, मधुसूदन को अपने बयान में लेने को तैयार हुआ। एक दिन जब पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र ने बहुत जोर दिया तो श्रीहर्ष ने कह दिया, “देखो पण्डितजी, प्रत्येक बात की एक सीमा होती है। मैंने अपनी जान बचाने के लिए अपने साथियों को पकड़वा ज़रूर दिया है, परन्तु बेकसूर व्यक्ति को मैं अपनी जान के बदले भी नहीं फँसाऊँगा।”

पं० ज्योतिप्रसाद ने कहा, “परन्तु वह बेकसूर तो है नहीं। मैंने सब प्रमाण तुम्हारे सामने रख दिये हैं। हाँ, इतनी बात है कि ये प्रमाण अदालत में उपस्थित नहीं किये जा सकते। अदालत को तो किसी आदमी की देखी-भाली बातों का विश्वास हो सकता है। यह तो केवल एक सच्ची बात को तुम्हें अपने मुख से कहना है।”

“परन्तु, मिश्रजी, मैं तो उसकी वाकत कुछ नहीं जानता। मैं नहीं कहूँगा। आपके पास प्रमाण हैं तो आप उनको अदालत में उपस्थित करें। मैं जिस बात को नहीं जानता, उसको कैसे कह दूँ?”

“इससे तो तुम्हारा मुआफीनामा वापस हो जायेगा?”

“हो जाये। मैं एक बेकसूर को तो नहीं फँसाऊँगा। मैंने पहले ही बहुत पाप किया है। उसका प्रायश्चित्त करते-करते और पाप करूँ यह मुझसे नहीं हो सकेगा। इसमें सन्देह नहीं कि जान बचाने की इच्छा ने भी मेरे गवाह बनने में भारी भाग लिया है, परन्तु मुख्य बात यह है कि मुझे अपनी पार्टी के कार्यक्रम के सफल होने में सन्देह हो गया है। मुझे यह जान पड़ता है कि स्वराज्य प्राप्त करने का यह मार्ग नहीं। इस कारण अपनी पार्टी के बन्द किये जाने के लिए मैंने यह यत्न किया है। यह पार्टी के साथ द्रोह, धोखेबाजी है, और मैं इसे समझता हूँ, परन्तु देश के हित के लिए मैंने यह धोखेबाजी स्वीकार कर ली है। किन्तु यह मधुसूदन कौन है, कौन नहीं है, मैं नहीं जानता। आपके प्रमाण केवल आपके दिमाग की उपज भी हो सकते हैं। मेरे प्रायश्चित्त से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। मैं यह नहीं कर सकता और यथार्थ में आपके बार-बार डराने से मेरा मरने का भय भी चला गया है। आप जो चाहें करें।”

इस प्रकार की स्पष्ट बातों के बाद इन्स्पेक्टर को अपने प्रस्तुत किये मुकदमे के सिद्ध करने की आशा जाती रही। यह नहीं कि उसने केवल श्रीहर्ष से ही सहायता माँगी हो। उसने मधुसूदन को भी बहुत समझाया। उसने उससे कहा, “देखो पण्डितजी, आतंकवाद से तो स्वराज्य मिल नहीं सकता और ऐसे निष्प्रयोजन और निष्फल प्रयत्न को जारी रखना अथवा जारी रहने देना देश

और मनुष्यता के लिए हानिकर है। यदि तुम आतंकवादियों की संस्था को तोड़-फोड़ नहीं देते तो तुम देश को हानि पहुँचाते हो और मनुष्यता से द्रोह करते हो।”

मधुसूदन उसको कह देता, “मैं सोलह आने तुमसे सहमत हूँ, परन्तु मैं आतंकवादियों के पकड़वाने में अशक्त हूँ। मैं उनकी वावत कुछ नहीं जानता। मैं जो कुछ जानता हूँ उससे अधिक तुम जानते हो। मैं तुमको अधिक नहीं बता सकता।”

कई प्रकार से धूम-धुमाव कर, दवा-धमकाकर मधुसूदन पर प्रश्न किये जाते थे। एक बार इन्स्पेक्टर ने मधुसूदन से पूछा, “वह कौन लड़की है जिससे तुम्हारा विवाह होने वाला है?”

“मैं क्या जानूँ?”

“तुम्हारा विवाह क्या निश्चित नहीं हुआ था?”

“हाँ, हुआ था, परन्तु तुम्हारा इससे मतलब? विवाह तो मेरा होना था जो अब नहीं हो रहा। तुम्हें मेरे विवाह होने अथवा न होने से कुछ मतलब नहीं।”

एक और बार इन्स्पेक्टर ने अकस्मात् पूछा, “क्या कमल भी तुम्हारी पार्टी का सदस्य है?”

“कौन-सी पार्टी का? मेरी कोई पार्टी नहीं है।”

“वही, जिसने सेठ साहब को चिट्ठी लिखी थी।”

“मैं चिट्ठी लिखने वाली पार्टी को नहीं जानता।”

“तुम जानते हो और तुम्हारे विपरीत प्रमाण एकत्रित किये गये हैं।”

“तो मुझ पर मुकदमा क्यों नहीं चला देने? मैं अपनी मुकदमे में सफाई उपस्थित करूँगा। अब तुमसे बात नहीं करूँगा।”

इस प्रकार इधर से भी निराश हो वह सेठ कुंजविहारी के दरवाजे पर पहुँचा। परन्तु इस समय तक सेठ साहब भी सचेत हो गये थे। उन्हें इस बात पर तो विश्वास आता ही नहीं था कि मधुसूदन ने उनके साथ विश्वासघात किया है। परन्तु यह वह नहीं जानते थे कि वह उसी दिन बनारस क्यों गया था और फिर गायघाट पर क्यों पहुँचा। जब वह इस विषय में कुछ जानते नहीं थे तो अपने मन का अनुमान बताना उचित नहीं समझते थे। पहले दिन इन्स्पेक्टर से उन्होंने कुछ ऐसी बातें कर् दी थीं जो इस विषय से सम्बन्ध नहीं रखती थीं और जिनकी वावत उन्होंने केवल अनुमान से काम लिया था। परन्तु जब उनको ज्ञात हुआ कि मधुसूदन एक संगीन मुकदमे में फँस गया है तो उन्होंने एक योग्य वकील से राय ली। वकील ने बताया कि वह कोई ऐसी बात न बताये जिसके सत्य होने का सोलह आने विश्वास न हो। अनुमान की बातें करने से वह मधुसूदन और अपने-आपको भी हानि पहुँचा सकते हैं। इस राय के पश्चात् सेठ साहब सचेत हो गये। न केवल वह स्वयं सचेत हुए, प्रत्युत् उन्होंने श्यामाचरण को भी सिखा दिया कि

कोई बात पुलिसवालों को न बताई जाये। परिणाम यह हुआ कि सेठ साहब से पहली भेंट के पश्चात् इन्स्पेक्टर ज्योतिप्रसाद कुछ भी मतलब की बात नहीं पा सके।

एक दिन पं० ज्योतिप्रसाद सेठजी से घण्टों बात करते रहे। कहने लगे, “देखिये साहब, ये क्रांतिकारी लोग साम्यवादी हैं। साम्यवाद का अर्थ है संसार की सारी संपत्ति एकसमान सब लोगों में बाँट दी जाये। न कोई बड़ा रहे, न छोटा, न धनी, न गरीब। सब गाजर-मूली एक ही भाव होंगे। ये लोग अनर्थ कर देंगे। ये न धर्म को मानते हैं न कर्म को। ईश्वर को ये कुछ नहीं समझते। विवाह-शादी के बन्धन को व्यर्थ बताते हैं। ये संसार के सुख में काँटे हैं। इनकी सहायता करनी सरकार, जाति, धर्म, न्याय और अपने-आपके साथ अन्याय करना है। रूस में जहाँ साम्यवादियों का राज्य है, धनी लोगों की सब सम्पत्ति छीनकर सरकार ने अपने अधिकार में कर ली है। किसी को, चाहे वह कितना भी योग्य हो, धनी बनने नहीं दिया जाता। कोई अच्छा काम करे या घटिया, सबको केवल खाने, पहनने और रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता।”

सेठ साहब बड़े इत्मीनान से कह देते, “पण्डितजी, मैंने ये सब बातें समाचार-पत्रों में पढ़ी हैं और ठीक भी हो सकती हैं। मुझे न तो ये पसन्द हैं, न ही नापसन्द। मैं तो यह मानने वाला हूँ कि समाज का कुछ भी प्रबन्ध हो, योग्य आदमियों को श्रेष्ठ माना ही जायेगा। तुम यह नहीं समझते क्योंकि तुम्हारे पास कभी धन एकत्रित हुआ ही नहीं। मुझे पृच्छो। मेरी इतनी सम्पत्ति है कि मैं सौ बार भी पचास हजार देकर निर्धन नहीं हो सकता। फिर भी मेरे सम्मुख धन कोई बड़ी वस्तु नहीं है। मैंने यह धन अपने-आप कमाया है। क्यों? केवल इसलिए कि इस समय संसार में धन से मान होता है, धन से प्रतिष्ठा है और संसार के सब सुख-सुभीते धन से ही प्राप्त होते हैं। मैंने अपनी सब योग्यता, इस कारण, धन कमाने में लगा दी है। यदि आज यह नियम हो जाए कि योग्यता और मान-प्रतिष्ठा तथा सुख-सुभीते के लिए धन की आवश्यकता नहीं तो मेरा धन कोई भी ले जाये, मुझे इसमें क्या रोष हो सकता है? यदि मुझे मेरी योग्यता और पुरुषार्थ के अनुकूल मान-मर्यादा बिना धन एकत्रित किये हुए भी मिल सके तो यह बोझा और जिम्मेदारी सिर पर लादने की क्या जरूरत है? यह जरूरत तभी तक है जब तक धन होना मान-प्रतिष्ठा पा सकने का सर्टिफिकेट है। रहा खाना, पहनना और रहना, इस पर खर्च ही क्या होता है?”

इस प्रकार बातचीत आरम्भ होने से पूर्व ही इन्स्पेक्टर का मुख बन्द कर दिया जाता था। जब वह घुमाव-फिराव से मतलब नहीं निकाल पाता था तो कहता, “भला यह तो आपको मालूम होगा कि मधुसूदन की किससे शादी होने वाली थी?”

“मैं क्या जानूँ। मधुसूदन से ही पूछ लो।”

पं० ज्योतिप्रसाद निराश हो कहते, “आप लोग जानबूझकर हमको मधुसूदन को जेरे हिरासत रखने पर बाध्य कर रहे हैं। यदि आप कुछ नहीं बतायेंगे तो हम दूसरे उपायों से पता करेंगे। इसमें देर लगेगी और तब तक उसे हिरासत में ही रखना होगा।”

सेठ साहब कुछ उत्तेजित हो बोले, “दो बार ‘रिमांड’ ले चुके हो। देखूँ अब तीसरी बार कैसे लेते हो?”

परन्तु सेठ साहब के प्रयत्न का कुछ फल नहीं हुआ। तीसरी बार जब मधुसूदन को मजिस्ट्रेट के सम्मुख पेश किया गया तब भी उसके विपरीत मुकदमा तैयार नहीं था। जितने भी आदमी कमल की पार्टी के पकड़े गये थे उन सबको श्रीहर्ष ने पहचान लिया था, परन्तु मधुसूदन पर उँगली रखने वाला कोई नहीं मिला। मधुसूदन को पकड़े हुए दो मास में ऊपर हो चुके थे। और मजिस्ट्रेट और ‘रिमांड’ देने में संकोच करता था। इस पर पुलिस वालों ने एक दूसरा उपाय निकाला। मजिस्ट्रेट के सम्मुख पुलिस ने मधुसूदन के विपरीत अपना दावा उठा लिया।

सेठ साहब मधुसूदन के मुकदमे में और ‘रिमाण्ड’ दिये जाने के विपरीत बहस करने के लिए इलाहाबाद के चोटी के आधी दर्जन वकील लेकर पहुँचे थे। परन्तु जहाँ उनको यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि बिना बहस के ही मुकदमा उठा लिया गया है वहाँ साथ ही उतना ही क्रोध, निराशा, पुलिस के विपरीत घृणा, और सरकार के प्रति विद्रोह उनके मन में तब उत्पन्न हुआ जब मधुसूदन को मजिस्ट्रेट के कमरे से बाहर निकलते ही फिर पकड़ लिया गया। अब उसे प्रान्तीय सरकार की आज्ञा पर पकड़ा गया था और यह आज्ञा रेग्युलेशन १८१८ के अनुसार निकाली गई थी। अब बिना मुकदमे के मधुसूदन को बन्दी रखने का हुक्म था।

परिवर्तन

कलकत्ते में चित्तरंजन स्वयेयर के नं० ४३ के मकान की सबसे ऊपर की मंजिल पर पूर्णिमा और उसकी माँ एक कमरे में बैठी थीं। कुछ चिट्ठियाँ और दैनिक ‘लीडर’ की कुछ प्रतियाँ उनके सामने पड़ी थीं। पूर्णिमा ठोड़ी को हथेली पर रखे हुए गम्भीर विचार में मग्न थी। उसकी माँ भी विचारमग्न अपनी लड़की की ओर देख रही थी।

जब से ये लोग धीरेन्द्र के कहने पर बनारस से आये थे, बराबर लीडर अखबार पढ़ा करते थे। कारण यह था कि मधुसूदन का समाचार कभी-कभी इसमें

निकलता रहता था। इसके अतिरिक्त चिट्ठी-पत्री से भी वहाँ के समाचार उनको मिलते रहते थे। सेठ साहब मधुसूदन का पूरा-पूरा वृत्तांत लिखकर भेजा करते थे। उनकी चिट्ठियाँ डाक द्वारा न आकर उनका नौकर रामाधार लाया करता था।

जब से मधुसूदन की भावी पत्नी के विषय में पुलिस वालों ने पूछताछ आरम्भ की तभी सेठ साहब ने डाक भेजने का यह ढंग ग्रहण किया था। इस प्रकार न तो पूर्णिमा को डाक से चिट्ठी भेजने की आवश्यकता रही और न ही सेठ साहब को। और पुलिस के लाख यत्न करने पर भी यह रहस्य वे न पा सके।

बनारस में भी यद्यपि पड़ोस के लोग पूर्णिमा और उसकी माँ के कलकत्ते चले जाने से चकित हुए थे, परन्तु जब उनको यह ज्ञात हुआ कि पूर्णिमा कलकत्ते की एक फिल्म कम्पनी में नौकरी करने गई है तो उन्होंने नाक-भौं चढ़ाकर उनका ध्यान छोड़ दिया था।

वह खुफिया पुलिस का आदमी, जो मधुसूदन के पीछे-पीछे पूर्णिमा के मकान तक पहुँचा था, इलाहाबाद का रहने वाला था। दूसरे दिन जब वह फिर वही मकान, जिसमें मधुसूदन घुसा था, ढूँढ़ने आया तो भूल गया। वह एक मकान के सम्मुख आ खड़ा हुआ जिसमें एक वृद्ध ब्राह्मणी रहती थी। यथार्थ में वह उस गली को ही भूल गया था जहाँ मधुसूदन से उसकी बातचीत हुई थी।

कुछ दिन पश्चात् जब नरोत्तम बनारस आया तो उसे यह देख अचम्भा हुआ कि उसके मकान पर किसी भी प्रकार की पूछताछ नहीं की गई। गायघाट नं० २० पर तो बहुत हलचल मची थी। उसी रात से, जिस रात को मधुसूदन पकड़ा गया था, उस मकान पर पुलिस वालों ने अधिकार जमा लिया था; परन्तु कमल से झगड़ा हो जाने पर धीरेन्द्र ने मकान को ऐसे खाली किया था कि पुलिस वालों को वहाँ तेल का दीपक और खूंट भी नहीं मिले थे। धीरेन्द्र इस मकान में कभी-कभी आकर ठहरा करता था। इस मकान का किराया एक वर्ष पेशगी दिया हुआ था। परिणाम यह हुआ कि पुलिस वाले पड़ोस वालों से भी मकान में रहने वालों का पता न पा सके। मालिक मकान ने केवल यह बताया कि एक ब्रह्मचारी या वान-प्रस्थी है जो इस मकान में रहता है। उसने भाड़ा पेशगी दे रखा है। इस कारण बहुत पूछताछ करने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

इन दिनों नरोत्तम कई बार इलाहाबाद गया था। यह जानकर उसे बहुत प्रसन्नता हो रही थी कि मधुसूदन के विपरीत मुकदमा बनाने में पुलिस सफल नहीं हो रही है। साथ ही वह यह जान बहुत चिंतित भी था कि पुलिस इस बात की खोज में है कि मधुसूदन किस मित्र से मिलने बनारस गया था, और वह कौन लड़की है जिससे उसका विवाह होने वाला है। इसका अर्थ यह था कि नरोत्तम और उसकी बहन के लिए अभी कलकत्ते में ही रहना उचित था।

उस दिन 'लीडर' पत्र में मधुसूदन के छोड़े जाने और फिर सन् १८१८ के

रेग्युलेशन के अधीन पकड़े जाने का समाचार छपा था। साथ ही सेठ साहब की चिट्ठी भी आई थी जिसमें पुलिस की कार्यवाही का पूरा-पूरा व्योरा था। यही पढ़कर माँ-बेटी दोनों गम्भीर विचार में डूबी हुई थीं। पूर्णिमा के आसू उसकी आँखों में छलक रहे थे। वह उन्हें रोकने का बहुत यत्न कर रही थी, परन्तु वे प्रतिक्षण रुकने कठिन होते जाते थे। जब वह अपने प्रयत्न में हार गई तो उठकर पिछले कमरे में चली गई और भीतर से दरवाजा बन्द कर रोने लगी।

पूर्णिमा की माँ वहीं बैठी इस सब परिवर्तन पर विचार करती रही। नरोत्तम कहीं बाहर गया हुआ था। घर आया तो माँ ने सब वृत्तान्त सुनाया। वह 'लीडर' की प्रति उठाकर पढ़ने लगा। पश्चात् उसने सेठ साहब का पत्र भी पढ़ा। लम्बी साँस खींचकर बोला, "यही तो कारण है कि हम इस राज्य-पद्धति का विरोध करते हैं।"

सायंकाल नरोत्तम ने पूर्णिमा के कमरे का दरवाजा खटखटाया—“दीदी, दीदी ! दरवाजा खोलो।” दरवाजा खुलने पर नरोत्तम ने देखा कि रोते-रोते उसकी आँखें फूल उठी हैं। वह कमरे में दाखिल होते हुए बोला, “दीदी, यह क्या है ? क्या इसी बूते पर पार्टी में सम्मिलित हुई थीं ? यह तो तुम्हें पहले ही ज्ञात होना चाहिये था कि एक-न-एक दिन सबकुछ स्वाहा होगा। दीदी, मुझे तुमसे इतनी कायरता की आशा नहीं थी। जिस पिता की हम सन्तान हैं, उनका तुम अपमान कर रही हो। इतना अधीर होने से क्या बनेगा ? तुम केवल अपना रोना रोती हो, यहाँ तो तैंतीस करोड़ का यही रोना है। जो सैनिक लड़ने के लिए मैदान में निकल आया है उसे फिर अपने हानि-लाभ की गणना करना शोभा नहीं देता। जो सर्वस्व देने को उद्यत है, उसे छोटे-छोटे हानि-लाभों की चिंता करनी उचित नहीं हो सकती। कर्मवीर बनो ! उठो, अभी तो मंजिल बहुत दूर है। अभी से हताश होकर लेट जाने से काम नहीं चलेगा।”

पूर्णिमा ने बहुत धीमी आवाज़ से कहा, “भैया, तुम सत्य कहते हो। मैं भी यही सोच रही हूँ। परन्तु मुझे आगे का मार्ग नहीं सुझ पड़ता। जिस पथ पर मैं पहले चल रही थी वह तो वीरान जंगल में जाकर लुप्त हो जाता है। वह हमें मंजिल पर ले जाने के लिए ठीक नहीं प्रतीत होता।”

“फिर वही निराशावादियों की बातें ! यथार्थ में तुम्हारा मन दुर्बल पड़ गया है। इसीलिए तुम अपने काम में सन्देह कर रही हो। यह काम की निष्फलता नहीं, प्रत्युत् कठिनाई है जो तुम्हें विचलित कर रही है।”

“नहीं, नहीं, भैया ! ऐसा नहीं। मैं कठिनाई से नहीं डरती, प्रत्युत् मैं समझती हूँ कि दूसरा मार्ग अधिक दुस्तर है। वह लम्बा है, विकट है, संकीर्ण है और थका देने वाला है, परन्तु है निश्चित। वह अन्तिम ध्येय तक ले जायेगा। हिंसा अर्थात् पशु-बल का मार्ग तो वहाँ नहीं जाता। यह तो आधे में ही रह जाता है

और इसके सम्मुख अभिमान, मोह-ममता की भीत खड़ी है जिमको पार करना प्रायः असम्भव है ।”

“यथार्थ में, पूर्णिमा, आज इस बहस को जी नहीं चाहता । मैं तो आज लखनऊ जं रहा हूँ । पता चला है धीरेन्द्र वहाँ है । मैं मधुसूदन को छुड़ाने का यत्न करना चाहता हूँ । वह हम लोगों को बचाने के लिए बनारस आया था और इस प्रयत्न में पकड़ा गया है । अब मैं चाहता हूँ कि उसको छुड़ाने के लिए हमें अपनी जान पर खेल जाना चाहिये ।”

पूर्णिमा ने केवल यह कहा, “व्यर्थ है ।”

“तुम्हें तो न जाने क्या हो गया है । हमारी कोई बात पसन्द ही नहीं आती ।”

“यह सब पत्तों में पानी देने के समान है ।”

“जो कुछ भी हो । मैं आज रात को जा रहा हूँ । इसी कारण तुम्हें मिलने के लिए आया हूँ । मेरा विचार है कि तुम आलोक फिल्म कम्पनी से पक्का कर लो । इससे एक तो मन बहल जायेगा; दूसरा, शायद जो योजना बनाने जा रहा हूँ उसके लिए कुछ रुपये की आवश्यकता हो । देखो, अब रोने-धोने में समय खोना मूर्खता है । कर्तव्यपरायण बन जाओ । सफलता तो निश्चित है ।”

: २ :

पूर्णिमा के पास से विदा होने पर नरोत्तम के मन में कई बातें चक्कर लगा रही थीं । वह उन सबको पूर्णिमा को बताना नहीं चाहता था । उसी दिन कलकत्ते से रवाना होकर दूसरे दिन वह लखनऊ पहुँच गया । वहाँ धीरेन्द्र तो मिला नहीं, परन्तु उसकी खोज में उसे द्विवेदी मिल गया । द्विवेदी नरोत्तम को देख बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, “ईश्वर का लाख धन्यवाद है कि दो मास की खोज के पश्चात् तुम्हें तो पाया है ।”

“तो क्या तुम मेरी खोज में यहां बैठे थे ?”

“तुम्हारी नहीं, परन्तु दादा की । अब तुमसे पता मिल ही जायेगा ।”

“हाँ, उनसे क्या काम है और यहां उनकी खोज क्यों हो रही है ?”

“बात यह है कि लगभग दो मास हुए मेरी दादा से इलाहाबाद में भेंट हुई थी और उन्होंने मुझे गोमती के किनारे इसी स्थान पर मिलने के लिए कहा था । उस दिन तो मैं इलाहाबाद में रुपये की प्रतीक्षा कर रहा था । दो दिन पश्चात् मैं वहाँ से यहाँ चला आया । और तब से नित्य इस स्थान पर आता हूँ । आज तुम्हें देख चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ । सुनाओ, कहाँ हैं दादा ?”

“मैं भी तो उन्हीं की तलाश में यहाँ आया हूँ ।”

“ओह ! तब तो गजब हो गया ।”

“क्यों ?”

“मेरे मन में मधुसूदन को छुड़ाने की एक योजना थी और उसके लिए दादा

से परामर्श की आवश्यकता थी।”

नरोत्तम मधुसूदन का नाम द्विवेदी के मुख से सुन चकित रह गया। उसने पूछा, “मधुसूदन से तुम्हारा और दादा का क्या सम्बन्ध है?”

“मेरा? मेरा तो कुछ नहीं, परन्तु दादा का है।”

“क्या?”

“यह तो मैं नहीं जानता—उस दिन इलाहाबाद में दादा ने मुझे बताया था कि उन्हें मधुसूदन की बहुत चिन्ता लग रही है।”

“तो तुमने पूछा नहीं कि क्यों?”

“नहीं, न तो समय था और न ही मैंने उचित समझा। मैंने यह समझा है कि वह कोई हमारी पार्टी में नया सदस्य है।”

“परन्तु तुम यह योजना कमल से क्यों नहीं करवाते?”

“वह तो मूर्ख है। शायद तुम नहीं जानते कि मेरा कमल की नई पार्टी से क्या सम्बन्ध था। पार्टी के वार्षिक अधिवेशन से पहले कमल ने मेरे सम्मुख दादा की घोर निन्दा की थी और मैं उन्हें दोषी मानने लगा था। परन्तु जब अधिवेशन में पूर्णिमा ने सब भेद प्रमाण-सहित खोल दिया तो मेरे विचार बदल गए। यद्यपि वोट तो मैंने कमल के पक्ष में दिया था तथापि मैं उसके लांछनों को गलत समझने लगा था। अगले दिन मैं दादा से मिला था और उनसे क्षमा मांग ली थी। मैंने ही कमल के दल-बल सहित तैयार होकर मिलने के लिये आने की सूचना दी थी। तब दादा ने मुझे कमल के साथ रहकर वहाँ के भेद उनको बताने के लिए आदेश दिया था। यदि दादा की इच्छा उसके सब भेद लेने की न होती तो मैं कभी भी उसकी पार्टी में सम्मिलित न होता और अपनी जान जोखिम में न डालता।”

“यह सबकुछ तो मैं जानता हूँ, परन्तु कमलजीत है कहाँ?”

“वह भी आजकल लखनऊ में है। उसकी सब सम्पत्ति सरकार ने जब्त कर ली है। यथार्थ बात यह हुई कि जब पहले कमलजीत ने सेठ कुंजबिहारी के घर डाका डालने की योजना बनाई तो मैंने उसका विरोध किया। मेरे विरोध का कारण यह था कि हमारे पास केवल दो पिस्तौल थे और उनमें से एक बिगड़ा हुआ था। उसने मेरे विरोध की कुछ परवाह नहीं की। इस पर उसने एक मूर्खता और की। वह यह कि सेठ साहब को एक चिट्ठी लिख दी। इससे सेठ साहब सचेत हो गये और घर में से सब नकदी और जवाहरात बाहर ले गये और स्वयं भी लापता हो गये। यह कार्यवाही उसने किसी को बताई ही नहीं। यदि वह मुझको बताता तो मैं ऐसा करने की कभी सम्मति न देता। यदि इस पर भी वह यही करता तो मैं उसके साथ वहाँ न जाता। यह तो मूर्खता की पराकाष्ठा थी। एक तो हमारे पास हथियार न होने के बराबर थे; दूसरे, उसने सेठ साहब और पुलिस को सावधान कर दिया था। मेरी तो कुछ हानि हुई नहीं। कमल की पार्टी का कोई भी

आदमी मेरा पूरा नाम और पता नहीं जानता। अतएव सरकारी गवाह और कोई भी दूसरा बन्दी मेरा नाम-धाम नहीं बता सकता। और तो और, कमल भी नहीं बता सकता।”

नरोत्तम ने पूछा, “तुम उस घटना के पश्चात् फिर कमल से कब मिले हो?”

“केवल एक बार। लखनऊ के कम्पनी बाग में। मैंने चिट्ठी की वात कुछ तो समाचार-पत्र में पढ़ा था और कुछ मुझे कमल ने स्वयं बताया था।”

“कमल ने क्या कहा था?”

“उसने तो केवल यही कहा था कि यदि टाइपराइटर का मालिक न बक जाता तो कुछ हर्ज नहीं था। मैंने उसे इस चिट्ठी के विषय में बहुत फटकारा। मेरा कहना तो यही था कि उसने मुझे बताये बिना वह चिट्ठी क्यों लिखी। वह कहता था कि वह नेता था और उसको मेरे बताये बिना कोई भी काम करने का अधिकार था। अन्त में मैंने उसको यह कहा कि उसमें वह अधिकार रखने की योग्यता नहीं है, इस कारण मैं उसे अपना नेता नहीं मानता। मैंने उसको चेतावनी दे दी कि भविष्य में उसका परिचित नहीं रहूँगा। कहीं भी यदि वह मुझे मिले तो मेरे साथ बात करने का यत्न न करे, अन्यथा मैं उसे पकड़वा दूँगा। तब से कई बार हमने एक-दूसरे को देखा है और न तो मैंने उससे बोलना आवश्यक समझा है और न ही उसने मुझे बुलाने का साहस किया है।”

“एक बात तुम नहीं जानते।”

द्विवेदी ने उत्सुकता से पूछा, “वह क्या?”

“वह चिट्ठी यथार्थ में दादा को पकड़वाने के लिए लिखी गई थी। उस चिट्ठी में लिखा था कि पचास हजार रुपया अमुक रात को बारह बजे गायघाट नं० २० पर पहुँचा दिया जाये, नहीं तो सेठ साहब की वह गत बनेगी जो कलक्टर की बनी थी।”

द्विवेदी के मुख से अचानक निकल गया, “ओह!”

“केवल इतना ही नहीं, प्रत्युत् उसने एक तार बनारस से दादा को कलकत्ते के पते पर दी थी। न जाने वह दादा का पता कहाँ से पा गया था। वह तार पूर्णिमा की ओर से थी और उसमें लिखा था कि उसे गायघाट नं० २० में अमुक रात के साढ़े ग्यारह बजे अवश्य मिले।”

यह सुन द्विवेदी के नथुने क्रोध में फूलने लगे। उसके मुख से निकल गया, “पाजी!”

“उसने यह सबकुछ किया, परन्तु उसका फल यह हुआ कि एक बेकुसूर युवक मधुसूदन उसके जाल में फँस गया और अब उसे ‘डैटिन्यू’ बना लिया गया है।”

“वह कौन है?”

“वह पार्टी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखता। पूर्णिमा का उससे विवाह होने

वाला था और वह हमारी पार्टी के उद्देश्य और पूर्णिमा के सम्बन्ध की वास्तविकता जानता था। उसे जब ज्ञात हुआ कि सेठ साहब ने पुलिस में रिपोर्ट कर दी है और पुलिस वाले गायघाट के मकान को घेर रहे हैं, तो यह विचार कर कि पूर्णिमा और मैं भी चिट्ठी लिखने वालों में हैं, वह हमें सचेत करने के लिए बनारस चला आया था। वहाँ पूर्णिमा को जब पता चला तो वह दादा को देखने गायघाट गई। जब उसके लौटने में देरी लगी तो वह उसके पीछे-पीछे गया और वहाँ पुलिस के फंदे में फँस गया।”

“इसी कारण दादा मधुसूदन की चिन्ता कर रहे थे?”

“हो सकता है, परन्तु तुम उनको छुड़ाने का क्या उपाय जानते हो?”

“जब मैं दादा की खोज में यहाँ आया था तब तो जेल की मोटर-बस चलाने वाले से मैंने सब बातें तय कर ली थी। सब पाँच सौ रुपये का खर्चा था। दादा से एक तो अपनी योजना की पड़ताल करानी थी। दूसरे, पाँच-छः के मिलकर काम करने की योजना थी। यह सब काम दादा की इच्छा के बिना नहीं हो सकता था। अब परिस्थिति बदल गई है। मधुसूदन एक-दो दिन में इलाहाबाद से किसी कैप में भेज दिया जायेगा। यदि अब भी दादा मिल जाते तो शायद यह ‘ऐक्शन’ सफल हो सकता।”

“परन्तु मुझे तो ज्ञात हुआ था कि दादा यहीं हैं। इसी कारण आज मैं यहाँ आया हूँ।”

“यहाँ होते तो, तुम जानते हो, वह यहाँ अवश्य आते।”

नरोत्तम यह सोचकर कि दादा हैं तो लखनऊ में, परन्तु किसी कारण से वह प्रकट नहीं हो रहे और उनसे मिलना आवश्यक समझ लखनऊ में ठहर गया। कई दिन तक द्विवेदी से उसकी गोमती के किनारे एक निर्जन स्थान पर भेंट होती रही। एक दिन वह यथासमय गोमती के किनारे गया तो द्विवेदी वहाँ नहीं आया। उसका विचार था कि द्विवेदी बिना उससे मिले नहीं जायेगा। इस कारण अवश्य कोई घटना विशेष हो गई है जिससे उसके दर्शन नहीं हुए। इसके पश्चात् कई बार नरोत्तम उस स्थान पर जाता रहा, परन्तु न तो द्विवेदी के दर्शन हुए और न ही धीरेन्द्र के।

लगभग पन्द्रह दिन के लखनऊ-निवास के बाद नरोत्तम कलकत्ते लौट गया। उसने समाचार-पत्रों में पढ़ा था कि मधुसूदन को झाँसी के किले में भेज दिया गया है। वहाँ सरकार ने एक नया कैप खोला था। इस समाचार ने नरोत्तम को निराश कर दिया।

: ३ :

मैमनसिंह में नगर के बाहर एक कोने में सड़क के किनारे एक बड़े सेहन वाले मकान में लोहा ढालने और लोहे के पुर्जे बनाने का एक कारखाना था। कारखाने

के मालिक मिस्टर हारानदास थे। वह महाशय कलकत्ता यूनिवर्सिटी के बी० ई० थे और इनके कारखाने में प्रायः सब-के-सब पढ़े-लिखे काम करते थे। कोई भी मैट्रिक से कम योग्यता का कारीगर वहाँ पर नहीं था। एक विशेषता इस कारखाने में और थी। यहाँ पर कोई नया कारीगर काम पर नहीं रखा जाता था और न ही पुराने कारीगरों में से, कई वर्ष से, कोई छोड़कर गया था। कारीगरों में और मालिक में कभी झगड़ा होता भी नहीं देखा गया। अभिप्राय यह कि बहुत सुभीते से काम होता जाता था। काम बहुत सफाई और योग्यता से किया जाता और दाम बाज़ार से अधिक लिया जाता। अतएव मिस्टर दास के कारखाने का नाम दिन-प्रतिदिन अधिक फैलता जाता था। बिना यत्न के ही काम बहुत आ जाता, परन्तु हारान बाबू कारखाने को विस्तृत करने का नाम तक नहीं लेते थे। बहुत लोगों को उन्हें जवाब दे देना पड़ता कि उनका काम नहीं बन सकता। काम बनवाने वाले प्रायः कहते, “बाबू साहब, कारखाने को बड़ा क्यों नहीं कर देते। अगर पूँजी की आवश्यकता हो तो प्रबन्ध किया जा सकता है।”

हारान बाबू बहुत सन्तोष से उत्तर दिया करते, “श्रीमान्, एक आदमी को खाने के लिए कितने अन्न की आवश्यकता है?”

एक साहब ने हारान बाबू के सन्तोष से लाभ उठाने के लिए उनके पड़ोस में ही एक और कारखाना खोल लिया। इस कारखाने को खुले एक वर्ष के लगभग हो चुका था। इस पर भी काम के अच्छेपन में हारान बाबू के कारखाने से मुकाबला नहीं कर सकता था। इस कारखाने के मालिक का नाम मथुरा बाबू था और इसने भी अपने कारखाने का मैनेजर बी० ई० ही नियत किया था। इस पर भी हारान बाबू के काम से यहाँ घटिया ही काम निकलता था। ग्राहक काम ठीक न होने से शिकायत करते थे और मैनेजर कारीगरों को डाँटता था। कारीगर जब काम सीखकर योग्य हो जाते थे तो दूसरे स्थान पर नौकरी करने चले जाते थे। उनके स्थान पर नये कारीगर रखने पड़ते थे। कोई कारीगर डटकर काम नहीं करता था। जब काम मिलता था तो कारीगर स्वयं या उनकी स्त्रियाँ बीमार हो जाती थीं। जब काम कम होता था, कारीगर दुकान में खाली बैठे रहते थे। परिणाम यह था कि कारखाने का मालिक नित्य हानि उठा रहा था। आखिर वह धबरा उठा और उसने मैनेजर को राय करने के लिए बुलाया। मैनेजर बोला, “साहब, मैं क्या कर सकता हूँ? जब नये कारीगर रखे जाते हैं तो वे काम खराब कर देते हैं, और जब हमारी हानि कर वे काम सीख जाते हैं तो तुरन्त काम छोड़कर किसी दूसरे के यहाँ चले जाते हैं।”

मथुरा बाबू ने कहा, “इसका कारण जानने के लिए ही तो आपको पूछ रहा हूँ। देखो न, हारान बाबू का कारखाना पिछले पाँच वर्ष से चल रहा है, और जो कारीगर पाँच वर्ष हुए उनके यहाँ थे, वे ही आज भी हैं। कभी वेतन का झगड़ा

नहीं हुआ। ग्राहक को काम समय पर मिल जाता है। सब लोग उनके काम से सन्तुष्ट हैं। यह तो तुम स्वयं जानते हो कि उनका प्रत्येक कारीगर बहुत ही योग्य आदमी है।”

मैनेजर साहब बहुत परेशान थे। वह कई कारीगरों को उचित से दुगना वेतन देने को कह चुके थे, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। जब वे इस योग्य हुए कि काम ठीक कर सकें, वे काम छोड़कर चले गये और उनके स्थान पर फिर नये अशिक्षित कारीगरों को रखना पड़ा। अब जब मालिक ने हारान बाबू का उदाहरण दिया तो वह निरुत्तर हो गये। वह बहुत धीमे स्वर में बोले, “जनाव, क्या बताऊँ ? मैं तो समझता हूँ कि यह हारान बाबू पूर्व के रहने वाले हैं और आसाम में मंत्र-सिद्धि बहुत लोग जानते हैं। यही कारण हो सकता है कि इनके पास से कोई भागता नहीं।”

मथुरा बाबू बहुत उद्विग्न हो उठे और बोले, “जादू-वादू कुछ नहीं है। तुम पढ़-लिखकर ऐसी मूर्खतापूर्ण बात करते हो। देखो, मेरी राय है कि हारान बाबू के किसी कारीगर से मित्रता कर उसे अपने कारखाने में खींच लाओ। यदि तुम ऐसा कर सको तो मैं समझता हूँ कि सफलता की कुछ आशा की जा सकती है।”

यह बात मैनेजर के मन लगी। उसी दिन सायंकाल जब हारान बाबू का कारखाना बन्द हुआ तो मैनेजर मोहन बाबू अपने कारखाने से निकल कारीगरों के पीछे-पीछे हो लिए। उनमें से एक, जो सर्वथा सीधा-सादा प्रतीत होता था, मैनेजर उसके साथ-साथ चलने लगा। जब दोनों की दृष्टि मिली तो मोहन बाबू ने हाथ जोड़ नमस्कार किया और बोले, “आज क्या समय से पूर्व ही छुट्टी कर दी है ?”

कारीगर ने उत्तर दिया, “नहीं तो, हम ठीक छः बजे बन्द करते हैं। हम ‘ओवरटाइम’ नहीं लगाते।”

इस बातचीत से उत्साहित हो मोहन बाबू ने बात जारी रखी। पूछा, “आप तो यहाँ के रहने वाले नहीं प्रतीत होते।”

“नहीं, मैं ढाका का रहने वाला हूँ।”

“ओह ! आपका शुभ नाम क्या है ?”

“निर्मल।”

“खूब ! आप कब से हारान बाबू के यहाँ काम करते हैं ?”

“पाँच वर्ष से।”

“ओह ! बहुत दिन से हैं। आपको क्या वेतन देते हैं ?”

“वेतन ? जितना खाने-पहनने को चाहिये।”

“क्या मतलब ? देखिये, निर्मल बाबू, मेरा कोई खास मतलब नहीं। फिर भी एक पड़ोसी होने से यदि मैं दिलचस्पी प्रकट करूँ तो अचम्भा नहीं करना

चाहिये। हमारे यहाँ तो आप जैसे कारीगर को एक सौ मासिक से कम नहीं मिलेगा। खाने-पीने का तो कुछ अर्थ नहीं। एक आदमी दस रुपये मासिक में भी निर्वाह कर सकता है और दूसरा पाँच सौ में भी नहीं कर सकता।”

इस समय वे एक रेस्टोरेंट के सम्मुख से जा रहे थे। मोहन बाबू ने उसको ओर देखकर कहा, “आइये, ज़रा एक प्याला चाय पी लें।”

निर्मल ने एक-आध बार न की, परन्तु मोहन बाबू का आग्रह प्रबल निकला और दोनों भीतर चाय पीने चले गये। मोहन बाबू ने चाय, ‘पेस्ट्री’, ‘सैंडविचज’, भाव यह कि एक बढ़िया चाय-पार्टी के लिए कह दिया। निर्मल को वह रेस्टोरेंट के एक कोने में ले गया और वहाँ बैठ बातचीत आरम्भ कर दी।

निर्मल ने कहा, “मैनेजर साहब, एक आदमी को खाने के लिए कितना चाहिये?”

मोहन बाबू ने खिसियाकर पूछा, “खाने को? क्या वस खाने से ही सब आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं? क्या आपका विवाह नहीं हुआ? क्या ये सब मजेदार चीज़ें (इस समय मँगवाई हुई वस्तुएँ उनके सम्मुख आनी आरम्भ हो गई थीं) मनुष्य के लिए नहीं बनीं?”

निर्मल ने बहुत शांति से उत्तर दिया, “हाँ, हाँ, ये सब वस्तुएँ भी चाहियें और मुझे इतना वेतन मिलता है कि मैं ये सब पदार्थ चाहूँ तो खा भी सकता हूँ और खिला भी।”

“तब तो ठीक है। मुझे यह सुन बहुत प्रसन्नता हुई है कि हारान बाबू अच्छा वेतन देते हैं।”

“हाँ, और मैं उनके व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न हूँ।”

“परन्तु यदि आपको तरक्की मिले तब तो आप हारान बाबू को छोड़ दीजिएगा। सब कारीगर ऐसा ही करते हैं।”

“हाँ, परन्तु उनसे अच्छा मैनेजर, मालिक और वेतन देने वाला कहाँ मिलेगा?”

“क्यों, यह भी कोई बात है? उदाहरण के रूप में यदि आप चाहें तो हम ही आपको तरक्की दे सकते हैं।”

“भला सुनूँ तो, आप मुझे क्या वेतन देंगे?”

इस समय चाय बनकर आ गई और उक्त प्रश्न से उत्पन्न हुई घबराहट को छिपाने के लिए मोहन बाबू ने चाय बनानी आरम्भ कर दी। कुछ देर तक वह अपने चित्त को स्थिर कर और चाय के एक-दो घूंट पीकर उत्साह बाँधकर बोले, “क्या सवा सौ रुपया मासिक आपको मंजूर होगा?”

निर्मल ने चाय की एक सख्की लगाकर कहा, “क्या आपका विचार कार-खाना वन्द कर देने का है?”

“नहीं तो, यह आपने कैसे समझ लिया है?”

“वह इस प्रकार कि आप मुझे सवा सौ मासिक देंगे और यह बिना जाने कि मैं कितना काम कर सकता हूँ। इससे इसके अतिरिक्त और क्या परिणाम निकाला जा सकता है कि आप शीघ्र ही कारखाना बन्द कर भाग जायेंगे। इस प्रकार आप मुनाफा नहीं कमा सकते।”

“परन्तु हारान बाबू भी तो आपको इतना वेतन देकर मुनाफा कमाते हैं।”

“हाँ, परन्तु आप नहीं जानते कि वह स्वयं कितना वेतन दुकान से लेते हैं।”

“कितना लेते हैं?”

“एक सौ रुपया मासिक।”

“एक सौ रुपया मासिक!” मोहन बाबू का मुख हैरानी से अवाक् रह गया। चाय का प्याला उनके हाथ में था। उन्होंने पीने को हाथ में उठाया हुआ था। प्याला हाथ में पकड़ा रह गया और वह बहुत अचम्भे में निर्मल का मुख देखने लगे। निर्मल बिना किसी प्रकार का विस्मय प्रकट किये चाय पीता रहा। जब उसने देखा कि मोहन बाबू आँखें फाड़कर उसकी तरफ देख रहे हैं तो पूछने लगा; “आप ठहर क्यों गये? मेरे मुख पर क्या देख रहे हैं?”

मोहन बाबू चाय का घूँट भरकर और उसे गले के नीचे उतारकर कहने लगे; “मैं यह देख रहा हूँ कि आप मुझसे हँसी तो नहीं कर रहे।”

“हँसी! नहीं। हँसी का कुछ प्रयोजन ही नहीं।”

“तो क्या आप यह सत्य कहते हैं कि हारान बाबू केवल एक सौ रुपया मासिक वेतन पाते हैं? क्या वह कारखाने के मालिक नहीं हैं?”

“हैं तो, परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि वह कारखाने में से जितना चाहें निकाल लें। ऐसा करने से कारखाना चल नहीं सकता। उनकी इस नीति का परिणाम यह है कि हमको, जो काम करने वाले हैं, सन्तोषजनक वेतन मिलता है। हमारे कारखाने के औज़ार इतने बढ़िया हैं कि हमारे काम में गलती नहीं होती। इसके विपरीत आपके यहाँ क्या होता है? आपके मालिक हैं, वह कारखाने के चलाने में कुछ भाग नहीं लेते और फिर भी एक हजार मासिक निकाल लेते हैं। चार सौ मासिक आप लेते हैं। इसका परिणाम यह है कि आप कारीगरों को पचास-साठ से अधिक दे ही नहीं सकते। आपकी मशीनें पुरानी हैं, औज़ार घटिया हैं, कारीगर असन्तुष्ट हैं और काम अच्छा तथा समय पर नहीं दे सकते।”

मोहन बाबू अब चाय के प्याले में चीनी घोल रहे थे। वह उक्त कथन सुनकर विचारमग्न हो गये और चीनी हिलाते ही जाते थे। निर्मल ने उनको इस अवस्था में देख उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए कहा, “काम का वेतन होता है और रुपये का सूद। जो रुपये की एवज में वेतन लेना चाहते हैं वे कारखाने की उन्नति

परिवर्तन

में बाधक होते हैं। आपके मालिक ने बीस हजार रुपया कारखाने में लगाया है। बीस हजार रुपये का सूद बैंक की दर से पचास रुपया मासिक से अधिक नहीं बनता। तो बताइये, वह एक हजार रुपया क्यों निकालते हैं? क्या एक कारीगर के मुकाबले में नौ सौ पचास रुपये मासिक का काम कर सकते अथवा करते हैं? यदि नहीं तो निःसन्देह वह कारखाने को लूट रहे हैं। और इससे कारखाने की उन्नति में बाधा नहीं पड़ती क्या?"

कारखानों में वेतन के विषय पर इस ढंग पर सोचना मोहन बाबू ने नहीं सीखा था। वह तो यह जानते थे कि अगर कोई धनी मनुष्य रुपया लगाकर कारखाना या दुकान खोलता है तो वह, चाहे काम कुछ भी न करे, सबसे अधिक वेतन का अधिकारी है, और कारीगर, चाहे वह कितना बढ़िया काम भी क्यों न करता हो, धनी मालिक के बराबर वेतन नहीं पा सकता। वेतन काम के अनुसार और रुपये का सूद, यह सिद्धांत उन्होंने पहले ही दिन सुना था। यही कारण था कि उन्हें बहुत हैरानी हो रही थी।

निर्मल ने अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए कहा, "मैं कारखाने में नौ घण्टे काम करता हूँ और मेरे काम की तुलना कारखाने में किसी के काम से नहीं है। मेरे काम से कारखाने को सबसे अधिक आय है। इस कारण मेरा वेतन सबसे अधिक है। हारान बाबू तो एक मुँशी का काम करते हैं। कभी-कभी नई बनने वाली वस्तु का डिजाइन भी बनाते हैं और एक सौ रुपये इस काम के लिए पर्याप्त समझते हैं?"

मोहन बाबू ने कुछ उत्तुक्ता से कहा, "और जिम्मेदारी जो इतनी भारी है?"

"जिम्मेदारी तो सबकी साँझी है। यदि मैं काम दोषयुक्त बनाऊँगा तो हारान बाबू इसमें कैसे जिम्मेदार हो सकते हैं? काम के बढ़िया होने का पुरस्कार और खराब होने का दण्ड मुझे ही मिलना चाहिए, न कि हारान बाबू को। कारखाने की नेकनामी का जिम्मा हममें से हर एक पर है, केवल हारान बाबू पर नहीं।"

"परन्तु रुपये के अस्त-व्यस्त हो जाने की जिम्मेदारी भी तो है।"

"रुपया तो हम सबका साँझा है। हम सब इसकी बहुत ध्यान से रक्षा करते हैं।"

"ओह, अब समझा कि आपका कारखाना एक 'जॉयण्ट स्टॉक कम्पनी' है।"

"नहीं, हमारा हिस्सा पूँजी में कुछ नहीं है। बात यह है कि छः वर्ष हुए हारान बाबू के पिता उनको छः हजार रुपये की सम्पत्ति छोड़ गये थे। उन्होंने यह सम्पत्ति बेचकर रुपया कारखाने में लगा दिया था। जब भी कोई कारीगर वहाँ रखा जाता है तो उसको यह बता दिया जाता है कि उसे कारखाने के लाभ में हिस्सेदार समझा जायेगा। कारखाने का लाभ तथा हानि उसे उठानी होगी। प्रति वर्ष

लाभ-हानि गिन ली जाती है; और लाभ जो सदैव होता रहा है, तीन भागों में बाँट दिया जाता है। एक भाग कारखाने में नई-नई मशीनें लगाने के प्रयोग में लाया जाता है, दूसरा भाग समय-कुसमय के काम के लिए पूंजी के रूप में रखा जाता है और तीसरा भाग कारीगरों में बाँट दिया जाता है। इससे हम सब कारखाने को उन्नत करने में जिम्मेदारी अनुभव करते हैं।”

मोहन बाबू यह सब सुनकर चकित रह गये। इस समय चाय समाप्त हो गई थी। दोनों रेस्टोरेंट से बाहर निकल आये। मोहन बाबू ने निर्मल से हाथ मिलाया और कहा, “अब मुझे एक दूसरे स्थान पर जाना है। इस विषय पर आपसे फिर किसी समय बात करूँगा। नमस्कार।”

निर्मल मन में मुस्कराता हुआ अपने घर की ओर चला गया।

यह उन दिनों की बात है जब कमल धीरेन्द्र की पार्टी से लड़कर अलग हो गया था और धीरेन्द्र बनारस छोड़कर चला आया था। एक दिन हारान बाबू अपने कारखाने में बैठे हुए थे। कारीगर काम पर आ रहे थे। निर्मल जब आया तो उसने हारान बाबू को नमस्कार कर मुस्कराते हुए कहा, “उस्ताद, यह मथुरा बाबू अब हमारे कारखाने से किसी को भगाकर ले जाने के यत्न में हैं।”

“क्यों?”

“शायद वह हमारी सफलता का कारण जानना चाहते हैं।”

इसके पश्चात् निर्मल ने मोहन बाबू से भेंट और बातचीत का सब वृत्तांत सुना दिया।

हारान बाबू ने कहा, “तुमने ठीक ही उत्तर दिया है। परन्तु एक बात वह न तो जान सकते हैं और न हम बता ही सकते हैं। वह है हमारा इस कारखाने में मेहनत करने का एक लक्ष्य। हम सबका लक्ष्य एक है और वह लाभ अथवा वेतन से कहीं ऊँचा है। मथुरा बाबू के कारखाना खोलने का प्रयोजन है, अधिक-से-अधिक लाभ उठाना। इसी प्रकार उनके कारखाने में काम करने वालों में से प्रत्येक का लक्ष्य है, अधिक-से-अधिक वेतन प्राप्त करना। हमारा ध्येय यह नहीं है।”

“हाँ, परन्तु पूंजीपति हमारी बातों को समझने की शक्ति ही नहीं रखते। अच्छा तो, उस्ताद, अब मुझे क्या काम करना है?”

हारान ने कहा, “तुम कुछ देर यहीं बैठो। मैं अभी तुम्हें एक मशीन का डिज़ाइन बताऊँगा। हमें एक सौ के लगभग वे मशीनें बनानी हैं। दादा बनारस से आये हुए हैं। उन्हें भी आ जाने दो।”

निर्मल डटकर बैठ गया। वह समझ गया कि कारखाना खोलने का यथार्थ लक्ष्य आज फिर प्रयोग में लाया जाने वाला है। वह दत्तचित्त था और इस बात की प्रतीक्षा में था कि वह महान् काम प्रकट किया जाए। धीरेन्द्र कारखाने के

किसी दूसरे भाग में स्नान इत्यादि कर रहा था, कुछ ही समय में वह वहाँ आ पहुँचा। हारान, धीरेन्द्र और निर्मल दोनों को वताने लगा। पैसिल से कागज पर चित्र खींचकर उसने अपना आशय दोनों को बता दिया और फिर कहा, “इसे ‘टाइम बम’ अर्थात् नियत समय पर फटने वाला बम कहते हैं। जब बम फैक्टरी में बनता है तब उसमें सब मसाला इत्यादि भर दिया जाता है, परन्तु यह फटने के लिए तैयार नहीं होता। किसी भी प्रकार की चोट या ठोकर इसके फटने में सहायक नहीं हो सकती। इस (तस्वीर पर पैसिल से बताकर) स्थान पर एक पेच लगा रहता है। इस पेच का नीचे की घड़ी से सम्बन्ध रहता है। जितने चक्कर इस पेच को दाहिनी ओर को दोगे उतने ही घण्टे पश्चात् बिजली का सम्बन्ध ब्रीच में हो जायेगा और एक चिंगारी पैदा होगी, जिससे बम फट जायेगा। जब बम अन्तिम बार अपने ठिकाने के लिए बिदा होगा तब यह अन्दाज़ा लगाकर कि कितने घण्टे में यह शत्रु के हाथ में पहुँचेगा उतनी बार पेच को घुमा दिया जावेगा। ठीक समय पर बम फट जायेगा और उस समय यदि कोई इसको पकड़े होगा अथवा इसके समीप होगा तो वह तुरन्त मृत्यु का प्रास बन जायेगा।”

धीरेन्द्र ने प्रमन्नता प्रकट करते हुए कहा, “बहुत ठीक। मैं यही चाहता हूँ। मैं इस वर्ष एक ऐसा ‘एक्शन’ करना चाहता हूँ जो ब्रिटिश राज्य को जड़ तक हिला देगा। एक सौ ऐसी मशीनें कितने समय में तैयार हो सकती हैं?”

“दो मास में।”

“तब तो काम तुरन्त आरम्भ करवा देना चाहिये।”

हारान ने निर्मल से पूछा, “निर्मल बाबू, समझ गये, क्या और कैसे बनेगा? आज ‘पैटर्न’ बन जाने चाहिये और कल भट्टी जलेगी। कल से पूर्व साँच तैयार हों और इनकी ढलाई हो जाये। परमों ये लैथ पर चढ़ाकर साफ कर दिये जावें। शेष काम धीरे-धीरे होता रहेगा। आज अक्तूबर की बीस तारीख है। दिसम्बर बीस तक ये धनकर तैयार पेटियों में बन्द मिलने चाहिये।”

धीरेन्द्र ने कहा, “मैं संकेत देकर अपने आदमी भेजूंगा। संकेत ठीक मिलने पर ये उन लोगों को मिल जाने चाहियें। प्रत्येक को समझा भी दिया जाये कि कैसे इनके फटने के समय को निश्चित करना है।”

हारान के कारखाने में कारीगरों को न तो बहुत समझाने की आवश्यकता होती थी और न ही बार-बार याद दिलाने की। एक बार उनको काम समझाकर समय बता दिया जाता कि कब वह काम पूर्ण मिलना चाहिये। ठीक समय पर वह काम बनकर मिल जाता था। काम आरम्भ हो गया। धीरेन्द्र मैमनसिंह से पूरे भरोसे के साथ चला गया।

हारान के कारखाने का प्रत्येक आदमी क्रांतिकारी पार्टी का सदस्य था और वह पार्टी में अपने स्थान को भली-भाँति समझता था। यही कारण था कि इतना

बड़ा कारखाना सरलता से चलता जाता था ।

दिसम्बर के महीने की बीस तारीख थी । इस दिन हारान बहुत बड़े काम में व्यस्त था । प्रातःकाल से ही धीरेन्द्र के आदमी आ रहे थे और हारान उनको एक-एक कर अलग कमरे में ले जाकर बमों का रहस्य बताता था और जितने बमों की उनको आवश्यकता होती थी, लकड़ी के सन्दूकों में बन्द करके दे देता था ।

दोपहर के बारह बजे थे । एक पंजाबी नौजवान हारान के पास पहुँचा । ज्यों ही उसने संकेत किया, हारान उसे कमरे में ले गया और समझा दिया । उसको छः बमों की आवश्यकता थी । वह उसे दिये गये । जब वह पंजाबी नौजवान बाहर निकला तो हारान उसके साथ था और दोनों ने विदा होने के लिए हाथ मिलाये । ठीक उसी समय मथुरा बाबू दफ्तर में दाखिल हुए । उन्होंने उस पंजाबी नवयुवक को छः लकड़ी के डिब्बे उठाये हुए देखा । वह यह जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो उठे कि इन डिब्बों में क्या है, परन्तु पूछना अनुचित समझ वह मन को रोककर रह गये । पंजाबी युवक के चले जाने के पश्चात् हारान मथुरा बाबू से मिला और उनको सत्कार से बैठाते हुए कहा, “आइये, साहब, कैसे आज आपके दर्शन हुए ?”

मथुरा बाबू ने अपना सत्कार होते देख कुछ संतोष से कहा, “कल रात कमिश्नर साहब की मोटर गाड़ी का एक वेयरिंग टूट गया था । वह हमने रात अपने कारखाने में बनवाया था, पर ठीक नहीं बना । कमिश्नर साहब रात यहाँ से चले जाने वाले हैं । क्या आप एक वैसा वियरिंग बनवा देंगे ? मेरे कारखाने में इतनी जल्दी बनना असम्भव है ।”

अभी मथुरा बाबू ने बात समाप्त ही की थी कि एक नवयुवक वहाँ पहुँच गया । हारान ने उसे देख मथुरा बाबू से वेयरिंग ले आने के लिए कह दिया और स्वयं उस युवक को पिछले कमरे में ले गया । उसको तीन बम लेने थे । वह बमों को चालू करने का ढंग जान और तीन लकड़ी के डिब्बे लेकर बाहर निकला तो मथुरा बाबू टूटा हुआ वेयरिंग लेकर वहाँ पहुँच गये । उनकी दृष्टि फिर उन डिब्बों पर पड़ी । अब उनसे नहीं रहा गया । उन्होंने पूछ ही लिया, “हारान बाबू, इन डिब्बों में क्या बेचते हैं आप ?”

“ये एक प्रकार की निर्दिग मशीनें हैं ।”

“बहुत विकती हैं आपकी ?”

“हाँ, कुछ विक ही जाती हैं ।”

मथुरा बाबू को और आगे पूछने का साहस नहीं हुआ । वह अपने काम को दिखाने लगे । हारान ने वेयरिंग देखते ही कह दिया, “हम ऐसा बना हुआ आपको तुरन्त दे सकते हैं ।”

दूसरे कमरे में से एक वेयरिंग, जो बिलकुल तैयार था, हारान ले आया । मिलाकर देख लिए गये । वह सर्वथा ठीक था । मथुरा बाबू उसका दाम पूछ लेकर

चले गये।

परन्तु निटिंग मशीनों ने उनके दिमाग पर भारी प्रभाव डाला था। वह सोचते थे कि यह अवश्य कोई बहुत बढ़िया मशीन होगी जो धड़ाधड़ विक रही है। उनके इस विस्मय को और भी पुष्टि मिली जब उसी दिन सायंकाल उन्होंने दो और लोगों को दो-दो मशीनें ले जाते देखा। वह इन मशीनों की वास्तव जानने के लिए अधीर हो उठे। इस पर भी हारान के सम्मुख वह अपनी उत्सुकता प्रकट नहीं होने देना चाहते थे। इस कारण किसी अच्छे अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

: ४ :

नरोत्तम के लखनऊ चले जाने पर यद्यपि पूर्णिमा ने कुछ आशा नहीं बाँधी थी, परन्तु फिर भी उसका मन कुछ उत्साह और अभिमान से भर गया था। मनुष्य एक विचित्र प्राणी है। वह भावुकता से भरा हुआ है। शुष्क-से-शुष्क नैयायिक भी मन के उद्गारों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। हमारे मन को कौन-सी बात अच्छी लगती है और कौन-सी बुरी, यह युक्ति का विषय नहीं है। यथार्थ बात तो यह है कि मन की पसन्द का आधार संस्कार और वातावरण है और युक्तियाँ बाद में उस बात को उचित सिद्ध करने के लिए निर्माण की जाती हैं। भारतवर्ष में अपनी वहन के लिए भाई का वीरतापूर्ण काम करना सदा श्रेष्ठ समझा जाता है और वहनें ऐसे भाइयों पर गौरव और अभिमान करती हैं। इस विचारधारा को पूर्णिमा भी अनुभव करती थी। उसकी बुद्धि तो यह कहती थी कि केवल मधुसूदन के लिए सारी पार्टी को खतरे में डाल देना उचित नहीं है, परन्तु मन यह कहता था कि उसका भाई वीर है और वह अपनी वहन के लिए जान पर खेल जाने के लिए तैयार है। यह विचारमात्र ही वहन के सारे शरीर और हृदय को पुलकित कर देने के लिए पर्याप्त था।

दूसरे ही दिन उसने आलोक फिल्म कम्पनी वालों से जाकर इकरारनामा लिख दिया। इस कम्पनी वाले पूर्णिमा के 'मेरे भगवान्' चित्र में काम को सराहते थे और उसको अपने एक नये चित्र के लिए आमंत्रित कर चुके थे। यहाँ वह एक हजार मासिक वेतन पर एक वर्ष के इकरारनामे पर नियुक्त हो गई। यह केवल इसलिए था कि वह भी मधुसूदन के छुड़ाने में कुछ-न-कुछ भाग ले।

दिन-पर-दिन बीतते गये और नरोत्तम का कोई समाचार नहीं आया। अन्त में एक दिन समाचार-पत्र में यह छपा कि मधुसूदन को झाँसी 'डेंटिन्यूज कैम्प' में भेज दिया गया है। इस कैम्प का कुछ वृत्तान्त भी छपा। लिखा था कि कैम्प किले के भीतर बनाया गया है। किले के एक कोने में जहाँ साठ फुट ऊँची चहार-दीवारी है और जहाँ जाने के लिए तीन सुरक्षित फाटकों में से होकर जाना होता है, यह कैम्प बनाया गया है। आठ फुट लम्बी, आठ फुट चौड़ी कई कोठरियाँ बनाई गई हैं जो बन्दियों के रहने के लिए हैं। प्रत्येक बन्दी को छः आने रोज़

मिलते हैं जिसमें से उसे अपनी प्रत्येक आवश्यकता पूर्ण करनी पड़ती है। खाना किले के बाहर से आता है और उसके लिए जो आदमी है उसे मजदूरी भी उन्हीं छः आने में से देनी पड़ती है। इस समाचार के पढ़ने से पूर्णिमा की आशा टूट गई।

पूर्णिमा की विचारधारा भी अब दूसरी ओर बहने लगी थी। इसमें कारण था साइमन कमीशन और देश की परिस्थिति। सन् १९१६ वाले भारतीय विधान में यह लिखा हुआ था कि द्वैध शासन-प्रणाली के दस वर्ष तक कार्य करने के पश्चात् ब्रिटिश सरकार इस पर पुनः विचार करेगी। अतएव ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सन् १९२८ के आरम्भ में एक कमीशन भारतवर्ष में भेजा। इस कमीशन के प्रधान थे सर जॉन साइमन। इसलिए कमीशन का नाम साइमन कमीशन पड़ गया।

भारतवासियों का विचार था कि द्वैध शासन-प्रणाली असफल रही है। वे एक ऐसा नया विधान चाहते थे जिसमें उन्हें अधिक-से-अधिक अधिकार प्राप्त हों। वे चाहते थे कि साइमन कमीशन के कुछ सदस्य भारतवासी भी हों। इस विषय पर देश-भर में आन्दोलन खड़ा किया गया। फिर भी ब्रिटिश सरकार ने शुद्ध अंग्रेजी कमीशन ही भारतवर्ष भेज दिया। लोगों ने इसका अर्थ यह समझा कि भारतवर्ष के राज्यविधान के निर्माण-कार्य में भारतवासियों का कुछ भी अधिकार नहीं समझा गया है। यह भारी अपमान की बात थी। गोरे शासक यह नहीं चाहते थे कि भारतीय राज्य-विधान के बनाने में भारतवासियों की सम्मति तक भी ली जाए। कमीशन-निर्माण के विषय में पार्लियामेंट में विचार करते समय कुछ टोरी सदस्यों ने तो यहाँ तक कह दिया था कि वे भारतवर्ष के शासक हैं, इस कारण शासन-विधान को सुधारना उनका कर्तव्य है। शासित लोगों को तो उनकी बात माननी ही होगी।

यह अपमानयुक्त अवस्था भारतवासियों को असह्य हो गई इससे देश-भर में असन्तोष की आग भड़क उठी। स्थान-स्थान पर जलसे और प्रस्ताव पास किये गये। ब्रिटिश सरकार ने इस आन्दोलन को शान्त करने के लिए भारतवर्ष के लोगों की एक सहायक समिति बना दी। यह समिति साइमन कमीशन के साथ-साथ भारतवर्ष में भ्रमण करने के लिए और कमीशन के प्रधान की इच्छानुसार कमीशन के काम में भाग लेने के लिए नियत की गई थी। जब लोगों को ज्ञात हुआ कि इस समिति के सदस्यों का पद यह होगा कि जब प्रधान चाहे उनको बुलाकर पास बैठा ले और जब चाहे उन्हें बाहर हो जाने के लिए कह दे, तो वे क्रोध से आगबबूला हो गये। लोग यह समझते थे कि राज्य के गृह रहस्य लोगों तक न पहुँचने देने के लिए ही यह नियम बनाया गया है, और हुआ भी ऐसा ही। गवर्नरों, फौजी अफसरों अथवा अन्य आवश्यक पदाधिकारियों के चर्चवच्य लेते समय और उनसे प्रश्नोत्तर करते समय भारतवासियों की सहकारी

नमिति को बाहर कर दिया गया। यद्यपि इस सहकारी समिति में कोई भी ऐसा भारतवासी नहीं था जिसे भारतवासियों का विश्वास प्राप्त हो, तो भी भारत-वासी इनका अपमान न सह सके।

कमीशन भारतवर्ष में आया, परन्तु भारतवासियों ने इस कमीशन को अपने माथे पर कलंक का टीका समझा। इस कमीशन का बहिष्कार किया गया। उमके स्थान-स्थान पर पहुँचने पर उसे काले झण्डे दिखाये गये। 'साइमन गो बैक' के नारे लगाये गये।

भारत सरकार को यह पसन्द नहीं था। वह समझती थी कि ब्रिटिश सरकार के ये प्रतिनिधि अतिमान के योग्य हैं। इनको काले झण्डे दिखाना ब्रिटिश जाति को काले झण्डे दिखाना है। सरकार यह सहन नहीं कर सकी। परिणाम यह हुआ कि जहाँ-जहाँ यह कमीशन गया वहीं पुलिस की लाठियों से फोड़े गये मिरों के रक्त से भूमि रंजित होती गई। लाहौर में पंजाब-केसरी ला० लाजपत राय पर लाठियाँ चलीं। लालाजी की मृत्यु का कारण भी यही बताया जाता है। लखनऊ में सर्वमान्य नेता पं० जवाहरलाल नेहरू पर झण्डे पड़े। सैकड़ों को पकड़ लिया गया। परन्तु यह आन्दोलन दिन-प्रतिदिन उन्नत ही होता गया। कमीशन के मन में यह विश्वास दिलाने के लिए कि भारतवासी कमीशन का स्वागत करते हैं, पुलिस हजारों रुपये व्यय करके थोड़े से देहातियों को नगरों में लाकर साइमन कमीशन के स्वागत का प्रदर्शन कराती थी। परन्तु वे लोग भी जब यथार्थ बात समझ जाते तो प्रायः भाग जाते थे। भारत में सर्वत्र इस प्रकार का सत्कार पाकर कमीशन विलायत लौट गया।

देश-भर में असन्तोष और अपमानित होने की भावना भर रही थी। इस पर भी लोग आशा लगाये हुए थे कि साइमन कमीशन के सदस्य, जो भारतवासियों के असन्तोष को देख गये थे, अपनी रिपोर्ट में भारतवर्ष के लिए उदारतापूर्ण विधान प्रस्तुत करेंगे। यह आशा भी निष्फल हो गई। कमीशन की रिपोर्ट छपी और वह भारतवर्ष की किसी भी पार्टी को प्रसन्न न कर सकी। भारत के नरम दल के लोग भी इसको अन्यायपूर्ण और आशा से कम समझते थे। दूसरी ओर इंग्लैंड के लोग इन छोटे-मोटे अधिकारों को, जिनके देने की साइमन कमीशन ने मिफारिण की थी, बहुत अधिक समझते थे। वे कहते थे कि हमने भारत को बल से प्राप्त किया है और हम बल से इस पर राज्य करेंगे।

कांग्रेस, जो देश में सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था थी, उसने इस समय पूर्ण स्वाधीनता की माँग पेश की हुई थी। इस संस्था के लोगों को जब विदित हुआ कि साइमन कमीशन ने यथार्थ शक्ति का केन्द्र तो ब्रिटिश पार्लियामेंट ही रखा है तो उनके क्रोध का पारावार नहीं रहा। कांग्रेस ने एक सर्वदल-सम्मेलन द्वारा निर्मित विधान स्वीकार कर ब्रिटिश सरकार के सामने चुनौती के रूप में

उपस्थित कर दिया। इसमें उन्होंने कहा कि यदि यह विधान ब्रिटिश सरकार ने एक वर्ष में न माना तो कांग्रेस देश की स्वाधीनता की घोषणा कर देगी।

इस अवसर पर भारत के वाइसराय विलायत गये और वहाँ की सरकार से राय कर भारतवर्ष में आकर उन्होंने गोलमेज परिषद् की घोषणा कर दी। परन्तु जब महात्मा गांधी तथा अन्य कांग्रेस नेताओं के पूछने पर वाइसराय ने बताया कि गोलमेज परिषद् के निर्णय ज्यों-के-त्यों मानने पर ब्रिटिश पार्लियामेंट वाध्य नहीं है तो परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यदि किसी समिति के निर्णय माने ही नहीं जाने तो उस समिति के बनाने में लाभ ही क्या है? इसलिये कांग्रेस ने सन् १९२९ के अन्तिम मास के अन्तिम मिनट के समाप्त होने पर पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

सन् १९३० में एक विशेष विचार से कार्य प्रारम्भ किया गया। वह विचार था कि पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए कांग्रेस प्राणों की बाजी लगा देने का प्रण करती है।

इन्हीं दिनों लाहौर में सांडर्स हत्याकाण्ड तथा दिल्ली में असेम्बली बन-केस के बाद कई युवकों को पकड़ा गया। पुलिस ने पंजाब में एक क्रांतिकारी दल डूँड निकाला। क्रांतिकारी दल में सरकारी गवाह बनने के कारणों की खदरें धीरे-धीरे लोगों के कानों तक पहुँच रही थीं। इस दल के कुछ सदस्यों के विषय-लोलुपता और वासना के प्रभाव में साथियों को दगा देने के समाचार परिचित लोगों के हृदय को काँपा रहे थे। जनसाधारण तो उन लोगों को देवता, देव-उपकारक समझता था। परन्तु पूर्णिमा उनमें नहीं थी। वह स्वयं एक क्रांतिकारी दल की सदस्या थी और कमल के व्यवहार का कटु अनुभव रखती थी।

यह थी देश की परिस्थिति जिसका शिक्षित भारत पर भारी प्रभाव पड़ा था। पूर्णिमा भी इस प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकी।

: ५ :

पंजाब के क्रांतिकारी दल के बारे में पूर्णिमा को द्विवेदी द्वारा ज्ञात हुआ था।

द्विवेदी जिन दिनों लखनऊ में था तब उसकी पंजाब के एक क्रांतिकारी से भेंट हो गई। जिस होटल में वह ठहरा हुआ था उसी में वह पंजाबी युवक भी आ पहुँचा। उसके लखनऊ में पहुँचते ही पुलिस उसके पीछे लग गई और लखनऊ का वह होटल पुलिस वालों की निगरानी में हो गया।

भारतवर्ष की खुफिया पुलिस दूसरे देशों की पुलिस की तरह नहीं है। अन्य देशों में तो खुफिया पुलिस खुफिया ही रहती है। संशयात्मक व्यक्ति को त्वयं अथवा उसके सम्बन्ध में आने वाले अन्य लोगों को पुलिस की उपस्थिति का भ्रम-मात्र भी नहीं होता, परन्तु यहाँ तो नगर-भर में विख्यात हो जाता है कि अनुक व्यक्ति पर खुफिया पुलिस की कृपादृष्टि है। उस युवक के साथ भी यही हुआ।

वह पंजाबी युवक जब होटल में असबाब लेकर पहुँचा तो दो सफेदपोश उसके साथ ही आये। युवक होटल में स्थान के लिए बातचीत कर ही रहा था कि एक सफेदपोश मैनेजर के पास जाकर उसका परिचय दे आया। परिणाम यह हुआ कि मैनेजर सशंक हो गया और भागा-भागा उस युवक के पास आकर बोला, “हमारे यहाँ कोई कमरा खाली नहीं है।”

उस युवक ने कहा, “अभी तो आपके क्लर्क ने कहा है कि एक जगह खाली है और मेरा असबाब वहाँ चला भी गया है।”

मैनेजर ने फिर कहा, “नहीं, साहब, आपके लिए वह जगह ठीक नहीं है।”

द्विवेदी भी वहीं खड़ा यह वार्तालाप सुन रहा था। वह मैनेजर के मुख से यह सुनकर कुछ चकित हुआ। वह यह न समझ सका कि यह भले लोगों की पोशाक में पंजाबी सिख नौजवान कौन है जिसके लिए वहाँ रहना मैनेजर उचित नहीं समझता। उसने बहुत ध्यान से उस नवयुवक की ओर देखा और फिर मैनेजर की ओर। मैनेजर को भयभीत देख उसने पूछा, “मैनेजर साहब, कौन-सा कमरा उनके लिए ठीक नहीं?”

मैनेजर ने कहा, “कोई भी कमरा नहीं।”

“क्यों?”

“मैं इनको यहाँ नहीं रखना चाहता।”

द्विवेदी बहुत हैरान हुआ। उसने नये आये हुए की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा।

युवक उसके डम मुँह प्रश्न को समझ गया। उसने निराशा प्रकट करते हुए कहा, “यह मैनेजर साहब का दोष नहीं, यह इन खुफिया पुलिस वालों की कृपा है।” इतना कहकर उसने उन सफेदपोशों की ओर संकेत किया और कहा, “पहले एक और स्थान से मुझे इसी प्रकार भगाया गया है।”

द्विवेदी के मन में जरारत सूझी। उसने युवक को एक तरफ ले जाकर उसके कान में कुछ कहा। वह कुछ चिन्तित भाव से बोला, “परन्तु...”

द्विवेदी ने उसे बीच में ही रोककर कहा, “परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं। इनको छकाने के लिए आप तनिक अपनी असुविधा ही स्वीकार कर लें।”

वह युवक कहने लगा, “असुविधा! मुझे किञ्चित् भी नहीं। मैं तो आपकी ही वावत सोच रहा था।”

द्विवेदी उस सिख युवक के हाथ में अपना हाथ डाल उसे अपने कमरे में ले गया। वहाँ ले जाकर उसे अपना कमरा दिखाया। वह दो सीटों का कमरा था, परन्तु द्विवेदी ने अकेले ही लिया हुआ था।

सिख युवक ने कहा, “स्थान तो ठीक है, परन्तु आप क्यों यह मुसीबत मोल ले रहे हैं?”

द्विवेदी ने मुस्कराते हुए कहा, “मुझे इसमें मजा आता है।”

उस पंजाबी युवक का असवाध द्विवेदी के कमरे में पहुँच गया। मैनेजर चकित था कि यह क्या हो रहा है। जब वह इसका ठीक-ठीक आशय समझ गया तो वह द्विवेदी के कमरे में पहुँचा और उसमें कहने लगा, “साहब, आप यह क्या कर रहे हैं?”

“कुछ भी तो नहीं।”

“इनको आप यहाँ ठहरने दे रहे हैं?”

“हाँ।”

“बिना मेरी इजाजत के?”

“नहीं, साहब, आपकी इजाजत से। आपने मुझे यह कमरा भाड़े पर दे रखा है। यह दो के रहने के लिए है और दो का ही किराया मुझ अकेले से आठ दिन का पेणगी ले रखा है। रसीद मेरे पास है।”

“परन्तु मुझे आपत्ति तो इन पर है।”

“यह तो मेरे मित्र हैं।”

“एक क्षण में मित्र हो गये?”

“हाँ, इसमें अचम्भा करने की कौन-सी बात है? पुरुष-स्त्री का एक नज़र-भर में प्रेम हो जाता है और यहाँ तो हमने दो मिनट बातचीत भी कर ली है।”

“परन्तु विमलानन्द,” द्विवेदी ने यह नाम होटल में लिखाया हुआ था, “यह युवक क्रान्तिकारी है। इसके पीछे पुलिस लगी है। पुलिस होटल में घ्ररना देकर बैठे रहेगी और मेरे व्यापार में हानि होगी।”

“इसमें इन साहब का क्या दोष है? यह तो पुलिस का दोष है कि इनके पीछे ऐसे ढंग से लगी है जिससे आपके व्यापार में हानि होने की सम्भावना है। आप उनमें झगड़ा क्यों नहीं करते?”

“उनसे? यह भला कैसे हो सकता है? वे सरकारी कर्मचारी हैं।”

“मैनेजर साहब, आप बहुत ही डरपोक और सीधे हैं।” द्विवेदी का ‘सीधे’ से अभिप्राय था ‘बुद्धू’, “भला यह तो बताओ कि उनके पास क्या इन साहब को होटल से निकलवा देने का हुक्मनामा है? उनके पास तुम्हारे होटल में आकर बैठने का हुक्म है? क्या तुम यह भी नहीं जानते कि कोई भी आदमी किसी सरकारी अफसर के हुक्म के बिना किसी के मकान में नहीं आ सकता? तुम उनको नीचे चले जाने के लिए क्यों नहीं कहते?”

“मैं मजबूर हूँ।”

“तुम मजबूर हो तो हम भी मजबूर हैं। तुम्हारे पास कोई सबूत नहीं कि यह साहब खराब चाल-चलन के हैं। तुम इनको यहाँ से निकाल नहीं सकते। जाओ, थाने में रिपोर्ट लिखा दो। मैं समझ लूँगा।”

मैनेजर बहुत हैरान था कि क्या करे। आखिर उसे एक तरकीब सूझी। वह बोला, “यदि मैं डरपोक हूँ तो आप ही बहादुरी कर इन पुलिस वालों से बातचीत क्यों नहीं कर लेते?”

यही तो द्विवेदी चाहता था। उसने कहा, “हाँ, इसमें कौन-सी बड़ी बात है। परन्तु तुम बीच में न बोलना। मैं अभी उनको यहाँ से भगा देता हूँ।”

इतना कहकर वह मैनेजर के साथ दफ्तर में आया जहाँ वे दोनों सफेदपोश इस आशा में बैठे थे कि इस होटल से भी वह पंजाबी युवक निकाल दिया जायेगा और इस प्रकार वह लखनऊ से भाग जायेगा। यह हलचल देख होटल में ठहरे कुछ और लोग भी वहाँ एकत्रित हो गये थे। द्विवेदी दफ्तर में पहुँचते ही एक की तरफ घूरकर बोला, “तुम कौन हो?”

वह सफेदपोश इस प्रश्न से चकरा गया। बोला, “मैं? इन मैनेजर साहब को मालूम है।”

“यह तुम्हारे अफसर हैं या नौकर? खुद बताओ, तुम कौन हो और यहाँ इस मकान पर किसलिए आये हो? यह कोई धर्मशाला नहीं है।”

वह पुलिस वाला अपने साथी का मुख देखने लगा।

इस शोर को सुन कुछ और लोग वहाँ पहुँच गए थे। सब लोग उत्सुकता से उन लोगों के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे दोनों सहायता के लिए मैनेजर की तरफ देखने लगे। परन्तु द्विवेदी ने मैनेजर को कुछ कहने का अवसर ही नहीं दिया। वह बोल उठा, “तुम जेबकतरे प्रतीत होते हो। शीघ्र बताओ, तुम यहाँ क्यों आये हो? नहीं तो अभी धक्के दे-देकर नीचे धकेल दूँगा।” इतना कहते ही द्विवेदी ने अपने कुर्ते की आस्तीन ऊपर चढ़ा ली। पुलिस वालों ने देखा कि होटल में दूसरे रहने वाले भी लाल आँखें कर उनकी तरफ देख रहे हैं। वे डर गए और द्विवेदी से बोले, “हम खुफिया पुलिस के आदमी हैं।”

इस कथन ने द्विवेदी के हाव-भाव में कोई भेद उत्पन्न नहीं किया और दूसरे लोग तो और भी नाराज हुए। केवल मैनेजर डर से पसीना-पसीना हुआ जाता था। द्विवेदी ने कहा, “तुम्हारे पास पहचान के लिए कुछ है?”

“है तो, मगर आपको नहीं दिखायेंगे।”

“तो मुझे तुम्हारे कहने पर विश्वास नहीं। तुम यहाँ से भाग जाओ, नहीं तो पीटे जाओगे। जाओ, चले जाओ।”

द्विवेदी ने जोर से उनको धमकाया और वे द्रुम दबाकर होटल के नीचे उतर गए। यह तमाशा देख सब पूछने लगे कि माजरा क्या है। द्विवेदी ने कहा, “ये लोग कहते हैं कि हम खुफिया पुलिस के हैं और एक साहब को, जो अभी आए हैं, यहाँ से बाहर निकाल देने के लिए कह रहे हैं। मैं कहता हूँ, ये बदमाश हैं और उस मुसाफिर को लूट लेना चाहते हैं।”

मैनेजर डरा हुआ एक कोने में खड़ा था। द्विवेदी ने मैनेजर की पीठ ठोकते हुए कहा, "मैनेजर साहब, डरो मत। ये लोग कुछ नावाजिब बात कर रहे थे। इसी से डरकर भाग गए हैं। यदि इनका यहाँ आना और उस मुसाफिर को निकलवा देना कानून के अनुसार होता तो ये टेलीफोन से तुरन्त थाने में खबर कर यहाँ और पुलिस वाले बुला लेते। यदि कोई और तुमसे पूछने आये तो मुझे बुला लेना। मैं सब बात ठीक कर दूँगा।"

वहाँ सब ठीक-ठाक कर वह अपने कमरे में आया। यहाँ सिख नवयुवक कपड़े उतारकर आराम और शान्ति से बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। द्विवेदी को आते देख उसने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी तरफ देखा। द्विवेदी उसे देख हँस पड़ा और बोला, "ये आपके साथ कहाँ से लगे हैं?"

"साहब, कुछ न पूछिये। नाक में दम कर दिया है इन्होंने।"

"तो आप इनसे छुटकारा पाना चाहते हैं?"

"कौन नहीं चाहेगा?"

"अच्छी बात है। आप लखनऊ में अपना काम कर लें, तब जाते समय मैं आपको इनको चकमा देने का उपाय बताऊँगा।"

नव आगन्तुक चुप रहा।

यह वह दिन था जिस दिन द्विवेदी की प्रतीक्षा कर नरोत्तम गोमती से निराश लौटा था। इस दिन सायंकाल से कुछ पहले वह सिख नवयुवक लखनऊ में अपना काम कर होटल में वापस आया। द्विवेदी आज दिन-भर कहीं नहीं गया। वह अपने कमरे में पुलिस वालों को चकमा देने के उपाय पर विचार कर रहा था। सिख नवयुवक कहने लगा, "लो, साहब, मैं तो कल डाक गाड़ी से जाने का विचार कर रहा हूँ।"

"यहाँ आपका काम समाप्त हो गया?"

"काम क्या समाप्त हुआ है, वह तो आरम्भ भी नहीं हो सका। खैर, आप इस बात को जाने दें। मैं आपका धन्यवाद करता हूँ जो आपने मेरे साथ इतनी सहानुभूति दिखाई।"

"धन्यवाद की कुछ ऐसी जरूरत नहीं है। मुझे स्वयं ऐसी बातों में मज्जा आता है। इन कानून के ठेकेदारों को भगाने और तंग करने का मुझे अभ्यास-सा हो गया है। आखिर ये आपको क्यों तंग कर रहे हैं?"

"अजी, यह एक लम्बी कहानी है। आज पंजाब में तो कोई नौजवान भी पुलिस की दृष्टि से ओझल नहीं हो सकता।"

द्विवेदी ने कहा, "तो आपको इनकी दृष्टि में ओझल कर दूँ?"

"कैसे? यों तो मैं भी बहुत ढंग इस्तेमाल कर सकता हूँ; परन्तु मेरे पास यह असबाब है जो मैं अपने साथ ले जाना चाहता हूँ; अन्यथा मैं किसी-न-किसी तरह

इन्को धोखा दे ही जाता ।”

“अच्छा, आप यह बतायें कि आपके पास टिकट कहाँ तक का है ?”

“टिकट तो लखनऊ तक का था । अब आगे खरीदना है ।”

“आपने किसी को बताया तो नहीं कि आप कलकत्ता जा रहे हैं ?”

“सिवाय आपके किसी को नहीं ।”

“तो ठीक है । अगर आप मेरा थोड़ा विश्वास करें तो मैं आपको यहाँ से निकाल सकता हूँ ।”

“कैसे ?”

“आप अपना असबाब अभी मुझे दे दें । मैं उसे ले जाकर बुक करा दूंगा, और आपको उसकी रसीद दे दूंगा । रात को आप चुपचाप यहाँ से चले जाइयेगा । डाक गाड़ी में सवार न होकर आप प्रातःकाल पाँच बजे सवारी गाड़ी से खाना हो जाइये । वह मुगलसराय में डाक से पन्द्रह मिनट पहले पहुँचेगी । वहाँ आप डाक गाड़ी में सवार हो जाइयेगा ।”

“परन्तु ये लोग रात को भी होटल पर धरना देते हैं और प्रायः होटल के फाटक की बाहर से साँकल चढ़ा देते हैं । मैंने बरेली में रात को खिसक जाने का विचार किया था । वहाँ जब मैं फाटक पर पहुँचा तो बाहर से साँकल लगी थी ।”

“इसका इलाज मैं कर दूंगा । देखिये, मैं अब जाऊँगा तो वापस नहीं लौटूँगा । ठीक प्रातःकाल तीन बजे मैं बाहर से आऊँगा । आप भी ठीक उसी समय चुपचाप कमरे से निकल नीचे फाटक को भीतर से खोल दीजियेगा । मैं बाहर से खोल दूँगा । आप बाहर से फाटक बन्द कर चले जाइयेगा । मैं भीतर से बन्द कर आकर सो रहूँगा ।”

“आपकी योजना तो बहुत बढ़िया है, परन्तु आपको मेरे लिए इतना कष्ट करने की आवश्यकता नहीं । मैं पहले ही आपका कृतज्ञ हूँ ।”

“मेरे कष्ट की बात छोड़िये । मैं तो ऐसी बातों में आनन्द अनुभव करता हूँ । सबसे कठिन बात तो यह है कि क्या आप मुझ पर भरोसा कर सकते हैं ?”

इस सीधे प्रश्न से वह सिख युवक कुछ घबराया, क्योंकि यह भी एक कारण था । उसे दो बातों का संशय था । एक तो यह कि वह कोई लखनवी ठग न हो । चलते-चलते असबाब लेकर ही चलता बने । इसका उत्तर तो सहज था । द्विवेदी का अपना असबाब इतना था कि उसे छोड़कर वह भाग जायेगा इस पर विश्वास नहीं होता था । एक दूसरा सन्देह भी था । वह यह कि वह स्वयं भी कोई खुफिया पुलिस का अफसर हो और असबाब ले जाकर तलाशी ले । इसका उत्तर भी वह सोचता था । वह यह कि यदि उसने असबाब की तलाशी लेनी होती तो वह इस समय तक ले चुका होता, क्योंकि वह दिन-भर अपना असबाब उसी के पास छोड़कर घूमता रहा था । उसके असबाब में कोई सन्देहोत्पादक वस्तु तो

थी ही नहीं। यदि उसने तलाशी ली है तो अवश्य जान गया होगा कि इसमें कुछ नहीं। फिर असवाव ले जाने का क्या कारण हो सकता है? उसके मन में ये दोनों सन्देह पाँव नहीं जमा सके। उसने सोच-विचार कर कहा, “तो ठीक है। यदि आप कष्ट नहीं समझते तो इन लोगों को चकमा देना मुझे बहुत लाभ पहुँचायेगा। मैं यहाँ से कलकत्ता, वहाँ से मद्रास और फिर लङ्का तक जाने का विचार रखता हूँ। यदि ये लोग मेरे पीछे लगे रहे तो मेरी स्वतन्त्रता में भारी बाधा पड़ेगी और साथ ही होटलों में रहने का भी सुभीता न हो सकेगा।”

द्विवेदी ने कहा, “खूब, आप असवाव वाँध दें। यदि कोई आवश्यक वस्तु है तो निकाल लें और जेब में रख लें। आइये, हम अपनी घड़ियाँ मिला लें। ठीक तीन बजे मैं होटल के दरवाजे के बाहर होऊँगा। आप उस समय भीतर से दरवाजा खोल दें। यदि बाहर से वन्द हुआ तो मैं उस समय तक खोल चुका होऊँगा। आप चुपचाप बाहर निकल जावें और मैं भीतर चला आऊँगा। मैं आपको एक पैकेट दे दूँगा। उसमें असवाव की रसीद और कलकत्ते का टिकट होगा। आप, यदि मैं संकेत करूँ, तो बाहर से राँकल लगा दें और यदि न कहूँ तो मत लगावें। पञ्चात्, आप स्टेशन पर चले जावें। वहाँ गाड़ी प्लेटफार्म पर लगी मिलेगी। यह गाड़ी ठीक पाँच बजे रवाना होकर सायंकाल साढ़े पाँच बजे मुगलसराय पहुँचती है। पंजाब मेल वहाँ पाँच बजकर चालीस मिनट पर पहुँचता है और आप गाड़ी बदलकर सुभीते से अगले दिन प्रातः कलकत्ते पहुँच जायेंगे।”

“परन्तु यदि पीछे गड़बड़ हुई तो आपको कष्ट होगा।”

“अजी नहीं, आप मेरी चिन्ता न करें। मैंने अपने विषय में भी योजना बनाई हुई है।”

“परन्तु आपसे फिर मुलाकात कब होगी?”

“इसको भाग्य पर छोड़िये। मैं अपनी योजना की सफलता जानने को तो उत्सुक रहूँगा। यदि आपकी इच्छा हो तो कलकत्ते जाकर इस पते पर एक पोस्टकार्ड डाल दीजियेगा। मुझे मिल जायेगा।” इतना कह उसने कलकत्ता के एक होटल की मार्फत विमलानन्द लिख दिया। यह पता उस नवयुवक ने अपने बटुवे में रख लिया और कलकत्ते के टिकट के दाम द्विवेदी के हाथ में दे दिये। द्विवेदी बाजार से एक कुली को बुला लाया और सिख युवक का सामान उठवाकर निकल गया। उसे जाते देख किसी को सन्देह नहीं हुआ।

ग्राम के खाने के समय होटल के क्लर्क ने उस युवक से पूछा कि उनके कमरे का दूसरा वातू क्यों नहीं आया? सिख युवक ने उत्तर दे दिया, “वह आज बाहर किसी मित्र के यहाँ खायेंगे।” इस प्रकार बात समाप्त हो गई।

द्विवेदी ने स्टेशन पर पहुँच कलकत्ते का इण्टर क्लाम टिकट खरीदा और त्रेक में रखवाने के लिए असवाव बुक करवा दिया। उस समय देहरादून-

कलकत्ता एक्सप्रेस जाने वाली थी। इस कारण किमी को किञ्चित्मात्र भी सन्देह नहीं हुआ। पश्चात् स्टेशन रेस्टोरेण्ट में खाना खाकर वेटिंग-रूम में सो गया। ठीक दो बजे रात को उठकर वह पैदल अपने होटल की ओर चल पड़ा। तीन बजने में कुछ मिनट अभी थे कि उसने होटल के नीचे के दरवाजे पर आकर देखा कि एक खुफिया पुलिस का आदमी फाटक के पास पड़ा सो रहा है और उसने फाटक की साँकल बाहर से चढ़ा रखी है। वह समझता था कि यदि किसी ने होटल से बाहर जाना होगा तो दरवाजा बाहर से बन्द होने पर खटखटायेगा और वह जग जायेगा। द्विवेदी ने दवे पाँव फाटक के पास आ साँकल उतार दी और फिर फाटक से दूर हट गया। उसने यह इस कारण किया था कि पता लग जाये कि वह पुलिस वाला जाग तो नहीं जाता। किन्तु वह नहीं जागा और खुरटि मारता रहा। द्विवेदी कुछ दूर जाकर समय की प्रतीक्षा करता रहा। जब तीन बजने में पाँच-छः सैकण्ड रह गये तो वह बिना शोर किये फाटक के पास आ खड़ा हुआ। वह सिख युवक भी समय का पावन्द निकला। मुई के तीन पर आते ही उसने भीतर से किवाड़ को धीरे से खोल दिया। दोनों एक-दूसरे को देख अति प्रसन्न हुए। वह सिख युवक बाहर निकल आया और द्विवेदी ने लिफाफा, जिसमें असवाव की रसीद और एक टिकट था, उसके हाथ में पकड़ा दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल द्विवेदी उठकर मैनेजर से मिलने गया। बोला, “क्यों, साहब, क्या हालचाल है? फिर तो किसी ने आपसे नहीं पूछा?”

“नहीं, अभी तक तो नहीं। मगर, पण्डितजी, इन लोगों से जितना डरकर रहा जाये उतना ही अच्छा है।”

“इसी से तो ये सिर चढ़ जाते हैं। इनका स्थान वही है जहाँ ये अब हैं। इन्हें जितना सिर चढ़ाओ उतना ही ये तंग करते हैं। शैतान से डरने पर वह सिर चढ़ता है।”

“आप सैलानी आदमी हैं। हम ध्यापारियों को बहुत फूँक-फूँककर कदम रखना पड़ता है। खैर, छोड़िए इस चर्चा को। बताइए, वह है कौन जिसके लिए इतना झगड़ा किया जा रहा है?”

“अजी कोई हो। हमको इसमें क्या मतलब? सुनिए, मेरा बिल आप तैयार रखें। मैं आज चला जाऊँगा। अभी दो दिन का कमरे का भाड़ा रहता है। मैं वह आपसे वापस नहीं लूँगा। इन दो दिन तक यदि वह पंजाबी इस कमरे में रहना चाहे तो रहने दें। उसे निकालें नहीं और यदि वह चला गया तो आपका कमरा खाली है।”

“तो आप आज जा रहे हैं?”

“हाँ।”

“उसको भी साथ लेते जाते तो अच्छा होता। वह बला यहाँ किसलिए

छोड़े जा रहे हैं ?”

“आशा तो है कि वह आज चला जाएगा। यदि न गया तो परसों सुबह तक तो वह वहाँ रह सकता है, उसके धाद जैसे आपका मन करे करना।”

इसके पश्चात् द्विवेदी ने अपना असबाब बाँधा और तैयार हो गया। उस दिन उस सिख युवक को किसी ने होटल में नहीं देखा, परन्तु किसी ने कोई उत्सुकता प्रकट नहीं की। द्विवेदी ने खाना खाया और असबाब लादकर चल दिया। स्टेशन पर पहुँच कलकत्ते का टिकट खरीदकर रवाना हो गया।

: ६ :

कलकत्ते में पहुँच द्विवेदी उसी होटल में पहुँचा जहाँ का पता उसने पंजाबी नवयुवक को दे रखा था और उसकी आशा के अनुसार वह पंजाबी युवक उसको वहाँ मिलने आया। द्विवेदी ने आते ही कहा, “सुनाइये, साहब, मेरी योजना की सफलता कहाँ तक रही ?”

“बहुत धन्यवाद, मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। क्या मैं आपका परिचय पा सकता हूँ ? आपसे परिचय मेरे जीवन की एक मार्क की घटना है।”

द्विवेदी ने निःसंकोच भाव से अपना वही नाम, जो उसने लखनऊ में और कलकत्ते के होटल में दिया था, बताकर कहा, “मुरादाबाद के एक ब्राह्मण परिवार का हूँ। पिताजी बहुत धन कमाकर छोड़ गये हैं, और मेरा काम उस धन को खर्च करना है। आजकल मैं हिन्दुस्तान के बड़े नगरों में घूम-घूमकर अनुभव प्राप्त करने का यत्न कर रहा हूँ।”

“बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। बिना संसार के अनुभव के जीवनयात्रा आरम्भ करनी केवल व्यर्थ ही नहीं, प्रत्युत् हानिकर भी है। मैं अनुभवहीन होने के कारण ही इस मुसीबत में फँसा हूँ। आप जैसे सज्जन को अपने जीवन की विकटतम परिस्थिति की एक बात बताने में शायद आपको लाभ ही होगा। यदि आपको सुनने में आपत्ति न हो तो मैं सुनाना चाहता हूँ। यह भी आपके अनुभवों के कोप में एक आवश्यक वृद्धि होगी। मैं, जैसा कि आप अभी तक समझ गये होंगे, पंजाब का रहने वाला हूँ और पंजाब के एक क्रांतिकारी दल से सम्बन्ध रखता हूँ। जब मैं इस दल में सम्मिलित हुआ था तो मेरे मन में ऐसा जान पड़ता था कि दल का प्रत्येक सदस्य देवता, त्याग-मूर्ति और देश-प्रेम में इतना रत है कि वह इसके एक-एक रज-कण पर मस्तक नवाने के लिए प्रस्तुत है। मैं समझता था कि देश-प्रेम का अर्थ है देश की आर्थिक उन्नति, सामाजिक उन्नति और राजनीतिक उन्नति में संलग्न होना। देश की सभ्यता, साहित्य और कला को उन्नत करना मैं अपना कर्तव्य समझता था। मैं समझता था कि ये क्रांतिकारी देश के लिए यह सबकुछ करना चाहते हैं। इनमें से एक ने एक सार्वजनिक सभा में व्याख्यान देते हुए ऐसा मनमोहक चित्र खीचा था कि मैं अगले ही दिन इस दल

का सदस्य हो गया। परन्तु उस समय मैं अनुभवहीन था। मैं तब कॉलेज से निकला ही था। मैंने अपने घरवालों से सम्बन्ध त्याग दिया और इस दल की उन्नति और इस दल के कार्यक्रम को पूरा करने में दिन-रात समय लगाने लगा।

“परन्तु इसमें जाकर मैंने जो कुछ देखा उससे मेरे मन में इन लोगों के लिए, इनके कार्यक्रम के लिए, अभिप्राय यह है कि इनकी प्रत्येक बात के लिए धृणा उत्पन्न हो गई। मैंने देखा कि पार्टी के प्रायः सब सदस्य विदेशी वस्त्र प्रयोग में लाते हैं। विदेशी साबुन, तेल, पाउडर, क्रीम, सिगरेट, कलम, स्याही, अभिप्राय यह है कि सिर से पैरों तक विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। एक दिन मैंने पार्टी के नेता से कहा, ‘भाई साहब, यह खास लन्दन की बनी हुई जुरबिं लाने की क्या आवश्यकता थी? कोई भी स्वदेशी जोड़ा काम दे सकता है।’ वह साहब बोले, ‘देशी जुरबिं मोटी, ढीली और भारी होती है। यह देखिये कितनी चुस्त प्रतीत होती है।’

“केवल पोशाक ही नहीं, प्रत्युत् विचार, भावनाएँ और आकांक्षाएँ भी उनकी विदेशी हैं। वे रामायण और प्राचीन ग्रन्थों को गप्पें मानते हैं और गीता को पागल मन की उपज मानते हैं। वेदों को उन्होंने कभी देखा भी नहीं। भारत-वर्ष की किसी भी वस्तु से उनका लगाव नहीं है, परन्तु इसके विपरीत इंग्लैण्ड के इतिहास, शेक्सपियर और मिल्टन-कृत ग्रन्थों, वर्क और ग्लैडस्टन के वाक्यों से उनका पूरा परिचय है। उनको वे आदर्श व्यक्ति मानते हैं। उनकी राजनीति भी विदेशों से चुराई हुई है। वे कार्लमार्क्स को गौतम और कणाद से बड़ा ज्ञानी, लैनिन और ट्राट्स्की को विक्रम और अशोक से अधिक मानयुक्त समझते हैं। इसलिए वे धर्म की निन्दा करते हैं क्योंकि रूस में धर्म की निन्दा होती है।

“यदि नौवत यहीं तक रहती तो कुछ अधिक चिन्ता की बात न थी। सबसे अधिक मन को ठेस पहुँचाने वाली बात जो है वह उनमें से अधिकांश सदस्यों का भ्रष्ट आचरण है। भ्रष्ट मैं अपने विचार से कहता हूँ। वे तो इसे अनुचित नहीं समझते। भले घरों की लड़कियों को फुसलाकर पार्टी में सम्मिलित कर लेना और फिर उनसे व्यभिचार करना। गर्भ रहने पर गर्भपात करना, यह उनके साधारण चरित्र की कथा है। डाके डालकर रुपया इकट्ठा करना और फिर उसे उक्त आचरणों में व्यय कर देना, ये लोग अपना अधिकार समझते हैं।

“मुझे इस दल में सम्मिलित हुए अभी छः मास ही हुए हैं और मुझे इन लोगों ने झगड़ा करने पर बाध्य होना पड़ा है। मेरे देशभक्ति के चित्र को इन लोगों के आचरण ने इतनी ठेस पहुँचाई है कि मैंने एक दिन दल की सभा में इनके भ्रष्ट आचरण की घोर निन्दा की। परिणाम यह हुआ कि पार्टी ने मुझे गोली से मार डालने का प्रस्ताव किया है। यह देख मैं लाहौर से भाग आया हूँ। पुलिस वालों को मुझ पर पहले ही सन्देह था, परन्तु न जाने कैसे वे पता पा गये कि मैं

लाहौर छोड़ रहा हूँ। उन्होंने मेरा पीछा आरम्भ कर दिया। लाहौर से दिल्ली, दिल्ली से बरेली और बरेली से लखनऊ पहुँचा। बरेली में मैंने पुलिस वालों से निकल जाने की कोशिश की, परन्तु असफल रहा। लखनऊ में आपकी सहायता से मैं इस बात में सफल हो गया हूँ। परन्तु अपने दल वालों की धमकी अभी मेरे सिर पर है। आज प्रातः ही मैंने दल के एक सदस्य की झलक-मात्र एक द्राम में देखी है। उसकी मैंने दल के अधिवेशन में भारी निन्दा की थी, क्योंकि सबसे अधिक विषयलोलुप वही है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह मेरे पीछे लगा है। मैं आज कलकत्ते से चला जाऊँगा।”

यह सब कथा सुन द्विवेदी का हृदय काँप उठा। उनकी पार्टी में भी कमल ऐसा था जो अपनी वासना से बाध्य होकर पार्टी को हानि पहुँचाने पर प्रस्तुत हो गया था। नेता धीरेन्द्र को फँसाने की उसकी योजना कितनी घृणित थी। द्विवेदी मन में सोचता था कि क्या भारतवर्ष के नवयुवकों का पतन सर्वव्यापक है?

कुछ देर चुप रहकर उस पंजाबी युवक ने फिर कहना आरम्भ किया, “जब मैं यह सोचता हूँ कि दल का एक सदस्य दूसरे को पुलिस के हवाले इस कारण कर सकता है कि वह लड़की, जिसको वह प्रेम करता है, दूसरे से प्यार करती है, तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।”

इस कथन ने द्विवेदी को पागल बना दिया। वह चौंककर कुर्सी पर से खड़ा हो गया और क्रोध के आवेग में पूछने लगा, “यह सत्य है क्या?”

“हाँ, एक केस में जब पुलिस वाले किसी को सरकारी गवाह नहीं बना सके तो उन्होंने एक बन्दी से कहा, ‘यदि तुम कुछ नहीं बताओगे तो अमुक युवक उस लड़की को पा जायेगा जिसे तुम चाहते हो।’ इसका परिणाम यह हुआ कि उस बन्दी ने फरार साथी के पकड़ने का रहस्य बता दिया। इस प्रकार सब पकड़े गये।”

यह सुन द्विवेदी की आँखों में खून उतर आया। वह क्रोध के मारे काँपने लगा। बोला, “तुम झूठ तो नहीं कहते हो?”

“झूठ कहने में प्रयोजन? मैं तो स्वयं लज्जित हूँ। आप हमारी पार्टी के नेता होते तो भी कुछ बात थी। आपसे झूठ कहकर मुझे क्या प्राप्त हो सकता है? मैं तो एक परिणाम पर पहुँचा हूँ। वह यह कि कई कारणों से हमारा चरित्र बिगड़ गया है और चरित्रहीन युवक ऐसी संस्थाएँ नहीं चला सकते। देश में राज-नीतिक कार्य करना गाड़ी को घोड़े के आगे लगाना है। सबसे पूर्व हमें भारतवर्ष के नवयुवकों के चरित्र-निर्माण का काम करना चाहिये। चरित्रहीन होने से हम किसी भी काम को सफलता से नहीं चला सकते।”

द्विवेदी यह काली कहानी सुन बहुत ही लज्जित हुआ। उसका क्रोध घृणा और ग्लानि में बदल गया। एक छिपी पुकार, जो उसकी आत्मा को बार-बार फटकार

रही थी, अब नग्न रूप धारण कर उसकी आँखों के सम्मुख नाचने लगी। बहुत देर तक दोनों अपने-अपने विचार में डूबे रहे। आखिर द्विवेदी ने हाथ बढ़ा उस पंजाबी युवक को विदा करते हुए कहा, “मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ ? कहिये, तो आपके पीछे लगे आदमी को गोली मारकर मार डालूँ ?”

“नहीं, धन्यवाद। मैं ऐसा नहीं चाहता। वह समय शीघ्र ही आने वाला है जब उनको अपनी गलती समझ में आ जावेगी।”

इतना कह वह युवक अपना कार्ड द्विवेदी के हाथ में देकर चला गया। द्विवेदी लक्ष्यहीन-सा होकर कलकत्ते की सड़कों पर घूमने लगा। एक बात का उसे विश्वास हो गया था कि कोई भी राजनीतिक आन्दोलन तब तक नहीं चल सकता जब तक युवकों में तपस्या का जीवन पैदा न किया जाये।

एक दिन वह चौरंगी से रासबिहारी एवेन्यू की ओर जा रहा था कि उसको पूर्णिमा दिखाई दी। वह उसी ट्राम में स्त्रियों के लिए निश्चित सीटों में से एक सीट पर बैठी हुई थी। जब ट्राम काली घाट पर ठहरी तो पूर्णिमा ट्राम से नीचे उतरी। वह भी उतर आया और दोनों में भेंट हो गई। पूर्णिमा काली-दर्शन को आई थी। इस समाचार ने द्विवेदी को चकित कर दिया। वह पूछने लगा, “यह कब से ?”

पूर्णिमा ने केवल यह कहा, “जब से मुझे यह विश्वास मालूम हुआ है कि सांसारिक उन्नति से पूर्व आत्मिक उन्नति की आवश्यकता है।”

द्विवेदी ने पूर्णिमा से पूछा, “दीदी, मैं भी आऊँ आपके साथ ?”

“जैसी इच्छा हो।”

वह उसके साथ चल पड़ा। पूछने लगा, “नरोत्तम वापस लौटा है या नहीं ?”

“भैया कहाँ मिले थे आपको ?”

“लखनऊ में। दादा की खोज में था, परन्तु वह उन्हें पा नहीं सका। मुझे लखनऊ से आये चार दिन हुए हैं। तब तक तो दादा का कुछ पता नहीं था।”

“भैया कब तक लौटेंगे ?”

“यह तो नहीं बता सकता। मुझे अचानक वहाँ से चला आना पड़ा और मैं उससे मिलकर नहीं आ सका। वहाँ से चलने के दो दिन पूर्व तक हम मिलते रहे थे, पश्चात् मैं एक झमेले में फँस गया और यहाँ चला आया।”

इस समय वे काली के मन्दिर पर पहुँच गये थे। पूर्णिमा ने फूल-बताशे खरीदे। दोनों जूता उतार मन्दिर पर चढ़ गये। पूर्णिमा फूल-बताशे चढ़ा, हाथ जोड़ बहुत देर तक आँखें मूंदे खड़ी रही। द्विवेदी उसके पीछे चुप और शांत-भाव से काली की मूर्ति को देख रहा था। कितनी विकराल मूर्ति बनी थी—रक्तवर्ण की जिह्वा बाहर लटकाये, मुण्डमाला गले में डाले और दैत्य की छाती पर पाँव रखे हुए। यह सब इतना भयानक था कि द्विवेदी के काव्यमय मन को आकर्षित

नहीं कर सका।

जब पूणिमा प्रदक्षिणा लेकर मन्दिर से बाहर निकली तो द्विवेदी ने पूछा, “यह आत्मिक उन्नति में कैसे सहायक हो सकती है, दीदी?”

“मैं नहीं बता सकती। जो बात मन में अनुभव करने की है उसे युक्ति से नहीं समझा सकती।”

द्विवेदी ने आँखें नीची किए हुए कहा, “ठीक है। हम प्रत्येक बात को तर्क से सिद्ध करने का यत्न करते हैं। तर्क हमारे अनुभवों का सार होता है। अनुभव तर्क से पूर्व प्राप्त होता है।”

पूणिमा ने केवल ‘हाँ’ में उत्तर दिया।

द्विवेदी ने फिर कहा, “परन्तु, दीदी, क्या यह विस्मयजनक बात नहीं कि हम लोग, जो सर्वथा नास्तिक थे, जो प्रत्येक भारतीय विचार तथा पदार्थ को घृणा से देखते थे, इस प्रकार मूर्ति-पूजक बन जायें?”

“यह भी अनुभव का परिणाम ही है,” पूणिमा बोली, “जब मैं क्रान्तिकारी पार्टी में थी तब मेरा अनुभव बहुत न्यून था। अब उससे अधिक हो गया है। इसी से मेरा आचरण बदल गया है। कौन कह सकता है कि और अधिक अनुभव मुझे इस अवस्था से भी न बदल देगा। तब मैं क्या उचित समझूँ और क्या अनुचित, अभी नहीं कह सकती।”

द्विवेदी बोला, “हाँ, आप ठीक कहती हैं। मैंने पार्टी से त्यागपत्र देने का विचार कर लिया है। मैं समझता हूँ इस समय की देश की परिस्थिति में क्रान्तिकारी दल कुछ भी उपयोगी काम नहीं कर सकते।”

पूणिमा ने द्विवेदी के मुख पर देखा। वह आँखें नीची किये हुए चला जा रहा था। उसने अपना कथन जारी रखा, “कमल ने जो कुछ पार्टी में किया है वह मेरी आँखें खोलने वाला है। और हाँ, अभी पंजाब के क्रान्तिकारी दल के एक सदस्य से भेंट हो गई थी। जो अवस्था उसने अपनी पार्टी के सदस्यों की बताई है वह हमारे कमल के कामों से कुछ कम नहीं। मैं समझता हूँ कि यदि हमें देश के उद्धार के लिए कुछ करना है तो उसका उपाय आतंकवाद में नहीं। यह किसी और बात में है और हमें उसे ढूँढ़ना है।”

इसके पश्चात् द्विवेदी ने कुछ संक्षेप में वह वृत्तांत बताया जो पंजाबी युवक ने उसे बताया था। यह वृत्तांत रोंगटे खड़े करने वाला था। पंजाब के कुछ क्रान्तिकारी दल वालों का नाम उस समय भारतवर्ष में प्रत्येक के मुख पर था। प्रत्येक उनको वीर और देश पर वलिदान होने वाला समझता था। उन्हीं के सम्बन्ध में जब ऐसी ओछी और वेदूदा बातें पूणिमा ने सुनीं तो उसको एकाएक विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा, “यह सब वृत्तांत रोमांचकारी है, परन्तु इसकी सत्यता में संदेह होता है।”

“हाँ, परन्तु जब उस सिख नौजवान ने बातें बताईं, तो मुझे उस पर सन्देह करने का कोई कारण प्रतीत नहीं हुआ था। यह हो सकता है कि उसकी बातों में कुछ अतिशयोक्ति हो, परन्तु सर्वथा निराधार नहीं प्रतीत होती। और जब मैं कमल के व्यवहार को देखता हूँ तो सन्देह करने का कोई स्थान नहीं रह जाता।”

: ७ :

नरोत्तम असफल लौटा तो पूर्णिमा को न तो निराशा हुई और न ही प्रसन्नता। नरोत्तम ने कहा, “दीदी, वहाँ जाना व्यर्थ हुआ।”

“भैया, मैंने तो पहले ही कहा था कि व्यर्थ होगा। मुझे आतंकवाद और क्रांतिकारी दलों पर विश्वास नहीं रहा।”

“तो अब क्या किया जाये?”

“मुझे तो मित्राय भगवत् भजन के और कोई मार्ग नहीं सूझता। परमात्मा ही मार्ग बता सकता है। इस काल में, जब तक मार्ग न मुझे मैं अपनी आत्मा को दृढ़ और उन्नत करने का यत्न करना चाहती हूँ, ताकि समय पड़ने पर कहीं यह धोखा न दे दे।”

नरोत्तम अपने श्रीमा कम्पनी के काम में लग गया। पूर्णिमा का काम फिल्म कम्पनी में आरम्भ हो गया था और प्रायः रात को उसे स्टूडियो में जाना होता था। दिन को वह घर पर धर्मग्रन्थों का, प्रायः गीता का, पाठ करती थी और उसे ममझने का यत्न करती थी।

कभी-कभी मेठ कुंजविहारी का पत्र उनके नौकर के हाथ से मिला करता था और उसमें मधुसूदन के न्यूनाधिक समाचार, जो कुछ मेठ साहब को ज्ञात होते थे, मिल जाया करते थे। एक पत्र में यह समाचार था—

‘श्यामाचरण पुत्र को मिलने झाँसी गया था और कल ही वहाँ से लौटा है। मधुसूदन देखने में प्रसन्न प्रतीत होता था, यद्यपि उसका शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। वह कहता था कि उसे कुछ भी कष्ट नहीं, परन्तु श्यामाचरण को इस बात पर विश्वास नहीं आया। मेरा विचार है कि अगली बार मैं स्वयं मिलने जाऊँगा और फिर जो कुछ देखूँगा लिखूँगा।’

इसी प्रकार की सूचनायें मिला करती थीं और दिन व्यतीत होते जाते थे। धीरेन्द्र का सन्देश भी एक दिन मिला। उसमें कहा गया था, ‘नरोत्तम, पूर्णिमा और द्विवेदी पार्टी से पृथक् कर दिये गये हैं। इनके पीछे पुलिस लग रही है और नेता की यह आज्ञा है कि वे पार्टी के किसी सदस्य से किसी भी प्रकार का सम्पर्क न रखें। वे अपने-आपको पार्टी से पृथक् समझें। उनका काम पार्टी में समाप्त हो गया है। यह पार्टी के शेष सदस्यों और पार्टी के कार्य को सुरक्षित रखने के लिए किया गया है।’

पूर्णिमा को इस प्रकार पार्टी से पृथक् होने में प्रसन्नता और सुख प्रतीत

हुआ। वह ऐसा अनुभव करती थी कि जैसे उसके मन से भारी बोझा उतर गया है, परन्तु नरोत्तम को इसमें बहुत अस्वाभाविकता प्रतीत होती थी। उने क्रान्तिकारी आन्दोलन के अतिरिक्त और कुछ करने को नहीं सूझता था। वह ऐसा अनुभव करता था, मानो वह बिल्कुल खाली है। उसे करने को कुछ काम नहीं रहा।

द्विवेदी अभी तक कलकत्ते में था। जब नरोत्तम ने उसे नेता की आज्ञा सुनाई तो उसने न तो शोक और न ही प्रसन्नता दिखाई। उसने इस सूचना को ऐसे सुना जैसे इसका उससे कुछ सम्बन्ध ही नहीं है। वह अपने-आपको निर्लिप्त समझता था।

सेठ कुंजबिहारी, जो किसी समय सरकारी अफसरों के कृपापात्र समझे जाते थे, अब उनकी दृष्टि से उतर गये थे। कोई समय था जब डिप्टी कलक्टर तथा कलक्टर नगर के किसी भी सार्वजनिक तथा अर्द्धसरकारी काम में उनके सहयोग के बिना नहीं चल सकते थे। उस समय सेठ साहब भी यह समझते थे कि वह बहुत बड़े आदमी हैं। उनके घर नित्य बड़े-बड़े अफसरों के आने-जाने का ताँता बँधा रहता था। नगर के दूसरे लोग भी उन्हें नगर का एक आवश्यक अंग समझते थे। जब भी किसी को कोई आवश्यकता होती वह तुरन्त सेठ साहब के घर पहुँच जाता। सेठ साहब का दरवाजा सबके लिए खुला रहता था और वह स्वयं यथाशक्ति प्रत्येक का काम करने के लिए तत्पर रहते थे।

परन्तु जब से उन्होंने राय साहब की पदवी का त्याग किया वह अफसरों की दृष्टि में गिर गये थे। अब वह किसी की सिफारिश अफसरों के पास नहीं ले जा सकते थे। फलस्वरूप उनके पास आने वालों की संख्या कम होने लगी। लोग मुख पर उनकी बहादुरी की प्रशंसा करते, परन्तु पीठ पर उन्हें मूर्ख बताते थे। अब मधुसूदन के पकड़े जाने के बाद उनकी उपयोगिता और भी कम हो गई। जब उन्होंने मधुसूदन के विरुद्ध मुकदमा बनाये जाने में सहायता देने में इन्कार कर दिया तो पुलिस के अफसर और दूसरे सरकारी कर्मचारी उनको एक भयानक जानवर समझने लगे। कोई उनसे बात करना भी पसन्द नहीं करता था। यदि कहीं नगर के किसी बड़े आदमी से भेंट भी हो जाती तो वह मुख फेरकर चला जाता।

हाँ, एक बात अब भी थी। वह था उनका अतुल धन। इस धन के ग्राहक उनके पास अब भी आते-जाते थे। सत्य तो यह है कि उनकी संख्या अब बढ़ गई थी। सरकारी कामों के लिए चन्दा लेने तो लोग उनसे आते ही थे, साथ ही अब सार्वजनिक संस्थाओं के लोग भी आने लगे। आर्यसमाज, कांग्रेस, हिन्दू महा इत्यादि के लोग भी चन्दे के लिए उनके पास पहुँचने लगे। सेठ साहब अपने उदार भाव के कारण सबको कुछ-न-कुछ देते ही रहते थे। परन्तु इस विषय में भी

उनको धोखा ही दिया जाता था और वह सचेत होते जा रहे थे।

एक दिन इलाहाबाद क्लब का सेक्रेटरी उनके पास कलक्टर का एक नोट लेकर आया। उसमें लिखा था, 'प्रिय सेठ साहब, मुझे आपसे कल किसी समय अपने दफ्तर में मिलकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी। तकलीफ के लिए क्षमा करेंगे। एक अत्यावश्यक बात पर आपसे विचार करना है।'

नोट देते हुए सेक्रेटरी ने कहा, "सेठ साहब, आप भले ही पदवी छोड़ दें, फिर भी आपकी सबको आवश्यकता बनी ही रहती है।"

सेठ साहब ने कुछ उत्सुकता से पूछा, "सेक्रेटरी साहब आप जानते हैं क्या काम है?"

"हाँ, मगर बताने में मज्जा नहीं आवेगा। बड़े साहब, के मुख से खुद सुनियेगा तो ठीक होगा।"

"अजी साहब, बता दीजिये। तनिक कम मज्जा ही ले लेना। कौन-सी बात है जिनके लिए इतना लुकाव-छुपाव किया जा रहा है?"

"कल सुबह ही तो आपने साहब से मिलने जाना है। एक रात-भर के लिए धैर्य करना ही ठीक रहेगा।"

सेठ साहब ने कुछ सोचकर कहा, "परन्तु यह आपने कैसे जान लिया कि मैं अवश्य ही मिलने जा रहा हूँ?"

"क्यों? तो क्या नहीं जाइयेगा?"

"यह कोई आज्ञा तो है नहीं। केवल उनका निमन्त्रण है। मैं शायद न जा सकूँगा।"

सेक्रेटरी इलाहाबाद बार के सदस्य थे। एक प्रसिद्ध वकील थे। इनका नाम था कैलाशनाथ चक। वह सेठ साहब के इस उत्तर से घबराये। बोले, "सेठ साहब, यह नोट आज्ञा ही समझनी चाहिये। बड़े आदमियों को जब आज्ञा दी जाती है तो ऐसे ही दी जाती है। यदि यह केवल निमन्त्रण होता तो कलक्टर साहब आपको दफ्तर की बजाय घर बुलाते और वहाँ मुलाकात करते। दफ्तर में मिलने के लिए लिखने का मतलब आज्ञा ही समझिये।"

सेठ साहब के माथे पर तय्यारी चढ़ गई। वह बोले, "तो इसको मैं अपना वारण्ट समझूँ?"

"अजी नहीं, नहीं! यह आप कैसी बातें कर रहे हैं? भला आपके वारण्ट क्यों निकलेंगे? मेरा मतलब था, साहब आपको मिलना चाहते हैं।"

"परन्तु मैं उनसे मिलना नहीं चाहता।"

"ओह! यह मुझे ज्ञात नहीं था। मेरी राय तो यह है कि आप मिल लें। इसमें बहुत लोगों का भला है।"

सेठ साहब ने कुछ सोचकर कहा, "अच्छी बात है। अगर आप इस रहस्य

को खोलना नहीं चाहते तो मैं मिलूंगा और अवश्य मिलूंगा। और कहिये ?”

“वस, अत्यन्त धन्यवाद। मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई है कि आपने मेरी राय मान ली है।”

इतना कह मेकटरी चला गया।

दूसरे दिन सेठ साहब दोपहर के बारह बजे कलक्टर के दफ्तर में जा पहुँचे। सेठ साहब जब वहाँ पहुँचे तो चपरासी कहीं गया हुआ था। वह प्रतीक्षा करने के कमरे में चले गये। वहाँ तक लोग प्रायः बिना सूचना भेजे चले जाया करते थे। सेठ साहब एक कुर्मी पर बैठ गये। कुर्मी के आगे मेज पर कागजों का एक पुलिदा रखा था। सब कागज एक लिफाफे में थे और लिफाफे पर के० एन० चक छपा था। इससे सेठ साहब समझ गये कि कलक्टर के सेक्रेटरी साहब से मिलने गये हैं। इतना समझते ही सेठजी को सूझ पड़ी कि मिस्टर चक भीतर साहब को उनसे कल की भेंट का वृत्तान्त सुनाने गये हैं। उनके मन में आया कि सुनना चाहिए कि क्या बातचीत हो रही है। वह धीरे से उठे और दोनों कमरों में आने-जाने वाले दरवाजे के पाम जाकर बन्द किवाड़ के साथ कान लगाकर सुनने लगे। मिस्टर चक कह रहे थे, “हुजूर, सेठ साहब कहने लगे, ‘तो क्या यह मेरा वाण्ट है?’”

साहब हँस पड़े और पूछा, “तो आपने क्या कहा?”

“मैंने कहा, ‘नहीं, नहीं। सेठ साहब, आपके भला वाण्ट कौन निकाल सकता है?’ इसके बाद वह कुछ सोचकर मिलने आने पर राजी हो गये।”

साहब हँसते हुए बोले, “यह महामूर्ख है। इसे अपने भले-बुरे का भी ज्ञान नहीं। परन्तु क्या करूँ? मेरा काम ही ऐसा है। अकलमन्दों और मूर्खों दोनों ने वास्ता पड़ता है। यह चन्दे इकट्ठे करने का काम बहुत ही बेहूदा है। कौने-कौने उल्लुओं से मिलना पड़ता है। भगवान् अपना भी कितने लोगों को देता है।”

इसके आगे सुनने की ताव सेठ साहब में नहीं रही। वह दरवाजे से पीछे हट आये और छड़ी उठा चलने को तैयार हो गये, परन्तु इसी समय चपरासी वहाँ आ पहुँचा और सेठ साहब को देखते ही तपाक से सन्ध्या करके बोला, “हुजूर नजरीफ ले आये हैं। आइये, बैठिये। साहब आपकी वास्त पृष्ठ ही रहें थे। लीजिये, मैं अभी सूचना दिये देता हूँ।” इतना कह वह बिना सेठ साहब के उत्तर की प्रतीक्षा किये दफ्तर के खास कमरे में चला गया। सेठ साहब सोचने लगे कि अब बिना मिले जाना उचित नहीं। खास तौर पर अब जब इनला हो चुकी है। इस कारण वह रुक गये और चपरासी के बाहर आने की प्रतीक्षा करने लगे। आधे ही मिनट में चपरासी बाहर आकर बोला, “हुजूर, साहब याद कर रहे हैं।”

सेठ साहब भीतर गये तो साहब की वगल में एक कुर्मी पर चक साहब को बैठा पाया। वह सलाम कर खड़े हो गये। कलक्टर ने सामने रखी कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए कहा, “आइये, सेठ साहब, तबीयत कैसी है? सब

परिवार के लोग तो ठीक हैं न ?”

“सब भगवान् की कृपा है।”

“यह तो हम अभी चक साहब से कह रहे थे कि सेठ साहब पर भगवान् की अत्यन्त कृपा है। कैसी व्यावहारिक बुद्धि दी है। आपके बिना तो इलाहाबाद का कोई काम नहीं चल सकता।”

इस पर चक साहब बोल उठे, “हुजूर, इनका नाम तो प्रान्त-भर में रोशन हो रहा है। मशहूर हो रहा है कि इनके द्वार पर जाकर कोई खाली हाथ नहीं लौटता। ईश्वर ने जहाँ धन दिया वहाँ बुद्धि और हृदय की विशालता भी दी है।”

सेठ साहब केवल ‘हूँ’ कहकर दत्त-चित्त हो बैठे रहे। यथार्थ बात यह थी कि सेठ साहब के मन में क्रोधानल लपटें मार रहा था। वह उसकी लपटों को बाहर निकलने से रोक रहे थे। वह चाहते थे कि साहब अपना पूरा आशय पहले बता दें तो ठीक रहेगा।

साहब ने उन्हें चुपचाप बैठे देख बात आरम्भ कर दी। वह बोले, “कमिश्नर साहब पिछले सप्ताह यहाँ आये थे और उन्होंने यह प्रस्ताव पास किया था कि गवर्नर साहब का कोई स्मारक इलाहाबाद में बनना चाहिये। गवर्नर वहादुर अगले वर्ष अपने ओहदे का समय समाप्त कर चले जायेंगे। हमें चाहिये कि उनके जाने से पूर्व ही उनका स्मारक बना डालें।”

सेठ साहब ने न ‘हाँ’, न ‘ना’ कुछ भी नहीं कहा। कलक्टर साहब एक मिनट तक सेठ साहब के कहने की प्रतीक्षा कर फिर कहने लगे, “मैंने बहुत लोगों से इस विषय में बातचीत की है और अन्त में हम लोग इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि इलाहाबाद में एक ‘लेडीज़ हॉस्पिटल’ खोल दिया जाये। यह एक ऐसी वस्तु होगी जिसमें जनता के किसी भाग को भी दान देने में संकोच नहीं होगा। अभी-अभी मैं पंडितजी की घर से आ रहा हूँ। उन्होंने भी इस काम के लिए चन्दा देना स्वीकार कर लिया है। वह सरकार के विरुद्ध हैं, परन्तु ऐसे भले कामों का विरोध नहीं कर सकते। देखिये, इलाहाबाद में तो बिना आपकी सहायता के कोई काम नहीं हो सकता, इसी कारण आपको बुलाया है। हमने इस काम के लिए एक कमेटी भी बना दी है। इस कमेटी का नाम लॉर्ड स्मारक-कमेटी रखा है। राजा साहब..... इस कमेटी के प्रधान बन गये हैं और मिस्टर चक सेक्रेटरी नियत किये गये हैं। यह देखिये, मैंने चन्दों की एक सूची भी बना ली है। इस सूची में जिनके नाम के सम्मुख लाल पैन्सिल का निशान है उन्होंने यह चन्दा देना स्वीकार कर लिया है। इस सूची में ताबूकदार, जमींदार, ठेकेदार, रईस, बड़े-बड़े वकील और नगर के सेठ-साहूकार भी हैं। आपका नाम मैंने यह चोटी पर लिखा है और आपके नाम के सम्मुख मैंने एक लाख रुपया लिखा

है। आप अपने हाथ से यहाँ यह लाल पैन्सिल से निशान बना दें। इसके पश्चात् हम आपको इस स्मारक-कमेटी का सदस्य चुन लेंगे।”

इतना सुन चुकने पर भी सेठ साहब कुछ नहीं बोले। अब कलक्टर ने अपनी बात की पुष्टि के लिए वह चन्दे की सूची वाला कागज सेठ साहब के सामने कर दिया और दूसरे ने रंगीन पैन्सिल उनके पास रख दी। सेठ साहब ने एक हाथ में कागज ले लिया और दूसरे हाथ में पैन्सिल। और साहब से पूछा, “क्या यह भी हुक्म है?”

“नहीं, नहीं, साहब। हुक्म की कौन बात है? दया-धर्म के काम के लिए भला हुक्म चलाने की क्या जरूरत है? यह तो आपको स्वयं स्वेच्छा से ही मान लेना चाहिये। यहाँ प्रत्येक बात स्वतन्त्रता और स्वेच्छा से हो रही है। देखिये न, दस लाख रुपये की आवश्यकता है। इतनी बड़ी रकम आप लोगों के लाभ के लिए ही प्रयोग की जाने वाली है। इसी में तो यह पैन्सिल आपके हाथ में दी है। हुक्म इस भाँति तो नहीं दिये जाते।”

सेठ साहब ने कहा, “अच्छी बात। तो यह लो।” इतना कह उन्होंने अपने नाम और चन्दे की रकम के ऊपर एकदम लकीर फेर दी और कागज कलक्टर के हाथ में दे दिया।

साहब यह देख रहे थे। बाल उठे, “वाह साहब, यह क्या? यह क्या? अजी साहब, बैठिये तो! जरा मुनिये तो! ऐमे पुण्य के काम में आपको यह नहीं करना चाहिए।”

सेठ साहब अपने नाम पर लकीर फेर उठ खड़े हुए थे। परन्तु मिस्टर चक और साहब के आग्रह पर बैठ गये और पूछने लगे, “आप कहते हैं न कि इसमें हमारा ही लाभ है।”

“हाँ साहब, भला इसमें भी क्या सन्देह है?”

“आप जरा बता सकते हैं कि इसमें विलायती तरीके से चिकित्सा होगी या देशी तरीके से?”

अब चक साहब बोले, “भला यह भी कोई पूछने की बात है? देशी ढंग में चिकित्सा के भी कहीं अस्पताल होते हैं?”

सेठ साहब ने गर्दन को एक तरफ झुका तनिक सिर हिलाते हुए कहा, “हाँ साहब, जहाँ आप जैसे चौधरी हों, साहब जैसे प्रबन्धकर्ता हों और लाट साहब की हो यादगार, वहाँ देशी गधों का स्थान ही कहाँ होगा। सुनो मिस्टर चक, चन्दा देंगे हम, चालू खर्च के लिए ‘ग्रान्ट’ दी जायेगी हमारे टैक्स से और इस अस्पताल में अफसर आयेंगे कोई विलायत के थर्ड क्लास डॉक्टर, जो हम हिन्दु-स्तानियों को मार-मारकर तजुर्व करेंगे। दवाइयाँ आयेंगी विलायत से, सामान आयेंगा विलायत से। भाई साहब, ऐमे अस्पताल से मुझे क्षमा करो।”

कलक्टर ने अभी सेठ साहब के भावों की गम्भीरता को नहीं समझा। वह कहने लगा, “सेठ साहब, देखिये, देशी तरीके से चिकित्सा करने वालों की न तो कुछ शिक्षा होती है और न उनको कुछ ज्ञान होता है। उनके हाथ में किसी आदमी की जान दे देनी कितनी बेवकूफी होगी। ये हकीम-वैद्य बेचारे क्या जानते हैं?”

“कभी आपने इनसे इलाज कराया भी है?”

“लाहौलविला ! यह आज आप कैसी बातें करते हैं ? क्या मेरी जान इतनी सस्ती है कि एक गँवार के हाथ में दे दूँ ?”

“उनको आपने गँवार कैसे जान लिया ? क्या कभी आपने किसी ऐसे से पूछा है जो किसी हकीम या वैद्य से इलाज करा चुका हो ?”

“अजी, साहब, यदि डॉक्टरों का इल्म आला न होता तो अस्पतालों में हजारों मरीज हर रोज़ क्यों जाते ?”

“अगर नगर में एक ही कुआँ रहने दिया जाय और दूसरे सब बन्द कर दिए जावें तो सब लोग वहीं से पानी पियेंगे, चाहे उस कुएँ का पानी खारी हो या मीठा।”

“परन्तु हमने तो दूसरे कुएँ बन्द नहीं किए। जिसकी इच्छा हो, दूसरे ढंग का अस्पताल खोल सकता है।”

“बहुत अच्छी बात है। तो ऐसा करो, लाट साहब की यादगार में एक आयुर्वेदिक अस्पताल खोला जाए। उसके लिए किसी से चन्दा न लिया जाए। सारा का सारा रुपया, अभिप्राय यह है कि दस लाख रुपया, मैं अकेला देता हूँ। लो, लिखो।”

“परन्तु, सेठ साहब, हम तुम्हारे नौकर तो हैं नहीं कि ऐसे-वैसे कामों के लिए मग़ज़पच्ची करते रहें !”

“वाह, साहब, लाट साहब की यादगार ऐसा-वैसा काम है ?”

“देशी अस्पताल में लाट साहब का नाम नहीं लगता।”

“ठीक। तो, हुज़ूर, लाट साहब के नाम के लिए आप जो कर रहे हैं, हमारे फ़ायदे के लिए नहीं। आखिर आपको हम लोगों से क्या मतलब ? आपको तो ज़ब्र हमारी कतरकर अपने आका को खुश करना है।”

अब कलक्टर को क्रोध चढ़ आया। खासकर आका वाली बात सुनकर। जो मनुष्य दिन से रात तक खुशामद करवाने का स्वभाव रखता हो, उसे सत्य, और वह भी कड़ुवा, सुनाया जाए तो वह सहन नहीं कर सकता। वह झपटकर पाँवों पर खड़ा हो गया और बोला, “देखो, सेठ, गुस्ताखी अब बन्द करो। जानने हो, किससे बात कर रहे हो ?”

“हाँ, हाँ साहब, तनिक बैठ जाइये। आपके से बाहर होने में आप अपनी प्रणामा

नहीं करवा सकते। ज़रा बैठ जाइये। मुझे अभी आपसे कुछ और कहना है। मैं जानता हूँ कि आप इलाहाबाद के कलक्टर हैं, परन्तु मैं तो कलक्टर से मिलने नहीं आया। मुझे तो मिस्टर लतीफ अहमद ने बुलाया था और मैं उन्हीं से मिलने आया हूँ। यदि कलक्टर साहब बुलाते तो अदालत के कमरे में हाज़िर होता और वहाँ दूसरी बात बताता। आपके साथ तो मैंने सीधी-सी बात की है। आखिर आप लाट साहब के नाम की खातिर ही तो हमको चन्दा देने को कहते हैं न। बताइये, गवर्नर बहादुर ने मुझ पर या मेरे इष्ट-मित्रों पर कौन-सी मेहरबानी की है कि मैं उनकी यादगार को ताज़ा रखूँ? आपकी सिफारिश पर गवर्नर बहादुर ने मधुसूदन को 'डेंटिन्स' बना लिया है, क्यों? आपके पास उसके खिलाफ कोई सबूत नहीं, फिर भी वह कैद में है। इसी वृत्त पर मुझसे आप एक लाख रुपया माँगते हैं? आपका मैं निहायत मशकूर हूँ कि आपने कमाल की मेहरबानी कर मुझे गवर्नर बहादुर की यादगार कायम करने में याद किया है।"

"बस, बस! आपसे हम रुपया नहीं लेंगे। आप जा सकते हैं।"

सेठ साहब उठ खड़े हुए और आदाब अर्ज कर वहाँ से चले आये।

चक सेठ साहब की मुँहफट बात सुनकर बहुत भयभीत हुआ था। उसी दिन सायंकाल वह अपनी इच्छा से अथवा कलक्टर के संकेत से सेठ साहब से मिलने आया। बहुत लम्बा और भय से परेशान मुख किये हुए वह सेठ साहब से कहने लगा, "साहब, मैं आपके अहसान में दबा हुआ हूँ। एक बार आपने मेरी बहुत आड़े समय में रुपये से सहायता की थी। उस समय का अहसान मैं नहीं भूल सकता। इसी कारण मैं यह अपना धर्म समझता हूँ कि आपको आने वाली मुसीबत से सचेत कर दूँ। आपने कलक्टर से तकरार कर भारी भूल की है। वह आपको बहुत हानि पहुँचा सकता है। ये मियाँ लोग जिस पर नाराज़ हो, जाते हैं, उसकी जड़ तक उखेड़ डालते हैं।"

"यहाँ तो जड़ है ही नहीं जिसे उखेड़ डालेंगे। हम पति-पत्नी हैं। न हमारी कोई सन्तान है और न ही हमारा कोई सम्बन्धी। हमारा कोई सरकारी नौकरी में भी नहीं है। मुझे न तो खिताब की लालसा है और न किसी और रियायत की। ठेकेदारी थी, वह भी अब छोड़ दी है।"

"आखिर इस नाराज़गी का कारण क्या है?"

"कारण स्पष्ट है। एक समय था जब मैं ठेकेदार था और सब प्रकार के अधर्म करता था। जो कमाता था उसमें से अफसरों की जेबें भरता था। डालियाँ लगवाता था और दिन-रात अफसरों की चापलूसी में व्यतीत करता था। यह सब इसलिए कि मैं खिताब पा जाऊँ या बेईमानी से कमाया धन पचा सकूँ। उस समय ये लोग मेरा मान करते थे। परन्तु अब मैंने ठेकेदारी ही छोड़ दी है। मैं किसी को रिश्तत नहीं देता। मैं चापलूसी नहीं करता। अब मुझे मूर्ख समझा

जाने लगा है। मेरी रक्षा करने के लिए मुझे न तो पुलिस की सहायता मिल सकती है और न पिस्तौल। मेरे घर में डाका डाला किसी ने और पकड़ लिया हमारे पुरोहित के लड़के को। जब उसके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिला तो बिना मुकदमे के ही उसे 'डिट्यू' बना दिया है।"

चक ने बहुत शान्ति से कहा, "परन्तु साहब, ये आपकी निजी बातें हैं। इनका सार्वजनिक बातों से कोई सम्बन्ध नहीं। एक ऐसे अस्पताल के लिए जिसको पण्डितजी जैसे कांग्रेस के नेता भी सहायता देने में संकोच नहीं करते, उसमें सहायता करते समय आपको अपनी निज की बातें त्याग देनी चाहिये।"

"मिस्टर चक, तुम बहुत सीधे आदमी प्रतीत होते हो। बताओ तो, इलाहाबाद के कमिश्नर को ही क्यों इतनी अधिक आवश्यकता अनुभव हुई है कि लाट साहब का स्मारक बनाया जाये? प्रान्त के दूसरे कमिश्नरों को भला यह बात क्यों नहीं सूझी? इसमें भी निजी स्वार्थ छिपा है। हमारे कमिश्नर महोदय बहुत जल्दी-जल्दी और कई लोगों के अधिकारों को पददलित करते हुए इस पदवी पर पहुँचे हैं और यह सब गवर्नर बहादुर की कृपा से। अब यह स्मारक बनवाकर अपना अहसान उतारना चाहते हैं। बताइये, सार्वजनिक बातों में निजी स्वार्थ को मैं लाया हूँ या ये लोग? अब हमारे कलक्टर साहब की बात लें। वह एक मामूली तहसीलदार से दो वर्ष में प्रान्त के एक प्रमुख नगर की सबसे बड़ी पदवी पर पहुँच गये हैं। केवल इस कारण कि वह मुसलमान हैं और हमारे गवर्नर बहादुर को मुसलमानों की हिमायत ज्यादा पसन्द है। जब वह पंजाब में गवर्नर थे तब वहाँ भी उन्होंने हिन्दुओं को कुचलकर मुसलमानों को ऊँची-ऊँची पदवियों पर पहुँचाया था। उसका कारण यह नहीं है कि मुसलमान हिन्दुओं से अधिक योग्य थे अथवा हैं। प्रयुक्त अयोग्य आदमियों को ऊँची पदवी देने से उन पर अहसान होता है और वे सरकार के भक्त बन जाते हैं। यही कारण है कि आपके साहब लाट साहब का स्मारक बनाने के लिए बेचैन हो रहे हैं। क्या यह निज के लाभ से प्रेरित होकर काम करना नहीं है?"

चक इन सब बातों को सत्य मानकर भी समझता था कि चन्दा देना ही चाहिए। वह कहने लगा, "चाहे कुछ हो। यह मानता हूँ कि अफसर लोग स्वार्थ से प्रेरित होकर सबकुछ कर रहे हैं, तो भी देखने की बात यह है कि इस बात से जन-साधारण को लाभ होगा या नहीं।"

"नहीं साहब, लाभ नहीं होगा। एक तो डॉक्टरी अस्पताल खोलने से लाखों रुपये वार्षिक की दवाइयाँ और सामान विदेश से आवेगा। दूसरा, बड़े डॉक्टर विलायत से आवेंगे और भारी वेतन लेंगे और सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमारी देशी चिकित्सा-वृद्धि को, जो भारतवासियों के लिए उपयोगी है, प्रोत्साहन नहीं मिलेगा।"

“तो क्या आपका अभिप्राय यह है कि बड़े-बड़े सिविल सर्जन और लाखों रुपये कमाने वाले डॉक्टर आपके रामप्रकाश वैद्य से कम योग्य हैं?”

“मिस्टर चक, यदि इसी प्रकार तुम वकालत करते हो तो तुम्हारे मुक्किलों के भगवान् ही रक्षक हैं। क्या यहाँ व्यक्तियों का मुकाबला हो रहा है? तुम्हारे सिविल सर्जन बड़े योग्य डॉक्टर हो सकते हैं और कई डॉक्टर लाखों पैदा कर सकते हैं, परन्तु इससे उनकी चिकित्सा पद्धति उत्तम तथा भारतवर्ष के लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं हो जाती। सट्टेवाज, जुआरी, चोर, दगाबाज क्या लाखों नहीं कमा लेते? तो क्या इससे उनका काम वांछनीय हो जाता है? देशी ढंग से चिकित्सा करने वालों में भी कम योग्य व्यक्ति नहीं हैं। केवल प्रोत्साहन की कमी है।”

“सेठजी, ऐसे चिकित्सक तो हमने कहीं नहीं देखे।”

“तुम कैसे देख सकते हो? तुम्हारी आँखों पर पाश्चात्य सभ्यता का चश्मा चढ़ा है। तुम्हें तो देशी पोशाक, देशी खाना, देशी रहन-सहन, देशी बोली, देशी कला, अभिप्राय यह है कि कोई भी देशी वस्तु पसन्द नहीं। भला बतलाओ तो यह नेकटाई क्यों पहनते हो?”

“मेरी बात छोड़िये। क्या पण्डितजी भी आपसे कम अनुभव रखते हैं?”

“भाई, पण्डितजी भी तो उसी मिट्टी के बने हुए हैं जिससे तुम बने हो। उनमें तुमसे एक अवगुण अधिक है। वह एक ओर तो लोगों के नेता हैं और दूसरी ओर बड़े-बड़े सरकारी अफसरों को दावतें बगैरह खिला-पिलाकर उनका भी मज्जा लेते रहते हैं।”

“यह तो केवल शिष्टाचार है।”

सेठ साहब ने घृणा का भाव दिखाते हुए कहा, “यदि अफसरों से मित्रता रखनी शिष्टाचार है तो जिस काम के लिए वे नियुक्त हैं उस काम में सहायता देना उनका कर्त्तव्य क्यों नहीं?”

“तो क्या वे अफसर अपने कर्त्तव्य की अवहेलना करते हैं?”

“इसमें सन्देह ही क्या है? प्रत्युत् यह कहना चाहिए कि ये विश्वासघातक भी हैं। ये लोग देश का धन हजम करने और देश के लूटने में सहायक होते हैं। ये अंग्रेजी साम्राज्य की नींव हैं जो इंग्लैंड के हित के लिए स्थापित है।”

“परन्तु ऐसा करने से ही तो सरकारी नौकर अपने काम को पूरा करते हैं। वे इसी काम के लिए नौकर रखे जाते हैं और यदि वे अपने अफसरों को प्रसन्न न करें तो फिर वे कृतघ्न न हो जायेंगे?”

“निःसन्देह हो जायेंगे, परन्तु ऐसे आदमी की नौकरी ही क्यों करनी? जो मेरे प्रियजनों और भाइयों को लूटने आया है उसकी नौकरी करनी कैसे उचित हो सकती है?”

“तो आप महात्मा गांधी के असहयोग को अच्छा समझते हैं? परन्तु अब तो महात्मा गांधी ने भी इसको बन्द कर दिया है।”

सेठ साहव हँस पड़े और बोले, “क्या अपने विरोधियों से असहयोग करने के लिए महात्मा गांधी की आज्ञा की जरूरत है? महात्मा गांधी का असहयोग केवल नीति थी। मेरे लिए अपने विरोधियों से असहयोग धर्म है, नीति नहीं है। नीति बदल सकती है, धर्म नहीं बदलता। यह असहयोग सहयोग में बदल सकता है यदि विरोधी का विरोध भी प्रेम में बदल जाये।”

चक ऐसी बातों को समझने में असमर्थ था। यथार्थ में उसने आज तक प्रत्येक मामले को अपनी स्वार्थ-पूर्ति के दृष्टिकोण से देखा था। देश, जाति अथवा धर्म के लाभ-हानि का दृष्टिकोण उसके कभी विचार में भी नहीं आता था। वह एक सफल वकील था और धन कमाना उसका ध्येय था। वह न तो कभी किसी सभा-सोसायटी में गया था, न किसी मन्दिर-मेले पर। हाँ, क्लब में वह अवश्य पहुँच जाता था और वह भी इस कारण कि वहाँ नगर के बड़े-बड़े लोगों से उसकी भेंट हो जाती थी। अफसरों की खुशामद इस कारण करता था कि उनसे उसे लाभ होता था। न तो वह सरकार का भक्त था, न विरोधी। यथार्थ में सरकार के विषय में उसने कभी सोचा ही नहीं था।

ऐसे व्यक्ति के लिए सेठ साहव के दिमाग में कुछ खराबी समझ लेना अचम्भे की बात नहीं थी। इस कारण वह सिर हिलाता हुआ चुपचाप वहाँ से चला गया।

: = :

जब सेठ साहव को यह अनुभव हुआ कि उनके पास लोग केवल चन्दा माँगने ही आते हैं तो उन्हें अपने-आप पर लज्जा आने लगी। कलक्टर एक लाख रुपया चन्दा माँगता था और साथ ही उन्हें मूर्ख भी समझता था। सेठ साहव के चन्दा न देने पर अब उन्हें महामूर्ख समझा जाने लगा था। यही अनुभव उनको सार्वजनिक संस्थाओं के विषय में भी हुआ था।

उक्त घटनाओं के कुछ ही दिन पश्चात् कांग्रेस के मुख्य कार्यकर्ता पं० पशुपतिनाथ, मौलाना करीमबख्श और अन्य छोटे-बड़े आदमी सेठ साहव के घर पधारे। इधर-उधर की बातों के पश्चात् पंडितजी कहने लगे, “सेठ साहव, महात्माजी का सन्देश आया है कि कांग्रेस के खद्दर के काम को पृथक् कर दिया जाय और इस कारण एक भारी रकम, सारे भारतवर्ष में खद्दर को व्यापारिक रूप से चलाने के लिए, आवश्यक है। महात्माजी का विचार है कि कम-से-कम पचास लाख रुपया इस काम के लिए एकत्रित कर लेना चाहिए। पश्चात् खद्दर की संस्था को ‘रजिस्टर्ड’ करा दिया जायेगा। इसका सब मुनाफा इस विभाग के कार्यकर्ताओं को मिलेगा। प्रत्येक प्रांत में इस काम के लिए चन्दा एकत्रित किया

जा रहा है। प्रांत में आप जैसा दानी दूसरा कोई नहीं है। इस कारण हम आपको इस शुभ कार्य में सर्वोपरि रखना चाहते हैं।”

सेठ साहब मुन चुके थे कि यही पंडितजी गवर्नर बहादुर के स्मारक के लिए एक भारी रकम देने का वचन दे चुके हैं। इस कारण उन्होंने पूछा, “पंडितजी, आप इसमें क्या दे रहे हैं?”

“मेरी बात छोड़िये। मुझे तो ‘प्रेक्टिस’ छोड़े दस वर्ष हो चुके हैं। दिन-रात तो कांग्रेस के काम में संलग्न रहता हूँ। आजकल हाथ तंग है। फिर भी कुछ-न-कुछ संकेत-मात्र दूंगा। आप जैसे श्रीमान् से मेरा मुकाबला कुछ भी नहीं। आपसे तो हम बहुत भारी आशा बाँधकर आये हैं।”

“सो तो ठीक है। मैं आपसे मुकाबला करने के लिए नहीं पूछ रहा। न तो मैं आपका मुकाबला कर सकता हूँ और न करने की इच्छा है। मैंने तो आपमें ही जो दो प्रकार के व्यक्तित्व हैं उनसे मुकाबला करना चाहा था।”

उपस्थित लोगों में से कोई भी सेठ साहब के कथन का आशय नहीं समझ सका। पंडितजी ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा, “मैं आपके कहने का अर्थ नहीं समझ सका।”

“मैंने कोई पेचीदा बात तो नहीं कही। आपमें ही दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं। आपने गवर्नर के स्मारक के लिए क्या चन्दा लिखाया है?”

अब पण्डितजी मुस्कराकर बोले, “ओह! आप इस बात का उल्लेख कर रहे हैं। बात यूँ हुई कि राजा साहब.....से मैंने पचास हजार रुपया लेना है। पिछले वर्ष उनकी ‘इलेक्शन पिटीशन’ लड़ी थी न। उस समय का रुपया उनकी तरफ था। अब राजा साहब इस स्मारक-समितिके प्रधान हैं। उन्होंने उस पचास हजार में से तीस हजार उस काम के लिए लिखा लिया है।”

“अच्छी बात, और अब इस काम के लिए आपने क्या देने का निश्चय किया है?”

अब तो पण्डितजी के साथी उनकी कठिनाई देख घबराने लगे। मौलाना साहब ने कुछ दिल कड़ा कर कहा, “सेठजी, इस काम में भी पण्डितजी दे रहे हैं। यदि राजा साहब बकाया रुपया इनको दे दें तो शायद आप वह सब रुपया इस काम के लिए दे देंगे।”

“राजा साहब तो दे देंगे। यह काम आप मुझ पर छोड़िये। मैं आपको वसूल करा दूंगा। परन्तु मेरी समझ में यह बात नहीं आ रही कि गवर्नर के स्मारक के लिए तीस हजार और खद्दर के कार्य के लिए बीस हजार।”

पण्डितजी इस विषय पर बात होने की आशा नहीं करते थे। वह बोले, “यथार्थ में गवर्नर का स्मारक हमारे नगर की भलाई के लिए होगा। उसमें तो हमारे नगर के लोगों को ही दस लाख रुपया एकत्रित करना है। यहाँ पाँच लाख

सब प्रान्त-भर में से एकत्रित करना है।”

“आपका फरमान सर्वथा सत्य है। परन्तु मैं तो दोनों कामों की महत्ता का मुकाबला कर रहा था। एक ओर गवर्नर साहब की यादगार और विदेशी चिकित्सा-प्रणाली का प्रचार और दूसरी ओर महात्माजी का जीवन-कार्य है।”

यह सुन पण्डितजी कुछ खीझ गये और बोले, “इस विषय पर मैं आपसे फिर किसी समय बातचीत करूँगा। अब तो केवल खद्दर की बात है।”

सेठ साहब ने तनिक सचेत होकर कहा, “हाँ, आप सत्य कहते हैं। फिर भी क्या आप यह नहीं बतायेंगे कि आपने इसमें क्या लिखा है?”

पण्डितजी ने इस पर कुछ व्यंग्य का भाव बनाकर कहा, “मेरे चन्दे से आपको अपने चन्दे का अनुमान लगाना उचित नहीं। मेरी परिस्थिति आप समझ नहीं सकते।”

“हाँ, हाँ साहब, मैं आपसे यह प्रश्न इस कारण नहीं कर रहा हूँ कि आपके वरावर मैं दूँगा। मैं तो अपने विचार और शक्ति के अनुकूल देना पसन्द करूँगा। आप नहीं बताते तो आपकी इच्छा। परन्तु मौलाना साहब को तो यह बताने में कुछ संकोच नहीं हो सकता।”

मौलाना साहब ने कहा, “मेरी क्या पूछते हैं, साहब। मैंने तो पाँच रुपये देने को कहा है।”

सेठ साहब ने कुछ अचम्भा प्रकट करते हुए कहा, “पाँच! यूँ तो आपकी भारी उदारता है, परन्तु यदि आपने खद्दर-भण्डार से जितने का खद्दर उधार ले रक्खा है, वह भी दे दिया होता तो कुछ बात थी। क्या यह अफवाह ठीक नहीं कि आपके नाम कई हजार की रकम कई साल से खद्दर-भण्डार के रजिस्ट्रों में चली आती है?”

“यह गलत है।”

“यह गलत नहीं है। कहिये तो अभी टेलीफोन पर बात करके इसके सत्या-सत्य का निर्णय कर लिया जाये।”

“हाँ-हाँ, यह बात गलत है।”

“अच्छी बात।” इतना कहकर सेठ साहब ने टेलीफोन उठाकर इलाहाबाद खद्दर-भण्डार में मिला लिया। मौलाना साहब के मुख का रंग पीला पड़ गया। उन्हें अभी भी विश्वास था कि खद्दर-भण्डार वाले इतने मूर्ख नहीं होंगे कि इस प्रकार के व्यक्तिगत मामले को टेलीफोन पर बताने लगेंगे। परन्तु सेठ साहब पक्के व्यापारी और चंठ ठेकेदार रह चुके थे। वह बड़े-बड़े सरकारी अफसरों और न जाने कितने औरों को चकमा दे चुके थे। खद्दर-भण्डार वाले तो उनके सम्मुख बच्चे थे। उन्होंने टेलीफोन में पूछा, “कहाँ से बोलते हैं? खद्दर-भण्डार से?”

कुछ उत्तर आया। सब व्यक्ति समझ रहे थे कि उत्तर ‘हाँ’ था।

सेठ साहब ने कहा, “यहाँ बेगम साहिबा करीमवखश बैठी हैं। वह चाहती है कि आप मेहरबानी कर उनकी तरफ पिछला बकाया बता दें।”

सब लोग बेगम का नाम सुन हँस पड़े। सेठ साहब ने फिर कहा, “हाँ! हाँ! साहब, वह बैठी हैं और चाहती हैं कि पूरा-पूरा हिसाब बता दें।” सेठ साहब फिर बोले, “मैं मौलाना साहब का मुंशी हूँ। रुपया लेने बैक जा रहा हूँ। बेगम साहिबा चाहती हैं कि आप भी अपना हिसाब बता दें……हाँ……हाँ……आप हिसाब देखकर बतायें। ज़रा जल्दी करें।”

अब तो मौलाना साहब क्रोध से लाल-पीले हो गये और बोले, “मगर वह तो, साहब, सरासर धोखा है।”

सेठ साहब ने टेलीफोन के मुख पर हाथ रखकर कहा, “हाँ, है तो धोखा, परन्तु मेरी तरफ से। खदर-भण्डार वालों की तरफ से नहीं। वे बेचारे तो सच ही बता रहे हैं।”

इतने में टेलीफोन में आवाज़ आई। सेठ साहब ने कान से लगाने वाला भाग पण्डितजी के कान में लगा दिया और बोलने वाले से बोले, “हाँ, बताइये।”

पण्डितजी सुनकर चकित हो गये। उन्होंने कान वाला भाग ‘ट्रैगर’ से लटकाते हुए कहा, “सात हजार आठ सौ नब्बे रुपया दस आने छः पाई।”

मौलाना साहब ने अब भी क्रोध में कहा, “यह गलत है। यह कुछ जालसाजी है।”

सेठ साहब ने अब अकड़कर कहा, “हाँ साहब, मेरे पाम आप लोगों के खदर जैसी कीमती पोशाक पहनने के लिए रुपया नहीं।”

अब पण्डितजी ने ज़रा डाँटकर कहा, “माना मौलाना साहब ने खदर-भण्डार का बहुत-सा रुपया देना है, परन्तु यह आपने कैसे समझ लिया कि वह यह रुपया अदा नहीं करेंगे?”

“पण्डितजी, मैं आपका बहुत मान करता हूँ। आपकी कुर्बानियों और देश-सेवाओं की भी बहुत प्रशंसा करता हूँ, परन्तु मैं आपसे सब बातों में सहमत नहीं हो सकता। आप ही बतायें कि आपके पास क्या गारण्टी है कि ये वह रुपया दे ही देंगे। परन्तु यह तो बात का एक अंग ही है। इस विषय का एक और अंग भी है। देशोन्नति में खदर का कोई स्थान नहीं। जब तक कांग्रेस जनता के भावों को उभार-उभारकर लोगों को खदर पहनाती रहेगी तब तक कुछ जुलाहों को दो आना रोज़ की मजदूरी मिलती रहेगी। परन्तु ज्योंही भावुकता की सहायता से खदर वंचित हुआ उसे कोई नहीं पूछेगा और ये जुलाहे, जिनको आप लोग उन्नत होने से रोक रहे हैं, भूखे मर जायेंगे।”

उपस्थित जनों में से एक साहब बोले, “परन्तु खदर चल नहीं सकेगा, यह मैं मानने के लिए तैयार नहीं। यह सब कपड़ों से सस्ता है और शीघ्र ही साफ हो

जाता है।”

“क्या बच्चों की-सी बातें करते हो। जब मौलाना साहब खदर नहीं पहनते थे तब तो वह कपड़े की दुकान वालों के सात हजार के देनदार नहीं थे। अब जब से खदर पहनने लगे हैं, इनके कपड़े का खर्चा इतना बढ़ गया है कि चार-पाँच साल में इन पर सात हजार कर्जा चढ़ गया है। यदि खदर सस्ता होता, तो होना यह चाहिए था कि वह अपने कपड़े के खर्च में से बहुत कुछ बचा लेते। जो वस्तु महँगी है, वह बाज़ार में नहीं चल सकती। आपको यह काम छोड़कर किसानों के लाभ का कोई और काम करना चाहिए। अपनी शक्ति और लोगों के रुपये का अव्यय ठीक नहीं।”

अब पण्डितजी ने दूसरा मार्ग पकड़ा। वह कहने लगे, “मेठ साहब, महात्मा जी हमारे नेता हैं। उनकी इज्जत के लिए ही कुछ कर दो। यह समय और यह विषय वादविवाद करने का नहीं।”

मेठ साहब ने कुछ उद्धिग्न होकर कहा, “महात्मा गांधी कहाँ के व्यापारी आदमी हैं। उन्होंने देश की आर्थिक दशा की वास्तविकता कहाँ और क्या अध्ययन किया है? यह कैसे मान लें कि उनकी सम्मति कि खदर से लोगों की और देश की उन्नति होगी, सत्य है? वह तो बिना डॉक्टरी पढ़े डॉक्टर, बिना अर्थशास्त्र पढ़े देश की आर्थिक व्यवस्था देने वाले, बिना इतिहास पढ़े इतिहास लिखने वाले और बिना संस्कृत पढ़े गीता का अनुवाद करते हैं। वह महात्मा अवश्य हैं, परन्तु ऐसे मनुष्य की सम्मति कहाँ तक माननीय हो सकती है, यह एक विचार करने का विषय है। एक अर्थशास्त्री अपना सारा जीवन देश की आर्थिक उन्नति के उपायों को समझने में व्यय कर देता है। इस पर भी वह इस विषय पर इतने दावे से बात नहीं करता, जितना कि महात्माजी बिना उस विषय को पढ़े और अनेक अन्य कामों में व्यस्त रहते हुए करते हैं।”

चन्दा माँगने वालों में से एक साहब बोले, “माना महात्माजी व्यापार की बातों को नहीं समझते हैं। आप तो समझते हैं। क्या आप इतना भी नहीं समझ सकते कि मिलों से तो कारखाने के मालिकों को आमदनी होती है? मजदूर तो बेचारे भूखों मरते हैं।”

“और खदर बनाने से उनकी भूख मिट जाती है? एक जुलाहे का तमाम परिवार यदि दिन-भर काम करे तो पाँच-छः गज कपड़े से अधिक दिन की औसत नहीं पड़ती। और इतने कपड़े बुनने की मजदूरी तीन-चार आने से अधिक नहीं होती। वही जुलाहा यदि किसी मिल में काम करे तो अकेला, बिना अपने परिवार के दूसरे लोगों की सहायता के, पच्चीस से पचास रुपये मासिक तक वेतन पा सकता है।”

“परन्तु कितने लोग हैं जो ऐसा काम पा सकते हैं? मिल में काम करने से

एक आदमी डेढ़ सौ से दो सौ गज तक कपड़ा नित्य बुन सकता है। क्या इसका अर्थ यह नहीं कि एक आदमी तीस-चालीस आदमियों का काम कर उनको भूखा मार रहा है ?”

“तब तो समस्या यह है कि जो आदमी मिलों के बनने से खाली हो गये हैं, उनको काम कैसे दिया जाये ? क्या उनके काम देने का यह तरीका है कि देश के माल का अपव्यय करके दो पैसे रोज़ की कमाई उनके लिए पैदा की जाये और वह भी इतने प्रचार और वाद-विवाद के साथ ?”

“देश के माल का अपव्यय कैसे हुआ ?

“यह भी क्या बताने की बात है ? यदि एक सेर रुई में चालीस गज बढ़िया मारकीन बन सकती है तो उसी एक सेर रुई से पाँच गज की एक धोती तैयार करना माल का अपव्यय नहीं तो क्या है ?”

“मगर रुई तो हमारे यहाँ बहुत मात्रा में पैदा होती है और उसकी पैदावार को बढ़ाया जा सकता है।”

“आखिर अपव्यय तो है ही। जो रुई देश में बच रहेगी उसको विदेश में बेचा जा सकता है अथवा दूसरे कामों के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।”

इस पर एक दूसरे साहब बोल उठे, “परन्तु मिलों में एक भारी दोष तो यह है कि मिलों के मालिक अनायास ही भारी रकमें हज़म कर जाते हैं। वे मज़दूरों की कमाई का भाग स्वयं अपने भोग-विलास में व्यय करते हैं।”

“तो, भाई, इसका इलाज तो यह है कि ऐसी मिलें खोली जायें जिनमें मज़दूर ही मालिक हों।”

“परन्तु बेकारी की समस्या तो और भी बढ़ जाएगी।”

“बेकारी को दूर करने का उपाय यह नहीं कि वह आदमी, जो एक रुपया दिन में पैदा कर सकता है, उसको कहा जाये कि तुम दो पैसे रोज़ पैदा करो।”

“परन्तु यदि दो पैसे नित्य का भी काम उसे मिलता हो तो उसे दो पैसे देना पाप है क्या ?”

“पाप तो नहीं, परन्तु इतना देने के लिए भी तो बहुत कहने, सुनने और लोगों को एक आने की वस्तु को चार आने में खरीदने के लिए तैयार करने की आवश्यकता है। खरीदने वाले को तो एक धोती पर, जो एक रुपये में मिल सकती है, तीन रुपये व्यय करने को कहा जाता है, और बुनने वाले को तो फिर भी पेट भर नहीं मिलता। इस बेकारी का इलाज यह नहीं है। इसके लिए दूसरे उपाय करने चाहिए। ऐसे नये-नये काम, जिनके लिए हम विदेशियों के आश्रित हैं, यहाँ खोलने चाहिए।”

“शायद आप यह नहीं जानते कि यदि मशीनों से सब काम किए जावें तो दुनिया में चन्द ही लोग संसार के सब लोगों की आवश्यकताओं को पूरा कर देंगे

और शेष लोग बेकार और निर्धन रहेंगे।”

“यह बात आपने फिर बच्चों की-सी की है। काम और दाम का बंटवारा सबमें समान होना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि प्रत्येक को अवकाश भी भरसक मिलेगा और उसमें वह आत्मोन्नति भी कर सकेगा।”

पण्डितजी ने अब फिर वार्तालाप में भाग लेते हुए कहा, “परन्तु यह करेगा कौन ? ये बातें तो तब हो सकती हैं जब स्वराज्य हो जायगा।”

“वैसे तो सब-के-सब जातीय निर्माण के काम ठीक तौर पर स्वराज्य के पश्चात् ही हो सकते हैं, फिर भी जो कुछ आप खट्टर के सम्बन्ध में इस समय कर सकते हैं उतना, प्रत्युत् उससे अधिक, आप देश की दस्तकारी को उन्नत कर उसे साम्यवादी तरीके पर लाने में भी कर सकते हैं। मैं तो समझता हूँ कि यह देश की शक्ति का, देश के धन का और देश के माल का अपव्यय हो रहा है और मैं इसमें हाथ नहीं बंटाना चाहता।”

जब तक मेठ माहव सरकारी और सार्वजनिक संस्थाओं में चन्दा देते रहे, उनकी उदारता, दयालुता और योग्यता की नगर-भर में धूम रही। परन्तु जब उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि वह कहीं ऐसे स्थान पर दान नहीं देंगे जिनके साथ उनका मतभेद होगा तब से वह कंजूस, बकवासी, निकम्मे और मूर्ख समझे जाने लगे। उनके इस मानसिक परिवर्तन में सरकार की कठोर नीति और मधु-मूदन से बातचीत तथा उसके प्रति वर्तमान व्यवहार कारण थे। नैतिक दृष्टि से व्यवहार सर्वथा सत्य था, परन्तु व्यावहारिक रूप में लोग उनको अब चली हुई गोली समझते थे। धीरे-धीरे लोगों ने उनको जलसों, पाटियों और सभाओं में भी बुलाना बन्द कर दिया।

सेठ साहब इस बात की कुछ भी परवाह नहीं करते थे। उनका कोई लड़का-वाला नहीं था जिसको वह किसी काम में, नौकरी में अथवा समाज में, उन्नत अवस्था तक पहुँचाना चाहते हों। उनके पास इतना धन था कि अपने जीवन-भर के निर्वाह की उन्हें कभी चिन्ता ही नहीं हुई। उनका परिवार भी छोटा-सा था। आप स्वयं थे, उनकी पत्नी थी और एक विधवा बहन। दोनों स्त्रियों के लिये उन्होंने पृथक्-पृथक् प्रबन्ध कर रखा था। अतएव अब उन्हें और धन पैदा करने की लालसा नहीं थी।

जब उन्होंने अपने-आपको इतना तिरस्कृत होते देखा तो उन्होंने नगर छोड़ने का विचार कर लिया। उनका विचार कलकत्ते जाने का ही हुआ।

∴ ६ ∴

पूर्णमा का फिल्म कम्पनी में काम चल रहा था। प्रायः रात को स्टूडियो में काम करना होता था और दिन को आराम। ‘आउटडोर शूटिंग’ कभी-कभी होती थी। इससे अपनी परिस्थिति पर विचार करने का उसे बहुत अवसर

मिलता था। अब उसके लिए विचार का विषय गांधीवाद था। नरोत्तम से बहुत कम भेंट होती थी। कारण यह था कि नरोत्तम प्रायः कलकत्ते से बाहर रहता था। बीमा कम्पनी में उसका काम इसी ढंग का था।

एक दिन पूर्णिमा 'आउटडोर शूटिंग' से लौटकर चाय पी रही थी कि नरोत्तम के साथ सेठ साहब पहुँच गये। पूर्णिमा को उन्हें देख अत्यन्त प्रसन्नता हुई और तुरन्त माँ से और चाय बनाने के लिए कह उनके स्वागत में लग गई। नरोत्तम ने इस आकस्मिक मिलाप का कारण बताते हुए कहा, "जब मैं पटना में गाड़ी पर सवार होने लगा तो एक बर्थ पर सेठ साहब को लेटा देख बहुत हैरान हुआ। आप मुझे नहीं पहचानते थे, परन्तु मैं आपको कई बार देख चुका था। मैं उस समय तो चुप रहा, परन्तु कलकत्ते पहुँचने पर मैंने सेठ साहब के स्टेशन से निकलने के पहले ही उनके लिए गाड़ी का प्रबन्ध कर दिया और कुलियों से असबाब उसमें रखवाना आरम्भ कर दिया। यह देख आप घबराये हुए आकर बोले, 'जनाब, यह मेरा असबाब है।' "

"मैंने उत्तर दिया, 'हाँ, मैं जानता हूँ।' "

"परन्तु इसे कहाँ लिए जा रहे हैं?"

"जहाँ आपको जाना है।"

"आपको क्या मालूम है कि मुझे कहाँ जाना है?"

"मालूम क्यों नहीं? आप नं० ४३, चित्तरंजन स्क्वेअर जा रहे हैं।"

नरोत्तम ने हँसते हुए बताया, "घर का पता सुन आप बहुत अचम्भ में मेरा मुख देखने लगे। फिर अकस्मात् आपको मेरे मुख पर कुछ तुम्हारे मुख के लक्षण दिखाई दिये और ये भी हँस पड़े और बोले, 'तुम जायद नगेनम हो। परन्तु तुमने गाड़ी में क्यों नहीं बताया?' "

"मैंने गाड़ी में बैठते हुए कहा, 'बताया तो अब भी नहीं। अब आप पहचान जावें तो मेरा क्या दोष?' "

इस प्रकार नरोत्तम का सेठ साहब से परिचय का वृत्तान्त सुन पूर्णिमा और सेठ साहब खूब हँसने लगे।

इस समय सेठ साहब ने अपनी कथा बताई। कहने लगे, "मेरा चित्त इलाहाबाद से उचाट हो गया है और मैंने वह नगर छोड़ देने का पक्का विचार कर लिया है। कलकत्ते में 'शेयर्ज' का काम करने के विचार से आया हूँ। जब मकान का प्रबन्ध कर लूँगा तो घर के लोगों को भी यहाँ ले आऊँगा। हाँ, इधर आने से पूर्व मैं झाँसी गया था और मधुसूदन से मिलकर आ रहा हूँ। उसका स्वास्थ्य पहले से बहुत अच्छा है। यथार्थ में इलाहाबाद में इंस्पेक्टर ज्योतिप्रसाद ने उसे बहुत कष्ट दिया था। एक बार तो उसे इतना कष्ट दिया गया कि उसके जीवन की आशा छूट गई थी। यह सब इस कारण किया गया था कि वह यह बता दे

कि वह किन लोगों से मिलने बनारस गया था। उसके यह न बताने के कारण ही उसे बन्दी बनाया गया है। उसने बताया कि इंस्पेक्टर ज्योतिप्रसाद वहाँ भी उसके पास गया था और आप लोगों का नाम-धाम पूछता था, परन्तु उसने कुछ नहीं बताया। वह आप सबको अपनी नमस्ते कहता था।”

यह वृत्तान्त सुन पूर्णिमा के नेत्र अश्रुओं से भर आये। यह देख सेठ साहब ने कहा, “यदि मधुसूदन का अनुमान ठीक है कि उसे केवल खोज-भाल करने के लिए रोका हुआ है तो आशा है कि जब सरकार जान जायेगी कि इन तिलों में तेल नहीं तो वह उसे छोड़ देगी और इसमें देरी नहीं लगेगी।”

परन्तु पूर्णिमा की ब्रिटिश सरकार के विषय में सम्मति इससे भिन्न थी। उसे कहीं से यदि आशा की एक झलक प्रतीत होती थी तो वह थी महात्मा गांधी का आन्दोलन। अपने काम में व्यस्त होने के कारण वह महात्मा गांधी के आन्दोलन और उसकी सफलता की आशा पर विचार नहीं कर सकी थी। तो भी महात्माजी की ख्याति और उनके आन्दोलन की व्यापकता उसके मन में आशा का अंकुर जमाये हुए थी। वह समझती थी कि सरकार साइमन कमीशन की सिफारिशों के अनुकूल प्रान्तीय स्वराज्य दे देगी। और तब कांग्रेस बहुत संख्या में प्रान्तीय सरकारें बनायेगी और अधिक नहीं तो बिना मुकदमे के बन्दी बनाये गये लोग तो छोड़ दिये जायेंगे।

इसी आशा पर वह अपना मन काम में लगा सकी थी। अब उसका फिल्म कम्पनी में काम समाप्त होने को आ रहा था और उसे अधिकाधिक अवकाश मिलता जाता था। इसके साथ-ही-साथ वह महात्मा गांधी के आन्दोलन को अधिक ध्यान से देखने लगी थी। उसने सेठ साहब से अपने विचार प्रकट किये और उन्हें अपने मन में छिपी आशा का आभास भी कराया। सेठ साहब के मन में भी यह बात समा गई। पूर्णिमा ने कहा, “मैं सोचती हूँ कि हमें कांग्रेस को मजबूत करने के लिए अपना पूरा जोर लगा देना चाहिये। यही एक संस्था है जिसके शक्तिशाली होने से उनके छूटने की आशा हो सकती है। यदि शक्ति नरम दल वालों के हाथ आई या दूसरे सरकार-भक्तों के हाथ में आई तो उनसे वन्दियों को छुड़ाने की आशा बबूल से आम की आशा के समान है। कांग्रेस ही एक ऐसी संस्था है जो इन लोगों से सहानुभूति रखती है और इनके बन्दी बनाये जाने को अन्याय समझती है।”

सेठ साहब ने कहा, “परन्तु महात्माजी का जाति-निर्माण का काम, विशेष रूप से खदर का काम, इतना बेहूदा है कि उसमें सहयोग देने को जी नहीं चाहता।”

“आपका कहना ठीक हो सकता है, फिर भी आप यह समझ लें कि सार्व-जनिक आन्दोलन में कुछ व्यर्थ की बातें भी करनी पड़ती हैं। उदाहरण के रूप

में जब फौज लड़ाई पर जाती है तो साथ बाजा बजाना सिवाय जोश दिलाने के और कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता। यह कहा जा सकता है कि जितने सिपाही बाजा बजाते हैं, उनको बाजे के स्थान पर बन्दूकों दे दी जायें तो फौज की शक्ति क्या बढ़ नहीं जायेगी ? इसी प्रकार कुछ काम लोगों में उत्साह बढ़ाने के लिए और उनके निश्चयों को दृढ़ करने के लिए होते हैं। मैं तो खदर को केवल इसी रूप में समझती हूँ। यह तो केवल इस बात का चिह्न है कि स्वराज्य-प्राप्ति पर किसानों और मजदूरों को शक्ति मिलेगी।”

सेठ साहब को यह युक्ति कुछ अधिक जैची नहीं, परन्तु यह बात उनके मन में लग गई कि कांग्रेस को शक्तिशाली करने से ही मधुसूदन के छूटने की आशा हो सकती है।

सेठ साहब ने कहा, “ठीक है। अब मुझे मार्ग दिखाई देता है। परन्तु कभी-कभी संशय होता है कि ये लोग इतने आदर्शवादी हैं कि समय आने पर रुठ ही न बैठें और मूर्ख तथा स्वार्थी लोग चौधरी बन जायें।”

“पहले वह समय तो आने दें कि जब यथार्थ शक्ति का कुछ अंश-मात्र ही लोगों के अधीन हो जाये। उस समय उसे स्वीकार करने अथवा न करने पर सोचा जायेगा।”

“समय तो है। साइमन कमीशन की रिपोर्ट निकल चुकी है, परन्तु महात्माजी ने उसे अस्वीकार कर दिया है।”

“यह अस्वीकार के योग्य तो है ही।”

“क्या इसमें पहले से लोगों को अधिक अधिकार नहीं मिल रहे ?”

“हाँ, कुछ तो हैं। परन्तु बहुत कम हैं।”

“जो कुछ भी हैं, उन्हें स्वीकार कर फिर अधिक के लिए झगड़े करने को कौन मना करता है ?”

“आखिर देश के बड़े नेता भी तो इस विषय पर सोच रहे हैं। हमें उन पर विश्वास करना चाहिये।”

सेठ साहब एक दिन तो वहाँ पर ही रहे। दूसरे दिन उन्होंने कलकत्ते में एक बड़ी-सी कोठी किराये पर ले ली और वहाँ जाकर रहने लगे। अब उन्होंने स्त्रियों को भी वहीं पर बुला लिया था। इस प्रकार उन्होंने इलाहाबाद से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया।

: १० :

दूसरी जनवरी को प्रातःकाल ही भारतवर्ष-भर में धूम मच गई। जहाँ-जहाँ दैनिक पत्र पहुँचते थे, लोग उनको पढ़ते और विस्मय में चर्चा करते थे। प्रत्येक के मुख पर ये शब्द थे, ‘ग़जब हो गया !’ कलकत्ता, पटना, इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर, मेरठ, दिल्ली, अमृतसर, लाहौर, पेशावर, बम्बई, पुना, मद्रास,

नागपुर और ढाका से समाचार आ चुके थे कि इन स्थानों में बड़े-बड़े सरकारी अफसरों को वर्ष के नये दिन अर्थात् पहली जनवरी को एक ही प्रकार के पार्सल मिले थे। पार्सलों में टाइप किये हुए पत्र थे। उन पत्रों में नये साल की भेंट और ऐसी ही बातें लिखी थीं। परन्तु पत्रों के नीचे घास में दबा हुआ एक-एक वम था। ये वम स्वयमेव बिना ठोकर खाये दिन के बारह बजे फट गये। ये सब वम डाक द्वारा भेजे गये थे। कई स्थानों पर तो ये एक दिन पूर्व ही पहुँच गये। प्रायः लोगों ने लंच से पूर्व ही इन पार्सलों को खोला था। कई स्थानों पर तो ये खोलते-खोलते फट गये। कई अन्य स्थानों पर लोग खोलकर इन्हें देख रहे थे कि ये फटे। इन वमों का बाहर का खोल एक सुन्दर पीतल के बन्दर की आकृति का था। इन्हें पाने वाले समझते थे कि किसी ने उनके बच्चों को खिलौने भेजे हैं। कई स्थानों पर तो इनसे बच्चे खेल रहे थे, जब ये फटे। कलकत्ते में एक जगह तो यह डाकिये के थैले में ही फट गया। बेचारा बुरी तरह घायल हुआ था। इन वमों के फटने से बहुत जानों की हानि हुई।

अंग्रेज अफसर इस हत्याकांड का वृत्तान्त पढ़ सहम गये थे। प्रायः सब-के-सब पार्सल अंग्रेज अफसरों को भेजे गये थे। इस पर भी कई हिन्दुस्तानियों की जानों की भी हानि हुई। कई स्थानों पर तो सारा परिवार पार्सल खुलते समय उपस्थित था और वम फटने से मृत्यु के घाट उतर गया। कई चपरासी और बैरा लोग भी मारे गये थे।

ये सब समाचार घबराहट और हलचल मचाने के लिए बहुत काफी थे। नरोत्तम उस दिन चाय पीने के समय पत्र पढ़ते-पढ़ते फड़ककर खड़ा हो गया। अकस्मात् उसके मुख से निकल गया, “वैल डन, दादा ! वैल डन।” वह अपने जोश को काबू में न रखकर पूणिमा को यह समाचार सुनाने उसके कमरे में चला गया।

पूणिमा रात देर तक जागते रहने के कारण अभी तक सो रही थीं। नरोत्तम के बार-बार पुकारने पर उठी और आँखें मलते हुए पूछने लगी, “भैया, क्या है ?”

नरोत्तम ने समाचार-पत्र सम्मुख रखकर कहा, “इसे पढ़ो। ‘श्री चीयर्स फॉर दादा’ !”

पूणिमा पढ़ने लगी। पढ़ते-पढ़ते उसका मुख पीला पड़ गया। कुछ और पढ़ने पर उसके नयन भीग गये। पूर्ण समाचार नहीं पढ़ सकी। समाचार-पत्र उसने नरोत्तम के हाथ में वापस देकर कहा, “यह आपने कैसे जाना कि यह दादा का काम है ? क्या दादा इतने निर्दयी हैं ?”

“इतना सर्वव्यापक ‘एक्शन’ इतना सफलता से करने के लिए दादा की-सी प्रतिभा और दूरदर्शिता वाला आदमी चाहिये। और निर्दयता का तो इसमें

प्रश्न ही नहीं उठता।”

“निर्दयता क्यों नहीं? मरने-मारने का प्रश्न नहीं, यहाँ तो न्याय और अन्याय का प्रश्न है। दोषियों के साथ कई निर्दोष भी मर गये हैं। मैं समझती हूँ कि शायद दोषियों से अधिक निर्दोष मरे हैं।”

“यह तो सब समय और सब स्थान पर होता है। न्याय का चक्र इस छोटे से भेदभाव के लिए रुक नहीं सकता और फिर दोषी और निर्दोष में भेद करना अत्यन्त कठिन है।”

इस समय पूर्णिमा खाट से उठ खड़ी हुई थी। वह नरोत्तम के सम्मुख खड़ी होकर कहने लगी, “न, भैया, मेरा मन कहता है कि यह उपाय मिथ्या है। आतंक उत्पन्न करने से हम अपने ध्येय को प्राप्त नहीं कर सकते। देखो, यह मिस्टर हिंवैट (समाचार-पत्र की ओर संकेत कर बोली) और उनकी धर्मपत्नी एक दिन हमारे स्टूडियो में आये थे। इनके तीन बच्चे भी साथ थे। कितने सुन्दर प्रतीत होते थे। वे बच्चे और उनकी माँ पार्सल खोलते हुए मर गये। भला उनका क्या दोष था?”

नरोत्तम ने मुस्कराते हुए कहा, “तो इसमें क्या? जब युद्ध होता है तो दोषी और निर्दोष में भेदभाव करना कठिन हो जाता है। यदि वह भली स्त्री थी तो उसका एक ऐसे पुरुष से विवाह करना, जो सात हजार मील से चलकर अन्याय का राज्य करने आया है, कैसे उचित हो सकता है? अन्यायी के साथी, मित्र, सहायक कैसे निर्दोष हो सकते हैं?”

पूर्णिमा ने सिर हिलते हुए कहा, “नहीं, यह ठीक नहीं। जब आतंकवादी दोषी और निर्दोष में भेदभाव रखना नहीं चाहते तो दमनकारी को हम कैसे दोष दे सकते हैं? और तो जो हुआ सो हुआ, यह मिस्टर फ्रेजर के तीन बच्चे पार्सल खोलते हुए जो मारे गये हैं, इन बेचारों का क्या दोष था? इनकी हत्या को तुम कैसे उचित सिद्ध कर सकते हो? मिसेज हिंवैट ने तो अपनी इच्छा से एक सिविलियन से विवाह किया था, परन्तु ये बच्चे तो अपनी इच्छा से फ्रेजर के घर उत्पन्न नहीं हुए!”

नरोत्तम ने वैसे ही भाव में कहा, “मैं इस हत्या को ऐसे ही उचित समझता हूँ जैसे कुछ राजाओं के अपराध से आज हम तैंतीस करोड़ दण्ड भोग रहे हैं। भारत की स्वतन्त्रता को बेचने वाले मुट्ठी-भर राजपूत, मरहठे और सिख थे। उन्होंने अपने निजी स्वार्थ के लिए अंग्रेजों की जीत करवा दी। परिणाम में मैं, तुम और भारत के सब नर-नारी, जो उनके देशद्रोह से दो सौ वर्ष पीछे उत्पन्न हुए हैं, दुःख, क्लेश और दासता भोग रहे हैं। बताओ तो, भारत को दासता में डालने में हमारा क्या दोष है? यदि नहीं है तो फिर हम क्यों दास बने हैं?”

इन युक्तियों से पूर्णिमा को सांत्वना नहीं हुई। उसने कहा, “कुछ भी हो,

यह अन्याय है। जो स्वयं अन्याय में पीड़ित हो, उसे तो दूसरों पर अन्याय नहीं करना चाहिये।”

“दीदी, तुम स्त्री हो। तुम्हारा हृदय कोमल है। तुमने अभी संसार की कठोरता का अनुभव नहीं किया। यह संसार कितना अन्यायपूर्ण है, यह तुम घर की चहाग्दीवारी के भीतर रहकर नहीं समझ सकती।”

इस पर पूर्णिमा हँस पड़ी, “भैया, तुम भी विचित्र बात करते हो। मैं किसी पुरुष में किस प्रकार कम हूँ। तुम पुरुषों को यही मानते हैं कि तुम कमाकर लाते हो। यदि धन कमाना ही संसार के अनुभव को प्राप्त करने का चिह्न है तो मुझे तुमसे अधिक अनुभव होना चाहिये।”

नरोत्तम भी हँसने लगा।

इस नई घटना के पश्चात् पूर्णिमा के विचार सर्वथा पलट गये। वह पूर्ण हृदय से अहिंसावाद की उपासिका हो गई। वह कांग्रेस की सदस्य बन गई। कांग्रेस की सभाओं और जलसों में जाने लगी। उसने एक दिन फिल्म कम्पनी में इस्तीफा दे दिया। मैनेजर ने झुंझलाकर पूछा, “आखिर यह क्यों?”

“मुझे इस काम में रुचि नहीं रही। आपकी यह पिक्चर समाप्त हो गई है। अगली पिक्चर आरम्भ होने से पूर्व ही मैंने आपको सूचना दे दी है।”

“परन्तु हमारा ‘कान्टैक्ट’ (ठेका)?”

“उसके विषय में जो भी हानि आप मुझसे लेना चाहें ले सकते हैं।”

“हानि! वह तो आप किसी भ्रांति भी पूरी नहीं कर सकतीं। लाखों रुपयों की बात है। आपको तो एक वर्ष पूरा करना ही होगा।”

“अरुचि से किये गये काम में आपको और भी हानि होगी। मेरी रुचि अब इस काम में नहीं है।”

“तो आप किसी और कम्पनी में जा रही हैं?”

“मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं कही। यदि किसी अन्य फिल्म कम्पनी में काम करना होता तो आप ही के यहाँ क्यों न करती? मुझे सिनेमा ‘स्टार’ बनना नहीं सुहाता। मैं अब यह काम नहीं करूँगी।”

“गजब है, मिस पूर्णिमा! मोचो तो, हम आपके अनुकूल कहानी बना चुके हैं। सैंट्स बन रहे हैं। अब इस प्रकार छोड़ देने से काम नहीं चल सकता।”

“कहानी अवश्य बन गई है, परन्तु सैंट्स की बावत तो अभी कुछ नहीं हुआ। कुछ भी हो, मैं कल से यहाँ नहीं आऊँगी। आप अपना प्रबन्ध कर लें। आप हानि का दावा कर सकते हैं, मेरी जान नहीं ले सकते।”

इतना कह पूर्णिमा दफ्तर में चली आई और दूसरे ही दिन मैनेजर के पास रजिस्टर्ड नोटिस पहुँच गया। मैनेजर भागा-भागा आया। पूर्णिमा की माँ और नरोत्तम के सम्मुख निम्नत और खुशामद करने लगा। नरोत्तम ने कहा, “मैनेजर

साहब, मुझे कहने से आपका काम नहीं चलेगा। अभी तक आपने चार हज़ार रुपया उसे वेतन का दिया है। यदि 'कान्टैक्ट' तोड़ने के लिए आप उससे हानि माँगे तो जो अदालत निर्णय करेगी हम दे देंगे। ज़बरदस्ती आप किसी से काम नहीं करवा सकते। आपको पूर्णिमा का धन्यवाद करना चाहिये कि उसने आपकी नई फिल्म का काम शुरू होने से पूर्व ही आपको सूचना दे दी है।"

इस प्रकार उत्तर पाकर मैनेजर अपना-सा मुख लेकर चला गया। कम्पनी के मालिक बहुत छटपटाये, परन्तु अपनी मर्यादा स्थिर रखने के लिए वे अदालत में नहीं गये।

पूर्णमा इस प्रकार छुट्टी पाकर तन और मन से अहिंसावाद के प्रचार में लग गई।

: ११ :

इसी समय महात्मा गांधी का वह विख्यात पत्र छपा था जो उन्होंने भारत के वायसराय के नाम लिखा था। यह पत्र उन्होंने एक अंग्रेज़ दूत के हाथ भेजा था। यह एक प्रकार की ब्रिटिश सरकार को चुनौती थी कि वह भारतवर्ष को स्वराज्य दे दे। स्वराज्य वह इस कारण चाहते थे कि अंग्रेज़ शासक यहाँ भारी-भारी कर लगाकर बड़े-बड़े वेतन प्राप्त करते हैं और फिर देश का हित-अहित न समझकर यहाँ शासन करते हैं। महात्माजी ने इस पत्र में यह लिखा था कि संकेत-मात्र वायसराय महोदय अपना वेतन कम कर दें। यदि वह ऐसा नहीं करेंगे तो सरकारी कर देने के विरोध में आंदोलन किया जायगा।

इसके पश्चात् उन्होंने एक प्रार्थना-पत्र क्रांतिकारी लोगों के नाम भी छपवाया। इस पत्र का आशय था कि आतंकवादी और हिंसात्मक उपायों में विश्वास रखने वाले अपना काम बन्द कर दें। उनका निवेदन था कि अहिंसात्मक उपाय श्रेष्ठ हैं और वह उन उपायों से देश को स्वतन्त्र करने जा रहे हैं। परन्तु अहिंसात्मक उपायों की सफलता के लिए देश का वायुमण्डल भी शांत और अहिंसात्मक होना चाहिये। महात्माजी चाहते थे कि आतंकवादी उनको अपने उपायों के प्रयोग के लिए उचित वातावरण उत्पन्न करने में सहायता दें। वे अपने कामों को कुछ काल के लिए बन्द कर दें।

पूर्णमा अपने मकान की सीढ़ियों पर चढ़ रही थी कि नरोत्तम के जोर-जोर से हँसने की आवाज़ आई। पूर्णिमा बहुत विस्मित थी कि किससे इतनी हँसी-मजाक की बातें हो रही हैं। देखा तो नरोत्तम अब्बवार सामने खड़े हँस रहा था और समीप कोई भी नहीं था। पूर्णिमा ने विस्मय से पूछा, "क्या हुआ है भैया!"

"देखो, तुम्हारे महात्माजी क्या लिखते हैं।"

"क्या लिखते हैं?"

"लिखते हैं कि 'देश इस समय एक अपूर्व स्थिति में गुज़र रहा है। मैं सम-

अता हूँ कि इस समय हमें कोई भूल नहीं करनी चाहिये। इस समय की भूल हमें कई वर्ष पीछे ले जायेगी। मैं अहिंसात्मक उपायों में विश्वास रखता हूँ। मेरी पक्की धारणा है कि यही उपाय मनुष्य की मनुष्यता के अनुकूल हैं। हम पशु नहीं हैं। पशुओं के हिंसात्मक उपाय हमारे योग्य नहीं हैं। हिंसात्मक उपायों में विश्वास रखने वाले भाइयों से मेरा निवेदन है कि वे मेरे उपायों के प्रयोग में लाये जाने योग्य वातावरण बनाने में मेरी सहायता करें। अहिंसा का उपाय एक बहुत ही प्रबल शस्त्र है। इस पर भी इसका प्रयोग एक अच्छे वातावरण में ही हो सकता है। जैसे निर्मल दूध को बिगाड़ने के लिए एक बूंद खटाई पर्याप्त होती है वैसे ही निर्मल, स्वच्छ अहिंसा के प्रयोग को बिगाड़ने के लिए देश में एक भी हिंसा की घटना पर्याप्त होगी। यदि मेरे अहिंसा के प्रयोग को पूर्ण अवसर मिले तो अगले दो अथवा तीन वर्ष भारत के इतिहास में सुनहरी अक्षरों में लिखने के योग्य हो सकेंगे। मैं ईश्वर पर भरोसा रखते हुए यह प्रार्थना करता हूँ कि लोग हिंसा को छोड़ मेरे उपायों को प्रयोग में लावें।”

पूर्णमा ने प्रसन्न मुख से कहा, “तो इसमें हँसने की कौन-सी बात है, भैया ?”

“मुझे हँसी इस बात पर आ रही है कि महात्माजी यह समझते हैं कि सिवाय उनके और सब संसार भूल कर रहा है। यह तो माना कि देश इस समय अपूर्व परिस्थिति में से गुजर रहा है और इस समय की भूल हमें कई वर्ष पीछे ले जायेगी, परन्तु यदि वह स्वयं भूल कर रहे हों तो ?”

“यदि वह अकेले होते तब तुम कह सकते थे, परन्तु इस समय देश के सब चोटी के नेता उनके साथ हैं। ऐसी अवस्था में उनकी बात गलत नहीं हो सकती।”

“भारतवर्ष के चन्द शोर मचाने वाले नेता अवश्य उनके साथ हैं। परन्तु संसार-भर के समझदार लेखक, वक्ता, दार्शनिक और राजनीतिज्ञ तो उनकी बात की पुष्टि नहीं करते। आदिकाल से लेकर आज तक सब देशों के लोग शक्ति का विरोध शक्ति से ही करने को उचित मानते रहे हैं।”

“यदि आपकी बात सत्य होती तो इस समय भारतवर्ष का कोना-कोना महात्माजी के नाम से न गुँज रहा होता। क्या ये सब लोग मूर्ख हैं ?”

“देखो, पूर्णमा, मैं किसी को मूर्ख और बुद्धिमान नहीं कहता। मैं तो केवल यह कहता हूँ कि जो बात परीक्षा से प्राचीन भारतवर्ष में और अनुभव से इस समय संसार-भर में उचित मानी गई है वह केवल भारतवर्ष के लिए अनुचित कैसे हो सकती है ? नेपोलियन को दबाने के लिए अंग्रेजों ने और यूरोप के अन्य देशों ने हथियार उठाये थे, रावण को परास्त करने के लिए राम ने सत्याग्रह नहीं किया था, कंस और जरासंध का दमन लाठियाँ खाने से नहीं हुआ था।

कौरव पांडवों से केवल लड़कर ही शांत हुए थे। धार्मिक ग्रंथों के किस्से-कहानी छोड़ो। आज तक संसार में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है जहाँ दुष्टों के दमन के लिए कोरी बातों से काम चल गया हो। जो बातों से मान जाये वह दुष्ट नहीं कहाता और उससे झगड़ा करने की आवश्यकता भी नहीं होती। शस्त्र उठाने का प्रश्न तो तब उठता है जब एक ओर अथवा दोनों ओर दुष्टता विराजमान हो।”

“परन्तु महात्माजी का कहना है कि प्रत्येक मनुष्य में आत्मा है जो सच्चाई, न्याय और दया की ओर जाना चाहती है। सांसारिक मोह-माया के कारण कभी-कभी आत्मा के ऊपर पाप का आवरण छा जाता है। यह आवरण मिट सकता है और इसके मिटाने का उपाय सत्य, न्याय और दया ही है। हिंसा का मार्ग इस आवरण को और भी गहरा कर देगा।”

“यह सब वागाडम्बर है। इसमें न तो कोई युक्ति है और न कोई उदाहरण। मनुष्य में आत्मा है और वह आत्मा न्याय, दया और सच्चाई की ओर जाती है, यह बात सत्य हो सकती है; परन्तु यह दूसरी बात कि पाप के आवरण को दूर करने के लिए कष्ट और दुःख सहन करना कोई उपाय है, समझ में नहीं आती। सत्याग्रह अपने शाब्दिक अर्थों में सत्य और अनिवार्य है, परन्तु अहिंसा-युक्त सत्याग्रह का केवल एक अर्थ है, और वह है मार खानी, जेल जाना, भूख-हड़ताल कर मर जाना। ये दुष्ट की दुष्टता को कैसे दूर कर सकते हैं? इससे तो दुष्ट अधिक और अधिक क्रूर हो जाता है। महात्माजी का यह कहना है कि इससे दुर्जन की आत्मा जाग उठेगी, उनका मनुष्य-प्रकृति को न समझना है। प्रायः ये लोग जब दूसरे को कष्ट उठाते देखते हैं तो उनकी आत्मा नहीं जागती, प्रत्युत् उनमें भय जागता है। वे यह समझते हैं कि सत्याग्रही दुःख और कष्ट उठा-उठाकर अन्य लोगों को भड़का रहा है और कहीं दूसरे लोग बहुत भारी संख्या में भड़क उठे तो उनको मार डालेंगे। यह मरने का तथा धन-दौलत खो देने का भय है जो उन्हें न्याय करने पर बाध्य कर देता है। परन्तु जब किसी दुष्ट व्यक्ति को यह प्रतीत हो जाये कि सारी-की-सारी जाति ही अहिंसावादियों की है और उनमें एक भी नहीं जो भड़ककर हिंसा से प्रतिकार लेने की शक्ति अथवा इच्छा रखता है, तो वह दुष्टता करने के लिए निर्भर हो जाता है। यथार्थ में इसको आत्मा का जगाना नहीं कहते, प्रत्युत् प्रतिकार से भय मानना कहना चाहिये।”

पूर्णमा आज अपना पथ निश्चित कर लेना चाहती थी। वह समझती थी कि महात्माजी का यह पत्र इस बात की सूचना है कि एक महान् आन्दोलन उठने वाला है। वह स्वयं उसमें आगे बढ़कर भाग लेने का निश्चय करना चाहती थी। यही कारण था कि वह नरोत्तम की इतनी लम्बी बात सुनकर भी नहीं

उकताई। वह चाहती थी कि नरोत्तम आज उसे अपने पक्ष की सब युक्तियाँ बता दे ताकि उसे पीछे अपने किए पर पश्चात्ताप न करना पड़े। नरोत्तम जब कथन समाप्त कर चुका तो उसने पूछा, “क्या ऐसे कुछ उदाहरण हैं?”

“हाँ, संसार का इतिहास इस कथन का साक्षी है। दूर की बात छोड़ो, अपने घर की ही बात लो। पंजाब में सिक्खों के नवम गुरु, गुरु तेगबहादुर हुए हैं। जब उन्होंने मुसलमानों को हिन्दुओं पर अत्याचार करते देखा, तो वह स्वयं मुगल बादशाह के पास पहुँच गये और बोले कि दूसरों को कष्ट देने के स्थान पर उन्हें क्यों नहीं पकड़ लिया जाता। वह हिन्दुओं के गुरु हैं। मुगल बादशाह ने गुरु तेगबहादुर का सर कटवा दिया। इसका परिणाम यह नहीं हुआ कि मुगल सम्राट की आत्मा जाग उठी हो, प्रत्युत् इसके फलस्वरूप लोगों में क्रोध उत्पन्न हो गया। लोगों ने जब देखा कि उनके गुरु को अकारण मृत्यु के घाट उतार दिया गया है तो उनके क्रोध की सीमा नहीं रही और उसी दिन से सिक्खों की जाति एक धार्मिक संस्था में एक राजनीतिक जाति बन गई। उन्होंने शस्त्र सँभाले और एक सौ वर्ष के युद्ध के पश्चात् पंजाब से मुसलमानों का राज्य दूर कर दिया। गुरु तेगबहादुर के सत्याग्रह का फल मुगल सम्राट की आत्मा को पवित्र करना नहीं हुआ, प्रत्युत् हिन्दू जाति में, जो उस समय भीरु हो चुकी थी, वीर रस उत्पन्न करना हुआ। इसी प्रकार यदि महात्मा गांधी के सत्याग्रह का आशय यह है कि लोगों को हिंसात्मक बनने में प्रोत्साहन दिया जाये तब तो ठीक है, परन्तु यदि सत्याग्रह ही लक्ष्य है तो यह व्यर्थ ही शक्ति, समय और धन का अपव्यय है।”

“क्या जाने ईश्वर को क्या मंजूर है?”

“इसमें ईश्वर को घसीट लाना ठीक नहीं। परन्तु महात्मा का बार-बार लोगों को यह कहना कि हिंसा पाप है, हिंसा से आत्मा पतित हो जाती है और इससे भारतवर्ष में स्वराज्य नहीं हो सकता, लोगों में जुलम और अन्याय सहने का स्वभाव पैदा करना है। लोगों में यह धारणा उत्पन्न करनी है कि अन्यायी का अन्याय सहन करने से अन्यायी न्यायशील हो जायेगा, यह भ्रम है। हाँ, इससे यह तो होगा कि अन्याय का प्रतिकार लेने की न तो इच्छा हममें रहेगी और न ही शक्ति।”

“तो क्या प्रतिकार ध्येय है?”

“नहीं। ध्येय तो उन्नति, सुख और शांति है, परन्तु जो इसमें बाधा डालते हैं उनको बाधा डालने के अयोग्य बना देना ही प्रतिकार है।”

“उनकी मनोवृत्ति बदलने से ही तो यह होगा। उनको मार डालने से कैने होगा?”

“जिनकी मनोवृत्ति न बदली जा सकती हो उनको संसार से बाहर कर देना ही एक उपाय है। स्वार्थी स्वार्थ का त्याग तब ही कर सकता है जब वह ऐसा

करने पर बाध्य हो जाता है।”

“एक बार तो महात्माजी को अपने उपायों की परीक्षा का अवसर देना ही चाहिये।”

नरोत्तम खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला, “दीदी, तुम पढ़-लिखकर भी ऐसी बातें करती हो। भारतवर्ष में मोहनदास कर्मचन्द गांधी पहले महात्मा नहीं हैं। महात्मा बुद्ध से लेकर अनेक महात्मा आये और चले गये और प्रत्येक महात्मा अपने जाने के बाद देश को कुछ अधिक पतित-अवस्था में ही करके गये हैं। इन महात्माओं ने देश के लोगों को अपाहिज, अंधविश्वासी और विवेक-शून्य ही किया है। हममें ईश्वर पर झूठा भरोसा और विश्वास उत्पन्न कर हमारा अपनी बुद्धि के प्रयोग का स्वभाव छुड़ा दिया है। अब यह तुम्हारे महात्मा अन्तिम महात्मा भी नहीं हैं। आज इनको अवसर देना है तो कल दूसरे को देना होगा। आखिर यह खेल कब तक चलता रहेगा?”

पूणिमा ने भी अब कुछ जोश में आकर कहा, “आप नास्तिकों की मंडली में रहते-रहते ऐसा समझने लगे हैं। आपका कथन सर्वथा अयुक्तिसंगत है। यथार्थ बात तो यह है कि मनुष्य में दैवी गुणों और आसुरी गुणों का संघर्ष होता रहता है। महात्मा लोग दैवी गुणों को प्रोत्साहित करते हैं, परन्तु जन-साधारण में आसुरी गुण इतने प्रबल हो चुके हैं कि महात्माओं के प्रयत्न विफल होते रहे हैं। इसमें महात्माओं का क्या दोष है? भारतवासी बहुत पतित हो चुके हैं। इनका उद्धार करने के लिए वृहद् प्रयत्न की आवश्यकता है। हिंसा मार्ग आदिकाल से प्रयोग में लाया जाता रहा है और हजारों वर्षों के प्रयोग से भी संसार में सुख-शान्ति उत्पन्न नहीं हो सकी। अब उस मार्ग का फिर प्रयोग करना, जो अभी तक सफल नहीं हुआ, कैसे युक्तियुक्त हो सकता है?”

“अहिंसात्मक उपायों का प्रयोग भी तो किया जा चुका है और जितनी भी सफलता हिंसात्मक उपायों को हुई है वह अहिंसात्मक उपायों से तो बहुत अधिक है। मैंने अभी बताया है कि अहिंसात्मक सत्याग्रह लोगों को प्रभावशाली हिंसा करने के लिए भड़काने का काम करता है। स्वयं वह कुछ भी नहीं कर सकता। महात्मा गांधी का सत्याग्रह भी सन् इक्कीस में निष्फल रह चुका है। इससे जो कुछ लाभ होना था वह महात्माजी ने स्वयं मिटा दिया था। लोग हिंसा करने पर उतारू हो चुके थे। अंग्रेज भयभीत थे। परन्तु सत्यता के देवता ने उस समय सत्याग्रह को बन्द कर दिया और सारा-का-सारा आन्दोलन निष्फल हो गया। निष्फल आन्दोलन जितना बड़ा होगा उससे उतनी ही अधिक हानि होती है। मैं तुम्हें एक और उदाहरण देकर समझाता हूँ। यदि मुसीबत में फँसे व्यक्ति को कोई यह कहे कि तुम ईश्वर पर भरोसा रखो, वह दयालु है; जब तुम्हारी मुसीबत अधिक हो जायेगी, दयानिधि तुम पर दया कर सहायता करेंगे। यदि वह

मनुष्य ईश्वर की सहायता पर भरोसा रख दुःख तथा कष्ट सहता है और सहायता नहीं होती तो कितनी निराशा होती है। जितनी अधिक आशा होगी, असफलता पर उतनी ही अधिक निराशा भी होगी। और निराशा का परिणाम चरित्र-भ्रष्टता है। महात्मा गांधी ने लोगों को आशा दिलाई थी कि यदि वे सरकार से असहयोग करेंगे तो स्वराज एक वर्ष के भीतर प्राप्त हो जायेगा। ऐसा न हो सका। देश-भर में असहयोग आन्दोलन चलाया गया। हजारों की संख्या में लोगों ने कारोबार छोड़ दिया, परन्तु आन्दोलन असफल रहा और लोगों में इतना पतन आया कि सरकार के सम्मुख गिड़गिड़ाने लगे। हिन्दू और मुसलमान परस्पर लड़ने लगे और सरकार की खुशामद करने में एक-दूसरे से बाजी लेने लगे।

“तुम कहोगी कि हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों में और महात्माजी के असहयोग आन्दोलन में सम्बन्ध नहीं है, परन्तु विचारशील लोगों के विचार में इन दोनों बातों में परस्पर सम्बन्ध है। हिन्दू-मुस्लिम तनाव पहले अवश्य था, परन्तु देश-व्यापी दंगे कोहाट में चिटगाँव तक और कश्मीर से मालाबार तक तो असहयोग आन्दोलन के असफल होने से ही हुए हैं।”

पूर्णमा इन बातों से निरुत्तर नहीं हुई। उसने फिर कहा, “तुम्हारा यह अनुमान ठीक हो सकता है। इतिहास में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि जब कोई बृहद् प्रयत्न विफल होता है तो आत्मा दुर्बल पड़ जाती है। परन्तु क्यों न ऐसा यत्न किया जाये कि इस बार यह आन्दोलन निष्फल ही न हो? यदि एक बार सफलता प्राप्त हो गई तो न केवल भारतवर्ष का सस्ते में उद्धार होगा, प्रत्युत् मनुष्य जाति पशुपन से ऊपर उठ जायेगी।”

नरोत्तम भी निरुत्तर नहीं हुआ था। इस पर भी वह केवल यह कहकर चुप रह गया, “अच्छी बात है। एक बार देख लिया जाये। मेरे अकेले के कहने में तो यह आन्दोलन रुक नहीं सकता। यह देश का दुर्भाग्य है कि देश का नेतृत्व इस समय जैन मतावलम्बियों के हाथ में है। इससे तो देश और भी पतन की ओर ही जा सकता है।” इसके पश्चात् उसने वार्तालाप की दिशा को बदलते हुए कहा, “तुम आजकल क्या कर रही हो?”

“मैं आजकल कांग्रेस का प्रचार करती हूँ। हम खदर बेचते हैं और लोगों को महात्माजी का सन्देश देते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम एकता रखो, अछूतोद्धार करो तथा मन, वचन और कर्म से हिंसा को निकाल दो।”

“बहुत खूब ! बहुत खूब, दीदी ! तुम अब ठीक-ठीक नेता बन रही हो। अब तो तुम्हारा नाम कलकत्ते-भर में गूँज रहा होगा।”

“नहीं, अभी नहीं। मैं तो अपने-आपको तब सफल मानूँगी जब तुम और दादा हिंसा का पथ छोड़कर सत्य, न्याय और अहिंसा मार्ग पर आ डटोगे।”

नरोत्तम हँसता हुआ माँ के पास चला गया ।

: १२ :

टाइम बमों की घटना से सरकारी क्षेत्र में भारी हलचल मच गई थी । वे इस देशव्यापी षड्यंत्र के पता न पा सकने से घबरा गये थे । प्रांत के गवर्नरों की गवर्नर जनरल से भेंट हुई । गुप्त पुलिस के महकमे में हलचल मच गई, परन्तु परिणाम कुछ भी नहीं निकला । भारत सरकार ने इस षड्यंत्र को जड़ से उखाड़ डालने के लिए इंग्लैंड से भेदिया-पुलिस के लोग मँगवाये । उनके आने से भारत-पुलिस के गुप्त पुलिस-विभाग में कई नई बातों का समावेश किया गया, परन्तु इस षड्यंत्र के दो स्तम्भ दादा धीरेन्द्र और हारान दास नहीं छुये जा सके । अनेकों युवक बंगाल, बिहार और यू० पी० में पकड़े गये और कोई प्रमाण न होने के कारण बिना मुकदमे के बन्दी बना लिए गये ।

इस घटना को दो मास हो गये थे । अंग्रेज भेदिया-पुलिस वाले लम्बी-चौड़ी स्कीमें बनाकर इंग्लैंड वापस चले गये । यह वह काल था जब वायसराय ने भारत-वर्ष के नेताओं को नई दिल्ली में बुलाकर गोलमेज-परिषद् का सन्देश दिया था ।

एक दिन मथुरा बाबू अपने एक सम्बन्धी की दुकान पर कलकत्ते में बैठे थे कि एक कबाड़ी लकड़ी की एक सन्दूकची बेचने आया । सन्दूक को देखते ही मथुरा बाबू ने पहचान लिया । यह उन सन्दूकों में से था जिनमें वे मशीनें, जिनको हारान बाबू ने निर्दिष्ट मशीनें बताया था, बन्द थीं । मथुरा बाबू ने कई बार यत्न किया था कि उन मशीनों की वास्तव ज्ञान प्राप्त करें, परन्तु असफल रहे थे । अब इस सन्दूक को देखते ही उनके दिमाग में एक विचार उठा कि अब उस मशीन को देखना सम्भव हो सकता है । इसलिए कबाड़ी से पूछा, “यह सन्दूक कहाँ से लाये हो ?”

“एक साहब की कोठी से खरीदा है ।”

“कौन साहब हैं, देशी या विलायती ?”

“देशी साहब हैं, हुजूर । उत्तरपाड़ा में रहते हैं । तीन आने में खरीदा है, चार आने में बेच दूंगा ।”

“मैं तुम्हें इसका एक रुपया दूंगा, परन्तु तुमको मेरे साथ चलकर उस साहब का मकान बताना होगा ।”

इस बात से कबाड़ी चकराया । उसे सन्देह होने लगा कि कहीं यह चोरी का माल न हो । उसने साहब के बैरा से खरीदा था । मथुरा बाबू कबाड़ी की धवराहट देख इसका कुछ-कुछ कारण समझ गये थे । उन्होंने कहा, “ओह, तुम डरते हो ! मैं पुलिस का अफसर नहीं हूँ और न ही यह चोरी की वस्तु प्रतीत होती है । तुम घबराओ नहीं ।”

इस आश्वासन में और रुपये के लालच में वह मथुरा बाबू के साथ जाने के

लिए राजी हो गया। मथुरा बाबू उसे मोटर में बैठाकर उत्तरपाड़ा में ले गये। कबाड़ी ने बैरा को बुलाकर सम्मुख कर दिया। बैरा की घबराहट तो कबाड़ी से भी अधिक थी। उसने यह सन्दूक सत्य ही अपने मालिक से चोरी बेचा था। उसका मालिक खुफिया पुलिस में इंस्पेक्टर था और 'न्यू इयर्स डे' के टाइम बम के मामले में तहकीकात कर रहा था। इस खोज में उसके पास तीन सन्दूक पहुँच चुके थे जिनमें वे बम लोगों को डाक द्वारा मिले थे। इन तीन सन्दूकों में कोई विशेष भेद न देख उसने एक सन्दूक तो पुलिस के दफ्तर में रख दिया था, दूसरा अपने पास अपने दफ्तर की मेज पर रखा हुआ था और तीसरा अपने मकान के गोदाम में रख दिया था। यह गोदाम वाला सन्दूक बैरा ने अनावश्यक वस्तु समझ तीन आने में बेच दिया था, और उस तीन आने की बीड़ी खरीद ली थी। मथुरा बाबू ने एक पंजाबी मुसलमान को सम्मुख देख पूछा, "क्या यह सन्दूक तुमने इसके पास बेचा है?"

बैरा घबरा गया। फिर भी एक पुलिस अफसर का नौकर होने से डटकर बोला, "हाँ। आपको इससे क्या मतलब है?"

मथुरा बाबू ने नरमी से कहा, "भाई, घबराने की कोई बात नहीं। तुम्हारे मालिक से मिलकर जानना चाहता हूँ कि वह इस सन्दूक में आई मशीन को मुझे दिखा सकते हैं या नहीं।"

बैरा बात को मालिक तक नहीं जाने देना चाहता था। इस कारण उसने तुरन्त उत्तर दिया, "नहीं, वह नहीं बतायेंगे।"

परन्तु मथुरा बाबू इतनी-सी डाँट से टलने वाले नहीं थे। उनकी उन मशीनों को देखने की इच्छा आज पूरी होती प्रतीत हो रही थी। इस कारण वह बिना बैरा को उत्तर दिए मकान के अगले भाग की तरफ चले गये और वहाँ बरामदे में एक सर्वथा काले के रंग बंगाली बाबू को बैठा देख उसके पास पहुँचे। वह आराम-कुर्सी पर बैठा चुन्ट पी रहा था। मथुरा बाबू ने पास पहुँच, 'गुड ईर्वनिंग' कहकर पूछा, "क्या मैं इस मकान के मालिक से बात कर रहा हूँ?"

उस आदमी ने, जो चुन्ट पी रहा था, बैठे-बैठे ही कहा, "मेरा विचार है कि आप ठीक समझ रहे हैं। मैं इस मकान में रहता हूँ। आप क्या चाहते हैं?"

मथुरा बाबू ने खड़े-खड़े ही कहा, "एक मामूली बात है। उम्मीद है, आप क्षमा करेंगे। क्या आप वह निटिंग मशीन दिखा सकते हैं जो इस सन्दूक में आपके पास आई थी?" इतना कहकर उसने कबाड़ी को बुलाया जो सन्दूक लिए दूर खड़ा था।

कबाड़ी के हाथ में सन्दूक देख वह बंगाली बाबू चौंकर एकाएक कुर्सी से उठ खड़े हुए और अचम्भे में मथुरा बाबू के मुख को देखने लगे। कई सैकण्ड तक इसी प्रकार देखते रहे। मथुरा बाबू भी हैरान थे कि उनको हो क्या गया है। क्यों वह

ऐसे घूर-घूरकर देख रहे हैं। जब उनका घूरकर देखना बन्द नहीं हुआ तो उन्होंने पूछा, “क्या बात है ? आप ऐसे क्यों देख रहे हैं ?”

अब उस बंगाली महाशय को चेतना हुई। उन्होंने मथुरा बाबू को पास रखी कुर्सी पर बैठने का संकेत कर कहा, “आप पधारें।”

मथुरा बाबू कुर्सी पर बैठ गए और उत्सुकता से उनके मुख की ओर देखने लगे। बंगाली महाशय भी कुर्सी पर बैठ गए और बोले, “आपको यह सन्दूक कहाँ से मिली है ?”

“यह आदमी कवाड़ी है। इसने यह सन्दूक आपके बैरा से खरीदा है। मुझे यह बाज़ार में बेचता हुआ मिला था। मैंने इस किसम के सन्दूकों में एक प्रकार की निटिंग मशीनें बन्द देखी थीं। मुझे बैमी मशीन देखने की आवश्यकता है। इस कारण आपको कष्ट दिया है।”

वह बंगाली महाशय, खुफिया पुलिस के अफसर, कई समस्याओं में फँस गए। कुछ देर तक चुन्ट के कण लगाते हुए सोचते रहे। पश्चात् पूछने लगे, “आपने इस प्रकार के सन्दूकों में निटिंग मशीनें देखी थीं ? कहाँ ? और तब ही आपने इन्हें क्यों नहीं देख लिया था ?”

मथुरा बाबू अपनी सफाई देते हुए बोले, “हमारे पड़ोस में मशीनों का कारखाना है। हमारा उन लोगों से मुकाबला चल रहा है। इस कारण मशीनों का निरीक्षण भली-भाँति वहाँ नहीं कर सका। हमारे पड़ोस के कारखाने में वे मशीनें भारी संख्या में बनती हैं और हमारी उत्कट इच्छा है कि हम इन मशीनों का पूरा-पूरा परिचय प्राप्त करें।”

“आपको उन मशीनों को देखने का अवसर अभी तक नहीं मिला, तो आपको यह कैसे पता मिला कि वे निटिंग मशीनें थीं ?”

अब मथुरा बाबू को सन्देह हुआ कि कहीं हारान ने उनकी हँसी तो नहीं की और यथार्थ में इन सन्दूकों में कुछ और ही वस्तु हो। उन्होंने बात स्पष्ट कर दी और कहा, “एक दिन मैं उस कारखाने में बैठा था। मेरे बैठे-बैठे कई लोग ऐसे सन्दूक खरीदकर ले गये थे। मैंने कारखाने के मालिक से पूछा तो उन्होंने कहा था कि इनमें एक विशेष प्रकार की निटिंग मशीनें हैं जिन्हें वह चलाते हैं।”

“और एक बक्से का क्या दाम लेते थे ?”

“दाम लेते तो मैंने नहीं देखा।”

यह सुन बंगाली बाबू कुछ मुस्कराये। फिर कुछ सोचकर बोले, “यह कब की बात है ?”

“लगभग बीस-बाईस दिसम्बर की बात होगी।”

“इसके पश्चात् फिर कभी आपने इन सन्दूकों के दर्शन किये हैं ?”

“उसके पश्चात् मैंने ऐसे सन्दूक उनके कारखाने से आते देखे हैं। परन्तु यह

उन्नी महीने की बात है। आजकल तो नहीं देखे।”

इस पर बंगाली बाबू फिर कुछ सोचने लगे। इस सब प्रश्नोत्तर से मथुरा बाबू को सन्देह हो गया कि दाल में कुछ काला है। उन्होंने वहाँ से अब चला जाना ही उचित समझा। कहा, “धमा करें। मैंने आपको कष्ट दिया है। यदि इसके दिखाने में कठिनाई हो तो आप कष्ट न करें। मैं इसके देखने का कोई दूसरा प्रबन्ध कर लूँगा।”

इस पर वह बंगाली बाबू चौंककर बोले, “कष्ट? नहीं। कष्ट कुछ नहीं। बात यह है कि मेरी स्त्री घर पर नहीं है। वह कलकत्ते से बाहर गई हुई है, और मशीन उन्होंने ही रखी हुई है। जब आपने इसके देखने के लिए इतना कष्ट किया है तो आपको मैं उसे दिखाना अपना कर्तव्य समझता हूँ। आप अपने कारखाने का पता दें। मैं मशीन कल आपके निरीक्षण के लिए भिजवा दूँगा।”

“मैं तो मैमनसिंह में रहता हूँ। आज रात की गाड़ी से चला जाऊँगा।”

बंगाली बाबू ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा, “मैमनसिंह? वहाँ तो मैं स्वयं जाने वाला हूँ। मैं जरूर आपको दिखाने के लिए मशीन लेता आऊँगा। जायद कल ही पहुँचूँगा। मुझे आपसे वहाँ मिलकर बहुत प्रसन्नता होगी।”

मथुरा बाबू ने अपना कार्ड निकालकर उन बंगाली महाशय को दे दिया। उन्होंने उत्तर में कहा, “मेरा नाम पी० के० चौधरी है। मैं सरकारी अफसर हूँ। मैं आपको मैमनसिंह में कल या परसों मिलूँगा।”

मथुरा बाबू ने ‘गुडनाइट’ की और वहाँ से विदा हो गये। कवाड़ी ने लकड़ी का नट्टूक मथुरा बाबू को मोटर में रख दिया और एक रुपया लेकर प्रसन्न-वदन अपने घर की ओर चला गया।

: १३ :

नरोत्तम अपनी बीमा कम्पनी के काम से जमालपुर जा रहा था। उसने अपने लिए एक ‘सैकण्ड क्लास वर्थ रिजर्व’ करवाया हुआ था। गाड़ी सियाल्दा स्टेशन ने रात को दस बजे चल पड़ी। गाड़ी के चलने से कुछ ही पूर्व एक और मुसाफिर नरोत्तम वाले डिब्बे में आया। यह मथुरा बाबू थे। नरोत्तम ने मथुरा बाबू का अनवाव देखा तो मुस्कराने लगा। अचम्भे की बात यह थी कि उनके साथ केवल एक लकड़ी का टूटा हुआ डिब्बा था। यह डिब्बा खाली था। यह वही था जो कवाड़ी से मथुरा बाबू ने एक रुपये में खरीदा था। जल्दी-जल्दी में जब कुली विस्तर लिए रेल के डिब्बे में घुसा तो यह लकड़ी की सट्टूकची लुढ़ककर नरोत्तम के ऊपर गिरी। नरोत्तम वर्थ पर लेटा हुआ था। सट्टूकची के गिरने से चौंकर उठ खड़ा हुआ और उस टूटी लकड़ी की पेट्टी को देखकर क्रोध से भर गया। कुछ आवेश में बोला, “क्यों, साहब, यह सैकण्ड क्लास के मुसाफिरों का डिब्बा है या लगेज वैन? यह क्या कूड़ा-करकट यहाँ ले आये हैं?”

मथुरा बाबू ने घूमकर देखा कि एक मुसाफिर उस लकड़ी की पेटी को रेल के डिब्बे से बाहर फेंकने ही वाला है। उन्होंने बात समझकर कहा, “क्षमा करिये। आपको चोट तो नहीं आई? माफ करें। यह कुली गधा मालूम होता है। दो बार पहले भी यह फेंक चुका है।”

नरोत्तम ने मुस्कराते हुए पूछा, “परन्तु यह है क्या? इसे किसलिए साथ-साथ उठाये घूम रहे हैं?”

मथुरा बाबू नरोत्तम के इस उचित प्रश्न पर हँस पड़े और बोले, “आपका क्रोधित होना ठीक है। मैं खुद नहीं जानता कि मैं इसे क्यों लिए घूम रहा हूँ?” इतना कह उन्होंने वह पेटी नरोत्तम के हाथ से ले ली और बहुत सावधानी से ऊपर की सीट पर, जो खाली पड़ी थी, रख दी और घूमकर पूछने लगे, “आप कहाँ तक जा रहे हैं?”

“मैं? मैं तो जमालपुर जा रहा हूँ।”

मथुरा बाबू ने केवल कुछ कहने के विचार से कह दिया, “मैं मैमनसिंह जा रहा हूँ।”

जब दो हिन्दुस्तानी कहीं एक ही तांगे, इक्के अथवा रेल के डिब्बे में सफर करते हैं तो इसी प्रकार परस्पर परिचय कर लेते हैं। अंग्रेजों की भाँति बिना परिचय के बात न करनी हिन्दुस्तानियों का स्वभाव नहीं है। वहाँ तो दो मनुष्यों के भीतर अजीत दीवार होती है और भारतवर्ष में यह ऐसी मेड़ है जो सहज ही पार हो सकती है।

यह स्वभाव अच्छा है या बुरा, निर्णय करना कठिन है। गुण-दोष प्रायः सब बातों में होते हैं। जो कुछ भी हो, यह हिन्दुस्तानी स्वभाव है और ऐसा कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और कराची से कटक तक होता है। ऐसा ही मथुरा बाबू और नरोत्तम में हुआ। एक साधारण-सी घटना से परिचय हो गया और घर-बाहर की बातें होने लगीं।

नरोत्तम ने पूछा, “मैमनसिंह में आप क्या कारोबार करते हैं?”

मथुरा बाबू को अपना रोना रोने का अवसर मिल गया। बताने लगे, “मशीनें बनाने का कारखाना है। एक पड़ोसी बाबू हारान दास की सफलता देखकर हमने यह कारखाना खोला था, परन्तु घाटा इतना हो रहा है कि अब उसे और अधिक चलाना असम्भव प्रतीत हो रहा है। हाँ, यदि उन मशीनों का, जो हारान बाबू बनाते हैं, पता चल जाये तो कुछ आशा हो सकती है।”

हारान बाबू का नाम सुन नरोत्तम चौकन्ना हो गया। वह ध्यान देकर मथुरा बाबू की बातें सुनने लगा। वह जानता था कि हारान के कारखाने में कोई निटिंग मशीन नहीं बनती। इसलिए उसने पूछा, “ये कैसी मशीनें हैं?”

“यह तो ठीक नहीं बता सकता। हाँ, वे मशीनें उनकी बिकती खूब हैं। मैं

परिवर्तन

एक दिन अकस्मात् उनके यहाँ चला गया था। देखते-देखते एक घण्टे में दस-बारह मशीनें बेच डालीं।”

नरोत्तम ने हैरानी से पूछा, “दस-बारह ! कब की बात है ?”

मथुरा बाबू ने उत्तर दिया, “मैं तो उनके यहाँ पिछले दिसम्बर मास में गया था। परन्तु उसके पश्चात् भी मैंने लोगों को वैसी मशीनें वहाँ से ले जाते देखा है। वे मशीनें ऐसे ही सन्दूकों में बन्द करके बेची जाती हैं।” इतना कह उसने ऊपर की सीट पर रखे सन्दूक की ओर संकेत कर दिया।

नरोत्तम ने उस सन्दूक की ओर देख मुस्कराते हुए कहा, “ठीक। अब समझा हूँ कि आप क्यों इसको उठाए-उठाए फिर रहे हैं। भला मशीनें तो आपने देखी नहीं थीं। यह सन्दूक कैसे पा गये ? इसमें की मशीन कहाँ गई ?”

मथुरा बाबू ने बहुत गम्भीर भाव धारण कर कहा, “आप शायद मज्जाक समझते हैं, परन्तु मैं सत्य कहता हूँ कि यह सन्दूक उन्हीं मशीनों का है। यह सन्दूक मुझे आज अत्यन्त ही अद्भुत घटना में मिला है। मैं आज दोपहर में धर्मतल्ला में एक दुकान में बैठा था कि एक कवाड़ी इसे बेचने आया। मैंने इस सन्दूक को पहचान लिया। मुझे विश्वास-सा हो गया कि यह निटिंग मशीनों वाला सन्दूक है; और मेरा अनुमान ठीक निकला। मैंने कवाड़ी को एक रुपया देने का वचन दिया और उसे लेकर वहाँ पहुँचा जहाँ से उसने यह सन्दूक खरीदा था। मुझे अपनी पहचानने की शक्ति पर गर्व है। जब मैंने उस आदमी से पूछा, जिसके यहाँ से यह सन्दूक खरीदा गया था, तो उसने बताया कि हाँ, इसमें निटिंग मशीन थी। जब मैंने देखने की इच्छा प्रकट की तो वह बोला कि मशीन तो उसकी स्त्री ने कही रखी है और वह मुझे किसी दूसरे दिन दिखा सकता है। वह कहता था कि वह कल मैमनसिंह आ रहा है। वहाँ वह मशीन लेता आयेगा और दिखा देगा।”

नरोत्तम यह कथा सुन कुछ संशय में पड़ गया। उसने सब बात और स्पष्ट रूप में जानने के अभिप्राय से फिर पूछा, “वह कौन साहब है और कहाँ रहते हैं ? बहुत भले आदमी प्रतीत होते हैं जो मशीन को मैमनसिंह तक उठा लाने को उद्यत हो गये हैं। यदि आप चाहें तो मैं उनमें पूछकर आपको लिख सकता हूँ।”

मथुरा बाबू ने उत्तर में पी० के० चौधरी का नाम बता दिया और कहा, “आपको तकलीफ होगी और मैं जब तक स्वयं मशीन देख न लूँ, मैं लाभ नहीं उठा सकता।”

नरोत्तम नाम और पता सुन चौंक उठा और यह जानकर कि वह अगले दिन मैमनसिंह जा रहा है, चिंता में डूब गया। उसे परेशान देख मथुरा बाबू ने कहा, “आप चिंता न करें। पहले तो वह साहब स्वयं ही मैमनसिंह आने वाले हैं और यदि वह न भी आयें तो मैं स्वयं फिर एक दिन कलकत्ता चला आऊँगा। आपको उनमें मिलने का कष्ट नहीं करना होगा।”

नरोत्तम ने केवल यह कहा, “उनसे मिलने में कष्ट नहीं। मैं तो यह सोच रहा था कि होनी बड़ी प्रबल है। देखिए न ! यह सन्दूक आपको कैसे अकस्मात् मिला। सन्दूक आपने पहचान लिया। सन्दूक का मालिक मिला और फिर उसे कल मैमनसिंह भी जाना है। मुझसे आपकी भेंट हुई और वह चौधरी मेरे परिचित हैं। यह सब क्या होनी नहीं ? निश्चय जानिये कि आपको इससे भारी लाभ होगा।”

इतना कह नरोत्तम सोने का प्रबन्ध करने लगा। मथुरा बाबू ने भी विस्तर खोल दिया। नरोत्तम ने आँखें मूंद लीं। यथार्थ में वह एकाग्रचित्त होकर सब अवस्था पर विचार करना चाहता था। यह बात उसके मन में स्पष्ट हो चुकी थी कि मथुरा बाबू ने मशीन का रहस्य जानने के लालच में खुफिया पुलिस को एक बड़े भेद की कुंजी दे दी है। उसे यह विश्वास हो गया था कि कल हारान बाबू के कारखाने की तलाशी हो जायेगी। यों तो हारान बहुत ही पड़्यन्त्रकारी था और यह बात निश्चय थी कि उसने नये दिन के वमों का चिह्न-मात्र भी मिटा दिया होगा। वह प्रत्येक ‘एक्शन’ के पश्चात् कोई भी सन्देहात्मक वस्तु नहीं रहने देता था। हाँ, यदि कोई नई वस्तु बन रही होगी तो पकड़े जाने की सम्भावना अवश्य है। इतना सोचकर नरोत्तम की विचारधारा हारान को सचेत करने की ओर गई। परन्तु वह किस भाँति हो सकता था। चिट्ठी का समय पर पहुँचना असम्भव था। तार में स्पष्ट लिखा नहीं जा सकता था और तार यदि पुलिस के हत्थे चढ़ गई तो गजब ही हो जायेगा।

कुछ ही काल में मथुरा बाबू खरटे भरने लगे। नरोत्तम उठ बैठा। अपने ‘अटैची केस’ में से एक तार का फार्म निकालकर लिखने लगा :

हारान दांस आयरन फौंडरी वर्कशाप, मैमनसिंह

दिसम्बर महीने का स्टॉक निकाल दो। बाजार खराब हो रहा है। मन्दी में फँस जाने की सम्भावना है।

—नम्बर तीन

नम्बर तीन नरोत्तम का संकेत नाम था। अगले स्टेशन पर यह तार ‘एक्सप्रेस’ और ‘लेट फी’ के साथ दे डाली।

दिन निकलने से पहले ही जमालपुर आ गया था और नरोत्तम मथुरा बाबू को खरटे भरते छोड़ गाड़ी से उतर गया।

: १४ :

रात के बारह बजे तार हारान को मिल गई थी। इसका अभिप्राय समझने में उसे देरी नहीं लगी, परन्तु वह पहले ही सब स्टॉक निकाल चुका था। इस पर भी उसने कारखाने के नौकरों को जगा दिया और कारखाने के कोने-कोने की देख-भाल कर ली। दफ्तर में सब कागजात को देखकर व्यर्थ के कागजों को आग में झोंक दिया। इस प्रकार निश्चित हो वह दो बजे सो गया।

प्रातःकाल छः बजे कारखाने पर पुलिस पहुँच चुकी थी। हारान यद्यपि सचेत

था तो भी पुलिस के वहाँ तक पहुँच जाने पर चकित हो रहा था।

पुलिस के कई अफसर और कई कांस्टेबल कारखाने के प्रत्येक दरवाजे और खिड़की की रक्षा कर रहे थे। तलाशी का वारण्ट दिखा कुछ लोग भीतर चले आये। हारान ने उन लोगों की तलाशी ली और फाटक पर अपने दो चपरासियों को खड़ा कर कह दिया कि भीतर किसी को मत आने दें। तलाशी आरम्भ हो गई।

हारान के कारखाने के बाहर लोगों की भीड़ लग गई थी। मथुरा बाबू जब स्टेशन से घर आये तो यह भीड़ देखकर चकित रह गये। वह अपने कारखाने के अगले मकान में रहते थे। उन्होंने विस्तर भीतर भेज दिया और भीतर का कारण जानने के लिए हारान के कारखाने के सम्मुख चले आये। वहाँ पहुँच ज्यों ही उन्होंने कारखाने के भीतर झाँककर देखा तो पी० के० चौधरी को भीतर डटकर खड़ा देख सन्न रह गये। वह मन में सोचते थे कि यह काला-कलूटा वहाँ उनसे भी पूर्व पहुँच गया है। आखिर यहाँ यह कर क्या रहा है। एक पुलिस कांस्टेबल से, जो दरवाजे पर देखभाल कर रहा था, मथुरा बाबू ने पूछा, “यहाँ क्या हो रहा है?”

पुलिस कांस्टेबल ने केवल इतना कहा, “यहाँ बम बनते हैं।” शायद वह इससे अधिक जानता भी नहीं था। मथुरा बाबू बमों का नाम सुन गम्भीर विचार में डूब गये। उन्हें अब समझने में देरी नहीं लगी। वे निटिंग मशीनें नहीं थीं, बम रहे होंगे। इतना समझते ही विद्युत् की भाँति उनके सम्मुख ‘न्यू इयर्स डे’ का हत्या-काण्ड चक्कर काटने लगा। मैमनसिंह का भी एक अफसर उस समय मारा गया था। अब उसे पी० के० चौधरी का विस्मय और उसका पेटी देखते ही घबरा जाना, सब भारी अर्थों से भरा प्रतीत होने लगा।

इतना विचार आते ही मथुरा बाबू को अपनी करनी पर शोक होने लगा। यद्यपि वह चाहते थे कि उनके कारखाने की उन्नति हो, परन्तु वह हारान को इस तरह फँसाकर उन्नति करने के पक्ष में नहीं थे। ‘उसने हारान पर मुसीबत लाने में हाथ बँटाया है’, इस विचार ने उन्हें बहुत ही उतावला कर दिया। वह दुकानदार थे। व्यापारी थे। इस पर भी वह एक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी थे। उनके मन में भी, एक दूर कोने में, देश-प्रेम छिपा हुआ था। वह भले ही आतंकवाद और हत्याओं को पसन्द न करते हों, परन्तु हारान को, उसके बम बनाने पर भी, बुरा नहीं समझते थे। स्वयं बम बनाने से डर सकते थे, परन्तु जो अपनी जान को खतरे में डालकर ऐसा करते थे, उन्हें वह निन्दा-योग्य नहीं समझते थे।

इन विचारों में वह मूर्तिवत् कारखाने के पास खड़े रह गये। मिस्टर चौधरी तलाशी को आरम्भ करवा कारखाने के फाटक पर आये तो मथुरा बाबू को वहाँ विचारमग्न देखकर पुकारने लगे, “हेलो, मथुरा बाबू! आप आ गये! आइये, भीतर आ जाइये।” इस प्रकार मथुरा बाबू को उन्होंने भीतर कर लिया। चप-

राशों ने तलाशी लेकर उन्हें भीतर आने दिया। मि० चौधरी कहने लगे, “यहाँ के तो चपरासी भी बहुत चतुर प्रतीत होते हैं।”

मथुरा बाबू ने सुखे हुए कण्ठ से कहा, “हाँ।”

मि० चौधरी ने मथुरा बाबू को हारान के दफ्तर में ले जाकर कहा, “मैंने कहा न था कि मैं मैमनसिंह आ रहा हूँ।”

मथुरा बाबू के माथे पर पसीने की बूँदें झलकने लगी थीं। उन्होंने बहुत कष्ट से कहा, “मैं नहीं जानता था कि.....।”

“हाँ, आप नहीं जानते थे कि मैं खुफिया पुलिस का अफसर हूँ और जो कुछ आपने कल बताया था, वह सरकार के बहुत लाभ की बात थी।”

“वह निटिंग मशीन.....।”

“निटिंग मशीन नहीं, टाइम बम जो ‘न्यू डायर्स डे’ को फटे थे।”

मथुरा बाबू के मुख में केवल ‘ओह’ का शब्द ही निकला। इसके पश्चात् वह वापस जाने लगे तो चौधरी बाबू ने कहा, “कुछ काल तक आपको यहाँ पर ही ठहरना होगा। आपकी गवाही की आवश्यकता होगी।”

मथुरा बाबू स्तब्ध वहाँ खड़े रह गये। समीप ही एक कुर्सी पर बैठकर वह गम्भीर विचार में डूब गये।

तलाशी कई घण्टे तक होती रही। जिस वस्तु की खोज में पुलिस आई थी वह नहीं मिली। वहाँ कोई भी सन्देहोत्पादक वस्तु नहीं थी। इस समय मिस्टर पी० के० चौधरी कुछ चिन्तापूर्ण भाव से मथुरा बाबू के पास आकर कहने लगे, “मथुरा बाबू, यहाँ तो आपकी पेटियों का अथवा उनमें आने योग्य मशीनों का नामोनिशान भी नहीं है। आपने भूल तो नहीं की?”

मथुरा बाबू यह सुन मन में प्रसन्नता अनुभव करने लगे। बोले, “हो सकता है, मिस्टर चौधरी।”

“आपको हमें बयान देना होगा।”

“क्या?”

“जो कुछ आपने मुझे कल बताया था।”

“परन्तु आप ही तो कह रहे हैं कि मेरी भूल हो सकती है, निटिंग मशीनों के क्रिप्स में तो नहीं।”

“मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा। मैं नहीं जानता यह क्या हुआ है। मैं कुछ नहीं जानता और कुछ बयान नहीं दूँगा।”

इस समय हारान तलाशी लेने वाले लोगों को साथ लेकर दफ्तर में चला आया। मथुरा बाबू के अन्तिम शब्द उसके कान में पड़ गये थे। वह चकित हो पृष्ठने लगा “क्यों, साहब, क्या बयान नहीं दोगे?”

“मैं नहीं जानता।” मथुरा बाबू ने दृढ़ता से कहा।

इस पर मिस्टर चौधरी बोले, “कुछ नहीं जानते ? और कल जो तुमने बतलाया था, “क्या वह झूठ था ?”

“मैंने जो कल बताया था सर्वथा सत्य था। परन्तु उस बात के अभिप्राय को आप न समझ सकें तो मेरा क्या दोष है ?”

मि० चौधरी ने सुपरिटेण्डेंट पुलिस से, जो तलाशी लेने आया था, कहा, “सब कागजात पर हस्ताक्षर करवा लो और मथुरा बाबू के बयान लिख लो।”

“क्या अभी और यहाँ ?”

“हाँ, पश्चात् हम देखेंगे कि क्या किया जाये।”

तलाशी का मामला तो स्पष्ट था। पुलिस को कुछ भी काम की वस्तु नहीं मिली, यह लिखकर उपस्थित लोगों में से एक-दो के हस्ताक्षर करवा लिए गये और पश्चात् सुपरिटेण्डेंट पुलिस एक कागज निकाल मेज के पास कुर्सी पर बैठ लिखने लगा। मथुरा बाबू का नाम, पिता का नाम और पता लिखकर मिस्टर चौधरी के मुख की ओर देखने लगा। मिस्टर चौधरी बहुत परेशानी की अवस्था में थे और हाथ से शिकार निकलता जान क्रुद्ध थे। उन्होंने मथुरा बाबू को डाँटकर कहा, “देखो, बाबू साहब, यह मामला बहुत गम्भीर है। बीसियों के खून की बात है। कहीं ऐसा न हो कि वास्तविक दोषी के स्थान पर आपके गले में फाँसी पड़ जाये। इस कारण जो बताना हो, सत्य-सत्य बता दो। हाँ, तो बताओ, वह सन्दूक जो कल तुम मेरे पास लाये थे, कहाँ है ?”

मथुरा बाबू इस समय तक शांत-चित हो चुके थे। वह समझने लगे थे कि इस मामले में कोई भी बात हारान के सम्बन्ध की नहीं करनी चाहिए। साथ ही वह यह भी समझते थे कि अपने-आपको भी सुरक्षित रखने का यत्न करना चाहिये। उन्होंने उत्तर दिया, “सन्दूक तो मैं रेल के डिब्बे में छोड़ आया हूँ।”

“अपने साथ क्यों नहीं लाये ? उस पर तुमने एक रुपया खर्च किया था।”

“वह था तीन आने दाम का। एक टूटा सन्दूक उठाते हुए मुझ लज्जा प्रतीत हुई, मैंने उसे छोड़ दिया।”

“वह सन्दूक तुमको कहाँ से मिला था ?”

“बाजार में एक कबाड़ी के पास से।”

“तुमने उसका क्या दाम दिया था ?”

“एक रुपया।”

“इतना अधिक दाम क्यों दिया ? वह तो तीन आने दाम की वस्तु थी।”

“हाँ, परन्तु मैं समझता था कि वह मेरे काम की होगी।”

“किस काम की होगी ?”

“मेरा विचार था कि सन्दूकची वैसी ही थी जैसी मैंने एक मशीन के साथ देखी थी।”

“कौन मशीन ?”

“एक निर्दिग मशीन। परन्तु मैं अब समझता हूँ कि यह मेरा भ्रम था। उसमें क्या था, मैं नहीं बता सकता।”

“उसमें एक बम भी बन्द हो सकता है ?”

“मैंने बम कभी नहीं देखा। सो यह मैं कैसे बता सकता हूँ ?”

“बम एक छोटी-सी गोल वस्तु होती है। वह उस डिब्बे में आ सकती है।”

“मैं नहीं जानता। यह तो आप अपने बयान में बता सकते हैं।”

“वैसा सन्दूक एक निर्दिग मशीन के साथ आपने कहाँ देखा था ?”

“मेरा विचार था कि हारान वावू के कारखाने का वह सन्दूक है। परन्तु मैं निश्चय से नहीं कह सकता। मेरा केवल अनुमान-मात्र था।”

“तो कल तुमने मुझे यह क्यों कहा था कि तुम्हें विश्वास है ?”

“जिस बात को मैं कल निश्चित समझता था, वह आज अनिश्चित प्रतीत होती है। मनुष्य की बुद्धि ही तो है।”

इसके पश्चात् हारान वावू के बयान लिए गये। मिस्टर चौधरी पूछने लगे, “दिसम्बर मास में एक दिन मयुरा वावू तुम्हारे कारखाने में आये थे क्या ?”

“हाँ।”

“किस कारण से आये थे ?”

“कमिश्नर साहब की मोटर का बियरिंग टूट गया था और वह शीघ्र बनवाना था। मयुरा वावू के कारखाने में वह इतना शीघ्र नहीं बन सकता था। इस कारण वह हमसे बनवाने को लाये थे। हमारे पास वैसा बियरिंग बना हुआ तैयार था।”

“उस समय कोई पार्सल मयुरा वावू ने विक्रेते अथवा लोगों को दिये जत्ते दिये थे क्या ?”

“हो सकता है।”

“मयुरा वावू ने पूछा था कि उनमें क्या था ?”

“मुझे स्मरण नहीं। हो सकता है कि पूछा हो।”

“तुमने क्या उत्तर दिया था ? क्या तुमको स्मरण है ?”

“यदि उन्होंने पूछा होगा तो अवश्य मैंने उत्तर दिया होगा। मैंने निश्चय वही वस्तु बताई होगी जो उस पार्सल में रही होगी।”

“मयुरा वावू कहते हैं कि पार्सल में एक विशेष प्रकार की निर्दिग मशीन थी। तुमने ऐसा ही बताया था ?”

“मुझे तो कुछ स्मरण नहीं। निर्दिग मशीनें न हमने बनाई हैं, न बेची है। हाँ, मशीनों के नट अवश्य बेचे हैं। बेचे भी सन्दूकों में बन्द करके हैं।”

इस पर मि० चौधरी चकराये और उन्होंने फिर पूछा, “निर्दिग मशीनें अथवा मशीन-नट्स ?”

“मशीन-नट्स हम बनाते हैं और बेचते हैं। निर्दिष्ट मशीनों की बाबत मैं कुछ नहीं जानता।”

इसके पश्चात् मिस्टर चौधरी और पुलिस के सब लोग वहाँ से विदा हो गये। कारखाने से बाहर निकलते समय मिस्टर चौधरी ने मथुरा बाबू से कहा, “तुमने हमें बहुत धोखा दिया है और तुम अपने किये पर पछताओगे।”

मथुरा बाबू ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। वह बहुत ही उदास चित्त अपने घर चले गये।

इस घटना के लगभग एक सप्ताह पश्चात् हारान बाबू और मथुरा बाबू दोनों पकड़कर ‘डिटैन्ड’ बना लिये गये। इनके कागजात पर खुफिया रिपोर्ट यह थी कि ये अत्यन्त भयंकर षड्यन्त्रकारी हैं। यद्यपि इनके विपरीत दोष सिद्ध नहीं किया जा सकता, तो भी सरकार को विश्वास हो गया है कि इनको खुला छोड़ देना सर्व-साधारण के लिए महान् भय का कारण है।

हारान के पकड़े जाने के पश्चात् उसका कारखाना बन्द कर दिया गया। सब सामान नीलाम कर दिया गया और उसमें काम करने वाले कारीगर मैमनसिंह से कहीं बाहर चले गये।

मोहन बाबू मथुरा बाबू के कारखाने के मालिक बन गये। उन्होंने बहुत यत्न किया कि हारान के कारखाने के कारीगर उनके यहाँ काम करने लगे, परन्तु उनमें से एक ने भी यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

अहिंसा-मार्ग

पूर्णमा ने फिल्म कम्पनी का काम छोड़कर अपनी पूरी शक्ति और समय कांग्रेस के काम में व्यय करना आरम्भ कर दिया। सेठ कुंजविहारी भी कलकत्ते में रहते थे और पूर्णमा का यह कथन कि मधुसूदन को छोड़ने का केवल एक उपाय है और वह है कांग्रेस-आंदोलन को सफल बनाना, उन्हें जँच गया था। इस कारण उन्होंने भी इस आंदोलन में एड़ी से चोटी तक का जोर लगा दिया।

नरोत्तम पूर्णमा का यह नया जीवन देख हँसा करता था। वह कहा करता था कि आखिर हिन्दू स्त्री है। पूजा, पाठ, ध्यान, उपासना, महात्माओं की सेवा इससे छूट नहीं सकता। उसका विचार था कि स्त्री भावुकता का पुंज है। संसार-भर की स्त्रियों से अधिक भारतवर्ष की हिन्दू स्त्रियाँ भावुकता के पीछे अपना सर्वस्व दे सकती हैं।

पूर्णमा अब नरोत्तम के इस उपहास का कुछ उत्तर नहीं देती थी। वह अपने

काम में इतनी संलग्न थी कि उसके पास वाद-विवाद के लिए समय नहीं था। घर पर चर्चा कातना, खदर की फेरी करना, कांग्रेस-कमेटी की बैठकों में और सर्वसाधारण के लिए जलसों में सम्मिलित होना, व्याख्यान देना, भजन-मंडलियों को तैयार करना, स्त्री स्वयं-सेविकाओं की परेडों में भाग लेना—अभिप्राय यह कि चौबीस घण्टे में सोलह-सत्रह घण्टे वह सार्वजनिक कामों में व्यस्त रहती थी।

कुछ ही दिनों में पूर्णिमा एक अच्छी-खासी नेता बन गई। अब कोई भी जलसा अथवा जुलूस होता तो वहाँ उसे अवश्य आमन्त्रित किया जाता था। अब कांग्रेस-क्षेत्र में उसका एक स्थान बन गया था। उसकी श्लाघा करने वाले, उसके नेतृत्व में चलने वाले, उसकी राय पर वलिहारी जाने वालों की संख्या बहुत हो गई थी।

इंप्रेशनो में उसकी आवश्यकता होती थी। जुलूसों में, जलसों में वह एक बृहत् आकर्षण थी। अभिप्राय यह कि वह सागर की एक महान् लहर में पड़ गई। वह उस लहर में बिना इच्छा के और बिना प्रयत्न के बहती जाती थी। वह स्वयं उसमें आनन्द अनुभव करती थी। जब किसी सभा में उसके एक-एक वाक्य पर सहस्रों की करतल-ध्वनि होती थी तो वह मस्ती से झूम जाती थी। उसे एक प्रकार का नशा-सा चढ़ गया था और उसमें वह अपनी सुध-बुध खो बैठी थी।

सेठ साहब पूर्णिमा के साथ-साथ परछाई की भाँति रहते थे। वह समझते थे कि मधुसूदन के लिए यह सबकुछ हो रहा है। इस कारण उनकी दृष्टि में पूर्णिमा एक हिन्दू सती की भाँति अपना सुख-आराम जलती चिता में भस्म कर रही थी। एक-दो बार उनकी नरोत्तम से भेंट हुई तो नरोत्तम ने उलाहना देते हुए कहा, “आपने पूर्णिमा को अति विकट मार्ग पर डाल दिया है।”

सेठ साहब ने उत्तर में कहा, “भैया, यह मैं नहीं, प्रत्युत् यह वह है जिसने मुझे इस मार्ग पर घसीट लिया है।”

“क्या आप इसमें सफलता की आशा करते हैं?”

“मैं दार्शनिक नहीं हूँ। मैं तो एक बात जानता हूँ और वह यह है कि कांग्रेस की महानता को अधिक करने से ही मेरे मन की बात हो सकती है। मैं मधुसूदन को छुड़वाना चाहता हूँ। मुझे देश में एक भी ऐसी पार्टी नहीं दीखती जो इन कैदियों से सहानुभूति रखती हो। कांग्रेस वालों के विचार अधिक विशाल, उदार और स्वतन्त्र हैं। दूसरे लोग अपनी संकुचित रुढ़ियों में फँसे हुए हैं। उनसे मुझे किंचित्मात्र भी आशा नहीं। तुम्हारी वहन इस बात को समझती है और वह इसके लिए प्रयत्न कर रही है। मुझे भी ऐसा ही ठीक प्रतीत होता है। इस कारण मैं भी यही कर रहा हूँ।”

कांग्रेस में केवल देवता ही सम्मिलित हों, ऐसा नहीं था। कुछ ऊँचे मस्तिष्क

पूर्णमा को एक तुच्छ नर्तकी 'सिनेमा-एक्ट्रेस' और सेठ साहव की प्रेमिका समझते थे। वे लोग उससे बातचीत करना भी अपना अपमान समझते थे। महात्मा गांधी के आंदोलन में ऐसे लोग भी सम्मिलित थे जो चरित्र की महिमा बहुत ऊँचे स्वर से गाते थे। परन्तु नेता लोग जब यह देखते थे कि पूर्णमा का नाम विज्ञापन में देने से अधिक लोग इकट्ठे होते हैं, उसे जुलूस में ले जाने से रौनक बढ़ जाती है और डैपुटेशनों में रखने से चन्दा अधिक मिलता है तो वे उसको निमन्त्रण देने पर बाध्य हो जाते थे। उसे एक साधारण स्त्री मानते हुए भी वे उसे मंच पर सहन कर लेते थे।

कुछ लोग ऐसे भी थे जो पूर्णमा के इस उत्साहपूर्ण, अनथक प्रयत्न में कोई प्रेम-कथा छिपी पाते थे। ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं थी जो पूर्णमा के चंचल नेत्रों के प्रकाश में अपने-आपको कृतकृत्य करना चाहते थे अथवा उसके चन्द्र-तुल्य मुख की मुस्कराहट देखने के लिए लालायित रहते थे। अतएव उच्च मस्तिष्कों की घृणा कांग्रेस-क्षेत्र में पूर्णमा की उन्नति रोक न सकी।

इन्हीं दिनों आलोक फिल्म कम्पनी का 'काली' चित्र प्रदर्शन के लिए रखा गया। इस पिक्चर ने जहाँ पूर्णमा की ख्याति को चार चाँद लगा दिए, वहाँ फिल्म कम्पनी की आय को भी कई गुणा बढ़ा दिया। संसार की गति ऐसी ही है। असंबंधित बातें भी परस्पर एक-दूसरे की सहायक हो जाती हैं।

: २ :

अचानक एक दिन यह समाचार मिला कि महात्मा गांधी, वायसराय के उत्तर से असन्तुष्ट हो, सावरमती आश्रम के साथ सत्याग्रहियों को लेकर नमक-कर के विरोध में सत्याग्रह करने के लिए डाण्डी चल पड़े हैं। देश-भर के लोग अवाक् मुख इस नये ढंग के सत्याग्रह के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगे। अभी देश-भर के लोगों को महात्माजी का यही आदेश था कि वे प्रतीक्षा करें। उनके पकड़े जाने के पश्चात् देशव्यापी सत्याग्रह आरम्भ किया जाये।

नमक-सत्याग्रह एक सांकेतिक आंदोलन था। इसका अभिप्राय यह था कि अंग्रेजी सरकार को भारतवासियों पर कर लगाने का अधिकार नहीं है। इस कारण कोई सर्व-व्यापक कर देना बन्द करने का निर्णय हुआ। महात्मा गांधी ने नमक-कर का विरोध सबसे अधिक उपयुक्त समझा। डाण्डी गुजरात प्रांत में, सागर-तट पर एक स्थान है। वहाँ समुद्र के जल से नमक निकाला जाता है। महात्मा गांधी अहमदाबाद से पैदल वहाँ पहुँचे। उनके साथ सावरमती आश्रम के साथ सत्याग्रही थे। उन्होंने वहाँ बिना कर दिए नमक तैयार करने का यत्न किया और सरकार ने उन्हें इस अपराध में पकड़ लिया। उन पर मुकदमा चलाया गया और जेल भेज दिया गया।

विद्युत् की भाँति देश-भर में यह समाचार फैल गया और स्थान-स्थान पर

नमक-सत्याग्रह आरम्भ हो गया। जहाँ कहीं भी नमक वाले जल का पता मिला, लोग वहाँ पहुँचे और नमक बनाने का यत्न करने लगे। ये सत्याग्रही नमक बनाकर सरकार को कर नहीं देना चाहते थे। यह कर न देना ही सत्याग्रह था और सरकार इसे पसन्द नहीं करती थी। दो मास के भीतर सत्तर हजार से अधिक लोग कारावास भेज दिये गये। इस पर भी सत्याग्रह का वेग कम नहीं हुआ।

कलकत्ते में भी नमक-सत्याग्रह आरम्भ किया गया। वारी-वारी से, छोटे-छोटे झुंडों में लोग नमक बनाने के लिए श्रद्धानन्द पार्क में एकत्रित होते थे और हजारों की भीड़ में बन्दी बना लिए जाते थे। जब ये सत्याग्रही बन्दी बना अदालत में उपस्थित किये जाते तो ये लोग मुकदमे की पैरवी नहीं करते थे और इनको केवल पुलिस के वयान पर दण्ड दे दिया जाता था।

ऐसा प्रतीत होता था कि इस अभिनय से सरकार कुछ थक गई है। इस कारण उसने धारा १४४ के अनुसार जलसे-जुलूस बन्द कर दिये और लोगों को एक स्थान पर एकत्रित होने से रोक दिया। इस आज्ञा के लागू होते ही जो पहला जलसा हुआ वह लाठियाँ मार-मारकर तितर-बितर कर दिया गया। अब नमक बनाने के लिए केवल वही लोग आते थे जो लाठियों की मार खाने को तैयार रहते थे।

एक दिन पूर्णिमा की वारी भी आई। कांग्रेस-कमेटी के प्रायः सब बड़े-बड़े सदस्य पकड़े जा चुके थे। कुछ छोटे-मोटे लोग और नये बनने वाले सदस्य सत्याग्रह के लिए आ रहे थे। इस पर भी सत्याग्रहियों का ताँता बँधा हुआ था। ये लोग सिर फुड़वाने के लिए तैयार होकर आते थे। पूर्णिमा की इच्छा थी कि केवल सत्याग्रही स्त्रियाँ ही उसके साथ हों। अतएव उसने स्त्रियों का एक जत्था तैयार किया। यह जत्था एक सौ एक स्त्रियों का था। इतना बड़ा जत्था अभी तक पुरुषों का भी नहीं निकला था। यह पूर्णिमा की सर्वप्रियता के कारण था।

कलकत्ते-भर में धूम थी कि पूर्णिमा एक सौ सत्याग्रही स्त्रियों के साथ जुलूस बनाकर निकलेगी। पुलिस वाले भी इस बात को जान गये थे, परन्तु वे निर्णय नहीं कर सके कि वे इनके साथ पुरुषों का-सा व्यवहार करें अथवा न। अफसर स्त्रियों पर लाठियों के प्रयोग के विरोधी थे, परन्तु उनको पकड़ ले जाना भी सहज नहीं था। वे जानते थे कि स्त्रियाँ सड़क पर लेट जायेंगी। उनको उठाने के लिए यदि हाथ लगाया गया, तो सम्भव है, दर्शकों में जोश फैल जाये और बलवा हो जाय। परिस्थिति बहुत विकट थी।

पुलिस अपने पूरे दल-बल के साथ ग्रे स्ट्रीट के कोने पर खड़ी थी। जुलूस आया। सबसे आगे पूर्णिमा थी। पीछे पाँच-पाँच की पंक्तियों में अन्य सत्याग्रही स्त्रियाँ थीं। जुलूस के दोनों ओर हजारों की संख्या में लोग थे। नवयुवकों ने हाथ

पकड़कर स्त्रियों के चारों ओर घेरा डाला हुआ था ताकि भीड़ में वे कुचल न जावें।

जुलूस में चलते-चलते पूर्णिमा और उसकी साथियों ने गाना आरम्भ किया :

हम कौम के भाग जगो देंगे ।

सिर-धड़ की वाजी लगा करके ॥

इन लाठियों, बरछों, भालों से न डरा हमको हम डरते नहीं ।

सच्चाई की वीन बजा करके हम झूठ का दुर्ग उड़ा देंगे ॥

अब और जुल्म नहीं सह सकते मत छोड़ो कौमी दीवानों को ।

रख जान हथेली पै निकले हैं यह पाप की नगरी मिटा देंगे ॥

गाना धीरे-धीरे अधिक और अधिक जोर पकड़ता गया। जुलूस की सब स्त्रियाँ गाने लगीं। इस गाने में और उस समय की परिस्थिति में कुछ जादू भरा था। जो युवक घेरा बनाये थे वे और घेरे के बाहर के लोग भूल गये कि वे जुलूस का अंग नहीं हैं। वे भी गाने लगे। लाखों नर-कण्ठों की ध्वनि-प्रतिध्वनि से आकाश गूँज उठा।

यह वृहद् जनसमूह समुद्र के ज्वार-भाटे की भाँति गरजता हुआ उमड़ा चला आता था। एक बार तो पुलिस के लोगों के मन भी दहल गए। लगभग दो सौ पुलिस कांस्टेबल लाठियाँ हाथों में लिए हुए कुछ पुलिस अफसरों और दो मजिस्ट्रेटों के अधीन इस बहती हुई बाढ़ के सम्मुख चट्टान की भाँति खड़े थे। एक बार तो पुलिस अफसरों के मन में अपनी शक्ति पर सन्देह हुआ। वे कुछ डर गए। वे सोचते थे कि कहीं इस तूफान में वे एक घास-फूस के झोंपड़े की भाँति बह न जायें। इस भय में एक बात थी जो उनके हृदय को सांत्वना देती थी। वह थी महात्मा गांधी का सत्याग्रहियों को अहिंसात्मक रहने का आदेश। वे समझते थे कि जब तक ये लोग अहिंसा-पथ पर आरुढ़ हैं तब तक वे भेड़-बकरियों से अधिक नहीं। वे उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

जुलूस पुलिस के सम्मुख पहुँचकर खड़ा हो गया। लोग आसपास के मकानों के छज्जों, खिड़कियों और छतों पर लदे हुए थे। सड़क के बीच एक सौ एक स्त्रियाँ केसरी साड़ियाँ पहने हुए पंक्तिबद्ध खड़ी थीं। सबके आगे पूर्णिमा थी। स्त्रियों के आसपास घेरा बाँधे हुए कुछ युवक थे। घेरे का असंख्य जनसमूह था। एक मजिस्ट्रेट किसी ऊँचे स्थान पर खड़ा हो गया और जोर से चिल्लाकर कहने लगा, "यह जुलूस धारा १४४ के अनुसार वजित है। तितर-बितर हो जाओ, अन्यथा लाठी-चार्ज किया जायेगा।"

जुलूस की स्त्रियाँ वहीं सड़क पर बैठ गईं। कोई वहाँ पर एक स्टूल ले आया। पूर्णिमा ने उस पर खड़े होकर हाथ ऊँचा कर लोगों को चुप हो जाने को

कहा। जैसे जादू के उण्डे में किसी को सम्मोहित कर लिया जाता है वैसे ही यह अतुल जनसमूह पूर्णिमा का हाथ उठते ही एकदम चुप हो गया। ऐसी शान्ति जैसी निर्जन वन में होती है। पुलिस के अफसर इस जादू-भरे व्यक्तित्व से घबरा गये। वे यह जानते थे कि जो लोगों पर इतना प्रभाव रखती है वह उनसे कुछ भी करवा सकती है। मुट्ठी-भर पुलिस वालों की इतने लोगों के सम्मुख क्या गणना थी। यदि कुछ आशा थी तो यह कि पूर्णिमा और अन्य सत्याग्रहियों ने अहिंसा का व्रत लिया हुआ था। वे भली-भाँति समझते थे कि पूर्णिमा यदि कुछ बोलेगी तो हिंसा के विरोध में बोलेगी और इस प्रकार पुलिस के काम में सहायता देगी। इस कारण इस चुप में वे भी सम्मिलित थे।

पूर्णिमा ने कहा, “आप जानते हैं कि हम सत्याग्रह क्यों कर रहे हैं? हम ऐसी सरकार को नहीं देना चाहते जो हमारे दिये गये कर से बड़े-बड़े वेतन लेने के अतिरिक्त हमारा कुछ भी भला नहीं करती। सब करों से अधिक अन्याय-पूर्ण, अधिक व्यापक और गरीबों के जीवन पर प्रभाव डालने वाला नमक-कर है। हमने निश्चय किया है कि हम यह कर नहीं देंगे। सरकार यह कर लाठियों के बल से प्राप्त करना चाहती है। हमने व्रत लिया है कि लाठी का उत्तर लाठी से नहीं देंगे। हम तो अपना काम करेंगे अर्थात् नमक, जो हमारे देश में उत्पन्न होता है, एकत्रित करेंगे। यह बात हम करेंगे। चाहे लाठियाँ चलें, चाहे बन्दूकें। हमारे नेता का कहना है कि किसी अत्याचारी के हाथों को रोकने का सबसे बढ़िया उपाय उसके अत्याचार को सहन कर भी अपने काम में संलग्न रहना है।

“अभी लाठियाँ चलेंगी, सिर फूटेंगे, हाथ-पाँव टूटेंगे। अनेक जनों की जानें जायेंगी। यह कोई ऐसी बात नहीं जिससे हम घबरा जायें। हम तो यह सब जानते हुए निकले हैं। हाँ, एक बात है। इन लाठियों को खाते हुए भी हमें किमी पर प्रहार नहीं करना चाहिये। हम और ये पुलिस वाले भी जानते हैं कि यदि यह जनसमूह प्रहार करने लगा तो वह इनको कच्चा चवा जायेगा। परन्तु यह हमारा काम नहीं है। हमें तो केवल कर देने की अवहेलना करनी है, हिंसा का उत्तर नहीं देना।

“यदि आपमें से कोई यह समझता है कि वह लाठियों और अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार नहीं सह सकता तो वह यहाँ से चला जाये। आज की लड़ाई तो ऐसी ही होगी।” उसने गाना आरम्भ कर दिया :

इन लाठियों, बरछों, भालों से न डरा हमको हम डरते नहीं।

सच्चाई की बीन बजा करके, हम झूठ का दुर्ग उड़ा देंगे।

सिर-धड़ की बाजी लगा करके, हम देश के भाग जगा देंगे।

जब सब लोग यह गीत गा रहे थे, पूर्णिमा की दृष्टि समीप ही घेरा बांधने वाले युवकों में से एक युवक पर पड़ी। वह युवक कमल था। लोग गा रहे थे,

परन्तु उसकी आँखों में एक विशेष चमक थी। वह एकटक पुलिस इंस्पेक्टर की ओर देख रहा था। पूर्णिमा इसका अभिप्राय समझ गई। उसने समझा, कोई हत्याकाण्ड होने वाला है। 'एक्शन' के पूर्व 'कमल' की आँखों में ऐसी चमक वह पहले भी देख चुकी थी। इस विचार के मन में उठते ही उसका मुख पीला पड़ गया। उसने विद्युत् की तरह अपने कार्य का निर्णय कर लिया और उसका मुख जोर से भिंच गया, मानो उसने कोई विकट निश्चय कर लिया हो।

पूर्णिमा की इस छोटी-सी वक्तृता के पश्चात् फिर घोर नाद आरम्भ हो गया। तुमुल शोर में कोई किसी की सुन नहीं सकता था। पुलिस इंस्पेक्टर ने यत्न किया कि भीड़ को वहाँ से हटा दे। पुलिस वालों ने स्त्रियों के गिर्द घेरा बनाने का यत्न किया, परन्तु जो घेरा पहले बना हुआ था वह टूटा नहीं। इसमें कुछ खीचाताानी होने लगी। एक ओर तो पुलिस और भीड़ की धक्केवाजी भी आरम्भ हो गई। पुलिस सत्याग्रहियों को घेरे में ले लेना चाहती थी। लोग यह नहीं चाहते थे। धक्केवाजी का यही कारण था। इसी बीच में किसी ने एक पुलिस कांस्टेबल की पगड़ी उछाल दी। वह लोगों के सिरों के ऊपर गेंद की भाँति उछलने लगी।

पुलिस इंस्पेक्टर और दूसरे अफसरों ने बात को सीमा के बाहर होता देख पुलिस के सिपाहियों को एक पंक्ति में खड़ा होने की आज्ञा दे दी।

पुलिस वालों ने लाठियाँ तान लीं। लोग अभी कांस्टेबल की पगड़ी से खेल ही रहे थे कि लाठी-चार्ज का हुक्म दे दिया गया। लाठियाँ लोगों पर बरसाई जा रही थीं। सत्याग्रहियों पर नहीं, सत्याग्रही स्त्रियाँ भूमि पर बैठी थीं।

पूर्णिमा यह कुछ नहीं देख रही थी। उसका ध्यान कमल पर था। कमल अभी भी पुलिस इंस्पेक्टर की ओर देख रहा था। एक हाथ उसका जेब में था। पूर्णिमा समझती थी कि इस जेब वाले हाथ में रिवॉल्वर है।

लाठी-चार्ज से लोगों की भीड़ तितर-बितर हो रही थी। युवकों का घेरा टूट गया था। यह ठीक था कि वीसियों युवक लाठियों से घायल सड़क पर लोट-पोट हो रहे थे, परन्तु प्रायः लोग भाग गए थे। इसी समय पुलिस इंस्पेक्टर लपककर पूर्णिमा के पास पहुँचा। पूर्णिमा का ध्यान उसकी ओर नहीं था। वह देख रही थी कि कमल का हाथ जेब से बाहर निकल रहा है और उसमें कुछ काली वस्तु पकड़ी हुई है।

बात करने का समय नहीं था। इंस्पेक्टर पूर्णिमा को क्या कहने अथवा करने आया था, जानने का समय नहीं था। कमल निशाना बाँध रहा था। पूर्णिमा ने इंस्पेक्टर को बड़े जोर का धक्का दे दिया। वह पीठ के बल गिर पड़ा और पूर्णिमा उसके सम्मुख खड़ी हो गई। इसी समय गोली चलने का शब्द हुआ और पूर्णिमा की चीख निकल गई। उसके कंधे से रक्त की धारा बहने लगी और वह बेहोश

हो गई।

लोगों ने, जो मकानों पर खड़े देख रहे थे, समझा कि इंस्पेक्टर ने पूर्णिमा को हाथ में पकड़कर खींचा है और पाँव फिसलने से वह गिर पड़ा है। इससे पुलिस ने गोली चला दी है। इधर लोगों ने, गोली की आवाज सुन और लाठियों के धक्-धक् चलने का शब्द सुन, ईंट और पत्थरों की वीछार आरम्भ कर दी। पुलिस ने भी पूरे जोर से लाठियाँ चलाई।

पाँच मिनट के भीतर वह विशाल जनसमूह शून्य में विलीन हो गया। केवल कई सौ ज़ख्मी सड़क पर इधर-उधर पड़े थे। स्त्री सत्याग्रहियों में भी वीसियों को चोटें आई थीं। पुलिस के भी तीन-चार लोग पत्थरों से घायल हुए थे। पुलिस इंस्पेक्टर पूर्णिमा के कारण बाल-बाल बच गया। उसने उठते ही गोली चलाने वाले की तलाश आरम्भ कर दी, परन्तु वहाँ इतनी घमासान मची हुई थी कि गोली चलाने वाले का पता नहीं चला।

सब सड़क पर दूर-दूर तक हाय-हाय और कराहने के अतिरिक्त और कोई शब्द सुनाई नहीं देता था। पुलिस ने पूर्णिमा को एम्बुलेंस-कार में लादकर अस्पताल भेज दिया। दूसरे घायलों को दूसरी गाड़ियों में लादकर कांग्रेस के लोग ले गये।

पूर्णिमा की अवस्था शोचनीय थी। गोली उसकी पीठ में कंधे की हड्डी पर लगी थी। हड्डी टूट गई थी। परन्तु गोली वहीं पर अटक गई थी। जब वह अस्पताल में पहुँची तो वह बेहोश थी और कंधे से रक्त-स्राव हो रहा था।

डॉक्टर ने 'ऑपरेशन' कर गोली निकाल डाली और घाव को सी डाला।

: ३ :

पुलिस इंस्पेक्टर जब थाने में पहुँचा तो रिपोर्ट तैयार होने लगी। सीनियर सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस वहाँ पर उपस्थित था। उसने इंस्पेक्टर से घटना का सब वर्णन सुना और पूछा, "तो गोली तुम लोगों ने नहीं चलाई?"

"हुज़ूर, नहीं। गोली किसी ने भीड़ में से चलाई थी। जब मैं पूर्णिमादेवी के पास पहुँचा तो वह भीड़ में किसी को देख रही थी। मेरे और पास पहुँचने पर अकस्मात् उसने मुझे धक्का दे दिया। मेरा पाँव किसी वस्तु से अटक गया और मैं गिर गया। वह मेरे ऊपर हो गई। इसी समय गोली चली।"

"तो तुमने उसे नहीं धकेला?"

"नहीं, मैंने तो उसे हाथ भी नहीं लगाया। उसने धक्का इतना अकस्मात् दिया था कि मैं संभल नहीं सका। मेरी समझ में तो यही आता है कि मुझे गोली से बचाने के लिए वह मेरे आगे खड़ी हो गई थी।"

सुपरिंटेंडेंट यह बयान सुनकर चकित रह गया। कहने लगा, "ये जैतान सत्याग्रही ग़ब्र कर रहे हैं। अपनी जान तक को हथेली पर लिए घूम रहे हैं।"

अच्छा, क्या इन औरतों में से कोई भागी ?”

“एक भी नहीं। सब-की-सब सड़क पर बैठ गई थीं। जब लाठियाँ पड़ने लगीं तो उनके मुख से ‘हरिनाम सिमर, हरिनाम सिमर’ के अतिरिक्त कुछ नहीं निकला। उन्होंने सिर नीचा कर पीठ पर लाठियाँ ऐसे खाईं मानो कोई उन्हें प्यार दे रहा हो। एक और बात देखी। एक दस-ग्यारह वर्ष का लड़का हाथ में पत्थर ले नारने को तैयार था। एक सत्याग्रही स्त्री ने उसे देख लिया। उसने उसका हाथ पकड़ लिया। इतने में एक कांस्टेबल वहाँ पहुँच लड़के पर प्रहार करने लगा। उस स्त्री ने उस लड़के को गोदी में ले लिया और आप उसके ऊपर हो गई। कांस्टेबल की लाठी रुकी नहीं। धक्-धक् उस स्त्री की पीठ पर पड़ती गई। वह बेहोश हो गई। मुझसे नहीं रहा गया। मैंने उस कांस्टेबल को रोक दिया।”

सुपरिटेण्डेंट एक लम्बी आह खींचकर चुप हो गया। उसकी आँखें कुछ भीग आई थीं। जब से हमाल निकाल अपना चश्मा पोंछते हुए कहने लगा, “मैं अस्पताल में जा रहा हूँ, तुम रिपोर्ट तैयार करवा दो।”

सुपरिटेण्डेंट अपनी कार में अस्पताल पहुँचा तो उसने देखा कि वहाँ कांग्रेस के मुख्य लोग एकत्रित हैं। उसके पाँव तले से मिट्टी खिसक गई। उसे पूर्णिमा की मृत्यु की आशंका हो गई थी। परन्तु वहाँ लोगों से पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि पूर्णिमा की माता और भाई वहाँ हैं और उनको पूर्णिमा के पास जाने की इजाजत नहीं मिल रही। इस कारण भीड़ एकत्रित हो रही है।

पूर्णिमा की गोली निकाल दी गई थी और घाव पर पट्टी कर दी गई थी। परन्तु वह अभी क्लोरोफॉर्म के प्रभाव से अचेत थी। डॉक्टर का विचार था कि ऊँध बहुत गहरा है, परन्तु किसी मर्म स्थान को चोट नहीं आई। वह वच जायेगी।

सेठ कुजबिहारी ने पुलिस सुपरिटेण्डेंट से पूछा, “क्यों साहब, पूर्णिमा बन्दी है या मुक्त ?”

सुपरिटेण्डेंट इस प्रश्न से चकराया। वह इस प्रश्न के उत्तर के लिए तैयार नहीं था। बोला, “मुझे कुछ मालूम नहीं। आपका इससे मतलब ?”

“मतलब तो बहुत सीधा है। यदि वह बन्दी है तो हम उसके आराम के लिए प्रेजीडेंसी मजिस्ट्रेट में मिलें और यदि मुक्त है तो अस्पताल के लोगों से कह उसे जनरल वार्ड में निकाल प्राइवेट वार्ड में ले जाने के लिए प्रबन्ध करें। जनरल वार्ड में उसकी सेवा-मश्रूपा शायद ठीक नहीं हो सकेगी।”

सुपरिटेण्डेंट ने कुछ सोचकर कहा, “उसके बन्दी होने या मुक्त होने के विषय में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। इस पर भी उसके प्राइवेट वार्ड में ले जाने और उनके सम्बन्धियों के पास ठहरने का प्रबन्ध मैं किये देता हूँ।”

इतना कहकर उसने अस्पताल के अधिकारियों से मिलकर सब प्रबन्ध करवा

दिया।

एसोशियेटेड प्रेस के प्रतिनिधि के पूछने पर उसने कहा, “गोली पुलिस ने नहीं चलाई। यह गोली पुलिस इंस्पेक्टर पर चलाई गई थी। केवल इत्तफाक से पूर्णिमा को लग गई है। गोली चलाने वाले की तलाश की जा रही है।”

इस घटना के कई दिन बाद की बात है। पूर्णिमा तब तक अस्पताल में ही थी। हड्डी का एक टुकड़ा अभी भीतर रह गया था। इस कारण दुबारा ऑपरेशन की आवश्यकता हुई थी। अब उसे हल्का ज्वर भी रहने लगा था। नरोत्तम और उसकी माँ की चिंता बढ़ रही थी। दिन-प्रतिदिन पूर्णिमा दुर्बल होती जाती थी।

पुलिस ने पूर्णिमा पर मुकदमा चलाने का विचार छोड़ दिया था। इसमें सीनियर सुपरिटेण्डेंट पुलिस का बहुत हाथ था। वह पूर्णिमा पर गोली चलाने वाले का नाम बताने से इंकार करने के कारण बहुत प्रभावित हुआ था।

वह एक दिन पूर्णिमा का वयान लेने के लिये सब-इंस्पेक्टर पुलिस को लेकर अस्पताल में पहुँचा। उसने पूछा, “आपने गोली चलाने वाले को देखा था?”

“हाँ।”

“आप उसको पहचानती हैं?”

“हाँ।”

“उसका नाम और परिचय भी जानती हैं?”

“हाँ।”

“तो वह कौन था?”

“मैं नहीं बताऊँगी।”

“क्यों?”

“मैं लोगों को फँसाने अथवा उनको फाँसी दिलाने के लिए नहीं हूँ।”

“परन्तु उसने तो पुलिस इंस्पेक्टर को मार डालने की कोशिश की थी। तुम्हें तो लगभग मार ही डाला था। ऐमे व्यक्ति पर दया करना तो हिंसा को प्रोत्साहन देना है।”

“उसने भूल की थी और वह भूल कर रहा है। ऐसी ही भूल जैसी कि पुलिस के लोग निहत्थों पर लाठियाँ मार-मारकर करते हैं। यदि मैंने एक पुलिस के अफसर की, जो गोली चलाने वाले से कम हिंसा करने वाला नहीं, जान बचाने के लिए अपनी जान दे दी थी, तो मैं गोली चलाने वाले को बचाने के लिए भी कष्ट सहन कर सकती हूँ। पुलिस के अफसर की जान बचानी यदि वहादुरी और अच्छा काम है तो गोली मारने वाले की जान बचाना अच्छा काम क्यों नहीं? मेरी दृष्टि में दोनों भूल कर रहे थे। दोनों एकसमान दोषी हैं। दोनों की भूल सुधारने का मेरे पास एक ही उपाय है और वह है स्वयं कष्ट सहना। उन पर कष्ट न आने देना।”

सुपरिटेण्डेंट ने फिर कहा, “परन्तु दोनों में बड़ा अन्तर है। एक तो कानून ने

निर्मित सरकार का दूत है और दूसरा स्वेच्छाचारी। एक तो केवल दूसरे के हाथ में हथियार है और दूसरा विचार कर, हानि-लाभ जानकर, खूनी बना हुआ है।”

“जिसको तुम कानून कहते हो, उसे हम अन्याय कहते हैं। ऐसे कानून से निर्मित सरकार अन्याय के आधार पर बनी सरकार मानी जाती है। उसके एजेण्ट अन्याय की पुष्टि तथा समर्थन करने वाले हैं। इस पर भी जब ऐसे अन्याय करने वाले को कोई मारना चाहता है तो मैं उसकी जान बचाना अपना धर्म समझती हूँ। इसी प्रकार गोली चलाने वाले को आततायी समझते हुए भी मैं उसकी जान बचाऊँगी, चाहे मुझ पर कितना ही कष्ट क्यों न आवे।”

इन सीधे-सादे शब्दों ने पुलिस सुपरिटेण्डेंट के दिमाग में हलचल मचा दी थी। एक सत्याग्रही के मन का चित्र उसके सम्मुख आज स्पष्ट होकर आया था। उसने ब्रह्मचर्य वाले कागज को बन्द कर एक बार ध्यान में पूर्णिमा के मुख की ओर देखा और यह कहते हुए उठ खड़ा हुआ, “मिस पूर्णिमा, क्षमा करना। मैंने आपको व्यर्थ कष्ट दिया है। यथार्थ में मुझे आपसे गोली चलाने वाले का नाम-धाम पूछने का यत्न ही नहीं करना चाहिये था। यदि आप शत्रु की, जो आप पर लाठियों से प्रहार कर रहा हो, जान बचाने के लिए अपनी जान दे सकती हैं, तो आपसे यह आशा नहीं करनी चाहिये थी कि आप किसी और को, चाहे वह कितना ही दोषी क्यों न हो, फँसाने में भाग लेंगी। अच्छी बात है, अब मैं जाता हूँ और अब आपके बयान लेने नहीं आऊँगा।”

सीनियर सुपरिटेण्डेंट पुलिस अधेड़ उम्र के एक पंजाबी हिन्दू थे। उनका नाम रामचन्द्र टंडन था। मिस्टर टंडन बहुत साहस और बुद्धि वाले थे। कई पड़्यंत्र के मुकदमों की खोज में उन्होंने भाग लिया था। एक बम-केस में इन्होंने बहुत ही मेहनत और चतुराई से मुकदमे के रहस्य को मुलझाया था। यही कारण था कि एक हिन्दुस्तानी होने हुए भी महकमा-पुलिस के इतने बड़े ओहदे पर पहुँच सके थे। परन्तु उन तमाम बमबाजों और पड़्यंत्रकारियों ने इतनी मुलभ और प्रभावशाली युक्ति नहीं दी थी। पूर्णिमा के उक्त कथन के पश्चात् उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि वह इस मामले में पूर्णिमा को नहीं घसीटेंगे। उसे अपनी आत्मा की आवाज के अनुकूल काम करने दिया जाय, यही उनका अन्तिम निर्णय था।

उन्होंने न जाने क्या रिपोर्ट लिखी थी कि उसके परिणामस्वरूप सरकार ने पूर्णिमा को छोड़ दिया।

एक दिन नरोत्तम ने पूर्णिमा को बहुत प्रसन्न पाया। देखा तो ज्वर नहीं था। यद्यपि कंधे पर अभी पीड़ा थी, परन्तु डॉक्टर की सम्मति में अब उसका ठीक हो जाना केवल कुछ दिनों की बात थी। नरोत्तम बहिन को आज प्रसन्न देख बोला, “बहिन, यह देख कि तुम आज प्रसन्न हो, मुझे अति हर्ष हो रहा है। डॉक्टर से अभी मिलकर आ रहा हूँ। वह भी कहता है कि तुम्हें शीघ्र ही यहाँ से मुक्त कर दिया

जायेगा ।”

पूर्णमा ने कहा, “हाँ, परन्तु मेरी प्रसन्नता का कारण कुछ और ही है ।”

“वह क्या है ?”

“गोली चलाने वाला अब नहीं पकड़ा जायेगा ।”

“कौन ? जिसने तुम्हें गोली मारी थी ?”

“हाँ ।”

“तो तुम इसमें प्रसन्न हो ?”

“हाँ ।”

“यह क्यों ?”

“इस कारण कि यह सत्याग्रह और अहिंसावाद की जीत है ।”

“क्या कह रही हो तुम ? वह कौन था जिसने गोली चलाई थी ?”

“वह कमल था । मैंने उसे गोली चलाने समय देख लिया था । और इसी कारण मैं उस इन्स्पेक्टर की जान बचाने में सफल हो सकी थी । सुपरिटेण्डेंट मिस्टर टण्डन ने मुझसे बहुत बार उसका नाम पूछा था, परन्तु मैंने केवल यही कहा था कि मैं जानती हूँ परन्तु बताऊँगी नहीं । मैंने उन्हें इसका प्रयोजन भी बताया था । वह तब मेरी बात को ठीक समझ मान गये थे । आज वह कमल को लेकर मेरे पास आये थे । कहने लगे, ‘यह लो, हम आपकी सहायता के बिना भी इसको पकड़ लाए हैं ।’

“मैंने कहा, ‘इससे मेरा सम्बन्ध नहीं है । आप जानें, आपका काम जाने ।’

“सुपरिटेण्डेंट ने कहा, ‘परन्तु बिना आपकी गवाही के हम इस पर दोष सिद्ध नहीं कर सकते ।’

“मैंने कहा था, ‘पूर्व इसके कि आप मुझे गवाही के लिए बुलायें, मैं इस संसार में नहीं रहूँगी । मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण किसी को फाँसी मिले ।’

‘तो आप मजिस्ट्रेट के सम्मुख झूठ बोल देना कि गोली मारने वाला यह नहीं था ।’

“मैंने पूछा, ‘क्या आपका काम मेरी गवाही के बिना नहीं चल सकता ?’

‘नहीं । यदि इसके पास पिस्तौल मिल जाता और गोली पिस्तौल में डीक आ जाती तो आपकी गवाही छोड़ी जा सकती थी । परन्तु ऐसा नहीं हो सका ।’

‘तो आपको विश्वास कैसे हुआ कि यह वही आदमी है ?’

‘इस बात का निश्चय हो गया है । कुछ और लोगों ने इसे पहचान लिया है । पहचान तो आपने भी लिया है, परन्तु मैं देखना चाहता था कि आप झूठ बोलेंगी अथवा नहीं ।’

‘मैं झूठ नहीं बोलूँगी । परन्तु यदि मेरी ही गवाही से इसे फाँसी मिलती है तो मैं उस गवाही देने से पहले ही इस शरीर को त्याग दूँगी । यदि मैं यह समझती कि दोषी को दोष का दण्ड मिलने में बाधा नहीं डालनी चाहिये तो मैं पुलिस

इन्स्पेक्टर को गोली का निशाना बन जाने देती। मुझे उसके आगे खड़े होकर गोली का निशाना बनने की क्या आवश्यकता थी? मैं समझती हूँ कि इसको दण्ड देने के स्थान पर छोड़ देना अधिक उपयुक्त है। इसको इस हत्या के पथ से हटाकर किसी उपयोगी काम में लगाने की आवश्यकता है। यह तो केवल क्षमा करने से हो सकता है। इसने मुझे गोली मारी है, मैं इसे क्षमा करती हूँ।'

'परन्तु कानून इसे क्षमा नहीं करता। कानून सूर्य-चन्द्र की भाँति अटल है। वह किसी की इच्छा-अनिच्छा का विचार नहीं करता।'

'वह कानून आपका है। आप जानें। मैं तो आपके कानून को अन्यायपूर्ण समझती हूँ। क्या यह सत्य नहीं कि कितने ही गोरों को, हत्या करने पर, साधारण-सा दण्ड देकर छोड़ दिया जाता है? यदि आपका कानून न्याय का कानून होता तो वह अंग्रेज अपराधियों के विषय में ढीला न हो जाता। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैंने इस युवक को क्षमा कर दिया है। मेरी कानून को सहायता देने के विषय में बात स्पष्ट है कि मैं इस कानून को कानून नहीं मानती। इस कारण उसकी सहायता नहीं करूँगी। मैं झूठ भी नहीं बोल सकती। इस कारण मैं अपने प्राणों की आहुति दे दूँगी।'

'मेरा इतना कहना सुन और मेरे शब्दों से मेरा दृढ़ निश्चय जानकर वह काँप उठा। अन्त में उसने कमल की ओर देखकर कहा, 'मिस्टर कमल, तुम बिना घर गये कलकत्ते से बाहर निकल जाओ। जब यह देवी तुम्हें क्षमा कर रही है तो मैं इसमें बाधा नहीं डाल सकता, परन्तु तुम्हारा यहाँ रहना भयरहित नहीं है। यदि मैंने तुम्हें यहाँ देखा तो मैं तुम्हें गोली मार दूँगा। चले जाओ यहाँ से। और देखो, अगर इंसान के वच्चे हो तो फिर ऐसा काम न करना।'

'कमल रो रहा था। उसने मेरे पाँवों को छूकर कहा, 'देवी, मैंने बहुत अपराध किये हैं, परन्तु आपने माता की भाँति अपने बालक को क्षमा कर दिया है। मैं आपकी स्मृति अपनी माता के साथ अपने हृदय पर सदा रखूँगा।' इतना कह वह मेरे चरणों पर मस्तक नवा चला गया।

'मुपरिटेन्डेण्ट कुछ देर ठहरकर उठ खड़ा हुआ और कहते लगा, 'मिम पूर्णिमा, मैंने बीस वर्ष तक पुलिस की नौकरी की है, परन्तु ऐसी परिस्थिति में मैं कभी नहीं फँसा। वम-केसों में बड़े-बड़े भद्र पुरुषों को लड़कों को अपनी जान बचाते के लिए झूठ बोलते देखा है। कितने ही क्रांतिकारी मेरे सम्मुख आ चुके हैं, परन्तु सब-के-सब पूरे सच मिल जाने पर भी अन्त तक कहते ही गये हैं कि वे झूठ-मूठ में पकड़ लिये गये हैं। उनमें इतना साहस कभी नहीं हुआ कि वे भरी अदालत में यह कह दें कि 'हाँ, हमने यह किया है और अन्याय को मिटाने के लिए किया है।' वे वकील के व्यर्थ के कानूनी पेचों की आड़ में बच जाना चाहते हैं। परन्तु आज आपने मुझे भारी शिक्षा दी है। मेरी धारणा थी कि हिन्दुस्तानी राजनीतिक

कार्यकर्ता भीरु, झूठे और अपने कामों पर विश्वास न रखने वाले होते हैं, परन्तु आपको देख और सुनकर वह मिट गई है।' इतना कह वह बिदा हो गया।

"भैया, क्या यह कम प्रसन्नता की बात है?"

नरोत्तम यह सब बात सुनकर क्रोध से लाल-पीला हो उठा था। पूछने लगा, "तो गोली चलाने वाला कमल था?"

"हाँ।"

"तुमने पहले क्यों नहीं बताया?"

"बताती तो तुम उसका हुलिया इत्यादि सब पुलिस को बता देते।"

"पूर्णमा, तुमने बहुत बुरा किया है। क्या तुम भूल गई हो कि उस ही के कारण मधुसूदन इस समय बन्दी बना हुआ है?"

पूर्णमा ने आँखें मूँद लीं। उसके स्वतन्त्रतावादी गालों पर श्वेत मोती झलकने लगे। बहुत धीमे स्वर में बोली, "भैया, सबकुछ याद है। परन्तु मेरा अहिंसा-व्रत बदला लेने की आज्ञा नहीं देता।"

नरोत्तम ने क्रोध से कहा, "अहिंसा ! धिक्कार है तुम्हारी अहिंसा को। तुमने आज फँसे शत्रु को हाथ से निकल जाने दिया।"

पूर्णमा ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। उसने मुख पर चादर ओढ़ ली और रोती रही।

दूसरे दिन नरोत्तम जब अस्पताल गया तो पूर्णमा ने दैनिक पत्र में एक समाचार पर उँगली रख उसे पढ़ने को कहा। लिखा था, 'मिस्टर आर० सी० टण्डन का नौकरी से इस्तीफा।' इस शीर्षक के नीचे लिखा था, "मिस्टर टण्डन कलकत्ता पुलिस में एक मण्डूर तथा पुराने अफसर थे। यह कहा जाता है कि जब से सत्याग्रहियों पर लाठी-चार्ज होने लगा है, मिस्टर टण्डन अपने अफसरों से इस मामले में सहमत नहीं थे। इसी के परिणामस्वरूप उन्होंने पुलिस की नौकरी छोड़ दी है।"

'उन्होंने कई डाकुओं को पकड़कर मँडल प्राप्त किये हैं। एक बम-केस की तहकीकात में उन्होंने विशेष भाग लिया था। यह भी कहा जाता है कि अब उन्हें राय साहब की पदवी मिलने वाली थी।'

बन्दी जीवन

जब मधुसूदन झाँसी डैटन्यूज कैम्प में पहुँचाया गया तो उसका स्वप्न भंग हुआ। उसका इलाहाबाद से बनारस जाना और वहाँ पर पूर्णमा की खोज में

गायघाट जाने पर पकड़ा जाना, इलाहाबाद में कठोर यन्त्रणा पाना और वहाँ से बिना मुकदमे के बन्दी बनाकर झाँसी भेजा जाना—ये सब बातें इतनी जल्दी-जल्दी घटीं और इतनी विचित्रता से कि उसे यह सब स्वप्न ही प्रतीत होता था। जब उसे झाँसी के किले में ले जाकर उसकी कोठरी दिखाई गई तब उसे चेतना हुई। अब उसने अपने जीवन में इस परिवर्तन का अनुमान लगाया।

उसकी सब आशाएँ, भविष्य के मतसूत्र, देश तथा जाति के उत्थान के स्वप्न और पूर्णिमा के साथ जीवन-यात्रा का सबसे मीठा विचार—सब स्वप्न हो गये और कठोर सत्य की वह बन्दी है, किले की काली-काली ऊँची दीवारें उसको सब संसार से, अपनी आशाओं, आकांक्षाओं और प्रियजनों से पृथक् कर रही हैं, उसके सम्मुख पिशाच की भाँति नाचने लगा। एक बार उसके मुख से निकला, 'देव ! यह क्या ?'

मधुसूदन की बगल में कपड़ों की एक गठरी थी। सिपाही उसे एक कोठरी के सामने खड़ा कर और यह कहकर कि यह उसकी कोठरी है, चला गया। मधुसूदन उस कोठरी के सम्मुख खड़ा विस्मय में मोच रहा था कि क्या करे। कोठरी का फर्श सीमेंट का बना था। उसकी एक दीवार के साथ फर्श से दो फुट ऊँचा, छः फुट लम्बा और चार फुट चौड़ा एक चबूतरा बना था। इस प्रकार वहाँ बहुत-सी कोठरियों की एक पंक्ति थी। उनमें यह भी एक थी। कोठरी में प्रकाश अथवा हवा आने को दरवाजे के सिवाय और कोई मार्ग नहीं था।

कोठरी बहुत मैली थी। जब से बनी थी तभी से उसकी सफाई नहीं हुई थी। फर्श पर बहुत गर्दा पड़ा हुआ था। बाहर बरामदा कोठरी से कुछ साफ था। उसे वहाँ पहुँचाने वाला जब चला गया तो मधुसूदन को विचार आया कि उससे झाड़ू की बाबत पूछ लेता।

मधुसूदन ने दूसरी कोठरियों की ओर दृष्टि दौड़ाई। उसकी कोठरी से बाईं ओर की सब खुली और वैसे ही गंदी थीं जैसे उसकी कोठरी। मधुसूदन जब वहाँ पहुँचा था तो प्रातःकाल के चार बजे थे। चाँद के प्रकाश में ही उसने यह सबकुछ देखा था। सूर्योदय अभी नहीं हुआ था। उसकी कोठरी की दाहिनी ओर भी कुछ और कोठरियाँ थीं और उनमें कुछ लोग थे। परन्तु अभी वे लोग सो रहे थे। मधुसूदन बरामदे में इन कोठरियों के सम्मुख से गुजर गया। सब कोठरियाँ ग्यारह थीं। उसकी अपनी कोठरी बारहवीं थी।

उसके पाँव की आहत से एक आदमी जाग उठा। प्रायः सब कोठरियों के दरवाजे खुले थे। यह जागने वाला उठकर कोठरी के बाहर निकल आया। अँधेरे में वह मधुसूदन को और मधुसूदन उसे भली-भाँति देख नहीं सका। उसने पूछा, "आप कौन हैं ?"

"एक नया बन्दी।"

“कब आये ?”

“अभी यहाँ लाया गया हूँ। अँधेरा इतना था कि भली-भाँति अपनी कोठरी के भीतर देख नहीं सका। इस कारण वरामदे में घूमकर समय व्यतीत कर रहा हूँ।”

“तो आप नम्बर बारह हैं ?”

“मैं आपका मतलब नहीं समझा।”

“मेरा मतलब यह है कि बारह नम्बर की कोठरी में आप आये हैं। कल जमादार कह रहा था कि एक बंदी और आने वाला है।”

“अच्छा !”

“क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ ?”

“मधुसूदन उपाध्याय।”

“अभी तो अँधेरा है। कोठरी में न जाने कोई बिच्छू छिपा हो। प्रकाश हो जाने पर सफाई कर लेना। बाहर सेहत में आ जाइये। वहाँ कुछ ठण्डा मालूम होता है।”

मधुसूदन उसके पीछे वरामदे से बाहर खुले मैदान में चला आया। उस आदमी ने अपना परिचय देते हुए कहा, “मैं मिदनापुर ज़िले का रहने वाला हूँ। मेरा नाम हरिहर चक्रवर्ती है। मुझे इस स्थान पर लाये गये आज तीन वर्ष हो चुके हैं। आप कहाँ के रहने वाले हैं ?”

“मैं इलाहाबाद का रहने वाला हूँ।”

इसके पश्चात् चक्रवर्ती ने यहाँ की बातों से उसे परिचित करना उचित जानकर कहा, “यहाँ हम ग्यारह बंदी पहले हैं। आप बारहवें साथी हैं। यहाँ सब इक्कीस कोठरियाँ बनाई गई हैं। उनमें से अभी तक दस खाली थीं। आज एक मे आप आ गये हैं। यहाँ हमारे एक नेता हैं। उनका नाम विभूतिनन्दन है। हैं तो वह बड़े उद्दण्ड, परन्तु मन के साफ और दबंग हैं। उनसे जेल के जमादार इत्यादि सब घबराते हैं। हम लोग भी उनकी मानते हैं। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि यहाँ अफसरों से बातचीत करने में उन जैसा निर्भीक आदमी कोई नहीं है। पुलिस के अफसर तो, आप समझते हैं, प्रायः गँवार होते हैं। उनके साथ पढ़े-लिखे सभ्यों का-सा व्यवहार सफल नहीं होता।”

बातें करते-करते कुछ-कुछ रोशनी होने लगी थी। इस प्रकाश में मधुसूदन उस स्थान को देख रहा था जहाँ अब उसे न जाने भावी जीवन के कितने वर्ष व्यतीत करने हैं। एक खुला अहाता था, कोई साठ फुट चौड़ा और अस्सी फुट लम्बा जिसके एक तरफ रहने के लिए कोठरियाँ थीं। ये कोठरियाँ अठारह फुट ऊँची थीं और इनके आगे वरामदा बारह फुट ऊँचा था। कोठरियाँ अहाते के दक्षिण की ओर थीं। अहाते के पूर्व और उत्तर की ओर किले की बाहरी दीवारें

थीं जो भीतर से जमीन में लगभग पैंतीस फुट ऊँची थीं। इसमें यह प्रतीत होता था कि यह अहाता किले के एक कोने में बनाया गया है। अहाते के पश्चिम की तरफ तिमंजिले मकान थे। अहाते में तो मकानों का पिछवाड़ा लगता था। इन मकानों का मुख कहीं बाहर की ओर था। अहाते में इन मकानों में आने-जाने का कोई मार्ग नहीं था। केवल तीसरी मंजिल पर दो खिड़कियाँ इस ओर खुलती थीं। वे भी नई बनाई गई थीं। इस अहाते में आने के लिए पश्चिम-दक्षिण के कोने में मकानों के नीचे से एक मार्ग आता था। यह मार्ग बहुत तंग था और लोहे के फाटक से सुरक्षित था।

अहाते के बीचोबीच पानी के लिए नल लगा था। यह चौबीस घण्टे पानी देता था। अहाते के पूर्व-उत्तर कोने में टट्टीखाने बने थे और वे बाहर से ही साफ हो सकते थे। सफाई के विचार से इसे दूसरे जेलखानों से अधिक उत्तम समझा जाता था।

इस समय बन्दियों में से कुछ अन्य लोग भी जाग गये थे। वे सब मधुसूदन के पास आकर खड़े हो रहे थे। चक्रवर्ती ने उनसे मधुसूदन का परिचय कराया। वह कहने लगा, “यह हमारे नये साथी हैं जिनकी बाबत कल जमादार कह रहा था।”

सबने हाथ मिलाकर मधुसूदन की आवभगत की। तब तक काफी प्रकाश हो चुका था। मधुसूदन ने पूछा, “आपके नेता साहब नहीं आये?”

“नहीं। वह अभी नहीं जागे। पूरे पाश्चात्य सभ्यता की उपज हैं। जब तक सूर्य भगवान् अपनी किरणों से उनके मुख का चुम्बन नहीं कर लेते तब तक आप खाट पर पड़े रुठे रहते हैं।”

मधुसूदन अब अपनी कोठरी के पास पहुँचा। प्रातःकाल अँधेरे में उसने उसके गन्दे होने का अनुमान लगाया था। अब वास्तव में उसने उसे बहुत ही खराब अवस्था में पाया। दीवार और छत पर से जाला लटक रहा था। मधुसूदन ने कपड़ों की गठरी एक तरफ रख दी। बदन से कपड़े उतार नहाने की धोती पहन ली और गठरी से एक अँगोछा निकाल कोठरी साफ करने लगा।

वह इस काम में बहुत उत्साह से लगा हुआ था। इस समय सुपरिटेण्डेंट जेल जमादार के साथ वहाँ पहुँच गया। कोठरी नंबर बारह के सम्मुख पहुँच जमादार ने मधुसूदन की ओर संकेत कर कहा, “हुजूर, यह नया कैदी है।”

सुपरिटेण्डेंट उसे कोठरी साफ करते देख कुछ झेंपा और बोला, “यह काम तो भंगी का है। तुम क्यों कर रहे हो?”

मधुसूदन, यह शब्द सुन मिट्टी से लथपथ, कोठरी से बाहर निकल आया। एक हष्ट-पुष्ट पुरुष को सूट-बूट पहने, चपरासियों की सी पोशाक में दो-तीन आदमियों के साथ, वहाँ खड़े देख वह कहने लगा, “क्षमा करें। क्या मैं जान सकता

हैं, आप कौन हैं ?”

जमादार ने, जो सुपरिटेण्डेंट के पास ही खड़ा था, कहा, “वाह ! देखते नहीं, सुपरिटेण्डेंट साहब हैं ।”

मधुसूदन ने हाथ से अँगोछा, जिससे वह छत का जाला उतार रहा था, नीचे रख सलाम की ओर कहा, “क्षमा करें । मैं नहीं जानता था और जान भी कैसे सकता था ? पहली ही बार तो आपके दर्शन हुए हैं । परन्तु श्रीमान्, अगर यह काम भंगी का था तो मेरे पहुँचने से पहले ही हो जाता । खैर, कुछ हानि नहीं हुई । मैंने तो केवल यही किया है जो एक कुत्ता अथवा बिल्ली कर लेते हैं । वे भी किसी स्थान पर बैठने से पहले अपनी दुम से उसे साफ कर लेते हैं ।”

सुपरिटेण्डेंट ने जमादार को डाँटकर पूछा, “क्यों वे, जब तुझे कल बता दिया था तो सफाई क्यों नहीं की गई ?”

“हजूर, भंगी को कह दिया था । वह अभी आता होता ।”

“जल्दी बुलाओ और अभी ठीक करवाओ ।”

इस समय सुपरिटेण्डेंट ने अपनी जेब से एक कागज निकालकर उसे पढ़ते हुए पूछा, “तुम्हारा नाम मधुसूदन बल्द श्यामाचरण है ?”

“हाँ साहब ।”

“तुम यहाँ बन्दी तब तक हो जब तक संयुक्त प्रांत की सरकार कोई दूसरा हुक्म नहीं भेजती । तुम्हें सरकार ने छः आने रोज़ खुराक के लिए मंजूर किये हैं । इससे अधिक अगर जरूरत हो तो अपने रिश्तेदारों से मँगवा सकते हो । महीने में एक चिट्ठी लिख सकते हो और एक बार किसी से मुलाकात कर सकते हो ।”

इतना कहकर उसने वह कागज लपेटकर जेब में रख लिया और बिना कुछ मुने वहाँ से चला गया । मधुसूदन पुनः सफाई के काम में लग गया ।

झाड़-पोंछकर कोठरी साफ कर ली । नल के पास एक मिट्टी का घड़ा रखा था । उसमें पानी भरकर उसने कोठरी धो डाली । अब उसने शौचादि से निवृत्त होने की ओर ध्यान दिया ।

जब वह स्नान कर रहा था तो विभूतिनन्दन अंगड़ाइयाँ लेता हुआ नल के पास आकर खड़ा हो गया और बोला, “हैलो काँमरेड, कब तशरीफ लाये हैं ?”

“तशरीफ !” इतना कह मधुसूदन प्रश्न करने वाले का मुख देखने लगा । विभूतिनन्दन ने मुस्कराते हुए कहा, “आप तो ऐसे स्नान कर रहे हैं, मानो जन्म-जन्मान्तर के पाप धो रहे हैं ।”

मधुसूदन ने आँखें नीची कर कहा, “हाँ ।”

“ओह ! यह चुटिया आपकी बहुत लम्बी है ।”

मधुसूदन ने उत्तर दिया, “हाँ ।” अब वह धोती बदल रहा था । गीली धोती उतारकर उसने सूखी पहन ली और उसको निचोड़कर हाथ में पकड़ लिया ।

इतना कर वह अपनी कोठरी की ओर चला आया। विभूति उसका जाना देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ा। मधुसूदन ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया।

कोठरी में पहुँचकर उसने आसन बिछा लिया और ध्यानावस्थित हो पूजन आरम्भ कर दिया। आज उसके इस नये जीवन का पहला दिन था। इस समय वह बारम्बार भगवान् से यही प्रार्थना कर रहा था कि इस दुस्तर सागर से शीघ्र नौका पार लग जाये। स्वभावानुकूल उसने सन्ध्योपासना के पश्चात् कीर्तन आरम्भ कर दिया :

अंखियाँ हरि-दर्शन की प्यासी ।

देखन चहत कमल नयनन को,

निसिदिन रहत उदासी ॥ अंखियाँ.....

जब गाने का रंग जमा तो दूसरे वन्दी, चुम्बक की ओर लोहे की भाँति, आकर्षित हो मधुसूदन की कोठरी के बाहर आकर एकत्रित हो गये। विभूतिनन्दन भी शीघ्र इत्यादि में निवृत्त हो अपनी कोठरी की ओर जा रहा था। वह मधुसूदन के गाने की आवाज सुन और उसकी कोठरी के बाहर दूसरे वन्दियों को एकत्रित देख वहाँ पहुँच गया। मधुसूदन गा रहा था :

कुब्जा को जिन पार उतारा, कंस मार भू भार उतारा ।

वह मुन्दर चितवन देखन को, द्वार खड़ी है दासी ॥ अंखियाँ.....

न जाने विभूतिनन्दन के मन में क्या आया कि अत्यन्त भद्दी आवाज में ई-ई-ई कर मधुसूदन की नकल उतारने लगा। जैसे किसी भयानक घटना के होने से स्वप्न टूट जाता है वैसे ही सुनने वालों का ध्यान टूट गया।

मधुसूदन तो अपने गाने में मस्त था, परन्तु श्रोताओं को यह भला प्रतीत नहीं हुआ। इस पर मधुसूदन की कोठरी से एक तरफ हट उन्होंने प्रश्न-भरी दृष्टि से विभूतिनन्दन की ओर देखा। विभूतिनन्दन ने उन्हें कहा, “मेरी कोठरी में चले आओ। मैं एक बात बताता हूँ।” सब उसके पीछे-पीछे चले गये। केवल हरिहर चक्रवर्ती नहीं गया। वह मधुसूदन की कोठरी में चला गया और आसन के पास पलथी मारकर बैठ गया।

जब मधुसूदन आरती समाप्त कर चुका और उसने आँखें खोलीं तो चक्रवर्ती को सम्मुख बैठा देखा। उसने कहा, “ओह, आप यहाँ हैं !”

चक्रवर्ती ने मुस्कराते हुए कहा, “हाँ, और एक विशेष प्रयोजन से।”

“क्या है ?”

“सबसे बड़ा प्रयोजन तो आत्मतुष्टि थी। आठ वर्ष से मैंने कोई अच्छा गाना नहीं सुना था। आज सुनकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। परन्तु एक बात और भी है। वह यह कि आपका यह आचार-व्यवहार यहाँ चल नहीं सकेगा।”

“कैसा आचार-व्यवहार ?”

†-

“यही पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन, चुटिया, धोती, अँगोछा। यहाँ रहने वाले यह सबकुछ नहीं करते।”

मधुसूदन ने अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, “क्यों? क्या यह यहाँ के नियम के विपरीत है?”

“नियम के विपरीत तो नहीं। हाँ, यहाँ की जलवायु के अनुकूल नहीं है। जब मैं यहाँ आया था तो नित्य गीता का पाठ किया करता था, परन्तु उससे इतना भारी बवण्डर उठा कि गीता उसमें उड़ गई।”

मधुसूदन ने फिर पूछा, “मैं आपके कथन का अभिप्राय समझा नहीं।”

“बात यह है कि हमारे नेता कॉमरेड विभूतिनन्दन पूरे नास्तिक हैं। वह किसी की आस्तिकता को सहन नहीं कर सकते।”

“और क्या वह चाहते हैं कि उनकी नास्तिकता सहन की जाये?”

“बहुमत की यहाँ तूती बोलती है।”

“परन्तु अल्पमत का भी तो कुछ अधिकार होना चाहिये।”

“यहाँ पर अल्पमत वालों को खाने, पहनने और रहने का अधिकार है।”

“परन्तु पूजा-पाठ से तो किसी को कष्ट नहीं होता। मैं अपने साथ जो चाहूँ करूँ, जो चाहूँ सोचूँ और जैसे चाहूँ रहूँ। जब तक मेरे व्यवहार से किसी के सोचने, काम करने और अन्य सुविधाओं में बाधा नहीं होती, तब तक किसी को मेरे काम में बाधा डालनी उचित नहीं।”

“आप कहते तो ठीक हैं, परन्तु दूसरे पक्ष वाले आपके व्यवहार को इस कारण खराब कहते हैं कि यह देखने वालों को भीरु, अपाहिज, गुलाम और विचारहीन बनाता है।”

“केवल देखने मात्र से?”

“हाँ।”

“तो वे मुझे न देखें।”

“परन्तु जब आप इतने ऊँचे स्वर से गाते हैं तो वे कान कैसे बन्द कर सकते हैं?”

“ओह! तो यह जेल में दूसरा जेल है।”

“हाँ, सब भारतवर्ष ही ऐसा है।”

“परन्तु आपने ऐसी अयुक्तिसंगत बात करने वालों को नेता क्यों बना रखा है?”

“केवल इस कारण कि वह हमारे अधिकारों की अफसरों से लड़-झगड़कर रक्षा करता है।”

“किन अधिकारों की?”

“एक दिन रोटी वासी मिली थी तो मिस्टर विभूतिनन्दन सुपरिटेण्डेंट से झगड़

पड़े थे, जमादार को पीट दिया था और बासी रोटी लाने वाले का मुख काला कर दिया था।”

“और फिर रोटी ठीक आने लगी थी?”

“हाँ, और मिगरेट, चाय, साबुन, तेल, पाउडर सब चीजें जो हम चाहें और जिनके लिए हम दाम दें, वे मिलने लगी हैं।”

“आपको समाचार-पत्र भी मिलते हैं?”

“नहीं। उनके लिए सरकार ने अभी खर्चा स्वीकार नहीं किया।”

“परन्तु जब आप मिगरेट इत्यादि के लिए खर्चा देते हैं तो समाचार-पत्र के लिए क्यों नहीं दे सकते?”

इस समय एक बन्दी चक्रवर्ती को बुलाने आया। उसने कहा, “नेता बुलाते हैं।”

चक्रवर्ती उठकर चला गया।

इस समय जमादार एक नौकर के साथ खाना लेकर आया। जमादार ने मधुसूदन से पूछा, “क्या खाइयेगा?”

“जो कुछ मिल सके।”

नौकर ने टोकरी, जिसमें रोटी, दाल, भाजी, चावल, सिगरेट, चाय, गुड़, जवकर इत्यादि खाने योग्य पदार्थ रखे थे, भूमि पर रख दी। जमादार ने इन सबको दिखाते हुए कहा, “यह ठेकेदार का आदमी है। जो कुछ आप चाहें छः आने के अन्दर-अन्दर ले सकते हैं।”

मधुसूदन ने नौकर से पूछा, “भाई, तुम कौन हो?”

“ब्राह्मण तिवारी।”

“और यह सबकुछ ब्राह्मण के हाथ का बना है?”

“हाँ, बिल्कुल।”

“तो भाई, हमें चार रोटी, दाल और भाजी दे दो।”

“चार रोटी एक आना, भाजी एक आना, दाल मुफ्त। दो आने कुल।”

जमादार ने दो आने नौकर को दिये और बाकी चार आने मधुसूदन के सम्मुख फेंक चला गया। नौकर अपनी टोकरी उठा उसके पीछे हो लिया।

मधुसूदन ने दो रोटी इस समय खा लीं और दो सायंकाल के लिए रख दीं।

जब जमादार विभूतिनन्दन के कमरे में पहुँचा तो वहाँ सब बन्दीयों की सभा हो रही थी। वह पहले तो कुछ चकराया। कारण यह था कि एक बार पहले जब उसे पीटा गया था तब भी सबने मिलकर सभा में राय कर ली थी। विभूतिनन्दन ने जमादार को काँपते देख मुस्कराने हुए कहा, “क्यों जमादार, वहीं क्यों ठहर गये?”

जमादार ने डरते-डरते कहा, “सरकार, अगर कोई बात मेरे विपरीत हो तो

आप मुझे कह दें। मैं, जहाँ तक मेरा अधिकार है, आपकी रुचि के अनुसार ही कहूँगा। मैं नहीं चाहता कि आप व्यर्थ में मुझे पीटने का कष्ट उठायें।”

इस पर विभूतिनन्दन ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा, “मेरे यार, तुमने भी तो हमें कठोर दण्ड दिलवाया था।”

“परन्तु मुझे उसमें क्या लाभ हुआ ? मेरी मार तो वापस नहीं हो गई। मेरी तो हड्डियाँ अभी भी पीड़ा करती हैं। मैं नहीं चाहता कि फिर एक बार वही कुछ हो जो पिछले साल हुआ था।”

विभूतिनन्दन ने जमादार को आश्वासन दिलाते हुए कहा, “डरो नहीं। यह सभा तुम्हारे लिए नहीं है। अच्छा, तो नये बन्दी ने क्या खाने को लिया है ?”

जमादार ने नाक-भों चढ़ाते हुए कहा, “मिर्फ चार रोटी और भाजी। महा-कंजूस और गँवार है, साहब।”

विभूतिनन्दन ने कुछ उत्सुकता से पूछा, “वाकी दाम का क्या किया है ?”

“उठाकर जेब में रख लिया है।”

सब हँसने लगे। इसके पश्चात् सबने दिन-भर के लिए खाने का सामान ले लिया। चक्रवर्ती के अतिरिक्त प्रायः सबका बिल छः आने से अधिक हो गया था। हरिहर चक्रवर्ती ने साढ़े पाँच आने का सामान खरीद लिया और दो पैसे जमादार को टिप दे दी।

: २ :

ज्येष्ठ का महीना था। दोपहर का समय, और धूप बहुत करारी थी। गरमी में और काम न हो सकने के कारण बन्दी अपनी-अपनी कोठरी में सो रहे थे। मधुसूदन कोठरी में चबूतरे पर चादर बिछाकर लेटा हुआ भूत और भविष्य का मन्यन कर रहा था। इतने में चक्रवर्ती वहाँ पहुँच गया। मधुसूदन उठ खड़ा हुआ और चक्रवर्ती को चबूतरे पर बैठने का संकेत कर पूछने लगा, “आप लोग दिन-भर क्या करते हैं ?”

चक्रवर्ती ने उत्तर दिया, “प्रत्येक अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल जो चाहे करता है। मैं तो खाना खाने के पश्चात् आधा घण्टा आराम करता हूँ। फिर एक पुस्तक के लिखने में लग जाता हूँ। सायंकाल छः बजे कुछ ठण्डा हो जाता है। तब एक घण्टा बाहर अहाते में टहल लेता हूँ। कभी-कभी हम परस्पर कोई खेल खेल लेते हैं। सायंकाल दिन छिपने से पूर्व कुछ खा-पी लेते हैं और तब अपनी-अपनी कोठरी में पहुँच जाते हैं। अँधेरे में कुछ हो नहीं सकता। इस कारण मैं चार-पाँच घण्टे भगवत्-भजन में व्यतीत करता हूँ। दूसरे लोग प्रायः इधर-उधर की बातें कर समय व्यतीत कर देते हैं।”

“किस विषय पर पुस्तक लिख रहे हैं ?”

“मनुष्य जाति का पतन। आजकल लोगों का विचार है कि मनुष्य जाति दिन-

प्रतिदिन अधिकाधिक उन्नत होती जाती है। इस विचार में असत्यता है। मैंने अपनी पुस्तक में यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि यह विचार असत्य और भ्रम-मूलक है।”

“आपका विचार है कि आज से दो सौ वर्ष पूर्व के लोग आजकल के लोगों से अधिक सभ्य थे।”

सभ्यता का शब्द सदैव उन्नति का पर्यायवाचक नहीं होता। सभ्यता तो समय के अनुसार जीवन व्यतीत करने को कहते हैं। जीवन का कौन-सा ढंग अच्छा है और कौन-सा बुरा, इसका मनुष्य जाति की सामूहिक उन्नति अथवा अवनति से कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं। उन्नति मे मेरा अभिप्राय अधिकाधिक सुख-शांति प्राप्त करने से है। परन्तु मिस्टर उपाध्याय, इस समय तो मैं आपके पास किसी अन्य प्रयोजन ने आया हूँ।”

“वह क्या?”

“यही कि आज हम सब वन्दियों ने अपनी एक सभा की थी और उस सभा ने मुझे आपसे एक सन्देश देने को कहा है।”

“हाँ, तो कहिये।”

“वह यह है कि आप अपनी चूटिया कटवा दें। भगवत्-भजन, आरती-कीर्तन बन्द कर दें। स्वयं कमरे की सफाई करना और इसी प्रकार के छोटे दर्जे के काम करने छोड़ दें। ऐसा करने से आप इस बंदी कैप में एक ऐसी प्रथा चलाना चाहते हैं जिसमें हम बंदियों के अधिकारों में कमी हो जाने की सम्भावना है और विचारों में पतन आ जाने का भय है।”

मधुसूदन यह सुन चकित रह गया। उसने यह समझा कि उसे उल्लू वताने के लिए उसमें मजाक किया जा रहा है। मधुसूदन चक्रवर्ती के मुख की ओर देखने लगा। परन्तु उसे सर्वथा गम्भीर देखकर पूछने लगा, “मेरी चोटी मे आप लोगों को क्या कष्ट होता है?”

“बदमुरत, भद्दी वस्तु देखने को किसका दिल चाहेगा?”

“क्या मेहन में जो कूड़ा-करकट पड़ा है उसमें भी मेरी चोटी अधिक भद्दी है?”

“परन्तु मेहन की सफाई तो हमारे हाथ में नहीं।”

“तो मेरी चोटी की सफाई आपके हाथ में है?”

“हमारे हाथ में तो नहीं, परन्तु हम आप पर सुगमता से प्रभाव डाल सकते हैं और जो बात सुगमता से हो सके उसे पहले किया ही जाता है। मेहन की सफाई के लिए तो शायद भूख-हड़ताल करनी पड़े।”

मधुसूदन मुस्कराता हुआ बोला, “मिस्टर चक्रवर्ती, मेरी समझ में एक बात नहीं आती। वह यह कि जो बात आपके वम में है और जिसके करने से वास्तविक

लाभ होगा वह तो आप नहीं करते और अनावश्यक बातों पर शक्ति का अपव्यय करते हैं। देखिये, मेरी सम्मति यह है कि हम सब लोग दिन में दो घण्टे इस सेहन की सफाई करने में और यहाँ एक सुन्दर पार्क लगाने में व्यय किया करें। अधिका-रियों से झगड़ा इस बात में करना चाहिये कि वे हम लोगों को इस बाग के बनाने के लिए औजार और दूसरी आवश्यक वस्तुएँ खरीदने की स्वीकृति दें। हम एक छोटा-सा पुस्तकालय निर्माण करें। कम-से-कम एक दैनिक पत्र मँगवाया करें। यदि कुछ मासिक पत्रिकायें भी आ सकें तो अच्छा है। इस जेल जीवन को अधिका-मे-अधिक सुगम बनाने का यत्न करें। एक ओर हम सरकार से अधिकाधिक सुविधाएँ प्राप्त करने का यत्न करें और दूसरी ओर इस व्यर्थ के खर्च को बन्द कर कुछ बचायें। इस प्रकार ये सब योजनायें पूरी हो सकती हैं। भला इनके मुकाबले में मेरी चोटी, मेरा भजन-कीर्तन, मेरा ईश्वर पर विश्वास इत्यादि का क्या अस्तित्व है ?”

“जिसका कुछ अस्तित्व नहीं उसको आप स्वयं ही क्यों नहीं मिटा देते ? मिस्टर उपाध्याय, मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह हममें से बहुमत की इच्छा है। मैं स्वयं तो आपके संगीत को पसन्द करता हूँ, परन्तु मेरे साथी संगीत में तो कुछ रुचि रखते नहीं और आपके गाने का भावार्थ वह पसन्द नहीं करते। आपने जो योजनायें बताई हैं उन पर तो हम सब विचार करेंगे जब आप हममें सम्मिलित होंगे। और आपको हम अपने में सम्मिलित तब ही करेंगे जब आप हमारी इन इच्छाओं को पूर्ण करेंगे।”

मधुसूदन ने कुछ उत्सुकता से पूछा, “यदि मैं आपकी बात न मानूँ तो आप क्या करेंगे ?”

“इसका हमने निर्णय नहीं किया।”

यह सुन मधुसूदन खिलखिलाकर हँस पड़ा। चक्रवर्ती इस हँसने का अभिप्राय समझ नहीं सका। मधुसूदन के हँसने का आशय समझने के लिए उसके मुख पर देखता रहा। जब चक्रवर्ती चुप रहा तो मधुसूदन ने आशय बताने के लिए कहा, “आपने तो इस जेल में भी एक राज्य स्थापित कर लिया है। आप उस राज्य के दूत बनकर आये हैं। आप सब बातें पक्के राजदूतों की भाँति करते हैं। क्यों, यह ठीक है न ? अच्छा तो सुनिये, मैं आपके इस राज्य-प्रबन्ध से सहमत नहीं हूँ। मैं इससे विद्रोह करता हूँ। जैसे कोई मनुष्य भाग्य अथवा दुर्भाग्य से किसी अच्छे अथवा बुरे समाज में पैदा होते हैं वैसे ही मैं दुर्भाग्य से इस स्थान पर आ टपका हूँ। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि मैं इस स्थान की अयुक्तिसंगत बातों का अनुकरण करूँ। जैसे एक समाज के अन्याय को दूर करने का उपाय उससे विद्रोह है वैसे ही मैं आपकी बातों का विरोध करता हूँ।”

चक्रवर्ती यह सुन उठकर चला गया। मधुसूदन हँसने लगा। ऐसी स्थिति

में उमे गाने की सूझी और मुख में गुनगुनाने लगा :

कर्म गति टारे नाहि टरे ।

मुनि वसिष्ठ से पण्डित ज्ञानी सोधि के लग्न धरे ॥

सीता हरण, मरण दशरथ को बन में विपत परे ॥...

चक्रवर्ती मधुसूदन की कोठरी से निकला तो सीधा विभूतिनन्दन के कमरे में पहुँचा । विभूतिनन्दन ने उत्सुकता से पूछा, “क्यों, क्या हुआ ?”

“कुछ भी परिणाम नहीं निकला । पत्थर पर पानी का मामला है ।”

“अच्छा तो छोड़ो इसको । मैं स्वयं समझ लूँगा ।”

चक्रवर्ती यद्यपि सबकी ओर से दूत बनकर गया था तो भी वह सबके मत से सहमत नहीं था । उसने पहले सभा में भी विरोध किया था, परन्तु विभूतिनन्दन के प्रस्ताव का बहुमत ने समर्थन कर दिया था । अब चक्रवर्ती ने फिर यत्न किया कि विभूतिनन्दन को शांति के मार्ग पर ले चले । उसने कहा, “मिस्टर नन्दन, मुझे तो वह जामूम प्रतीत नहीं होता । वह बहुत विद्वान् आदमी जान पड़ता है । सबने बड़ी बात यह है कि वह सभ्य है और संगीत विद्या में निपुण है । उसके यहाँ रहने से हम लोगों को कुछ भी हानि की सम्भावना नहीं ।”

विभूतिनन्दन ने कुछ उद्विग्न होकर कहा, “यह तुम्हारा विचार है न ! तुम्हारे पास कोई प्रमाण तो नहीं है । मुझे तो विश्वास हो गया है कि हममें फूट डलवाने के लिए और शायद कोई भेद की बात जानने के लिए पुलिस ने यह जासूस हममें छोड़ा है । अजीब बहुरूपियों का-सा रंग बनाया है । पूरा महात्मा बनकर आया है । केवल सूखी रोटी खाकर जीना चाहता है और अब हमको जेल में सफाई करना, बाग लगाना और इसी प्रकार के लाभदायक कामों में लगाना चाहता है । यह महापुरुष, मैं सत्य कहता हूँ, हमारा भारी अनिष्ट करने के लिए भेजा गया है ।”

चक्रवर्ती ने पूछा, “तुम्हारे पास इस लांछन के प्रमाण क्या हैं ?”

“उसकी ईश्वर-भक्ति, उसकी चोटी, उसकी धोती-अँगोछा और उसका हृष्ट-पुष्ट होना । ये सब इस बात के प्रमाण हैं कि वह कोई ढोंगी है ।”

“क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि वह बेचारा कोई निरपराध पुलिस के चंगुल में फँस गया है ?”

“कुछ भी हो, मैं उसकी परीक्षा लिए बिना नहीं रहूँगा ।”

: ३ :

संगीत एक प्रबल आकर्षण है । इसका प्रभाव केवल उन लोगों पर नहीं होता जिनकी मानसिक अवस्था विकृत हो चुकी है । मनुष्य जितना सरल हृदय रखता है उतना ही संगीत उसके लिए आकर्षणमय हो जाता है । बाल, वृद्ध, पशु-पक्षी तो इससे विशेष लगाव रखते हैं । कहा तो यह जाता है कि हिंसक जानवर

भी संगीत पर मोहित हो जाते हैं। इतना तो कम-से-कम मानना ही होगा कि यह मनुष्य के जीवन को सुखी बनाने में विशेष भाग रखता है।

प्रातःकाल का समय था। झाँसी बन्दी कैम्प के सुपरिटेण्डेंट खाट पर लट खरटि भर रहे थे कि उनकी नींद बहुत ही मधुर गीत के शब्द से खुल गई। कोई दूर, सीढी और ऊँचे स्वर में, भगवत्-भजन कर रहा था।

सुपरिटेण्डेंट को इस कैम्प में आये तीन वर्ष हो चुके थे। कभी-कभी ग्रामाफोन पर निष्कृष्ट प्रकार के गाने सुनने के अतिरिक्त अच्छा संगीत सुनने का अवसर नहीं मिला था। तीन वर्षों में आज पहली बार उन्हें इतना सरल, मधुर, चिन्त को शांत करने वाला संगीत कर्णगोचर हुआ था। उन्होंने ध्यान से सुनना आरम्भ कर दिया। गाना था :

आदि नाद ब्रह्म, विष्णु, महेश।

तुम हो सकल जगत रखवारे ॥

दयानिधे, करुणा के सागर, तुम सबके हो पालनहारे।

पतित-पावन, दीनानाथ हो, दुखियन कष्ट निवारणहारे ॥

साथ-साथ तानालाप भी आरम्भ हो गये थे। यह प्रातःकाल के समय का जाड़ा था अथवा मधुसूदन की आवाज का माधुर्य कि सात बजे से पहले न उठने वाले सुपरिटेण्डेंट आज पाँच बजे ही उठकर खाट पर बैठ गये और सोचने लगे कि यह गाने वाला कौन हो सकता है। यह अनुमान लगा कि बंदियों में से कोई गा रहा है उन्होंने बन्दियों के अहाते की ओर की खिड़की खोल दी। अहाते के पश्चिम की ओर तिमंजिले पर जो खिड़की थी वह सुपरिटेण्डेंट के रहने के स्थान में थी। खिड़की खुलते ही प्रातः समीर का एक झोंका भीतर आया और अपने साथ झोली भर मधुर गीत-रूपी फल लाया।

सुपरिटेण्डेंट सूबा सरहद जिला कोहाट के रहने वाले मिस्टर बन्नाराम एम० बी० बी० एस० थे। उन्हें नौकरी में आये दस वर्ष से ऊपर हो चुके थे। उनकी स्त्री लखनऊ के एक पंजाबी ठेकेदार की लड़की थी। वे अभी तक निःसन्तान थे और अकेले दोनों वहाँ रहते थे।

खिड़की खुलने से सुपरिटेण्डेंट की धर्मपत्नी कलावती की आँखें खुल गईं। वह पूछने लगी, “क्या है?”

“कोई बहुत अच्छा गा रहा है।”

कलावती ने ध्यान से सुनकर कहा, “कल जब आप दफ्तर गये हुए थे तब भी यही आदमी गाता था। बहुत अच्छा गाता है।”

“प्रतीत होता है कल जो नया बन्दी आया है वही है।”

“कल कोई नया बन्दी आया है! तो वही है। यह कौवों में हँस क्यों!”

मि० बन्नाराम हँस पड़े। बोले, “हाँ, पहले लोग तो चीखें मारा करते थे।”

इतने में मधुसूदन ने दूसरा गीत आरम्भ किया। यह राग भैरवी में था :
मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।

कलावती ने अचम्भा प्रकट करते हुए कहा, “यह तो कोई क्रांतिकारी प्रतीत नहीं होता।”

“क्यों?”

“मेरे मन में कुछ ऐसी धारणा बैठ गई है कि क्रांतिकारी के अर्थ हैं— असभ्य, प्रकृति से दुष्ट, निर्लज्ज, क्रूर, कला-कौशल से वंचित, आत्मा-परमात्मा को न मानने वाला, धर्म-कर्म से विहीन, वृथा बोलने वाला—अभिप्राय यह कि सर्व-दुर्गुणसम्पन्न।”

कलावती के मुख से क्रांतिकारी की ऐसी व्याख्या सुन मि० बन्नाराम बहुत हँसे। फिर कुछ गम्भीर-भाव धारण कर कहने लगे, “तुम्हारी यह धारणा बहुत अल्प अनुभव में बनी है। तुमने केवल इन दस-ग्यारह छोक़ों को देखकर ही ऐसी धारणा बना ली है। यथार्थ में ये लोग जो बन्दी बनकर आये हैं, क्रांतिकारी नहीं हैं। कुछ तो बेचारे सन्देह ही में पकड़ लिए गये हैं और कुछ किसी पुलिस अफसर की निजी शत्रुता के कारण सरकार के मेहमान बन गये हैं। इनमें प्रायः कालिजों के विद्यार्थी हैं जो किसी के सम्मुख केवल शेखी बघारने के कारण ही बन्दी बना लिए गये हैं। इनमें कोई वास्तव में देशभक्त है भी, कहना कठिन है। दूसरे देशों में जिन लोगों ने अपने देश को उन्नत करने के लिए अपना बलिदान किया है, ये बहुत उच्चकोटि के मनुष्य हुए हैं। इनमें तो किसी एक में भी सच्चे देशसेवकों का एक शतांश-भर भी उत्साह, लगन, योग्यता और बलिदान करने की शक्ति नहीं है।”

गाने का रंग खूब जम रहा था। मधुसूदन गा रहा था :

अँसुअन जल सींच-सींच प्रम बेल बोई।

मीरा प्रभु लगन लागी होनी हो सो होई॥ मेरे तो गिरधर गोपाल...

कलावती मुग्ध हो रही थी। अकस्मात् उसने पूछा, “क्या सत्य ही कोई मीरा हुई है?”

मि० बन्नाराम ने एक लम्बी साँम खींचकर कहा, “क्या जानें? हाँ, इतना तो सत्य है कि मीरा की यह कविता सजीव है। कितनी ही निराश, भग्न हृदय, दुखियारी अथवा सधवा स्त्रियों में इन भजनों ने मंत्र बनकर नई आशा और पवित्रता का संचार किया है।”

कलावती की आँखों में आँसु झलकने लगे थे।

मधुसूदन गा रहा था :

अब तो बेल फल गई.....

“हैं ! यह क्या ?” सुपरिटेण्डेंट ने अचम्भे में पूछा।

कारण यह था कि गाना एकदम बन्द हो गया था। कलावती और वन्नाराम दोनों लपककर खिड़की में आ गये और नीचे अहाते में देखने लगे।

विभूतिनन्दन पाँव की ठोकरी से मधुसूदन को पीट रहा था। मधुसूदन अपनी कोठरी के सम्मुख वरामदे में बैठा था और अचम्भे में पीटने वाले की ओर देख रहा था।

विभूतिनन्दन मारता जाता था और जोर-जोर से चिल्ला रहा था, “सुअर ! वदमाश ! सोने भी नहीं देता ! आया है बड़ा भक्त बनकर।” इस समय दूसरे बन्दी भी अपनी-अपनी कोठरी से निकल आये थे। कुछ तो मधुसूदन की गत वनते देख हँसने लगे थे। दूसरे खड़े तमाशा देखने लगे थे। हरिहर चक्रवर्ती जब आया तो वह विभूतिनन्दन को पकड़कर दूर हटाने का यत्न करने लगा। मधुसूदन वैसे ही आसन पर बैठा था। वह किंचित् नहीं डोला। चक्रवर्ती विभूति को पकड़कर कुछ दूर ले गया। विभूति चक्रवर्ती से अधिक मजबूत था। उसने एक झटका दिया कि चक्रवर्ती दूर गिर पड़ा। वह भागकर फिर आया और मधुसूदन को पाँव की ठोकरी मारने लगा।

कलावती ने मि० वन्नाराम से कहा, “इस पागल को रोकियेगा नहीं ?” इस पर मि० वन्नाराम लपककर दरवाजे के पास लगी घण्टी के बटन को दबाने लगे। पश्चात् उन्होंने मेज के दर्राज में से पिस्तौल निकाल लिया और वैसे ही, रात की पोशाक में, नीचे की तरफ भाग पड़े।

चक्रवर्ती उठा और भागकर फिर विभूतिनन्दन को पकड़कर एक तरफ हटाने लगा। कहने लगा, “मिस्टर नन्दन, जाने दो। यह अनुचित है। अब बस करो। जाने दो।”

परन्तु विभूतिनन्दन का अभी पेट नहीं भरा था। वह चक्रवर्ती और एक-दो और बन्दियों के हाथ में छटपटा रहा था और मधुसूदन को गालियाँ दे रहा था।

सुपरिंटेंडेंट के घण्टी बजाने का प्रभाव यह हुआ कि एक दर्जन हथियारबन्द सिपाही वहाँ अहाते में पहुँच गये और उनके पीछे-पीछे वह स्वयं हाथ में पिस्तौल लिए वहाँ उपस्थित हुआ। कलावती खिड़की में खड़ी वह सबकुछ देख रही थी।

सुपरिंटेंडेंट ने विभूतिनन्दन को हिरासत में कर लेने की आज्ञा दे दी। चक्रवर्ती के हाथों से विभूतिनन्दन पुलिस की हथकड़ियों में जकड़ लिया गया। सुपरिंटेंडेंट वहीं मेज-कुर्सी लगा सबके बयान लिखने लगा। उसने लिखा :

आज प्रातः छः बजे बन्दी नम्बर बारह, मधुसूदन वल्द श्यामाचरण उपाध्याय अपनी कोठरी के सम्मुख वरामदे में बैठा गा रहा था और पूजा कर रहा था। विभूतिनन्दन बन्दी नम्बर चार अपनी कोठरी से निकला और उसको पीटने लगा। वह मधुसूदन के चुप रहने पर भी उसको मारता गया। लड़ाई का शोर सुन मैंने यहाँ आकर विभूतिनन्दन को हिरासत में ले लिया और उस पर बल्ला

करने का आरोप लगाया। मुकदमा ज़ेर दफा... जेल हलज़...

पश्चात् सुपरिटेण्डेंट ने विभूतिनन्दन को दोषारोपण अर्थात् चार्ज पढ़कर सुनाया और पूछा, “बताओ, तुम दोष स्वीकार करते हो या नहीं?”

विभूतिनन्दन अब तक शान्त हो गया था। खड़ा-खड़ा कहने लगा, “मैंने कोई अपराध नहीं किया। मैंने मधुसूदन को पीटा है, परन्तु ऐसे आदमी को पीटना अपराध नहीं हो सकता।”

“क्यों?”

“इसने मेरी नींद भंग की है। इसने चिल्ला-चिल्लाकर मेरे सोने के अधिकार में बाधा डाली है।”

सुपरिटेण्डेंट ने हैरानी से पूछा, “यह चिल्ला रहा था क्या?”

विभूतिनन्दन ने उत्तर दिया, “हाँ, बहुत जोर-जोर से।”

“तुम यह तो मानते हो कि तुमने इसे पीटा है?”

“हाँ, मगर इसने अपराध किया था।”

इसके पश्चात् हरिहर चक्रवर्ती के बयान हुए। उसने बताया, “मैं बरामदे में शोर सुनकर बाहर आया तो देखा कि विभूतिनन्दन मधुसूदन को पाँवों से ठोकरें मार रहा है। उसने वृट पहने हुए थे। मैंने उसको पकड़कर दूर हटा दिया।”

सुपरिटेण्डेंट ने पूछा, “तुम शोर सुनकर जागे थे या पहले ही जाग रहे थे?”

चक्रवर्ती ने उत्तर में कहा, “मैं प्रातः चार बजे जाग जाया करता हूँ। आज भी उसी समय जाग गया था। मेरे जाग जाने के एक घण्टा पश्चात् मधुसूदन ने गाना आरम्भ किया। वह लगभग एक घण्टे तक गाता रहा होगा, जब मैंने विभूतिनन्दन को अपनी कोठरी के बाहर से जाते देखा। पश्चात् उसकी गालियों का शब्द सुनकर मैं बाहर आ गया।”

“तुम्हें मधुसूदन के गाने से कुछ कष्ट हुआ था?”

“कष्ट ! विलकुल नहीं। प्रत्युत् मैं असीम आनन्द अनुभव कर रहा था।”

पश्चात् सुपरिटेण्डेंट ने एक और बन्दी से, जिसका नाम रामकृष्ण था, पूछा, “तुम्हारी नींद कब खुली थी?”

“मैं मधुसूदन का गाना सुनकर जगा था। मुझे गाने का शौक नहीं है, परन्तु मुझे उसके गाने से कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। मैं स्नान कर कोठरी की तरफ लौट रहा था कि विभूतिनन्दन क्रोध में भरा हुआ मधुसूदन की तरफ आया और उसको लातों और धूसों से पीटने लगा। मधुसूदन ने कुछ भी नहीं कहा।”

अब सुपरिटेण्डेंट ने मधुसूदन का बयान माँगा। उसने कहा, “मुझे कुछ नहीं कहना। मेरी केवल यह प्रार्थना है कि यह हमारा आपस का मामला है, इसमें आपको हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।”

मधुसूदन का बयान सुन सुपरिटेण्डेंट घबराया। वह पूछने लगा, “तुम्हें

विभूतिनन्दन के विपरीत कोई शिकायत नहीं है ?”

“नहीं ।”

“तुम गा रहे थे ?”

“हाँ ।”

“तुम्हारा विचार है कि तुम गाकर कोई अपराध कर रहे थे ?”

“मेरा विचार था कि नहीं, परन्तु अब मिस्टर नन्दन के कहने से ज्ञात होता है कि मैंने अपराध किया । उसकी नींद खराब की है ।”

सुपरिटेण्डेंट हँस पड़ा । वह बहुत ध्यान से मधुसूदन के मुख की ओर देखने लगा । कुछ विचार कर उसने फिर पूछा, “क्या तुम अपने-आपको दोषी समझते हो ?”

“जी ।”

सुपरिटेण्डेंट ने मुस्कराते हुए कहा, “सत्य ही तुम बहुत बड़े दोषी हो और तुम्हें इसके लिए दण्ड भोगना होगा । परन्तु तुम्हारी सिफारिश से मैं किसी दूसरे के अपराध को क्षमा नहीं कर सकता ।”

मधुसूदन ने और भी दृढ़ता से कहा, “अपराधी तो केवल मैं ही हूँ । एक कैदी को नींद से जगा देना उसकी कैद को लम्बा कर देना है । कैदी जब तक जगा रहता है वह अपनी कैद को और पराधीनता को अनुभव करता रहता है । सो जाने पर वह भूल जाता है कि वह कैदी है । उस समय वह प्रियजनों, प्रिय स्थानों और अनेकानेक मनोवांछित बातों के स्वप्न देखता है । कैदी को इन स्वप्नों से जगाकर पुनः उसे कैदी होने का अनुभव कराना निर्दयता की ही बात है । मुझे ज्ञात नहीं था कि दिन के पाँच बजे भी सोना चाहिये । यदि यह ज्ञात होता तो मैं कभी भी अपना भजन इतनी सुबह आरम्भ न करता । मैं अपने-आपको पीटे जाने के योग्य ही समझता हूँ ।”

सुपरिटेण्डेंट ने कहा, “परन्तु कानून तो यह कहता है कि दोषी को दण्ड देने का अधिकार केवल जज को ही है । यदि इस प्रकार सब स्वयं ही कानून अपने हाथ में ले लें और दूसरों को दण्ड देने लगे तो संसार में इतना उपद्रव मचे कि यहाँ रहना दुभर हो जाये । विभूतिनन्दन को अपनी शिकायत मुझसे करनी चाहिये थी । इसी कारण मैं हर रोज तुम लोगों को देखने आता हूँ ।”

“केवल इतना ही नहीं, उसने तुमको अकस्मात् क्रोध में आकर नहीं पीटा । ऐसा प्रतीत होता है कि वह उठा है और उसने तुमको पीटने का निश्चय किया है । पञ्चात् सोच-विचार कर कि किस प्रकार पीटने में वह तुमको अधिक-से-अधिक चोट पहुँचा सकता है उसने बूट पहने, बूटों के तस्मे बाँधे । इस प्रकार तैयार होकर तुम्हें पीटने को बाहर आया । जो आदमी इतना विचार कर सकता है, वह क्या यह नहीं सोच सकता कि दंड तो केवल सुपरिटेण्डेंट ही दे सकता है ? उसको अधिकार

नहीं कि एक साथी पर बिना उमका अपराध मिट्ट किये टूट पड़े।

“इस कारण विभूतिनन्दन को कानून अपने हाथ में लेने के अपराध में और जेल में दंगा-फसाद करने के अपराध में मैं एक दर्जन बेंत लगाने की आज्ञा देता हूँ। यह आज्ञा मुझे अपने अफसर से मंजूर करवानी होगी। तब तक के लिए मैं विभूतिनन्दन को एक अलग कोठरी में बन्द करने की आज्ञा देता हूँ।”

यह सुन मधुसूदन ने कहा, “जब मैं, जिसे पीटा गया है, कोई दावा दायर नहीं कर रहा तो यह मुकदमा और दण्ड निराधार है।”

“जेल में सुव्यवस्था और शान्ति रखना मेरा काम है, तुम्हारा नहीं। यदि इस दंगे से तुम्हें कहीं चोट लग जाती अथवा तुम्हारी जान खतरे में पड़ जाती तो उत्तरदायी मैं होता, तुम नहीं।”

इतना कह कागजात मेज से उठा सुपरिटेण्डेंट वहाँ से चला गया। कांस्टेबल विभूतिनन्दन को पकड़कर बाहर ले गये।

उसके चले जाने के पश्चात् शेप बन्दी कुछ समय तक तो एक-दूसरे का मुख देखते रहे। सबसे पहले चक्रवर्ती ने इस चुप्पी को भंग किया। उसने कहा, “मैं ऐसी ही आशा कर रहा था।”

इस वाक्य ने सबको अपने विचार-जगत् से निकाल फिर चेतना के जगत् में ला फेंका। एक ने कहा, “बहुत बुरा हुआ।” दूसरा बोला, “हमने यह तो निश्चय नहीं किया था।” तीसरे ने पूछा, “क्या निश्चय नहीं किया था?” उसने उत्तर दिया, “यह मारने-पीटने का तो प्रोग्राम नहीं था।”

इस प्रकार सब अपने-अपने मन के उद्गारों को प्रकट करने लगे। इस समय चक्रवर्ती ने कहा, “अब क्या करना चाहिये?”

एक बोला, “जो जैसा करता है वैसा ही फल भोगता है। हम इसमें क्या कर सकते हैं?”

चक्रवर्ती ने कहा, “हाँ, विभूतिनन्दन इस बार भी पहले की भाँति सीमा से बाहर हो गया था। उसको क्या अधिकार था कि इस प्रकार स्वयं ही दूसरों को दण्ड दे? और साथ ही उपाध्यायजी का कुछ दोष भी तो नहीं था। प्रातःकाल का गाना सोते रहने से अधिक आनन्द देने वाला है। सच पूछो तो मैं तो संगीत में इतना रत हुआ था कि मैं बिल्कुल भूल गया था कि मैं जेल में हूँ।”

इस पर मधुसूदन कहने लगा, “कुछ भी हो। यह दण्ड बहुत अधिक है। हमें इसमें कमी करवाने के लिए कुछ-न-कुछ प्रयत्न करना चाहिये।”

एक ने पूछा, “हम क्या कर सकते हैं?”

किसी दूसरे ने कहा, “हम भूख-हड़ताल कर सकते हैं।”

चक्रवर्ती ने कहा, “परन्तु भूख-हड़ताल का कष्ट सहने को कौन तैयार है? मैं एक बार कर चुका हूँ और इस कष्ट का मैं वर्णन नहीं कर सकता। साथ ही

हमारा पक्ष न्यायपूर्ण नहीं है।”

मधुसूदन ने कहा, “आप ठीक कहते हैं। मेरी राय भी यही है कि भूख-हड़ताल आप लोगों से चल नहीं सकती। परन्तु मेरी बात दूसरी है। मैं इस कष्ट को सहन कर सकता हूँ और यथार्थ में झगड़ा भी मेरा ही है। मैं अपने भाग के दोष के लिए प्रायश्चित्त करूँगा।”

इतना कहकर वह अपनी कोठरी में चला गया और ध्यानावस्थित हो विचार करने लगा। दूसरे बन्दी अपने-अपने कार्य में लग गये।

आज जमादार खाने का सामान उठवाकर लाया तो मधुसूदन ने कुछ भी नहीं लिया।

जमादार का विचार था कि कंजूसी से ऐसा किया जा रहा है। उसने कहा, “पण्डितजी, इस प्रकार बिना खाये काम नहीं चलेगा। पैसों को लेकर क्या करियेगा? ये पैसे खर्च करने के लिये ही दिये जाते हैं।”

इस पर मधुसूदन ने कहा, “मैं छः आने भी नहीं लूँगा।”

“क्यों?”

“मैंने व्रत रखा है। मैं अब मरण-पर्यन्त खाना नहीं खाऊँगा।”

“ओह! तो तुम भूख-हड़ताल कर रहे हो?”

“हाँ।”

“क्यों?”

“इस कारण कि यहाँ के नेता विभूतिनन्दन को बिना कारण कठोर दण्ड दिया गया है।”

जमादार ने कहा, “ओह! तो तुम सब आज कुछ नहीं खाओगे?”

“मुझे दूसरों का कुछ ज्ञान नहीं। मैं तो केवल अपनी बात बता रहा हूँ।”

जमादार वहाँ से दूसरों के पास गया। सिवाय चक्रवर्ती के सबने खाना ले लिया। जब मधुसूदन को पता चला कि चक्रवर्ती ने खाना नहीं लिया तो वह बहुत हैरान हुआ। वह उसके पास गया और पूछने लगा, “आपने खाना नहीं लिया क्या?”

“नहीं।”

“क्यों? आप तो कहते थे कि हमारा पक्ष न्यायपूर्ण नहीं है।”

“हाँ, परन्तु वही पक्ष आप भी तो ले रहे हैं न।”

“मेरी बात दूसरी है।”

“कैसी दूसरी?”

“विभूतिनन्दन ने मुझे पीटा था और जब तक मैं शिकायत नहीं करता तब तक उस पर मुकदमा नहीं चलना चाहिए था और दण्ड नहीं होना चाहिये था।”

“मैं ऐसा नहीं समझता। मैं तो यह समझता हूँ कि उसने जेल का नियम तोड़ा

है। इस कारण उसको दण्ड मिला है। आपको पीटना अथवा न पीटना तो सर्वथा दूसरी बात है।”

“जो आदमी बिना दोष के जेल में ठूस दिया जाये उससे जेल-नियमों के पालन की आशा करना ठीक नहीं।”

“कुछ भी हो। मैं तब तक भूख-हड़ताल करूँगा जब तक आप करेंगे।”

“जब आप इसको अनुचित समझते हैं तो ऐसा करना ठीक नहीं।”

परन्तु चक्रवर्ती ने इसका उत्तर नहीं दिया। वह चुप रहा। उस दिन सायंकाल मधुसूदन और चक्रवर्ती को सुपरिटेण्डेंट ने दफ्तर में बुलवा लिया। वहाँ पर विभूति-नन्दन भी उपस्थित था। सुपरिटेण्डेंट ने चक्रवर्ती से पूछा, “तुमने आज खाना नहीं खाया?”

चक्रवर्ती ने उत्तर दिया, “नहीं।”

“क्यों?”

“इसका उत्तर मधुसूदन देगा। मैंने तो सहानुभूति में भूख-हड़ताल कर दी है। जब वह खाना खायेगा तब मैं खा लूँगा।”

“यदि वह नहीं खायेगा तो?”

“मैं भी नहीं खाऊँगा।”

“तुम्हें स्वयं कुछ शिकायत नहीं है?”

“मुझे वही शिकायत है जो मधुसूदन को है।”

हताश सुपरिटेण्डेंट को मधुसूदन से पूछना पड़ा, “तुमने खाना क्यों नहीं खाया?”

“मुझे जेल के अफसरों से कुछ शिकायत है। वह यह कि एक तो विभूतिनन्दन पर मुकदमा नहीं चलना चाहिये था। दूसरा यह कि यह दण्ड उसके अपराध से अधिक कठोर है।”

सुपरिटेण्डेंट ने कुछ विक्षुब्ध होकर कहा, “जितना मैं तुम लोगों से नम्रता का व्यवहार करता हूँ उतना ही तुम्हारा व्यवहार अयुक्तिसंगत होता जाता है। क्या तुम यह मामूली-सी बात भी नहीं समझ सकते कि उसने जेल का नियम तोड़ा है? और यह तो मेरा अधिकार है कि जेल में शांति और सुव्यवस्था स्थापित रखूँ।”

“यदि इस बात को मान लिया जाये कि विभूतिनन्दन दोषी है तब भी दण्ड दोष से अधिक है। एक पढ़े-लिखे आदमी को, जिसको पहले तो बिना मुकदमा सिद्ध किये बन्दी बना लिया गया है, बैत लगाने का दण्ड देना अत्यन्त कठोरतापूर्ण है।”

इस पर सुपरिटेण्डेंट कुछ देर विचारमग्न रहा और फिर बोला, “मैं तो यह समझता हूँ कि दण्ड कठोर नहीं। इस पर भी यदि मैं दण्ड कम कर दूँ तो तुम भूख-हड़ताल तोड़ दोगे क्या?”

“इसका उत्तर तो यह जानकर दे सकता हूँ कि दण्ड कितना कम किया गया है। मान लीजिये कि आप एक दर्जन बेंत लगाने के स्थान पर ग्यारह बेंत लगाने की आज्ञा कर दें तो मेरे विचार में आपने दण्ड कम नहीं किया। यह बेंतों की गिनती नहीं, प्रत्युत् उसके मानसिक प्रभाव के विपरीत मेरा आग्रह है।”

सुपरिटेण्डेंट ने कुछ प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा, “मेरा विचार ऐसा करने का नहीं। मैं तो विभूतिनन्दन को कोई दण्ड नहीं दूंगा। केवल उसे यहाँ से बदलकर दूसरे कैम्प में भिजवा दूंगा। इसको चाहे तो दण्ड मानो, चाहे रियायत।”

मधुसूदन बात को इतना शीघ्र सुलझते देख बहुत प्रसन्न हुआ। बोला, “यदि आप ऐसा करें तो मैं आपका धन्यवाद कहूँगा।”

इस पर सुपरिटेण्डेंट ने चक्रवर्ती और मधुसूदन दोनों को जाने की आज्ञा दे दी। जब वे चले गये तो वह विभूतिनन्दन से कहने लगा, “देखा, तुम्हें इनके व्यवहार से अपने व्यवहार का मुकाबला कर लज्जित होना चाहिये। जिसको तुमने पीटा था वह तुम्हारे दण्ड को कम करवाने के लिए स्वयं कष्ट उठाने के लिए उद्यत था।”

विभूतिनन्दन ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा, “साहब, मैं मूर्ख नहीं हूँ। मैं भली-भाँति समझता हूँ कि यह उपाध्याय खुफिया पुलिस का आदमी है और आपका व्यवहार और उसका व्यवहार सब पूर्व ही सोच-विचारकर निश्चित हो चुका था। वह सब मुझे बदनाम करने और मुझे अपने साथियों के सम्मुख नीच और मूर्ख प्रकट करने के लिए था। आपका पड़्यन्त्र सफल हुआ। मेरा परम मित्र चक्रवर्ती भी मुझसे विमुख हो गया है। ऐसे भड़काने वाले, मिथ्या मार्ग पर ले जाने वाले सरकारी एजेंटों की बातों से मुझे धोखा नहीं हो सकता। यदि मैं उस उपाध्याय को फिर पाऊँ तो फिर पीटूँगा।”

सुपरिटेण्डेंट मुस्कराते हुए कहने लगा, “अच्छी बात है। जहाँ तक मेरा बस चलेगा अब तुम उसको नहीं पीट सकोगे।”

: ४ :

यद्यपि कुछ वन्दी विभूतिनन्दन के मधुसूदन को पीटने को अनुचित नहीं मानते थे कि मधुसूदन खुफिया पुलिस का आदमी है, तो भी उनको विभूतिनन्दन के, मधुसूदन की सहायता से, बेंत लगाने से छूट जाने पर प्रसन्नता हुई थी। ये लोग मधुसूदन से, मधुसूदन की सभ्यता से सम्पर्क रखना उचित नहीं समझते थे, परन्तु उससे छेड़खानी करना भी ठीक न समझ तटस्थ रहते थे। चक्रवर्ती दिन-प्रतिदिन मधुसूदन के समीप आता जाता था और धीरे-धीरे उसको विश्वास होता जाता था कि मधुसूदन निर्दोष फाँस दिया गया है। प्रतिदिन वे सायंकाल सेहन में टहलते थे और परस्पर अनेकानेक विषयों पर वार्तालाप किया करते थे। कभी-कभी उनमें घोर वाक्य-युद्ध भी हो जाता था। बहुत-से विषयों पर वे सहमत

नहीं थे और उन पर बातचीत करते-करते वाद-विवाद आरम्भ हो जाता था और ऐसे अवसरों पर दूसरे बन्दी भी बातचीत में भाग लेने के लिए आ जाते थे।

सुपरिटेण्डेंट मधुसूदन के व्यवहार से अधिक प्रसन्न था। उसकी प्रसन्नता का सबसे बड़ा कारण मधुसूदन का प्रत्येक प्रातःकाल एक से दो घंटे तक कीर्तन-भजन करना था। सुपरिटेण्डेंट की स्त्री कलावती का प्रातः चार बजे उठकर कीर्तन सुनने का नियम-सा हो गया था।

एक दिन सुपरिटेण्डेंट ने मधुसूदन को एक तम्बूरा और करताल का एक जोड़ा दिया। मधुसूदन ने पूछा, “यह कहाँ से आया है और किसलिए है?”

“यह तुम्हारे लिए है। भजने वाले ने अपना नाम बताने में इन्कार कर दिया है। उसने केवल यह कहा है कि ‘मैं वह हूँ जो तुम्हारे भजनों को सुनकर अतीव आनन्द प्राप्त कर चुकी हूँ।’”

“ओह ! तो यह कोई महिला है?”

“हाँ।”

“उन्होंने अपना पता भी नहीं बताया?” मधुसूदन के मन में पूर्णिमा का स्मरण हो आया था।

“नहीं, उन्होंने बताना उचित नहीं समझा।”

“ओह ! वह आई और बिना मिले चली गई,” मधुसूदन ने अपने मन में कहा। फिर उसने पूछा, “क्या यह भेंट देने वाली महिला झाँसी से आई थी?”

“यह हो सकता है, परन्तु उन्होंने केवल ये ही भेजी हैं।” इतना कह सुपरिटेण्डेंट मुस्कराता हुआ चला गया। यथार्थ में यह भेंट कलावती की ओर से थी और सुपरिटेण्डेंट यह प्रकट नहीं करना चाहता था।

कुछ ही काल में अन्य सुविधायें भी मिलने लगीं। बाग लगाने का सामान, पढ़ने को दैनिक पत्र और रात को पढ़ने के लिए रोशनी। ये बहुत बड़ी सुविधायें थीं। इन सब बातों के होने में कलावती का हाथ भी था। सुपरिटेण्डेंट का अपना एक छोटा-सा पुस्तकालय था। उसमें से पुस्तकें भी बन्दीयों को मिल जाती थीं।

तमाम सेहत को बन्दीयों ने मिलकर एक छोटा-सा पार्क बना डाला। उसमें घास और फूल लगा दिये गये। इसमें वर्षा ऋतु ने बहुत सहायता दी।

शीतकाल के आरम्भ के दिन थे। सायं समय बन्दी पार्क में बैठकर भजन गाते या सीखते थे। अखबार में से राजनीतिक बातों पर चर्चा होती थी और सब अपनी-अपनी सम्मति देते थे। एक बार भारी विवाद हुआ। विषय भारत की भावी राज्य-प्रणाली था। अन्त में हरिहर चक्रवर्ती ने कहा, “मिस्टर उपाध्याय, हम आपके विचारों को बिल्कुल नहीं समझ पाये। आप प्रजातन्त्रवाद को ठीक नहीं समझते। आप एक राजा के शासन को भी नहीं मानते। तो फिर आप क्या चाहते हैं?”

मधुसूदन ने कहा, “अच्छी बात। पहले मैं आपको अपने मन की राज्य-प्रणाली का संक्षिप्त विवरण बताता हूँ। मैं एक व्यक्ति के शासन का अर्थ यह समझता हूँ कि वह एक व्यक्ति ही व्यवस्था बनाने वाला हो और यह स्वयं ही उस व्यवस्था को कार्य-रूप में लाने वाला हो। राजा सबसे बड़ा कार्यकारी अधिकारी भी हो और विधायक अधिकारी भी, यह उचित नहीं। मैं यह चाहता हूँ कि राजा अथवा कोई बड़ा अफसर प्रबन्ध करने पर नियत हो। चाहे तो वह प्रधान कर्मचारी पूर्व राजा का लड़का हो, चाहे कोई अन्य। शर्त केवल यह है कि वह योग्य हो। यह कर्मचारी देश के प्रबन्ध का उत्तरदायी हो।”

चक्रवर्ती ने उत्तेजित हो पूछा, “वह किसके सम्मुख उत्तरदायी हो? यदि वह अपने अधिकारों को उचित ढंग से और लोगों के हित के लिए प्रयोग न करे तो कौन उससे पूछे और कैसे वह उसको पदच्युत कर सके?”

“देश में एक विद्वत्-सभा हो। इस सभा के सदस्य विशेष योग्यता और चरित्र के लोग ही हों। इस सभा को बनाने वाले विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर, स्कूल-कॉलेजों के अध्यापक और देश के दूसरे विद्वान् आदमी हों। उदाहरण-स्वरूप यह हो सकता है कि विद्वत्-सभा में डॉक्टर की उपाधि प्राप्त कर ही सदस्य बन सकें। साथ ही उनको सभा में भेजने के लिए उच्चकोटि के विद्वानों की मण्डली ही चुन सके। यह सभा राजा तथा अन्य प्रबन्ध करने वाले पदाधिकारियों के काम का निरीक्षण कर सकती है। यदि वे ठीक काम न करें तो उनको पदच्युत कर दें।”

“परन्तु जो एक समय राजा बन जायेगा, उसके अधीन फौज तथा पुलिस हो जयेगी, उस समय यदि यह विद्वत्-सभा का कहना न माने तो यह सभा उस राजा अथवा प्रबन्धक को कैसे हटा सकेगी? होगा यह कि राजा फौज के बल से विद्वत्-सभा के सदस्यों को कैद कर लेगा और मनमानी करने लगेगा।”

“विद्वत्-सभा का मान देश में इतना होना चाहिये कि कोई प्रबन्धक अधिकारी ऐसा करने का साहस न कर सके। वे लोग तो सर्व-साधारण के शिक्षक होंगे, तो वे लोगों को अपने पक्ष में क्यों नहीं रख सकेंगे? फौज बिना लोगों की सहायता के जी नहीं सकती।”

“अन्त में सर्व-साधारण से राज्य-कार्य में सहायता लेनी ही पड़ी न।”

“हाँ, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि विद्वत्-सभा का चुनाव लोगों के अधीन हो।”

“ऐसा होने में हानि ही क्या है?”

“साधारण लोगों द्वारा चुनी हुई सभा विद्वानों तथा चरित्रवानों की सभा होगी, यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता। जन-साधारण में इतनी योग्यता और परख नहीं हो सकती, जितनी कि पढ़े-लिखे विद्वानों में होगी और राज्य-प्रबन्ध

का काम उच्च-से-उच्च कोटि के लोगों के हाथ में होना चाहिये ।”

“जन-साधारण में अधिक व्यावहारिक बुद्धि होती है जो पढ़े-लिखे विशेषज्ञों में नहीं । इस कारण उनसे चुनाव में गलती होनी अधिक सम्भव है ।”

“या तो विद्वान् शब्द का अर्थ आप नहीं समझते या केवल पक्षपात से बात करते हैं । इस दामता की अवस्था में भारतवर्ष के विद्वान् अविद्वानों से मूर्ख हो सकते हैं, परन्तु यह विशेष परिस्थिति के कारण है । स्कूलों में अथवा महाविद्यालयों में शिक्षक अथवा अन्य तथाकथित विद्वान्, अफसरों के पिटू, रियायती पदवी प्राप्त किये होते हैं । परन्तु जन-साधारण की अवस्था तो इससे भी अधिक पतित है । दासता के कारण उनकी भी बुद्धि मलिन हो चुकी है और वे उन्हीं रियायती पदवीधारियों को विद्वान् समझते हैं । यदि एक विद्यालय के अध्यापक को आप बुद्धिमान नहीं मानते, तो फिर अपने लड़के को उसके पास पढ़ने क्यों भेजते हैं ? क्या यह जनता की बुद्धि की मलिनता का प्रमाण नहीं ? जो मनुष्य यह नहीं समझता कि उसकी परम प्रिय वस्तु, अर्थात् सन्तान, किनके पास रहकर और किनसे शिक्षा प्राप्त कर, सच्चरित्र, कुशल और ज्ञानवान होगी, वह भला अपने साधारण वोट के लिए कब विचारशील हो सकता है । जो प्रलोभन उसे अपनी सन्तान के भविष्य पर कुठाराघात करने पर उद्यत करते हैं, क्या वही प्रलोभन उसे अपना वोट बेच देने को प्रस्तुत न कर देंगे ?”

“परन्तु कौंसिलों के पिछले चुनावों से तो यह बात सिद्ध नहीं हो सकी । देखिये, कितने लोगों ने कांग्रेस के नाम पर उम्मीदवारों को वोट दिये हैं । क्या यह इस बात का सूचक नहीं कि जन-साधारण में अच्छी-खासी परख होती है ?”

“क्या कांग्रेस के लोगों को चुनाव कोई अच्छी परख का सूचक है ? यह एक बात का सूचक अवश्य है । वह यह कि महात्मा शब्द से, अथवा भड़काने वाले व्याख्यानों से, हिन्दू कितने प्रभावित होते हैं । इस समय तो भारतवासियों की और मुख्य रूप से हिन्दुओं की यह अवस्था है कि कोई भी उनको यह विश्वास दिला दे कि वह उनको अंग्रेजों के चंगुल से निकाल देगा तो वे उसी को वोट दे देंगे । यह विश्वास तो जो बातें करने में चतुर हैं वे अवश्य दिला सकते हैं, परन्तु यथार्थ में लोगों का भला कौन कर सकता है, यह परख साधारण लोगों में नहीं है और न होने की आशा है ।”

“केवल वे लोग जो ज्ञान, विज्ञान, राजनीति और सामाजिक बातों को सिद्धान्त रूप में जानते हैं, विश्वविद्यालयों में अध्यापक बन जाते हैं और उनसे इस बात की आशा भी की जाती है । व्यावहारिक ज्ञान की न तो उनसे कोई आशा करता है, न ही वे रखते हैं । इसी कारण व्यावहारिक बातें, जो राज्य-कार्य चलाने में आवश्यक हैं, वे नहीं जानते और उनका राज्य के कामों में हस्तक्षेप अनर्थकारी होगा ।”

“मिस्टर चक्रवर्ती, यह आप भारतवर्ष के विद्यालयों की वर्तमान अवस्था का वृत्तांत बता रहे हैं। यह सत्य है कि इस समय भारतवर्ष में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के अध्यापक और विद्यार्थी संसार के व्यावहारिक ज्ञान से इतने दूर हैं कि वे कोरी बातें करना ही जानते हैं। यही कारण है कि शिक्षा के फैसेले में युवकों में चरित्र और कार्य-कुशलता कम होती जाती है। यह कोई वांछनीय अवस्था नहीं। संसार के अन्य उन्नत देशों में ऐसा नहीं है। वहाँ एक प्रोफेसर अपने विषय को सिद्धान्त से लेकर व्यवहार तक भली-भाँति जानता है और समझता है। यही कारण है कि वहाँ के युवक उत्तरोत्तर अधिकाधिक उन्नत होते जाते हैं। यहाँ भारतवर्ष में पढ़े-लिखों का जीवन अपढ़ लोगों से कम संस्कृत और सुव्यवस्थित है। जर्मनी ने इस मार्ग में बहुत उन्नति की है। वहाँ शिक्षक कोई भी बड़े-से-बड़ा काम हाथ में लेने के योग्य होते हैं।”

चक्रवर्ती कुछ मुस्कराकर कहने लगा, “परन्तु जहाँ अध्यापक इतने योग्य हैं, उन देशों में भी, राज्य-कार्य की व्यवस्था देने में प्रोफेसरों का कोई हाथ नहीं।”

“हाँ, और यही कारण है कि उनका पतन अब कुछ ही वर्षों की बात है। इंगलिस्तान और यूरोप के उन देशों में जहाँ बड़े-बड़े विद्वान् शिक्षा का काम कर रहे हैं, परन्तु राज्य-भार जन-साधारण द्वारा चुने लोगों के हाथ में है, एक विद्वान् आदमी यह कहता है कि लेखनी तलवार से प्रवल होगी। वहाँ उसी देश के तथा-कथित राजनीतिज्ञ परस्पर द्वेष और अन्याय के पथ पर चल रहे हैं। जहाँ एक विद्वान् आदमी यह कहता है कि योग्यता से लोगों का मान करो, जन्म से नहीं, वहाँ उसी विद्वान् के सजातीय राजनीतिज्ञ दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों ने दुर्यवहार करते हैं। यह सब अनर्थ हो रहा है। ज्ञान, बुद्धि, न्याय, सत्य और सच्चरित्रता की अवहेलना और अपमान हो रहा है और परिणाम घोर विपत्ति होगी। बहुत शीघ्र ही संसार अपने-आप बनाई चिता में जलने लगेगा।”

“तो क्या विद्वान् जब शक्तिशाली हो जायेंगे वे मदमस्त और दुर्जन हो जायेंगे?”

“यथार्थ विद्वानों के पतन की, साधारण लोगों के पतन से, कम सम्भावना है।”

“परन्तु यथार्थ विद्वानों की खोज कौन करेगा?”

“विद्वानों की खोज विद्वान् ही कर सकते हैं। जन-साधारण में विद्वान् की विद्वत्ता और अच्छे चरित्रवान के चरित्र की परख नहीं होती। एक साधारण आदमी भला कैसे जान सकता है कि राज्य जैसे दुःसाध्य काम को सत्य, न्याय और धर्म के अनुकूल कौन कर सकेगा?”

इस पर एक और बन्दी बोल उठा, “मिस्टर उपाध्याय, आपकी युक्तियाँ तो ठीक हैं, परन्तु सर्व-साधारण की स्वतन्त्रता का क्या होगा? जनता कैसे समझेगी कि वे स्वतन्त्र हैं और अपने देश के राज्य-कार्य को चलाने में उनका भी हाथ है?”

“स्वतन्त्रता के मिथ्या अर्थ समझे जाते हैं। स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक बात करने की स्वतन्त्रता हो। यदि कोई मनुष्य आत्म-घात करना चाहे तो हम उसको ऐसा करने नहीं देते। यदि कोई बालक आग से खेलना चाहे तो हम उसे रोक देते हैं। क्या ऐसा करना स्वतन्त्रता में बाधा डालना है? कदापि नहीं। क्या एक लोहार को दर्जी का काम करने से लाभ होगा? क्या एक धोबी से बैद्य का काम लेना उचित है? यदि यह उचित नहीं तो फिर राज्य-कार्य के लिए पदाधिकारी चुनाव लोहार, चमार, दुकानदार, वकील, चपरासी और कलक बगैरह में एक समान कैसे उचित माना जा सकता है? यह काम तो देश के उच्चकोटि के विद्वान् और चरित्रवान् लोगों का है। वे लोग ही अधिकारी-अनधिकारी में भेद-भाव कर सकते हैं। जनता को तो स्वतन्त्रता का आभास तब ही हो सकता है जब उसको खाने, पहनने, रहने और अन्य संसार के सुख प्राप्त हों। ऐसे काम को करना, जिनके वे योग्य नहीं, स्वतन्त्रता नहीं कहलाता।

“देश और संसार का सुख इस बात में है कि प्रजातन्त्र राज्य-पद्धति के स्थान पर विद्वान्, योग्य, निःस्वार्थी और सदाचारी लोगों के राज्य स्थापित हों। बड़ी-बड़ी कौंसिलें, बड़ी-बड़ी सभायें राज के काम को चलाने के लिए उपयुक्त नहीं हो सकतीं। दो-चार यथार्थ योग्यता रखने वाले मनुष्य, जिनको अपने काम की नफाई देश के पढ़े-लिखे विद्वानों और सदाचारी लोगों के सम्मुख देनी हो, देश का काम बड़ी चतुराई से कर सकते हैं।”

“इसमें एक आपत्ति होगी। जिस सरकार के अफसरों पर वे निगहबानी रखते होंगे उसी के तनख्वाहदार नौकर होंगे।”

“ऐसा तो सर्वत्र और सदैव होता रहता है। क्या हाईकोर्ट के जज सरकार से तनख्वाह नहीं पाते? इस पर भी लोग उन्हें सरकारी अफसरों के अधीन नहीं समझते। जब एक पढ़े-लिखे और सच्चरित्र मनुष्य को यह पता लग जाये कि उसने सरकार के कामों का निरीक्षण करना है तो वह अपनी बुद्धि को खो नहीं बैठता। यही तो ज्ञानी की परख है।”

“तो क्या व्यवस्थापिका सभायें नहीं चाहिये?”

“वह विद्वत्-सभा ही व्यवस्थापिका सभा हो सकती है।”

इस दिन वाद-विवाद में देर हो गई थी। चक्रवर्ती और उसके साथी यद्यपि मधुसूदन की नीति के पूर्ण रूप से अनुयायी नहीं हो गये थे तो भी उनके मन में उथल-पुथल मच गई।

: ५ :

एक दिन चक्रवर्ती ने अत्यन्त हृदयविदारक कथा सुनाई। बात आतंकवादियों के विषय में हो रही थी। मधुसूदन सदा की भाँति कह रहा था कि आतंकवाद

देश को स्वतन्त्र करने में सफल नहीं हो सकता। चक्रवर्ती का पक्ष यह था कि आतंकवाद से सफलता हो अथवा न हो, यह है एक स्वाभाविक बात। उसका कहना था कि कोई मनुष्य हत्या करने को तब उद्यत होता है जब उसके मन को इतना दुःख होता है कि वह पागल हो जाता है। ऐसी अवस्था में केवल दो मार्ग होते हैं, एक आत्महत्या और दूसरा किसी दूसरे की हत्या करना। चक्रवर्ती ने अपनी आपबीती की एक घटना सुनाते हुए कहा, “मेरे एक मित्र क्रांतिकारी दल के थे। पुलिस उनको पकड़ना चाहती थी और वह भागे हुए थे। एक बार वह मेरे घर में ठहरे हुए थे कि पुलिस उनकी टोह पाकर आ धमकी। मेरे मित्र पकड़ लिए गये और साथ ही मैं भी। मुझे पाँच वर्ष का कठोर कारावास हुआ। यह घटना डलाहावाद की थी और मुझे फतहगढ़ जेल में भेज दिया गया।

“मुझे वहाँ एक दूसरे कैदी के साथ रखा गया। मेरे साथी का नाम श्याम-मुन्दर वर्मा था। वह बंगेली हत्याकांड का कैदी था। वह बेचारा खाँसी और ज्वर से कई मास से पीड़ित था, परन्तु उसने इसकी अधिकारियों से चर्चा नहीं की। जो कुछ रुखी-सूखी उसे मिलती थी वह खाकर धैर्य से पड़ा रहता था।

“जब मैं वहाँ पहुँचा तो श्याममुन्दर गीता का पाठ कर रहा था। मुझे देख बहुत प्रेम से मिला। परिचय हो जाने के पश्चात् उसने मुझे अपना रहस्य बताया। कहने लगा, ‘मुझे तपेदिक है। मैं छः मास से अधिक नहीं जी सकता, परन्तु मैं अधिकारियों में इसकी शिकायत नहीं करना चाहता। व्यर्थ का शोर मच जायेगा। घर वाले परेशान होंगे। जनता में चर्चा होगी। सरकार जब समझेगी कि मेरा जीवित रहना असम्भव है तो मुझे छोड़ देगी और फिर घर वाले रुपये की होली कर देंगे ताकि मैं बच जाऊँ। परन्तु मैं बच नहीं सकता। इस कारण मेरा निश्चय है कि मैं किसी को न बताऊँ और शांति से इस जीवन-यात्रा को समाप्त कर दूँ।’

“मैंने कहा, ‘यह तो आप ठीक नहीं कर रहे। घर वालों के साथ और उससे भी अधिक अपने साथ अन्याय करना है।’

“उसने उत्तर दिया, ‘मेरे साथ और मेरे घर वालों के साथ अन्याय तो उस दिन हुआ था जब मैं कैद किया गया था।’

“मैंने उत्सुकता से पूछा, ‘आप किस दोष में पकड़े गये हैं?’

“उसने मेरी आँखों के सम्मुख अपना रक्तविहीन मुख उठाकर कहा, ‘मैं फिरोजपुर छावनी का रहने वाला हूँ। एक दिन सायंकाल एक स्त्री खेत में से कुछ हरी घास काट रही थी। दो टोमियों की उस पर नज़र पड़ गई। उस स्त्री से उन्होंने दुराचार किया। जब बात फैल गई तो टोमियों पर कोर्टमार्शल किया गया और दोनों को दो-दो मास की कैद हुई।

‘मैं उन दिनों दसवीं जमात में पढ़ता था। मैंने एक उर्दू समाचार-पत्र में इस

घटना का वृत्तांत पढ़ा था। उसके पढ़ते ही मेरा रक्त उबलने लगा। उर्दू समाचार-पत्रों में बात बड़ा-चढ़ाकर लिखी जाती है। इस बात की वास्तविकता जानने के लिए मैं एक दिन स्कूल से अनुपस्थित होकर उस गाँव में पहुँचा जहाँ की वह स्त्री रहने वाली थी। गाँव में एक बनिये के पास पहुँचकर मैंने दो पैसे की ग्रेन्नी खरीदी, फिर उससे बात करने लगा। धीरे-धीरे सब किस्सा मालूम कर लिया। वह स्त्री उस समय अफीम खाकर मर चुकी थी। गाँव वालों और घर वालों की दृष्टि उसे देख लज्जा से झुक जाती थी। वह यह सहन नहीं कर सकी। घटना के दूसरे दिन वह छावनी पहुँची और 'सी० ओ०' से उसने शिकायत की। शिकायत पर टोमियों की पहचान हुई, जिस पर उन्होंने अपना दोष स्वीकार कर लिया। इस पर उनको दो-दो मास का कारावास का दण्ड दिया गया। दण्ड के पश्चात् एक दिन गाँव के बाहर कुएँ के समीप उस स्त्री की लाश मिली। डॉक्टरों की परीक्षा पर पता चला कि उसने अफीम खाई थी।

'यह कथा सुनकर मेरा सिर घूमने लगा। मैं वहाँ से चला तो छावनी पहुँचा। वहाँ एक सिख सिपाही से मैंने उन गोरे सिपाहियों का पता पूछा। उस सिख सिपाही ने बहुत आनाकानी की, परन्तु मेरे बार-बार आग्रह करने पर वह मेरी सहायता करने पर उद्यत हो गया। वह मुझे गोरा लाइन में ले गया। वहाँ कैन्टोन में ले जाकर उसने मुझे बावर्ची से मिला दिया। वह मुसलमान था। मुझे ऊपर-नीचे से देखकर पूछने लगा, 'उनको देखकर क्या करोगे?' मैंने उत्तर दिया, 'ऐने ही।' इस पर वह कुछ काल तक सोचता रहा। फिर एक स्टूल की ओर संकेत कर बोला, 'बैठ जाओ।'

'लगभग एक घण्टे के पश्चात् बहुत-से गोरे कैन्टोन में आये और डाइनिंग हॉल में चाय इत्यादि पीने लगे। कुछ और देर बाद चार और गोरे चाय पीने आये। इनमें से दो की ओर संकेत कर बावर्ची ने बताया कि वे हैं जो दो दिन हुए कैद से छूटकर आये हैं और छूटने की खुशी में दोस्तों को दावत दे रहे हैं।

'मैं कुछ काल तक उनको देखता रहा। पश्चात् वहाँ से चला आया। उसी सनय मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं इनको मार डालूँगा।

'कई मास गुज़र गये। मैंने दसवीं की परीक्षा पास कर ली थी। इस पर भी मेरे मन में विचार दृढ़ था। उस विचार को पूर्ण करने के साधन न थे। परीक्षा के उपरान्त मैं प्रतिदिन गोरा लाइन में एक चक्कर लगाया करता था और प्रायः हर रोज़ उनको कभी कैन्टोन में जाते, कभी वहाँ से आते और कभी सैर करते देखा करता था। मेरे मन में उनकी सूरत ऐसी अंकित हो गई थी कि अँधेरे में देखने पर भी उनको पहचान सकता था।

'एक दिन, सायंकाल पाँच बजे के समय, मैं गोरा लाइन से लौट रहा था कि एक पठान सड़क के किनारे छुरियाँ-चाकू बेचता दिखाई दिया। मैं वहीं ठहर-

कर उसके चाकू देखने लगा। एक बहुत बढ़िया छुरी मेरे पसन्द आई। मैंने उसका दाम पूछा। पठान ने सवा रुपया बताया। मैं दाम सुनकर चुप रह गया। पठान ने छुरी की बहुत प्रशंसा की। कहने लगा, 'यह असली फौलाद की है। पुराने ज़माने की एक तलवार में से बनाई है।'।

'छुरी बहुत तेज़ थी। पठान ने एक बारीक धागा एक हाथ में लटकाकर दूसरे हाथ में छुरी के एक बार से फट से काट दिया। मेरे मन में जो बात समा रही थी वह एक रूप धारण करने लगी। मैंने पठान से कहा, 'कुछ कम लो।' उसने कहा, 'खुदा की कसम, एक रुपया दो आना घर की लागत है।'।

'मैं उदास हो उठ खड़ा हुआ। मेरे पास जेब में केवल आठ आने थे। पठान मेरे मुख की तरफ देखकर बोला, 'बाबू, क्या बात है? खुदा की कसम खाई और फिर भी यकीन नहीं आया।'।

'मैं मुख से कुछ नहीं बोला, परन्तु इतना अच्छा अवसर हाथ में जाने देख मेरा मुख लाल हो गया। मेरी आँखें कुछ भीग गईं। पठान मेरे मुख की तरफ देख रहा था। मैंने अपने आँसू छिपाने के लिए मुख फेर लिया और घर की ओर चल पड़ा। पठान ने पीछे से आवाज़ दी, परन्तु मैं नहीं रुका। अभी मैं एक फर्लांग भी नहीं आया था कि वही पठान लम्बे-लम्बे कदमों से चलता हुआ मेरे साथ आ मिला। मेरे पास पहुँचकर बोला, 'बाबू, तुम रोता क्यों है?'।

'मेरा मुख फिर लाल हो गया। मेरे मुख से निकल गया, 'मेरे पास सवा रुपया नहीं है और मैं तुम्हारी खुदा की कसम झूठी नहीं करना चाहता।'।

'कुछ पग मेरे साथ-साथ चलकर पठान ने कहा, 'देखो बेटा, छुरी का क्या करोगे? चाकू ले लो।'।

'मैंने दृढ़ता से कहा, 'नहीं, मुझे चाकू नहीं चाहिये।'।

'पठान ने कहा, 'लेकिन छुरी का क्या करोगे? यह तो कसाई के काम की है। यह वकरा काटने के काम में आती है।'।

'मैंने कहा, 'हाँ, मुझे वकरा काटना है।'।

'उसने मेरे मुख की ओर ध्यान से देखकर कहा, 'वकरा? नहीं, तुमने किसी अपने दुश्मन को कत्ल करना है।'।

'मैं चुप रहा और चलता गया। वह मेरे आगे हो मेरा मार्ग रोककर खड़ा हो गया। मैंने क्रोध में कहा, 'हट जाओ, नहीं तो अभी हल्ला कर पकड़वा दूँगा।'।

'पठान हँस पड़ा और बोला, 'खुदा की कसम। सच बता दो। क्या किसी माशूक के दोस्त को मारने जा रहे हो?'।

'मैंने फिर क्रोध में कहा, 'नहीं, तुम नहीं समझ सकते।'।

'इस पर पठान ने मेरा रास्ता छोड़ दिया और मेरे साथ-साथ चलने लगा। फिर मेरी पीठ पर हाथ फेरने लगा और बहुत ही मीठी आवाज़ में कहने लगा,

‘बेटा, मुझे बता दो। नहीं तो मैं तुम्हारे बाप से सबकुछ कह दूंगा।’

‘न जाने मेरे मन में क्या आया। मन की दुर्बलता थी अथवा पठान की सहानुभूति, नहीं कह सकता। कुछ भी हो। मेरे आँसू, जो मैं बड़े यत्न से रोके हुए था, बहने लगे और मैंने उस औरत का सब किस्सा सुना दिया। इसके बाद मैंने अपना निश्चय बताया।’

‘पठान ने पूछा, ‘उस औरत से तुम्हारा क्या रिश्ता है?’

‘मैंने उत्तर दिया, ‘रिश्ता? रिश्ता कुछ नहीं। वह हिन्दुस्तानी औरत थी। उन गोरों को पूरा दण्ड केवल इस कारण नहीं दिया गया कि वह हिन्दुस्तानी औरत थी।’

‘यह सुन पठान गम्भीर विचार में पड़ गया। मैं मुख सामने किये चला जाता था। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि उसने अपनी वास्कट की जेब में से एक मैला-सा रुमाल निकाला और अपनी आँखें पोंछ लीं। मैंने उसकी ओर आँख नहीं फेरी। कुछ दूर तक वह चुपचाप मेरे साथ-साथ चलता गया। फिर उसने अपने थैले में हाथ डालकर वही छुरी निकाली और मेरे हाथ में देकर बोला, ‘दोस्त, खुदा हाफिज़।’

‘मैंने जेब से आठ आने निकाल उसे देने चाहे। उसने वह लेने से इनकार करते हुए कहा, ‘यह तुम्हारी नज़र है। सलाम।’ इतना कह वह पीछे को लौट गया। इसके बाद मेरी उससे भेंट नहीं हुई।

‘मैं तीसरे दिन फिर गोरा लाइन में गया, परन्तु उनको न देख सका। फिर कई दिन तक जाता रहा और मैंने उनको नहीं देखा। इस पर मैंने वावर्ची से पूछा। उसने कहा कि उनकी कम्पनी तो बरेली चली गई है।

‘मैं घर से कुछ रुपये चुराकर बरेली पहुँचा। छावनी में गया और तीन-चार दिन की खोज के पश्चात् उनमें से एक को एक और गोरे के साथ घूमते देख लिया। इसे शुभ अवसर जान मैं निधड़क उनकी तरफ बढ़ा। वे अपनी बातों में इतने मस्त थे कि उनका ध्यान मेरी ओर नहीं आया। जब दो-तीन पग का अन्तर रह गया तो मैंने कोट से छुरी निकाल ली और लपककर उसके पेट में घुसेड़ दी। इसके बाद भाग जाने का मुझे विचार नहीं सूझा। मैं वहाँ खड़ा-खड़ा यह कहने लगा, ‘यह उस स्त्री से बलात्कार का फल है।’

‘उस गोरे के साथी ने मुझे पकड़ना चाहा। मैंने हाथ से छुरी फेंक दी और भागने के लिए लौटा, परन्तु सड़क पर चलते हुए दो हिन्दुस्तानियों ने मुझे पकड़ लिया।

‘इसके पश्चात् मैं अर्ध-बेहोशी की हालत में हो गया। वे मुझे पकड़कर थाने में ले गये। अगले दिन मुझे मजिस्ट्रेट के सम्मुख उपस्थित किया गया। मैंने सत्य-सत्य सब वृत्तान्त सुना दिया। केवल वावर्ची और पठान की बात नहीं बताई।

‘इसके पश्चात् घर वाले आये। वे मेरी मूर्खता पर बहुत रोये-गाये। मेरी तरफ के वकील ने मेरे जुल्म को मान लेने पर बहुत बुरा-भला कहा, परन्तु मैं अपनी बात पर डटा रहा। मैंने सेशन कोर्ट में साफ-साफ कह दिया, ‘यह गोरा कातिल था। तुम्हारे कानून ने इसको केवल दो महीने का मामूली दण्ड देकर छोड़ दिया था। मेरी आत्मा ने इसे अन्याय समझा। तुम न्याय के आसन पर बैठे हो। तुम्हें न्याय को बदनाम होने से बचाना चाहिये। मैंने भी वही किया है। मैंने गोरे को मारा है, परन्तु मैं दोषी नहीं हूँ। मुझे कोई दण्ड नहीं मिलना चाहिये।’

‘इतना संक्षिप्त परन्तु स्पष्ट वयान सुनकर मुकदमा लम्बा करने का न तो अवसर ही मिला और न ही आवश्यकता। दूसरे दिन मुझे फाँसी दिये जाने की आज्ञा सुना दी गई। इलाहाबाद हाईकोर्ट में मेरी अपील की गई। वहाँ मुझे जन्म-कैद का दण्ड हुआ।

‘मैं पाँच वर्ष से इस कोठरी में बन्द हूँ। लगभग एक वर्ष से मुझे ज्वर आता है और खाँसी का वेग बढ़ रहा है। अब तो अन्त बहुत समीप है।’

‘इस सब कथा के उपरान्त हम दोनों में बहुत घनिष्ठता हो गई थी। मेरे वहाँ पहुँचने के लगभग तीन मास पश्चात् एक दिन उसको इतने जोर की खाँसी आई कि उसके मुख से खून आने लगा और वह बेहोश हो गया। उसी संध्या को मैंने वार्डर से कह दिया। दूसरे दिन डॉक्टर आया और परीक्षा कर कह गया कि इसे टी० बी० है।’

‘इस परीक्षा के पश्चात् उसने मुझसे कहा, ‘मैं अस्पताल में जाकर मरना नहीं चाहता।’

‘मैंने पूछा, ‘तो अब क्या करोगे?’

‘उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। चटाई पर जा बैठा। गीता खोलकर पढ़नी आरम्भ कर दी। एक घण्टे तक पढ़ने के पश्चात् मुझे पास बुलाकर कहने लगा, ‘अब मेरा अन्तिम समय आ गया है। मेरी यह गीता तुम ले लो। इसे बड़ा करना। यह शांति का स्रोत है। मुसीबत में इसे पास रखना।’

‘इतना कहकर वह आसन लगाकर बैठ गया। आँखें मूँद लीं। तीन-चार बार साँस चढ़ाया और फिर उसका सिर धीरे-धीरे झुककर चटाई के साथ आ लगा।

‘इतने शांतिमय अन्त ने मेरे मन पर बहुत प्रभाव डाला। मैं नास्तिक था और तब से परमात्मा को मानने लगा हूँ। पश्चात् मेरी पाँच वर्ष की कैद समाप्त हुई। मैं उसकी गीता को बगल में दबाये हुए जेल से बाहर निकला, परन्तु उसी समय फिर बन्दी बना लिया गया। तब से यहाँ पर हूँ।’

: ६ :

उपरोक्त कथा ने मधुसूदन के मन पर बहुत प्रभाव डाला। वह हिंसा का

विरोधी होते हुए भी ज्यमसुन्दर के काम की निन्दा नहीं कर सकता था। वह मन में मोचता था कि कुछ बात है जो उसकी हिंसा को भी अहिंसा से ऊपर ले गई है। इसको सुनने के पश्चात् वह यह नहीं कह सकता था कि हिंसा सदैव बुरी बात है। मधुसूदन के विचारों में परिवर्तन आ रहा था। वह धीरे-धीरे हिंसा-पथ की ओर आकर्षित हो रहा था। वह मोचता था कि कभी-कभी हिंसा भी अच्छी होती है।

बन्दी कैम्प में 'पायोनियर' अखबार भी आता था। महात्मा गांधी का सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ तो बन्दी कैम्प में उस पर चर्चा होने लगी थी। मधुसूदन उस आन्दोलन में सर्वथा तटस्थ था। उस आन्दोलन में लोगों के धड़ाधड़ पकड़े जाने का समाचार पढ़कर अब उसके मन में जोश उत्पन्न नहीं होता था।

अकस्मात् एक दिन कलकत्ते में लाठी-चार्ज का समाचार छपा। मधुसूदन ने पढ़ा कि पूर्णिमा को गोली लगी है। दूसरे दिन खबर मिली कि गोली तो पुलिस अफसर पर चलाई गई थी, परन्तु पूर्णिमा, जिसने पुलिस अफसर को बचाने के लिए अपने-आपको आगे कर दिया, बुरी तरह घायल हुई है। कुछ दिन पश्चात् यह समाचार मिला कि पूर्णिमा की अवस्था शोचनीय है।

इस रात मधुसूदन को नींद नहीं आई। दूसरे दिन उसका कीर्तन और संगीत का अभ्यास बन्द हो गया। इस प्रकार कई दिन निकल गये। एक दिन हरिहर चक्रवर्ती ने उसके इस प्रकार शोकग्रस्त रहने और दिन-भर सोये रहने का कारण पूछा। मधुसूदन ने केवल यह उत्तर दिया, "अब तो यहाँ रहना दूभर प्रतीत हो रहा है।"

चक्रवर्ती ने उसे सांतवना देने के लिए कहा, "भाई उपाध्याय, अभी तो नौ मास ही व्यतीत हुए हैं। तुम मेरी ओर देखो, पाँच वर्ष का कठोर कारावास और फिर अनिश्चित समय के लिए बन्दी। इसे भी तीन वर्ष हो चले हैं।"

मधुसूदन ने कहा, "यह आत्मा तो कैद नहीं है। यदि शरीर उसकी स्वतंत्रता में बाधक होगा तो इसे तो छोड़ना पड़ेगा।"

चक्रवर्ती मधुसूदन में विशेष परिवर्तन का अनुभव करने लगा था। दिन-प्रति-दिन वह समाचार-पत्र के प्रत्येक शीर्षक को उत्सुकता से पढ़ता था, मानो वह किसी विशेष समाचार की प्रतीक्षा में हो। जब शीर्षक पढ़ लेता तो समाचार-पत्र पढ़ने में उसे रुचि नहीं रहती थी। आजकल वह पूजा-पाठ और कीर्तन भी छोड़ बैठा था। प्रातः उठता, शौचादि से निवृत्त हो अहते में टहलने लगता था। समाचार-पत्र के शीर्षक पढ़ खाना खा लेता। पश्चात् अपने बिस्तर पर सो जाता। सायंकाल फिर अहते में टहलकर समय व्यतीत करता था। मधुसूदन के साथी उसमें यह सब परिवर्तन देख रहे थे, परन्तु किसी को इसका कारण ज्ञात नहीं था।

एक दिन अधिक दिन चढ़ आने पर भी मधुसूदन के दर्शन नहीं हुए। समाचार-पत्र भी आ गया, परन्तु मधुसूदन की कोठरी का दरवाजा नहीं खुला। हरिहर को संशय हुआ कि उपाध्याय बीमार हो गया है। उसने मधुसूदन की कोठरी का दरवाजा खटखटाया। भीतर से कोई उत्तर नहीं मिला। चक्रवर्ती ने दरवाजे को धक्का दिया तो वह खुल गया। देखा, मधुसूदन का विस्तर बिछा है, पर उस पर कोई लेटा नहीं। चक्रवर्ती अवाक् मुख वहीं खड़ा रह गया। वह नहीं समझ सका कि मधुसूदन का क्या हुआ। वह कोठरी वैसे ही छोड़ बाहर आ गया। क्षण-भर में यह समाचार सबको ज्ञात हो गया। अब टट्टीखाना देखा गया। वह वहाँ भी नहीं मिला तो हरिहर को मधुसूदन की बात स्मरण हो आई, अब तो यहाँ रहना दूसरा हो रहा है।

परन्तु वह गया कहाँ? कोई ममज्ञ नहीं सकता था। इतनी-इतनी ऊँची दीवारों को फाँदकर निकल जाना असम्भव था। किसी ने राय दी कि सुपरिटेण्डेंट को सूचना दे देनी चाहिए, परन्तु चक्रवर्ती ने सबको मना कर दिया। उसने कहा, "यदि वह भाग निकलने में सफल हो गया है तो एक-एक क्षण का अवसर जो उसको इस समय मिल रहा है लाख-लाख रुपये का होगा। सुपरिटेण्डेंट को सूचना मिलते ही चारों तरफ खोज आरम्भ हो जायेगी।"

नियमानुसूल सुपरिटेण्डेंट दिन के बारह बजे देख-भाल के लिए आया। आते ही चक्रवर्ती ने पूछा, "क्या मधुसूदन को आपने यहाँ से कहीं भेज दिया है?"

सुपरिटेण्डेंट ने अभिप्राय न समझते हुए कहा, "नहीं! तुम्हारा मतलब?"

"आज प्रातःकाल से वह कहीं दिखाई नहीं देता।"

"कौन? उपाध्याय?"

"हाँ।"

सुपरिटेण्डेंट के मुख का रंग फीका पड़ गया। वह घबरा गया। उसने फाटक के पास जाकर खतरे की घण्टी बजा दी। जब सब सिपाही इकट्ठे हो गए तो उनको बताया कि क्या हो गया है और तुरन्त खोज आरम्भ हो गई। किले का कोना-कोना खोजा गया। किले के बाहर जंगल था। उसकी भी तलाशी ली गयी। केवल दो बातों का पता चला। एक तो यह कि किले की पश्चिमी दीवार में एक लकड़ी फँसी थी और उसमें एक रस्सी बँधी थी जो किले के बाहर की तरफ लटक रही थी। किले की दीवार पर बाहर की ओर पाँवों के बार-बार खिसकने के चिह्न बने हुए थे। यह दीवार बाहर भूमि से सवा सौ फुट ऊँची थी और रस्सी भूमि से दस फुट ऊँची ही रह गई थी। यह रस्सी उस सुतली की बटकर बनाई गई थी जो सेहन में वेलों को बाँधने के लिए मँगाई गई थी।

जंगल में दो दिन की खोज के पश्चात् एक आधा, जंगली जानवरों से खाया, मनुष्य का शव मिला। शव की तो पहचान नहीं हो सकी, परन्तु सबका अनुमान

यही था कि मधुसूदन को किसी जंगली जानवर ने मारकर खा लिया है।

इस बात के पता चलते ही कि झाँसी से कोई कैदी भाग गया है, आसपास के पुलिस थानों में और रेल के स्टेशनों पर सूचना कर दी गई। इंस्पेक्टर जनरल ऑफ जेल्स ने इस घटना की जाँच की। वह स्वयं झाँसी आया और दो दिन तक वृन्दिनों, पुलिस वालों तथा सुपरिंटेंडेंट के वयान लिए जाते रहे। इस सब जाँच से इंस्पेक्टर जनरल इस परिणाम पर पहुँचा कि सुपरिंटेंडेंट मि० वन्नाराम असावधान व्यक्ति हैं। जहाँ तक मधुसूदन के लुप्त होने का सम्बन्ध था, वह भी इसी परिणाम पर पहुँचा कि वह जंगल में बाघ द्वारा मार दिया गया है।

सुपरिंटेंडेंट को अपनी असावधानी के लिए झाँसी में बदलकर मुल्तानपुर भेज दिया गया और उसकी वेतन-वृद्धि रोक दी गई।

एक दिन मिस्टर वन्नाराम अपना सामान इकट्ठा करवा तथा बँधवा रहे थे। अगले दिन उनको झाँसी से चला जाना था। उनकी स्त्री खिड़की में खड़ी दूर जंगल की ओर देख रही थी। मि० वन्नाराम को जब काम से कुछ अवकाश मिला तो वह कलावती के पास आकर खड़े हो गये। वह अपने विचारों में मग्न थी कि उसे पति के आने का पता नहीं चला। मि० वन्नाराम ने उसके ध्यान को आकर्षित करने के लिए कहा, “क्या सोच रही हो?”

यह सुनकर कलावती चौंक पड़ी। घूमकर पति की आँखों में देखने लगी। उसके मुख से केवल यह निकला कि कितना सुन्दर दृश्य है! मिस्टर वन्नाराम ने उत्तर दिया, “हाँ, परन्तु अब तो इसे छोड़ना ही होगा। मुल्तानपुर वहाँ ही घटिया स्थान है। यह मेरे नम्र-हृदय होने का फल है।”

कलावती ने कहा, “परन्तु इसका भी तो कुछ परिणाम नहीं हुआ। जेल से निकला तो शेर के मुख में गया।”

मि० वन्नाराम ने मुस्कराते हुए पूछा, “कैसे जानती हो कि शेर के मुख में गया?”

“शेर नहीं तो किसी अन्य जंगली जानवर के मुख में गया होगा।”

मि० वन्नाराम की आँखों में विशेष चमक उत्पन्न हो गई और वह प्रेम से अपनी स्त्री की ओर देखने लगे। कलावती इस भाव का अर्थ समझ गई। उसने अति प्रेम भाव से मि० वन्नाराम के गाल पर हल्की-सी चपत मार दी और यह कहती हुई कि, ‘मुझे भी नहीं बताया,’ भागकर दूर जा खड़ी हुई। उन्होंने लपककर उसे पकड़ लिया और गले से लगा लिया।

: ७ :

पूर्णमा को अस्पताल से छुट्टी हो गई थी। घाव भर गया था, परन्तु वह अभी भी बहुत दुर्बल थी। उसकी भुजा, जिधर गोली लगी थी, अभी ठीक काम नहीं करती थी। इस कारण यह उचित समझा गया कि उसे कलकत्ते से राँची

ले जाया जाय। राँची का जत्रवायु स्वास्थ्य के विचार से अति हितकारी सिद्ध हुआ।

सेठ कुंजबिहारी भी सत्याग्रह-आन्दोलन में पकड़े गये थे और छः मास का कारावास काट रहे थे।

क्रांतिकारी-आंदोलन शिथिल पड़ गया था। महात्मा गांधी के सत्याग्रह-आंदोलन के कारण धीरेन्द्र ने आतंक उत्पादक कार्यों को स्थगित कर दिया था। हारान का कारखाना टूट गया था और धीरेन्द्र वैसा अच्छा कारखाना बनाने में सफल नहीं हो सका।

अकस्मात् समाचार-पत्रों में कांग्रेस की सरकार से सुलह की चर्चा होने लगी। डॉ० नेत्रवहादुर सप्रू और मिस्टर जयकर इस काम में गहरी दिलचस्पी लेने लगे। मन्त्रका विचार था कि अब कुछ ही दिनों में सब सत्याग्रही छूट जायेंगे। कई दिन की भाग-दौड़ के पश्चात् डॉ० सप्रू और मि० जयकर अपने प्रयत्न में सफल हो गये और महात्मा गांधी तथा अन्य सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये-गये। महात्मा गांधी ने गोलमेज परिषद् में विलायत जाना स्वीकार कर लिया।

ये समाचार पूणिमा के लिए अति उत्साहवर्धक थे और इनका प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा हो रहा था।

एक दिन एक छोटा-सा समाचार अखबार में निकला था। लिखा था, 'झाँसी डीटन्यूज केम्प में मधुसूदन नाम का एक बन्दी भाग निकला है। पुलिस उसकी खोज कर रही है।' इस समाचार ने पूणिमा के मन में आशाओं और शंकाओं की बंधाये उत्पन्न कीं कि वह निश्चय कर कह नहीं सकती थी कि वह प्रसन्न है अथवा अप्रसन्न। इसके पश्चात् अत्यन्त चिन्ता के साथ समाचार-पत्र की एक-एक पंक्ति पढ़ी जाती। राँची भर हँदकर 'लीडर' दैनिक मँगवाया जाता। यह आशा की जाती थी कि मधुसूदन इलाहाबाद का रहने वाला है और लीडर में उसका समाचार जरूर छपेगा।

कई दिन पश्चात् इंस्पेक्टर जनरल की जाँच का संक्षिप्त विवरण छपा। इस जाँच में यह किस्सा लिखा था, 'जाँच से यह प्रतीत हुआ कि जत्र मधुसूदन कूदा तो उसके चोट आई थी। कूदने के स्थान पर रक्त के चिह्न देखे गये। उस स्थान से आवे फलांग के फासले पर आधा बाघ से खाया हुआ उसका शव मिला है।'

पूणिमा के लिए यह समाचार वज्रपात सिद्ध हुआ और जो स्वास्थ्य-लाभ उसे राँची में पहुँचने से हुआ था वह कुछ घण्टों में ही मिट गया। नरोत्तम और उसकी माँ स्वयं बहुत दुःखी थे और पूणिमा को साहस बँधाने में अशक्त थे।

दिन-प्रतिदिन वह दुर्बल होने लगी। अब उसे धीमा-धीमा ज्वर भी रहने लगा था। खाया-पिया कुछ लाभ नहीं करता था। राँची में चिकित्सा का उचित प्रबन्ध न रहने से नरोत्तम पूणिमा को कलकत्ता ले जाने की सोचने लगा। पूणिमा इसमें

कुछ लाभ नहीं समझती थी। वह चाहती थी कि बनारस चली जाये। कलकत्ते जाने को वह पसन्द नहीं करती थी। नरोत्तम कहता था कि बनारस बहुत गन्दा स्थान है और वहाँ स्वास्थ्य सुधरना असम्भव है। इसी प्रकार विचार-विचार में कई सप्ताह बीत गये।

दोपहर का समय था। पूर्णिमा को, नित्य की भाँति, हलका ज्वर हो आया था और वह खाट पर विचारमग्न पड़ी थी। उसे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि बाहर किसी परिचित के पाँव की आहट है। इतने में दीवार पर जिस ओर उसका मुख था और जिस पर खिड़की में से प्रकाश पड़ रहा था, एक परछाई पड़ी। वह डर गई। उसने धूमकर खिड़की की ओर देखा। किसी की पोठ दिखाई दी। इतने में कमरे का दरवाजा खुला और एक व्यक्ति बहुत मैले कपड़े पहने हुए, फटा जूता, सिर से नंगा, मुख पर दाढ़ी और मूँछ बहुत बड़ी-बड़ी, और हाथ में एक लकड़ी लिए, जो एक पेड़ से तोड़ ली प्रतीत होती थी, कमरे में चला आया। पूर्णिमा इस भयंकर आकृति वाले पुरुष को देखकर घबरा गई। वह चीख मारने ही वाली थी कि आने वाले ने हाथ उठाकर चुप रहने का संकेत किया। पूर्णिमा विस्मय में उस पुरुष को देखने लगी। धीरे-धीरे ज्ञान होने लगा। उस बड़ी हुई मूँछ-दाढ़ी, मैले-फटे कपड़ों तथा थकावट से अस्त-व्यस्त आँखों के नीचे उसे मधुसूदन की मुस्कराहट दिखाई देने लगी। पहले तो वह समझी कि उसे भ्रम हो गया है, परन्तु वह भ्रम और सन्देह अधिक काल तक नहीं टिका रह सका। उसके मुख से निकल गया, “आप ?” और वह खाट पर उठकर बैठ गई।

मधुसूदन ने समीप आकर कहा, “पूर्णमा, तुम जीती हो हे ! भगवान् ! तुम्हारी अपार कृपा...” इसी समय पूर्णिमा खाट पर वेहोश हो गिर पड़ी।

नरोत्तम कहीं बाहर गया हुआ था। जब लौटा तो एक माँगने वाले को पूर्णिमा की खाट के पास कुर्सी पर बैठे और धीरे-धीरे बातें करते देख क्रोध से भर गया। पूर्णिमा आजकल सड़क पर धूमते हुए ज्योतिषियों और फकीरों से बहुत कुछ पूछा करती। नरोत्तम इसे पसन्द नहीं करता था। आज उसने निश्चय कर लिया था कि कोई भी हो, धक्के मार-मारकर घर से बाहर निकाल देगा। बहुत आवेश में बोला, “क्या है बाबा ? यहाँ किसलिए घुस आये हो ?”

इतना कहते हुए उसने मधुसूदन को गर्दन से पकड़ दरवाजे की ओर धक्का देने के लिए हाथ बढ़ाया। पूर्णिमा खिलखिलाकर हँस पड़ी और मधुसूदन मुस्कराता हुआ उसकी ओर देखने लगा। नरोत्तम क्रोध में पागल हो रहा था। उसको पूर्णिमा के हँसने ने और भी नाराज कर दिया। कहने लगा, “दीदी, चुप रहो ! मैं अब ऐसे बोंगियों को यहाँ नहीं आने दे सकता।” इतना कह मधुसूदन को धक्के देता हुआ दरवाजे की ओर ले चला।

पूर्णमा ने यह देखकर कहा, “भैया, क्या पागलपन कर रहे हो ? देखो तो यह

कौन हैं ?”

मधुसूदन दरवाजे पर पहुँच घूमकर नरोत्तम की ओर देखने लगा। वह अब भी मुस्करा रहा था। नरोत्तम पूर्णिमा के कहने पर मधुसूदन की ओर घूरकर देखते हुए बोला, “कौन हो जी तुम ? बताते क्यों...” इसके आगे उसकी आवाज नहीं निकल सकी। उसे कुछ-कुछ आभास होने लगा। मधुसूदन कभी पूर्णिमा और कभी नरोत्तम की ओर देख रहा था। वह नरोत्तम के विस्मय, लज्जा और भय की अवस्था देख हँसने लगा। नरोत्तम से अब न रहा गया। हाथ जोड़कर बोला, “दादा, क्षमा करना। मैं पहचान न सका।” मधुसूदन ने उसको पाँव पर झुकते देख पकड़कर गले से लगा लिया।

माँ दूसरे कमरे में रसोई कर रही थी। इतना हल्ला सुन भागी-भागी आई और दरवाजे में ही नरोत्तम को एक भीख माँगने वाले से गले मिलते देख चकित हो देखने लगी। मधुसूदन की पीठ उसकी तरफ थी।

नरोत्तम ने माँ को देख लिया था। बोला, “दादा ! माँ।” मधुसूदन ने घूमकर माँ के चरण-स्पर्श किये। माँ ने पहचान तो लिया पर समझ न सकी।

मधुसूदन की मृत्यु का समाचार पाने के पश्चात् पुनः उसका जीवित-जाग्रत मिल जाना अत्यन्त आनन्द का कारण था। कई घण्टे तक तो सब-के-सब उस समय के आनन्द में पागल हो गये। मन में इतने विचार थे, पूछने को इतनी बातें थीं और कहने को इतना कुछ था कि कोई नहीं जानता था कि कहाँ से आरम्भ करें। सबसे पूर्व पूर्णिमा ने यह बेसिर-पैर की मजलिस तोड़ी और कहा, “माँ, इनको स्नानादि करने दो न। कहते हैं, दो मास से स्नान भी नहीं किया।”

जब मधुसूदन स्नानादि कर स्वच्छ वस्त्र पहन रहा था, नरोत्तम बहुत बेचैनी से बरामदे में चक्कर काट रहा था। मधुसूदन के आ जाने से अनेकों नई समस्यायें उपस्थित हो गई थीं। दूसरी ओर पूर्णिमा के मन में एक नई उथल-पुथल मच रही थी। वह सोच रही थी, ‘कैसे एक सत्याग्रही जेल से भाग सकता है अथवा जेल से भागे हुए को आश्रय दे सकता है ?’

मधुसूदन ने खाना खाया और सो गया। वह कई दिन का थका-माँदा था। झाँसी से कलकत्ता और कलकत्ते से राँची पैदल ही आया था। मार्ग में जहाँ कुछ खाने को मिला खा लिया, नहीं तो भूखा ही चल पड़ा। सड़क के किनारे सो रहा। स्नान किये तो कई दिन हो चुके थे। कपड़े धोने और हजामत बनवाने के लिये तो अवकाश ही नहीं था। बीस मील से कम तो वह किसी दिन नहीं चला था। कभी-कभी इससे भी अधिक चलना पड़ता था।

अब जब अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँचकर उसने पूर्णिमा को जीता-जागता पा लिया था तो उसके आनन्द की सीमा नहीं रही थी। स्नान इत्यादि से निवृत्त हो, खाना खा जब सोया तो चौबीस घण्टे से पूर्व नहीं जाग सका। इस समय में

नरोत्तम ने मधुसूदन के विषय में एक पूर्ण आयोजना विचार कर बना ली थी। पूर्णिमा अभी भी दुविधा में पड़ी थी। वह यह निर्णय न कर सकी थी कि सत्याग्रही होने से वह मधुसूदन के विषय में क्या करे। बार-बार उसका मन मधुसूदन को जीवित-जाग्रत् पाने के आनन्द में इतना डूब जाता था कि वह सत्याग्रही के धर्म को भूल जाती थी। वह समझती थी कि मधुसूदन को आश्रय देना उसके सत्य के व्रत के विपरीत है। परन्तु प्रेम-पाश में बँधी हुई वह अपने मन की पुकार को बार-बार दबा देती थी और वे सब मनोहर, सुहावने चित्र देखने लगती थी जो एक स्त्री, अपने सुहाग को सुरक्षित देख, देखा करती है। पूर्णिमा की माँ के मन की अवस्था पूर्ण सन्तोष और आनन्द की थी। वह समझती थी कि अब पूर्णिमा का राजी हो जाना कुछ दिन की बात है।

दूसरे दिन मधुसूदन जब जागा और स्नान, ध्यान तथा भोजन कर चुका तो नरोत्तम उसे पूर्णिमा के कमरे में ले गया। उसे ज्वर नहीं हुआ था। वह प्रत्यक्ष में तो प्रसन्न प्रतीत होती थी, परन्तु कभी मन की दुविधा में खो जाती थी। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि वह कहीं निर्जन स्थान में हताश हो मार्ग भूले बैठी है।

नरोत्तम ने कमरे में आते ही कहा, “लो दीदी, कुम्भकरण को जगा लाया हूँ। यह तो अभी भी सो जाने की सोच रहे थे।”

पूर्णिमा खाट से उठ आरामकुर्सी पर बैठी थी। मधुसूदन को देख मुस्कराई और कहने लगी, “अभी तो केवल चौबीस घण्टे ही हुए हैं। इन्हें छः मास की छुट्टी है।”

मधुसूदन ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा, “जब मनुष्य को असीम आनन्द होता है तो अचेतन हो जाता है। नींद भी तो एक प्रकार की अचेतनता है।”

नरोत्तम, जो मधुसूदन को सुरक्षित रखने के विषय में पहले निश्चय कर लेना चाहता था, गम्भीर भाव धारण कर कहने लगा, “दादा, पहले तो यह बताओ, तुम यहाँ पहुँचे कैसे?”

मधुसूदन ने आँखें नीची कर अपने भागने की कहानी वर्णन करते हुए कहा, “एक दिन ‘पायोनियर’ समाचार-पत्र में पढ़ा कि कलकत्ते में गोली चल गई और पूर्णिमा घायल हो गई है। सेठ साहब से मुझे यह पता लग गया था कि आप लोग कलकत्ते रहते हैं और पूर्णिमा ने कांग्रेस के अहिंसावाद को अपना लिया है। इस समाचार को पढ़ते ही मैंने निश्चय कर लिया कि जेल से भाग जाऊँगा। मुझे विश्वास था कि भागने में सफल हो जाऊँगा। मैंने असफलता का पाठ नहीं पढ़ा। उसी रात मैं कोठरी की छत पर चढ़ गया। यह एक कठिन बात थी, परन्तु जहाँ पक्की धारणा हो वहाँ बाधाएँ नहीं रहतीं। मैंने कोठरी की दीवार में देखा कि एक-दो स्थानों पर ईंटें कुछ ढीली पड़ गई हैं। उनको हिलाया तो वे निकल गईं और वहाँ पाँव रखने को स्थान मिल गया। जो लोग पेड़ पर चढ़ना जानते हैं वे

बहुत कम आश्रय से बहुत ऊँचाई तक पहुँच सकते हैं। कोठरी के बाहर के कोने के एक तरफ एक पाँव और दूसरी तरफ दूसरा पाँव, और निकली हुई ईंटों के स्थान का आश्रय, यह सुभीता होने पर दीवार यदि पचास फुट ऊँची भी होती तो मैं चढ़ जाता। कोठरी केवल अठारह फुट ऊँची थी। छत पर पहुँच किले की दीवार के पास पहुँचा। पूर्व की ओर चाँद निकल रहा था। उधर आकाश रोशन हो रहा था। और दीवार की मुँडेर इस चाँद के प्रकाश के सम्मुख स्पष्ट दिखाई देती थी। दीवार, जहाँ मैं खड़ा था, वहाँ केवल सोलह-सत्रह फुट ऊँची थी। मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही जब मैंने दीवार को ऊपर से फटा देखा। एक स्थान पर दीवार में दरार आई थी और वह उज्ज्वल प्रकाश के कारण स्पष्ट दिखाई दे रही थी। मैं छत से नीचे उतर आया और अपनी कोठरी में से बेलों को बाँधने के लिए मँगवाई सुतली लेकर उसकी लगभग बीस फुट लम्बी रस्सी बनाई। इसके एक सिरे को लगभग एक फुट लम्बी मजबूत लकड़ी के बीच में बाँध दिया। इस सब काम में लगभग दो घण्टे लग गये। इस समय तक चाँदनी छिटक आई थी। इस पर भी मैं निश्चिन्त छत पर चढ़ गया। छत पर चढ़कर लकड़ी को दीवार की दरार में फँकने का यत्न करने लगा। तीन-चार बार प्रयत्न के बाद रस्सी के एक सिरे से बाँधी लकड़ी उस दरार में फँस गई और मैं दीवार के ऊपर पहुँच गया। दीवार के बाहर जंगल था। भीतर से दीवार तैंतीस फुट ऊँची थी, परन्तु बाहर से जमीन से बहुत ऊँची थी। मैंने इसका अनुमान लगाना आरम्भ किया। अन्त में इस निर्णय पर पहुँचा कि सौ फुट से कम नहीं होगी। सौ फुट फाँदना आसान नहीं था। अतएव उस दिन वापस उतर आया, रस्सी दीवार की दरार से निकाल ली और अपनी कोठरी में विस्तर के नीचे छुगाकर रख दी।

“अब बहुत-सी बेलों को बाँधने के बहाने बहुत-सी सुतली मँगवाई और धीरे-धीरे रात के समय एक लम्बी रस्सी बनानी आरम्भ कर दी। कई रातों के प्रयत्न के पश्चात् मैं एक सौ फुट लम्बी रस्सी बनाने में सफल हो गया। अब शुक्लपक्ष आ गया था और धैर्य से अँधेरी रातों की प्रतीक्षा करनी पड़ी। अन्त में कृष्णपक्ष चतुर्दशी आई। मैं रात के ग्यारह बजे की गजर सुनते ही उठा, रस्सी अपनी कमर से बाँधकर और जूतों को कुर्ते की जेब में डाल, कोठरियों की छत पर चढ़ गया। वहाँ से दीवार की दरार में रस्सी फँकने में बहुत समय लगा। इस रात अँधेरा होने से दरार स्पष्ट दिखाई नहीं देती थी। रस्सी को ऊपर फँकने पर जब लकड़ी वहाँ नहीं अटकती थी तो खट-खट का शब्द होता था। उस निस्तब्ध रात्रि में यह खट-खट का शब्द मन को भय उत्पन्न करता था। एक बार तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सुपारिटेण्डेंट के मकान की खिड़की खुली है और उसमें से कोई देख रहा है। मुझे कुछ काल तक चुपचाप दीवार के साथ लगकर खड़ा रहना पड़ा। आखिर वह खिड़की बन्द हो गई और मैंने फिर रस्सी फँकी। सौभाग्य से रस्सी इस

बुद्धि का फेर

पिताजी मुझे जाने की स्वीकृति नहीं देते। मैंने इनके सम्मुख कभी झूठ नहीं बोला और न ही बोलना चाहता हूँ। अतएव सब परिस्थिति वर्णन कर दी है। इस पर आप कह रहे हैं कि यदि मैं चला गया तो आप आत्मघात कर लेंगे। इसी समझाने-बुझाने में गाड़ी छूट गई है।”

यह सुनकर सेठ साहब ने क्रोध में कहा, “मुझे तुम्हारी नालायकी पर क्रोध आ रहा है। मैं पूछता हूँ कि मुझे तुमने सबकुछ क्यों नहीं बताया? क्या मैंने जो कुछ तुम्हारे लिए किया है उसका यही फल होता चाहिये?”

मधुसूदन ने क्षमा माँगते हुए कहा, “मेरी धारणा थी कि आपको सबकुछ ज्ञात है। क्या पूर्णिमा ने आपको नहीं बताया?”

“वह क्या बताती? वह तो तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा में थी और अब उसको पूछने का अवसर ही कहाँ था।”

“क्या उसने आपको नहीं बताया कि मेरा जेल से भाग आना मेरे उसके विवाह में बाधक है?”

नरोत्तम ने उत्सुकता से पूछा, “किसे बाधा उठाई है?”

“हमारे मित्रान्तों ने। मैं भ्रम में पड़ गया था और मोहवश जेल से भाग आया था। यह पूर्णिमा को भ्रम में न डाल सका। उसकी बुद्धि निर्मल थी और सामाजिक मोह-ममता उसे अपने पथ से भ्रष्ट नहीं कर सकी।”

सेठ साहब ने माथे पर त्योंरी चढ़ाकर कहा, “क्या बहकी-बहकी बातें कर रहे हो? क्या तुम्हारा अभिप्राय यह है कि इस उद्दण्डता में तुम दोनों का हाथ है?”

“उद्दण्डता? उद्दण्डता कैसी? मैंने जानबूझकर तो कोई ऐसी बात नहीं की। हाँ, भूल यह है कि जेल से भाग आया हूँ और पूर्णिमा ने मुझे सुझा दिया है कि यह भूल थी। इस कारण मैं अपने-आपको पुलिस के हवाले कर देना चाहता हूँ।”

नरोत्तम यह सब सुन क्रोध से लाल हो गया। कहते लगा, “नहीं। हम तुमको ऐसा नहीं करने देंगे। हम तुम्हारे मित्रान्तों को सत्य नहीं समझते।”

“परन्तु इससे पूर्णिमा का सत्याग्रह-व्रत भंग होता है।”

“सत्याग्रह-व्रत? यह किस वेद में लिखा है?”

“महात्मा गांधी ऐसा कहते हैं। पूर्णिमा के मन में संशय था, इस कारण उसने महात्माजी के एक लेफ्टीनेन्ट को पत्र लिखा और उसका उत्तर कल पूर्णिमा ने मुझे दिखाया था।”

“ठीक है। परन्तु महात्माजी क्या तुम्हारे गुरु हैं? तुमने कब उनसे दीक्षा ली थी? पहले तो तुम महात्माजी को हिन्दू सभ्यता का विरोधी मानते थे। अब क्या तुम उनकी अनुमति बिना उठ-बैठ भी नहीं सकते?”

“मैंने दीक्षा ली है अथवा नहीं, यह विवादास्पद बात नहीं। मुख्य बात यह है कि पूर्णिमा वही ठीक समझती है जो महात्माजी ठीक समझते हैं।”

तुम इनके बाध द्वारा खाये जाने का समाचार पाकर बीमार क्यों हो गई थीं ?”

पूणिमा चुप रही। वह अपने मन में जो बात रखती थी, वह कह नहीं सकती थी। कभी-कभी वह यह समझने लगती थी कि उसका विचार मिथ्या है। मधुसूदन ने जेल से भागकर कुछ भी अनुचित नहीं किया। फिर कभी-कभी उसे यह प्रतीत होता था कि भाग आने पर उसे छिपकर रहना होगा। प्रत्येक बात में, प्रत्येक काम में और प्रत्येक स्थान पर मिथ्या बोलना होगा। उसके इस मिथ्या व्यवहार में उसके सम्बन्धी, मित्र और परिचितों को भी सहयोग देना होगा। यह असत्य का जीवन कैसे एक सत्याग्रही के लिए उपयुक्त हो सकता है, इस द्विविधा का निर्णय वह अपने भाई नरोत्तम से नहीं कराना चाहती थी। वह जानती थी कि उसके सम्मुख यह बात कहना भी हँसी करवाना है।

मधुसूदन ने अब दाढ़ी-मूँछ रख ली। उसने नाम भी बदलकर गोपाल रख लिया। वहाँ वह इस नाम से प्रसिद्ध होने लगा।

बुद्धि का फेर

नरोत्तम ने मधुसूदन के पिता को एक दिन पत्र लिखा कि ‘मधुसूदन की अकालमृत्यु का समाचार सुनकर हम सबको अत्यन्त दुःख हुआ है। पूणिमा का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है और उसकी इच्छा है कि आप कुछ दिन के लिए यहाँ चले आयें। इससे आपके मन की अवस्था में परिवर्तन हो सकेगा। इसके अतिरिक्त आपसे एक अत्यावश्यक विषय में परामर्श भी लेना है जिसके लिए हमने सेठ साहब को भी, जो अब जेल में छूट चुके हैं, यहाँ बुलवाया है। आप दोनों के यहाँ आने से भली-भाँति विचार हो सकेगा।’

श्यामाचरण को सरकारी रिपोर्ट की नकल मिल चुकी थी। वह बहुत उदास रहता था। इस निमंत्रण को पाकर उसने राँची जाने का निर्णय कर लिया। परन्तु वहाँ पहुँचकर उसके आनन्द की सीमा न रही। नरोत्तम ने उसे मधुसूदन से मिलने के पूर्व सब बात बता दी थी और उसके इलाहावाद न जाने का कारण भी वर्णन कर दिया था। पिता-पुत्र का मेल अत्यन्त हर्षोत्पादक हुआ था।

सेठ कुंजबिहारी भी कलकत्ते बुला लिए गये थे और कुछ दिन राँची में बहुत ही खुशी से व्यतीत हुए। पूणिमा अब पहले से बहुत अच्छी अवस्था में थी। मकान से बाहर भी-आने-जाने लगी थी। ज्वर अथवा अन्य कष्ट अब नहीं रहे थे।

एक दिन पूणिमा और मधुसूदन दोनों टहलने गये हुए थे। सेठ कुंजबिहारी ने नरोत्तम और उसकी माता को अकेले बैठा देख अपने मन की बात कहने के लिए

सुअवसर पाया। वह उनके पास आकर बैठ गये। बोले, “भैया, अब मेरे विचार में पूर्णिमा के विवाह का प्रबन्ध कर देना चाहिये। जब तक विवाह न हो तब तक कुछ-न-कुछ उच्छृङ्खलता युवक लोग करते ही रहते हैं। मुझे भय है कि महात्मा गांधी और ब्रायसराय महोदय की परस्पर पटेगी नहीं और तुरन्त ही फिर सत्याग्रह आरम्भ हो जायेगा। यदि पूर्णिमा का उससे पूर्व विवाह न हुआ तो फिर सत्याग्रह में सम्मिलित होने से उसको रोकना कठिन हो जायेगा। उसका स्वास्थ्य अब ऐसा नहीं कि वह अब जेल की कठिनाइयाँ सह सके।”

पूर्णिमा की माँ तो पहले ही मन में इस विषय पर विचार कर रही थी। वह समझती थी कि मधुसूदन के पिता और मेठ साहब दोनों का वहाँ होना इस निर्णय के लिए बहुत अच्छा अवसर है। अब मेठ साहब को यह प्रस्ताव करते देख बहुत प्रसन्नता से बोली, “मेरी भी यही राय है, परन्तु बिना गोपाल (मधुसूदन) के पिता की इच्छा के यह कैसे होगा?”

मेठ साहब बोले, “यदि आपकी राय हो तो मैं उनसे बात करूँ?”

नरोत्तम ने तुरन्त उत्तर दिया, “हाँ, आप हमारे माननीय हैं और यदि यह बात अब आपके सम्मुख निश्चय हो जाये तो अच्छा ही है।”

अभी ये बातें हो ही रही थीं कि श्यामाचरण शहर से, जहाँ वह ठहरा हुआ था, लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ आ पहुँचा। आने पर उमे बैठाकर मेठ साहब ने कहना आरम्भ किया, “पण्डितजी, अब तुम अपने लड़के के विवाह के विषय में क्या विचार रखते हो?”

श्यामाचरण ने गम्भीर भाव धारण कर कहा, “मैंने अपनी पहली आपत्ति के कारण घोर प्रायश्चित्त किया है। मैं समझता हूँ कि मैंने ही उमे जेलखाने भेजा था। न मैं आपत्ति उठाता और न ही वह निराश होकर रात को गंगा के किनारे फिरता। अब यद्यपि अनेक कठिनाइयाँ हैं तो भी अपनी ओर से इस विषय में आपत्ति नहीं उठाऊँगा।”

जिन कठिनाइयों की ओर श्यामाचरण ने संकेत किया था, वे दूसरे लोगों को भी ज्ञात थीं, परन्तु नरोत्तम और मेठ साहब का विचार था कि उन कठिनाइयों को थोड़ी-सी सावधानी से दूर रखा जा सकता है।

मेठ साहब ने कहा, “मैं तो कोई कठिनाई नहीं समझता। यदि तुम्हारा अभिप्राय उसके जेल में भाग आने के विषय में है तो मैं उसकी स्वतन्त्रता को इतने ही खतरे में मानता हूँ जितना किसी भी भारतवासी की। दासता में फँसी जाति के किसी भी सदस्य को अपने-आपको सुरक्षित समझना भूल है। उसका कोई भी काम, किसी समय, सरकार के विरुद्ध समझा जा सकता है और उसे फाँसी पर लटकाया जा सकता है। हाँ, तुमको कोई आपत्ति नहीं है?”

“मैंने पहले आपत्ति उठाई तो उसका परिणाम बुरा ही रहा था। अब आपत्ति

क्या उठाऊँ? सबकुछ तो मुझसे पूछे बिना ही तय हो गया है। अब मुझे लड़की वालों की ओर से न करने का सन्देह होता था। यदि उन्हें स्वीकार है तो मुझे भी स्वीकार है।”

इसके पश्चात् विवाह कहाँ हो, कब हो, कैसे हो इत्यादि बातों पर विचार होने लगा। सेठ साहब ने मधुसूदन के लिए किसी कारोबार का भी आश्वासन दिलाया। सेठ साहब कई लाख रुपया लगाकर कोई फिल्म कम्पनी खोल देने का विचार करते थे।

इस समय मधुसूदन और पूर्णिमा घूमकर वापस आ गये। उन्हें आता देख सब चुप हो गये। एकदम बातें बन्द होती देख पूर्णिमा को सन्देह हो गया कि उसी के विषय में बातें हो रही थीं। उसने एक कुर्सी को समीप खिसका और उस पर बैठते हुए कहा, “क्या षड्यन्त्र रचा जा रहा था?”

नरोत्तम हँस पड़ा और श्यामाचरण अपने स्थान से उठकर मधुसूदन से बात करने चला गया। पूर्णिमा नरोत्तम को हँसते देख बोली, “आप सबके मुखों को देखने से यह प्रतीत होता है कि आप मेरी निन्दा कर रहे थे। भैया, ठीक है न?”

नरोत्तम ने तुरन्त उत्तर दिया, “कैसे कहती हो निन्दा? हम तो तुम्हारी प्रशंसा कर रहे थे।”

“तब तो मेरा अनुमान ठीक निकला। प्रशंसा और निन्दा में कोई भेद नहीं होता। यह तो चित्र के दो पक्ष हैं। जो बात एक के मुख में निन्दा-रूप है, वही दूसरे के मुख में प्रशंसा का रूप धारण कर लेती है।”

“तो तुम निन्दा-प्रशंसा में कोई भेद नहीं मानती?”

“भेद तो कहने वाले के मन में होता है। उदाहरण के लिए यदि कोई कहे कि पूर्णिमा सिनेमा में काम करती है तो इसके अर्थों में छिपा भाव प्रशंसात्मक अथवा निन्दात्मक, कहने वाले की मानसिक प्रवृत्ति पर निर्भर है।”

“तब तो बात सिद्ध हो गई कि हमने तुम्हारी प्रशंसा की है। बात करने वाले हम थे और हम कहते हैं कि हम तुम्हारी प्रशंसा करते थे।”

“भला सुनूँ तो क्या प्रशंसा करते थे?”

“सुनाऊँ? अच्छा सुनो। हम कह रहे थे, हमारी पूर्णिमा रानी है। वह बहुत सुन्दर और सयानी है। अब ब्याहने योग्य हो गई है। रानी ससुराल जायेगी। श्वसुर के कान कतर लायेगी....”

पूर्णमा ने नरोत्तम के कान पर हलका-सा घूँसा लगाते हुए कहा, “झूठा कहीं का!”

यह कह वह उठ खड़ी हुई और अपने कमरे में चली गई। उसकी माँ भी उसके साथ-साथ वहाँ पहुँच गई। जब पूर्णिमा खाट पर बैठ गई तो उसकी माँ समीप एक कुर्सी पर बैठ कहने लगी, “बेटी, सेठ साहब कह रहे थे कि अब समय आ गया

ह। कि मधुसूदन को कहीं काम पर लगा दिया जाये। इसके साथ उसके विवाह की चर्चा भी चल पड़ी थी।”

पूर्णमा एकदम गम्भीर हो गई और धूमकर माँ की ओर देखते हुए बोली, “फिर?”

“फिर क्या? अब तिथि निश्चित करनी रह गई है।”

“परन्तु विवाह होगा किससे?”

माँ ने मुस्कराते हुए कहा, “पगली-सी। तुमसे और किससे?”

पूर्णमा, जो अब खाट पर लेट रही थी, उठकर बैठ गई और बोली, “माँ, तुम नहीं जानतीं, मेरा विवाह उनसे नहीं हो सकेगा।”

“क्यों?”

“उन्हीं से पूछ लो न!”

“परन्तु हमने तो उसके पिता को मना लिया है।”

“ठीक है। परन्तु विवाह पिता का तो नहीं हो रहा है।”

माँ ने अब चिन्तित भाव से पूछा, “तुम्हारा क्या अभिप्राय है? मैं नहीं समझी। मैं अभी मधुसूदन से पूछती हूँ।” यह कह वह कमरे से बाहर निकल आई।

वरामदे में नरोत्तम और सेठ साहब निमन्त्रण-पत्र बना रहे थे। नरोत्तम कह रहा था, “अभी बहुत हल्ला नहीं होना चाहिये। मधुसूदन अभी सुरक्षित नहीं है।”

सेठ साहब कह रहे थे, “तो यह पच्चीस की सूची पर्याप्त है।”

नरोत्तम की माँ दोनों को तैयारी में इतना व्यस्त देख कुछ अधीर हो बोली, “निमन्त्रण तो बनते रहेंगे, पहले मियाँ-बीवी की अनुमति तो ले लो।”

नरोत्तम भौचक्का हो मुँह देखने लगा। माँ ने कहा, “हाँ, पहले मधुसूदन को बुलाकर पूछो कि क्या बात है?”

नरोत्तम उठकर श्यामाचरण और मधुसूदन के पास पहुँचा। वे बाहर घाम पर कुर्सी लगाये बातें कर रहे थे। वह मधुसूदन को अपने साथ वरामदे में ले आया और उसे सेठ साहब के पास बैठाकर पूछने लगा, “दादा, क्या बात है?”

मधुसूदन ने अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, “किस विषय में आप पूछ रहे हैं?”

“विवाह के विषय में।”

मधुसूदन ने कुछ गम्भीर भाव धारण कर कहा, “मेरा विवाह? हाँ, एक समय था कि यह चर्चा चली थी। उस समय मैंने अस्वीकार कर दिया था। पश्चात् मैं पकड़ा गया। अब मैं भागा हुआ कैदी हूँ। इस कारण मुझे साहस नहीं हुआ कि इस विषय पर फिर चर्चा चलाऊँ और दूसरे पक्ष की ओर से भी कभी चर्चा नहीं हुई। पिताजी अभी यही बात कर रहे थे। मैंने उन्हें भी कहा है कि जब

मैं निष्कलंक था और पूर्ण स्वतन्त्र था तब उन्होंने और मैंने मना कर दिया था और अब मेरे जीवन का पथ भय से पूर्ण है, मैं कैसे विवाह के लिए अनुरोध कर सकता हूँ।”

“तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है?”

“आपत्ति ! यह तो केवल कृतज्ञता का विषय हो सकता है।”

“तो तब ठीक है, परन्तु पहले दीदी से तय कर लो।”

मधुसूदन आँखें नीची किये चुपचाप बैठा रहा।

नरोत्तम ने उत्साहित करते हुए कहा, “दादा, डरते क्यों हो? जाओ न भीतर, तय कर आओ।”

मेठ साहब ने कहा, “अब अधिक देर तक ठहरना लाभदायक नहीं होगा। विवाह हो ही जाना चाहिये। सबकुछ तैयार है, केवल तुम लोगों की स्वीकृति की देरी है। पूर्णिमा से पूछा गया तो वह बोली कि तुमसे पूछ लिया जाये और तुम कहते हो कि कभी चर्चा ही नहीं चली। यह तुम लोगों ने क्या रगड़ा फैलाया है? तनिक भीतर जाओ और मालूम कर आओ।”

अब मधुसूदन की समझ में आया कि पूर्णिमा ने आपत्ति उठाई है। इसकी उसे आशा न थी। उसका विचार था कि जब भी वह समय आवेगा वह मान जायेगी। परन्तु आपत्ति उठाने में उसका क्या प्रयोजन है, वह यह जानने के लिए अधीर हो उठा। अतएव वह उठकर पूर्णिमा के कमरे में चला गया।

पूर्णिमा उसकी प्रतीक्षा में बैठी थी। उसे विश्वास था कि माँ मधुसूदन से पूछेगी और वह कुछ नहीं समझ सकेगा। इस कारण उससे पूछने आयेगा। अब उसे कमरे में आता देख, कुर्सी पर बैठने का संकेत कर, उसने एक लिफाफा उसके हाथ में दे दिया।

मधुसूदन हैरान था। उसने लिफाफे पर पता पढ़ा। पूर्णिमा का नाम और राँची का पता लिखा था। उसने पूछा, “यह क्या है?”

“इसमें से निकालकर पढ़िये।”

उसने लिफाफे में से चिट्ठी निकाल ली। वह पहले ही खुला हुआ था। भेजने वाले का नाम था वी० वी० बनर्जी।

बाबू विपिनविहारी बनर्जी विहार प्रान्त के एक प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता थे। पूर्णिमा को गोली लगने की सारी कहानी सुन चुके थे और उसके साहस और विचारों को सराहते थे। जब से पूर्णिमा राँची आई थी, वह कई बार उसकी कुशल-क्षेम पूछने के लिए पटना से चलकर वहाँ आये थे।

बाबू विपिनविहारी विहार के सत्याग्रहियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। जीवन की सादगी और आत्म-त्याग के कारण कई लोग उन्हें विहार के गांधी के नाम से भी सम्बोधन करते थे। अपने प्रान्त में सबसे प्रथम जेल भेजे गये थे और

सब कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य होने से महात्माजी के आशय और विचार के सच्चे प्रतिपादन करने वाले समझे जाते थे।

जब से मधुसूदन भागकर आया था, पूर्णिमा के मन में द्वन्द्व-युद्ध चल रहा था। एक ओर मधुसूदन के प्रति प्रेम था और दूसरी ओर सत्याग्रह-धर्म। मन की इस द्विविधा को मिटाने के लिए उसने मिस्टर बनर्जी को अपनी समस्या लिखकर उत्तर माँगा था और यही वह उत्तर था जो मधुसूदन को पढ़ने को मिला था। उसमें लिखा था :

बेटी पूर्णिमा, चिरंजीव रहो।

यह जानकर कि तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर रहा है, बहुत सन्तोष हुआ है। तुमने जो दूसरे विषय में पूछा है उसमें मेरी सम्मति यह है कि चाहे कोई कितने ही अन्याय से बन्दी बनाया गया हो, उसे जेल में भागना नहीं चाहिये। सच्चे सत्याग्रही का धर्म है कि न तो किसी बन्दी के भागने में महायक हो और न किसी भागे हुए बन्दी को आश्रय दे। जेल में भागकर हम अपनी भीमता प्रकट करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि हम दुःख और कष्ट सहन नहीं कर सकते। जिस लक्ष्य के लिए अथवा जिस नीति का अवलम्बन करते हुए, हम न्याय अथवा अन्याय में, मुकदमा करके अथवा बिना मुकदमा चलाये, बन्दी बनाये गये हों, हमें अपने विचार अथवा नीति की यथार्थता सिद्ध करने के लिए कष्ट सहन करने को तत्पर रहना चाहिये। जेल में भाग आने से तो यह प्रकट होता है कि कष्ट न सहन कर सकने में ऐसा कर रहे हैं। यह बात हमारे सिद्धांत के लिए ठीक नहीं। हम चोर-डाकू नहीं जो हमें जेलखाने के तथा अन्य कष्ट सहन करने में लज्जा आती हो। हमारे लिए तो जेल के दरवाजे खुले भी छोड़ दिये जायें तो वहाँ से आने की आवश्यकता नहीं। यह तो बन्दी करने वालों का धर्म है कि वह कहे कि तुम जाओ, तुम्हें पकड़कर हमने भूल की है।

सत्याग्रह का रूप यह है कि हम जो जानते हैं, करते हैं अथवा कहते हैं उसको छिपाकर नहीं कहते अथवा करते। स्पष्ट सबके सामने कहने व करते हैं और उसके परिणामों से भागना हमारा काम नहीं।

मेरे विचार में तुम्हें अभी राँची में ही रहना चाहिये। ईश्वर की कृपा से तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो पुनः अपने काम में लग सकोगी।

—वी० वी० बनर्जी

मधुसूदन ने चिट्ठी पढ़कर पूर्णिमा को वापस कर दी। कुछ काल तक दोनों आँखें नीची किये अपने विचार में मग्न रहे। पूर्णिमा की आँखों से टप-टप आँसु गिर रहे थे। मधुसूदन ने उसे देखा, परन्तु कुछ समझ नहीं सका। चिट्ठी का अभिप्राय तो वह समझ गया था, परन्तु आँसुओं के अर्थ नहीं समझ पाया था। उसने बात को स्पष्ट करने के लिए पूछा, "तुमने इनको मेरे भागने के विषय में लिखा था?"

“मैंने नाम नहीं लिखा, न ही पूरा परिचय दिया था। साधारण रूप से बात लिखकर उनकी सम्मति माँगी थी। मेरा प्रश्न यह था कि अन्याय से बनाया हुआ वन्दी, जब अवसर मिले, भाग सकता है अथवा नहीं और एक सत्याग्रही उसे भागने में अथवा आश्रय देने में सहायता दे सकता है अथवा नहीं। उनका उत्तर यह है।”

“तुम इस सम्मति को ठीक समझती हो?”

“यह एक सत्याग्रह-आन्दोलन के नेता की सम्मति है और मैं उस आन्दोलन में एक साधारण सिपाही हूँ। इसके अतिरिक्त मेरी स्वतन्त्र सम्मति स्वार्थ से लिप्त हो सकती है।”

“तो तुम क्या चाहती हो?”

“मेरी समझ में कुछ नहीं आता। जो बात आपको उपयुक्त प्रतीत हो सो करें।”

मधुसूदन विचार-सागर में डूब गया। कितनी ही देर तक दोनों अपने-अपने मन के भावों में विलीन रहे। अन्त में मधुसूदन अपने स्थान से उठा और कमरे में इधर-उधर टहलने लगा। अकस्मात् वह खड़ा हो गया और बोला, “पूर्णमा-देवी, तुम कांग्रेस की अहिंसात्मक नीति में विश्वास रखती हो?”

“क्या आप विश्वास नहीं रखते? आप ही ने तो यह मार्ग मुझे दिखाया था।”

“मेरी बात छोड़ो। तुम बताओ कि अब क्या हिंसात्मक उपायों से विश्वास उठ गया है?”

“हाँ, भारतवर्ष के लिए ही नहीं, प्रत्युत् सारे संसार के लिए अहिंसा का मार्ग ही एक मार्ग है।”

मधुसूदन अन्तिम आशा से भी विहीन होकर हाथ जोड़कर नमस्ते कह बोला, “मैं इसका उत्तर कल दूंगा। मैं सोचने के लिए समय चाहता हूँ।”

“क्या सोचने के लिए समय चाहते हैं?”

“यही कि मेरे लिए उपयुक्त मार्ग क्या है, यही तो तुमने कहा है न?”

जब मधुसूदन पूर्णिमा के कमरे से बाहर आया तो उसका रंग पीला पड़ गया था। उसकी आँखों की ज्योति क्षीण हो चुकी थी। हाथ काँप रहे थे। वह बरामदे में आ कुर्सी की पीठ को पकड़ उसका आश्रय ले खड़ा हो गया और सेठ साहब की ओर देखकर बोला, “आज कुछ तय नहीं हो सका, कल तक निर्णय हो जायेगा।”

माँ ने मधुसूदन के मुख का रंग देख किसी अनिष्ट की सम्भावना की। वह तुरन्त उठकर भीतर चली गई। निरुत्तम मधुसूदन का हाथ पकड़कर बाहर ले गया। वहाँ उसने पूछा, “दादा, क्या हुआ? क्या तुम मुझे बता सकते हो?”

मधुसूदन ने उत्तर दिया, “आज नहीं, कल।”

माँ ने भीतर जाकर देखा कि पूर्णिमा बिह्वल हो रो रही थी। उसने लड़की की पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा, “बेटा पूर्णिमा, क्या हुआ ? तुम इतना पढ़-लिखकर कैसी नादान बन रही हो ! क्या मधुसूदन ने कोई अनुचित बात की है जिसको तुम भूल नहीं सकती ?”

पूर्णिमा खाट पर मुख ढाँपकर लेट गई।

नरोत्तम, माँ और सेठ साहब यह समस्या किसी के भी समझ में नहीं आई। बहुत सोच-विचार के पश्चात् यही निश्चय हुआ कि अगले दिन तक प्रतीक्षा की जाये।

मधुसूदन नित्य-प्रति के विपरीत आज जीत्र ही पिता के साथ शहर के मकान पर चला गया। मार्ग में पिता ने पूछा, “बेटा, क्या विवाह तय हो गया ?”

“पिताजी, नहीं। यह विवाह नहीं होगा।”

श्यामाचरण बहुत घबराया। पूछने लगा, “क्यों ?”

मधुसूदन ने आँखें सामने रखकर चलते हुए कहा, “पहले आप नहीं चाहते थे न ! अब वह नहीं चाहती।”

श्यामाचरण ने केवल यह कहा, “भगवान् की जैसी इच्छा।”

: २ :

दूसरे दिन पूर्णिमा कुछ मुस्त थी। बहुत दिन चढ़े तक खाट पर पड़ी रही। नरोत्तम ने उसे जाकर जगाया, “दीदी, दम बज रहे हैं। क्या स्नान इत्यादि नहीं होगा ?”

“नहीं, आज स्नान को जी नहीं चाहता।”

“उठो, दवाई खा लो न।”

“उनकी कुछ सूचना आई है या नहीं ?”

“किनकी ? मधुसूदन की ? नहीं, अभी नहीं। कब आने को कह गया था ?”

“आज।”

“तो आज तो अभी आरम्भ हुआ है। आ जायेगा। तुम तो अभी सोकर उठी नहीं, वह कहाँ उठा होगा ?”

पूर्णिमा उठ खड़ी हुई। शौचादि से निवृत्त हो कमरे की खिड़की में जा बैठी। इध आया तो पी लिया। खाना आया तो खा लिया। परन्तु दृष्टि खिड़की में बाहर सड़क पर लगी हुई थी। प्रतीक्षा करते-करते दो बज गये, तीन बजे। यह डाक का समय था। डाकिया कोठी में डाक लेकर आया। सेठ साहब की चिट्ठियाँ थीं, नरोत्तम की दो चिट्ठियाँ थीं और एक पूर्णिमा की थी। नरोत्तम ने डाक ले ली। चिट्ठियाँ छोटते समय ही उसने देख लिया था कि उसकी चिट्ठियों में एक मधुसूदन की भेजी हुई थी। पूर्णिमा की चिट्ठी भी उसी की लिखी थी। उसने पूर्णिमा की चिट्ठी भीतर भेज दी और अपने नाम वाली चिट्ठी पढ़ने लगा।

लिखा था :

प्रिय भैया नरोत्तम,

इस प्रकार की निकृष्ट मुचनता देने के लिए मुझे स्वयं उपस्थित होने में लज्जा प्रतीत होती है। साथ ही अब समय कम रह गया है। गाड़ी छूटने में एक घंटा है और पिताजी से अभी विदा लेनी है। मैंने कल कहा था कि आज उत्तर दूंगा। सो मेरा विचार वही है जो पूर्णिमा का है। एक सच्चे सत्याग्रही को मुझ जैसे भगोड़े से विवाह तो दूर रहा, उसे आश्रय देना भी उचित नहीं।

मैं क्या करूँगा, अभी नहीं बता सकता। मेरे मन में भारी संघर्ष चल रहा है। पुनः जेलखाने चला जाऊँ अथवा स्वतन्त्रता का जीवन व्यतीत करूँ। एक और महात्मा गांधी ओर पूर्णिमा का आदेश है, दूसरी ओर स्वतन्त्र रहने की प्रबल इच्छा। मैं क्या करूँगा, निश्चय नहीं कर पाया।

एक बात निश्चय है कि अपना काला मुख अब आप लोगों को नहीं दिखाऊँगा। आप लोगों की सहृदयता में जन्म-भर नहीं भूल सकता।

माताजी को मेरी विनीत वन्दना देना। कभी-कभी निकम्मे मधुसूदन को याद कर लिया करता।

---तुम्हारा 'दादा'

नरोत्तम चिट्ठी पढ़ पूर्णिमा के पास गया। उसको यह पढ़कर कि 'मेरा विचार वही है जो पूर्णिमा का है,' क्रोध आ रहा था। तो अब पूर्णिमा ने उसे ठुकरा दिया है। वह मन में मोच रहा था कि यह पगली लड़की अपने मन को न समझकर अन्धों की भाँति महात्मा गांधी के सिद्धान्तों का अनुसरण कर रही है। वह पूर्णिमा को डाँटने गया था, परन्तु उसे आरामकुर्सी पर आँखें मूँदें ढासना लगाये देख और उसकी आँखों में रक्तविहीन गालों पर अश्रुओं की बूँदें टपकते देख ठहर गया। उसका क्रोध दया में बदल गया। वह चुपचाप बाहर चला आया।

सेठ साहब ने जब मधुसूदन की चिट्ठी पढ़ी तो आगबबूला हो गये। बोले, "दुष्ट ! पाजी ! बिना मुचनता दिये और मिले भाग गया है !"

नरोत्तम ने कहा, "क्या जाने अभी न गया हो।"

सेठ साहब भड़क उठे, जैसे बुझते दीये को तेल मिल जाये। कुर्सी से उठकर बोले, "चलो, चलकर देखें।"

दोनों श्यामाचरण के निवास-स्थान पर पहुँचे। नरोत्तम का अनुमान ठीक था। दूसरों को चिट्ठी लिख छुट्टी ले ली थी, परन्तु पिता से छुट्टी पाना आसान न था। जब वे वहाँ पहुँचे तो मधुसूदन पिता के पास बैठा कुछ बतला रहा था। श्यामाचरण हाथ पर ठुट्टी रखे सुन रहा था।

सेठ साहब तथा नरोत्तम को आता देख मधुसूदन ने उठकर उनको सम्मान से बैठाया। कहने लगा, "मुझे बारह बजे की गाड़ी से चला जाना था, परन्तु

वन्दी जीवन

दरार में फँस गई। वस, फिर क्या था, दो मिनट में मैं दीवार पर पहुँच गया। इसके पश्चात् लकड़ी को दीवार में किले के भीतर की ओर फँसा दिया। रस्सी के साथ लम्बी रस्सी कमर से खोलकर बाँध दी और उसे किले के बाहर लटका दिया। अब सबसे कठिन काम आरम्भ हुआ। मुझे विश्वास था कि दोनों रस्सियाँ मिलकर ज़मीन तक पहुँच जायेंगी। सवा सौ फुट नीचे उतरने पर जब मैं रस्सी के अन्त तक पहुँच गया तब भी मेरे पाँव हवा में लटक रहे थे। रस्सी से मेरे हाथ छलनी हो चुके थे। उनमें से खून निकलने लगा था। मैंने अपने नीचे देखा तो घटाटोप अँधेरा था। कुछ अनुमान नहीं लगा सकता था कि ज़मीन कितनी दूर है। ऊपर लौट जाना असम्भव था। नीचे कूदकर बच जाना अनिश्चित था परन्तु जब केवल एक ही मार्ग खुला हो तो निर्णय करने में देरी नहीं लगती। मैंने भगवान् का नाम लेकर रस्सी छोड़ दी। इसके अतिरिक्त और चारा ही कुछ नहीं था। हाथ जवाब दे रहे थे। ईश्वर की कृपा से मैं सही-सलामत ज़मीन पर पहुँच गया। मुझे दस फुट से अधिक नहीं कूदना पड़ा था। जहाँ गिरा वहाँ काँटेदार झाड़ियाँ थीं। पाँव कई स्थान से फट गये। मैंने जेब से जूते निकाले और पहन लिए और वहाँ से एक ओर को चल दिया।

“लगभग चार घण्टे चलने के पश्चात् मैं एक बड़ी सड़क पर पहुँचा। तब तक दिन नहीं निकला था। मैं अत्यन्त थका हुआ था। हाथों में सख्त वेदना हो रही थी। मुस्ताने के लिए सड़क के किनारे लेट गया। लेटते ही नींद आ गई। जब सूर्य का प्रकाश माथे पर पड़ने लगा तो नींद खुली। मैं उठ खड़ा हुआ। मैंने यह निश्चय कर लिया था कि किसी से कुछ पूछूँगा नहीं, जिससे कोई सन्देह न करने लगे। मैंने यह भी निश्चय कर लिया था कि रेलगाड़ी पर सवार नहीं होऊँगा। अब निश्चय करना था कि वह सड़क किधर को जाती है। मुझे कलकत्ते जाना था और सड़क वहाँ से दक्षिण-उत्तर को जाती थी। मैं उत्तर की ओर चल पड़ा। कुछ दूर जाकर मील का पत्थर मिला और वहाँ से मार्ग पाने में कठिनाई नहीं रही। इलाहाबाद में नहीं ठहरा। सीधे कलकत्ते चल पड़ा। कलकत्ते में कांग्रेस के दफ्तर से आपका पता पूछा और वहाँ से यहाँ आ पहुँचा हूँ। अपने प्रयत्न में कृतकार्य हुआ हूँ, इससे मेरे आनन्द की सीमा नहीं रही।”

नरोत्तम ने पूछा, “परन्तु समाचार-पत्रों में तो यह छपा था कि तुम्हें जंगल में बांध ने खा डाला है।”

“खूब ! परन्तु मैं तो अभी तक सही-सलामत हूँ। मुझे तो समाचार-पत्र पढ़ने का अवसर ही नहीं था। खैर, यह भी अच्छा हुआ। अब मैं आसानी से नया जीवन आरम्भ कर सकूँगा।”

पूर्णिमा ने उत्सुकता से पूछा, “परन्तु आप भागे क्यों?”

नरोत्तम ने हँसते हुए कहा, “तुम्हारा सिर खाने के लिए। भला यह बताओ,

नरोत्तम ने कुछ नरम होकर कहा, “देखो दादा, पूर्णिमा मेरी बहिन है सही, परन्तु तुम-मेरे परम मित्र हो। मैं तुम्हें पूर्णिमा से विवाह के लिए कहने नहीं आया। मैं तो यह कह रहा हूँ कि तुम्हें अपने-आपको पुलिस के हवाले नहीं कर देना चाहिये। यह अन्याय है, पाप है। संसार-भर में कोई कानून नहीं जो तुम्हें कैद कर सके। केवल एक कानून है जो तुम्हें कैद कर सकता है। केवल एक कानून है और वह है शक्ति। शक्ति के आश्रय तुम बन्दी बनाये गये थे। यदि तुम्हारे पास भी शक्ति होती तो सरकार तुम्हें बन्दी न बना सकती।”

“और अब मेरे पास कहाँ का बल आ गया है जो सरकार का मुकाबला कर सकूँ?”

नरोत्तम ने अपनी बात की पुष्टि करते हुए कहा, “तुम्हारे पास बुद्धि है, शारीरिक बल है, और उनका उचित प्रयोग करने से ही तुम कैदखाने से छूट सके हो। तुमने सरकार को परास्त कर दिया है और जब तक अपनी बुद्धि का उचित प्रयोग करते रहोगे, तुम सरकार को परास्त करते रहोगे।”

“तुम मेरे जेल से भाग आने को बल-बुद्धि के कारण समझते हो। यथार्थ में यह छल-कपट और कुटिलता है।”

“नहीं, यह नीति है। कोई राजनीति का अवलम्बन किये बिना स्थिर नहीं रह सकता। अतएव किसी भी राज्य को परास्त करने के लिए नीति का अवलम्बन करना ही होगा। जिसको तुम छल कहते हो उसे नीतिशास्त्र में चतुराई कहते हैं।”

“नरोत्तम भैया, चतुराई जब स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयोग में लाई जावे तो उसे धोखा कहते हैं।”

“परन्तु जब स्वार्थ न्याययुक्त और धर्मानुकूल हो तो उसकी सिद्धि परमावश्यक है। यदि तुम अपने न्याययुक्त स्वतन्त्र रहने के अधिकार की रक्षा करने की इच्छा भी छोड़ देते हो तो तुम मनुष्यत्व से गिरकर भेड़-वकरी की भाँति पशु-पन स्वीकार करते हो।”

“ये युक्तियाँ पुराने संस्कारों का फल हैं। महात्मा गांधी की नीति इसके विपरीत है। उनका कहना है कि तुम अपने धर्म का पालन करो, तुम्हारे अधिकारों की रक्षा स्वयं हो जायेगी।”

“और तुम्हारा धर्म यह है कि जेलखाने में जा बैठो।”

“परन्तु जेलखाने में मैं अपनी इच्छा से तो गया नहीं।”

“अब तो अपनी इच्छा से जा रहे हो।”

“और यदि पकड़ा गया तो?”

“यदि पकड़े गये तो वैसे ही जेल चले जाना जैसे पहले चले गये थे। जो बात पहले हुई थी, फिर भी हो सकती है। हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि अब तुम साव-

धान हो, पहले नहीं थे।”

मधुसूदन निरुत्तर हो रहा था। उसने वही किया जो ऐसी परिस्थिति में पड़कर लोग करते हैं। वह झुंझला उठा और बोला, “भैया, तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आती। इसका कारण यह है कि जिस वातावरण में मैंने शिक्षा-दीक्षा पाई है वह उससे भिन्न है जिसमें तुम रहे हो। हिंसात्मक और अहिंसात्मक उपायों में से तुम एक को उचित समझते हो, मैं दूसरे को। हम दोनों का मार्ग पृथक्-पृथक् है।”

अब सेठ साहब से, जो इतनी देर से यह वाक्-युद्ध देख रहे थे, न रहा गया। वे कहने लगे, “मधुसूदन, यह क्या अनर्गल बात कर रहे हो? तुमने जेल से भागकर कौन-सी हिंसा की है? तुम्हारी बातें विचित्र हैं। सरकार के अन्याय से जेल से भाग आये तो हिंसा हो गई और दूसरी ओर पूर्णिमा ने एक अत्याचारी, देशद्रोही पुलिस इंस्पेक्टर की जान बचाने में अपनी जान जोखिम में डाल दी तो यह अहिंसा हो गई। क्या तुम लोग हिंसा-अहिंसा के अर्थ भी नहीं समझ सकते? एक देश-हितैषी की जान ले लेना अहिंसा है और एक दुष्ट आततायी के पंजे से छूट जाना हिंसा है। तुमने तो तर्कशास्त्र की भी मिट्टी पलीत कर दी है।”

मधुसूदन अब कुछ नहीं बोल सका। वह चुप रहा। सेठ साहब ने कुछ साँस लेकर कहना जारी रखा, “उठो, छोड़ो इन झगड़ों को। देखो, तुम्हारा अपने पिता के पास रहना ठीक नहीं। पिता को विदा कर दो और तुम मेरे साथ कलकत्ते चलने के लिए तैयार हो जाओ।”

मधुसूदन अब भी चुप था और सेठ साहब को नाराज नहीं करना चाहता था। यद्यपि वह अभी तक इस बात से सहमत नहीं हुआ था कि महात्मा गांधी की सम्मति ठीक नहीं, तो भी उसका मन नरोत्तम और सेठ साहब की युक्तियों से डाँवाडोल अवश्य हो गया था। उसने बहुत धीमी आवाज़ में कहा, “आप कब चलेंगे?”

“आज रात की गाड़ी से।”

“ठीक है, मैं चलूँगा।”

“ठीक है।” कहकर सेठ साहब और नरोत्तम उठ खड़े हुए। श्यामाचरण से एक-दो मिनट तक सांत्वना की बातें कर कोठी की ओर चल पड़े।

: ३ :

पूर्णिमा को फिर ज्वर आने लगा था। डॉक्टर ने तपेदिक के रोग का निदान किया था। इसके लिए राँची का जलवायु कलकत्ते और बनारस से अच्छा माना जाता है। अतएव पूर्णिमा अभी वहीं थी।

वह अपने-आपको सत्याग्रह की वीरांगना मानती थी अथवा मूर्ख, कहना कठिन है। उसे यह रोग निराशा से हुआ था अथवा किसी अन्य कारण से, इसमें भी मतभेद है। पूर्णिमा को यह ज्ञात था कि मधुसूदन ने अपने-आपको पुलिस के

हवाले नहीं किया। इससे वह यह समझती थी कि हिंसा-अहिंसा के विषय में वह उससे सहमत नहीं है। इसी कारण उसने पुनः राँची आने से मना कर दिया होगा। वह जानता है कि यहाँ आकर वह इस घर में नहीं आ सकता, क्योंकि पूर्णिमा उसे जेल जाने की सम्मति देगी। वह सत्याग्रही होने से उसके जेल से भाग आने को पसन्द न करती है और न करेगी। पूर्णिमा अधिक कुछ सोच ही नहीं पाती थी। यथार्थ में सिद्धान्त और प्रेम में संघर्ष चल रहा था। कभी एक पलड़ा भारी हो जाता था और कभी दूसरा। वह अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँच पाती थी।

नरोत्तम ने कई बार इस समस्या को उसके मन में स्पष्ट करने का यत्न किया, परन्तु उसे तो व्यक्तिगत स्वार्थ जाति के स्वार्थ से तुच्छ ही प्रतीत होता था। वह कह देती थी, “यह चर्चा व्यर्थ है। जो हो गया सो हो गया। बार-बार उस बात को दोहराने से दुःख होता है।”

इस बात का कोई उत्तर नहीं था। एक बार माँ ने यहाँ तक कह दिया, “एक पत्र उनको लिख दो न।”

“क्यों?”

“तुम बीमार हो, यह सूचना उनको जानी ही चाहिये।”

“माँ, क्या वह नहीं जानते कि मैं बीमार हूँ?”

“जानते तो हैं, परन्तु आने से इन्कार करते हैं।”

“क्यों?”

“यह तो तुम ही जान सकती हो। तुम लोगों ने जो झगड़ा किया है वह मेरी समझ में तो आता नहीं। मैं बहुत पढ़ी-लिखी भी नहीं, जो तुम्हें समझा सकती।”

इस पर पूर्णिमा चुप रह जाती थी। वह मन में कहती थी, ‘वह हठी हैं तो मैं भी अपने बाप की बेटी हूँ। मुझे ही क्या पड़ी है कि उनको पत्र लिखूँ?’

इधर एक दिन नरोत्तम मधुसूदन के पास पहुँचा। वह कलकत्ते में सेठ साहब के पास रहता था और सिनेमा कम्पनियों के लिए नाटक और संगीत-ध्वनि बनाया करता था। नरोत्तम ने उसे एकान्त में ले जाकर कहा, “दादा, दीदी बहुत बीमार है।”

मधुसूदन को सेठ साहब के नाम पर आने वाली चिट्ठियों से यह ज्ञात होता रहता था। उसने पूछा, “क्या रोग है अब?”

“डॉक्टर तो तपेदिक बताते हैं, परन्तु मेरी राय में यदि तुम वहाँ चले चलो तो निश्चय वह ठीक हो जाएगी।”

“नरोत्तम भैया, क्या उसे ज्ञात है कि मैं कलकत्ते में स्वतन्त्र घूम रहा हूँ?”

“हाँ, वह यह जानती है।”

“तो उसके बीमार होने का कारण मैं समझता हूँ और इसका इलाज मैं कर

दूंगा। आप लोगों ने मुझे जेल जाने से रोककर भारी भूल की है। वह यही समझती है कि मैं उसके मत को नहीं मानता और इस कारण मैंने उससे सम्बन्ध भी त्याग दिया है। यथार्थ में, मैं समझता हूँ कि जब उसे यह ज्ञात होगा कि मैंने खुशी-खुशी अपने-आपको सरकार के हवाले कर दिया है तो वह प्रसन्न होगी और उसको विश्वास हो जायेगा कि मेरा प्रेम उससे अभी भी वैसा ही है।”

नरोत्तम मधुसूदन की बात सुन चकित रह गया। उसने कई बार पूर्णिमा से यह जानने का यत्न किया था कि वह पुनः मधुसूदन को मिलना चाहती है या नहीं और इसका उत्तर वह कुछ नहीं देती थी। नरोत्तम इस चुप रहने का कारण समझता था कि वह मधुसूदन को वापस बुलाना चाहती है, परन्तु लज्जावश संकोच करती है। अब मधुसूदन से उक्त विवेचना सुन उसे सन्देह होने लगा था कि शायद ऐसा ही हो। वह चुप रहा और अपने विचार की परीक्षा करने का ढंग सोचने लगा।

दूसरी ओर मधुसूदन अब चुपके-चुपके जेल जाने की तैयारी करने लगा। वह एक दिन चुपचाप घर से निकलकर अपने-आपको पुलिस के हवाले कर देना चाहता था, परन्तु सुपरिंटेंडेंट बन्नाराम की सहृदयता का स्मरण कर उसकी इच्छा यह हुई कि वह अपने-आपको उसी के हवाले करे। वह सोचता था कि उसके भाग आने से जो बदनामी बन्नाराम की हुई है, वह उसी के हाथ से पकड़े जाने से कुछ सीमा तक मिट जायेगी।

अतएव मधुसूदन उसका पता लगाना चाहता था कि वह कहाँ है। उसी दिन जिस दिन नरोत्तम से यह बातचीत हुई थी, मधुसूदन चौरंगी में एक ट्राम गाड़ी में से उतरा तो भीड़ में, जो ट्राम में चढ़ रही थी, बन्नाराम दिखाई दिया। मधुसूदन पहले तो घबराया, परन्तु इसे अपने विचारों की पूर्ति के लिए सुअवसर जान पुनः ट्राम में सवार हो गया और बन्नाराम की बगल में जा बैठा। बन्नाराम उसे देख पहचान गया और ट्राम चलने से पूर्व ही उतर आया। मधुसूदन उसके साथ-साथ ही था। बन्नाराम ने उसे आँखों से संकेत कर अपने साथ आने को कहा। वे दोनों एक रेस्टोरेंट में घुस गये। एकान्त में एक कोने में बैठ चाय के लिए कह बन्नाराम ने बड़ी उत्सुकता से पूछा, “तुम यहाँ कहाँ?”

मधुसूदन ने कहा, “जब से मधुसूदन मारा गया, मैं कलकत्ते में रहता हूँ और मेरा नाम गोपाल है।”

बन्नाराम ने उससे हाथ मिलाते हुए कहा, “शाबाश जवान! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। सुनाओ, यहाँ क्या करते हो?”

मधुसूदन ने अपना काम बताकर कहा, “आपसे मिलने के लिए मैं सोच रहा था।”

“क्यों? क्या तुमको मुझसे डर नहीं लगता?”

“डर ? डर कैसा ?”

“मैं तुमको फिर जेल में डलवा सकता हूँ ।”

“मुझे जेल से डर नहीं लगता ।”

“यदि जेल से नहीं डरते तो भागे क्यों थे ?”

“यह एक लम्बा किस्सा है । आप कहाँ रहते हैं ? मैं आपसे वहीं मिलना चाहता था । तब आप मुझे पुनः जेल में डालकर अनुगृहीत करेंगे ।”

“अनुगृहीत ? तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं । खैर, अब मुझे बहुत कम अवकाश है । मैं आज ही सायंकाल कलकत्ते से चला जाना चाहता हूँ । मैं मुल्तानपुर (अवध) जेल का सुपरिटेण्डेंट हूँ । कभी आना हो तो आ जाना, परन्तु गोपाल नाम से । मधुसूदन तो मर गया है । उसका मर जाना ही अच्छा है ।”

: ४ :

नरोत्तम रांची पहुँचा तो पहले ही अवसर पर उसने पूर्णिमा के विचारों की टोह लेने का यत्न किया । पूर्णिमा दवाई खाकर आरामकुर्सी पर बैठी थी । नरोत्तम समीप बैठा कलकत्ते का समाचार सुना रहा था । पहले वह मधुसूदन के विषय में कुछ नहीं बताया करता था । इस बार उसने सैठ साहब तथा अन्य मित्रों का वृत्तान्त सुनाकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया :

“परन्तु दादा की अवस्था अति शोचनीय थी । वह प्रकट में तो प्रसन्न है परन्तु भीतर-ही-भीतर उसको घुन लगा प्रतीत होता है । मुख पर अब वह तेज नहीं जो पहले था । संगीत इत्यादि भी वन्द है । मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी भारी निर्णय को करने वाला है । मैंने उससे एकान्त में पूछा भी था और उसका उत्तर यही था कि दो-चार दिन में सुन लोगे । मैंने बहुत प्रयत्न किया कि वह अपने मन की बात बता दे । उसने मेरे विदा होने के समय मुझे कहा कि पूर्णिमा को मेरा नमस्कार कहना । यह नमस्कार जिस भाव से कहा था वह मुझे पसन्द नहीं था । परन्तु मेरे कुछ कहने से पूर्व ही वह वहाँ से चला गया । मैं गाड़ी में सवार हो चुका था और गाड़ी की सीटी बज चुकी थी ।”

पूर्णिमा ने बहुत प्रयत्न से अपने भावों को दबाते हुए कहा, “तो तुम उन्हें अपने साथ क्यों नहीं ले आये ?”

“तुम्हारे विचारों और इच्छा को न जानने से ऐसा साहस नहीं कर सका ।”

“तुम लोग क्या यह समझते हो कि मैं उनसे नाराज हूँ ?”

“तुम्हारे व्यवहार से तो यही प्रतीत होता था । और हाँ, वह कह रहा था कि जेल में मुझे कुछ भी कष्ट न था । आप लोग जेल से इतना घबराते क्यों हैं ?”

पूर्णिमा के मुख से अकस्मात् निकल गया, “उफ् ! गजब हो गया । मैंने उन्हें कभी नहीं कहा कि उन्हें जेल जाना चाहिये । मैं स्त्री थी । मैं समझती थी कि मेरे विचारों में वृद्धि होने पर भी वह मेरे हाथ को दृढ़ता से पकड़कर मुझे मार्ग पर ले

आवेंगे। मुझे क्या पता था.....”

वह एक गम्भीर विचार में पड़ गयी। फिर अकस्मात् कुर्सी से उठकर बोली, “भैया, एक काम करो। कलकत्ते तार दे दो कि सेठ साहब उनको साथ लेकर यहाँ एकदम चले आवें।”

“सेठ साहब? उनको अवकाश होगा?”

“हाँ, अवश्य आ जायेंगे। शीघ्रता करो। विलम्ब न करो।”

नरोत्तम यह जानकर कि मामला सुधर रहा है, बहुत प्रसन्न हुआ। वह उसी समय तारघर चला गया और वहाँ से सेठ साहब को तार दे दी।

सायंकाल तार का उत्तर कलकत्ते से आया। लिखा था, ‘गोपाल लापता है। उसकी खोज हो रही है। मैं आ रहा हूँ।’

पूर्णिमा के लिए यह वज्रघात सिद्ध हुआ। दूसरे दिन नित्य-प्रति के अनुसार जब नरोत्तम पूर्णिमा के कमरे में गया तो वह प्रातःकाल के समाचार-पत्र पर सिर टेके पड़ी थी। नरोत्तम ने पुकारा। वह नहीं बोली। नरोत्तम जब समीप गया तो उसने देखा कि समाचार-पत्र रक्त से लथपथ हो रहा है। उसने घबराकर पूर्णिमा का सिर ऊपर उठाया तो देखा कि उसकी आँखों की पुतलियाँ घूम चुकी थीं। नरोत्तम ने नाड़ी देखी। वह नहीं मिली।

घर में हलचल मच गई। नौकर डॉक्टर को बुलाने गया। माँ ने ठंडे पानी से मुख धोना आरम्भ कर दिया। नरोत्तम कभी बाहर, कभी भीतर बेचैनी से घूम रहा था। डॉक्टर के आने के पूर्व पूर्णिमा का शरीर ठंडा हो चुका था। अकस्मात् नरोत्तम के मन में एक विचार आया। वह भागकर गया और समाचार-पत्र पढ़ने लगा। समाचार-पत्र का जो पृष्ठ खुला था, उस पर लिखा था कि महात्मा गांधी रेग्युलेशन-बन्धियों को छुड़वाने में असफल रहे। नरोत्तम समझ गया कि इस समाचार ने उसकी रही-सही आशा भंग कर दी होगी और यही मृत्यु का तात्कालिक कारण हुआ है।

सेठ साहब जब पहुँचे तो पूर्णिमा की अर्थी तैयार की जा रही थी।

: ५ :

उक्त घटना के दो दिन पश्चात् की बात है। मधुसूदन प्रतापगढ़ स्टेशन पर सुल्तानपुर जाने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने समय बिताने के लिए दैनिक ‘लीडर’ खरीदा। उसे खोलते ही उसकी दृष्टि पूर्णिमा के देहान्त के समाचार पर पड़ी। यद्यपि वह जानता था कि उसकी अवस्था शोचनीय है तो भी वह समझता था कि उसके जेल चले जाने से अवस्था सुधर जायेगी।

मधुसूदन के लिए संसार सार-रहित प्रतीत होने लगा। वह प्लेटफार्म की एक बेंच पर बैठ गया और मन के वेग को रोकने लगा। उसे आत्मघात के अति-रिक्त और कोई दूसरा मार्ग ही प्रतीत नहीं होता था। वह समझ ही नहीं सका

था कि यह क्या हो गया है। अभी एक वर्ष की भी बात नहीं थी कि वह अति प्रसन्न था। अपनी अवस्था से संतुष्ट था। भविष्य उसके लिए अत्यन्त सुहावना चित्र उपस्थित करता था और एक अति सुन्दर, सुशील, सुशिक्षित कन्या उसके प्रेम में सर्वस्व देने को तैयार थी। सबकुछ सरल, सुगम तथा सुलभ प्रतीत होता था। परन्तु वह बनारस गया और पासा पलटा। वह कैदी हो गया और संसार में अति प्रिय वस्तु को खो बैठा।

सुल्तानपुर की गाड़ी आई। वह मशीन की भाँति बिना विचार किये अथवा इच्छा किये उठा और गाड़ी में जा बैठा। गाड़ी चल पड़ी।

उसे किञ्चित् भी होश नहीं था कि वह क्या कर रहा है और कहाँ जा रहा है। गाड़ी सुल्तानपुर स्टेशन पर पहुँची। वहाँ उतरकर स्टेशन में बाहर निकल आया और जेल की तरफ चल पड़ा।

बन्नाराम अपने बँगले में घास पर अपनी स्त्री कलावती के पास बेंत की कुर्सी पर बैठा था। कलावती का मुख फाटक की ओर था। वह मधुसूदन को आता देख पहचान गयी। बन्नाराम उसे कलकत्ते में मधुसूदन से भेंट का वृत्तान्त सुना रहा था। उसे पहचानते ही वह चौंककर उठ खड़ी हुई और उसके मुख से निकल गया, “वह आ गया है।”

बन्नाराम ने धूमकर फाटक की ओर देखा। वह भी उसे देख हैरान हुआ। उसने उसे मिलने के लिए कहा था अवश्य, परन्तु वह इस समय और इतनी जल्दी उसके आने की आशा नहीं करता था।

मधुसूदन समीप पहुँच हाथ जोड़ नमस्कार कर खड़ा हो गया। बन्नाराम ने एक कुर्सी और मँगवाई और उसे बैठाया। पञ्चात् प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा।

मधुसूदन आधे होश में था। वह मन में समझता था कि वह कुछ कहने और करने के लिए आया है, परन्तु जो कुछ उसके मन में था, वह पूर्णमा की मृत्यु का समाचार सुनकर उलट-पुलट हो गया था। अब उसके मन में इतनी गड़बड़ थी कि वह समझ ही नहीं सकता था कि कहाँ से आरम्भ करे। वह चुप था।

कलावती ने समझा कि उसके कारण वह चुप है। अतएव वह उठ खड़ी हुई और हटने ही वाली थी कि बन्नाराम ने कहा, “बैठी रहो। तुम इनके विषय में बहुत पूछती रहती थीं न। लो, अब पूछ लो।”

मधुसूदन को सम्बोधित कर बन्नाराम ने कहा, “मिस्टर गोपाल, यह मेरी धर्मपत्नी हैं। यह आपके विषय में बहुत दिलचस्पी लेती रही हैं। बताइये, आपका आना कैसे हुआ?”

मधुसूदन ने हाथ जोड़कर कलावती को प्रणाम किया और बहुत यत्न कर केवल इतना ही कह सका, “मैं जो कलकत्ते में कह रहा था।”

बन्नाराम ने कहा, “उस समय मैं जल्दी में था और आपकी बात समझ नहीं सका था। हाँ, तो अब बताइये कि आप क्या चाहते हैं?”

मधुसूदन ने कहा, “मैं अपने-आपको बन्दी करवाने आया हूँ। मैंने सोचा था, आपके प्रबन्ध में भागा था और आपसे ही पकड़ा जाऊँ तो ठीक रहेगा। मेरे भाग जाने से आपकी बदनामी हुई थी और मुझे पकड़ लेने से आपका नाम होगा।”

बन्नाराम यह बात सुन अवाक् रह गया। उससे कुछ उत्तर देते नहीं बना। उसने कभी ऐसी अनहोनी बात सुनी ही नहीं थी। भला कोई अपने-आप भी बन्दी बनने आता है? वह चकित हो मधुसूदन का मुख देखता रह गया।

कलावती इतनी हैरान नहीं थी। उसने पूछा, “फिर बन्दी होने के लिए आना था तो भागे ही क्यों थे?”

मधुसूदन के मस्तिष्क में एक आँधी चल रही थी। वह बातों का सिलसिला नहीं बाँध सकता था। उसने उत्तर दिया, “वह मर गई है।”

“कौन मर गई है?”

अब मधुसूदन की समझ में आया कि ये लोग तो उसकी वाबत कुछ नहीं जानते। वह भूल गया था कि उसने पूर्णिमा का किस्सा इन्हें नहीं बताया। बोला, “क्षमा करिये। आप नहीं जानतीं। वह मेरी भावी पत्नी थी। उसकी बीमारी का समाचार सुनकर मैं भागा था। अब वह मर गई है और मेरे लिए बन्दीगृह से बाहर कोई स्थान नहीं। वह स्थान संसार से दूर है और शायद मुझे सुख-शांति वहीं पर मिलेगी।”

बन्नाराम अब भी चुप था। कलावती ने फिर पूछा, “आपका अपराध क्या था जो पकड़े गये थे?”

“मेरा अपराध? मेरी समझ में तो कुछ नहीं था।”

“क्या आप क्रांतिकारी अथवा विद्रोही नहीं हैं?”

“नहीं। मैंने ऐसा कोई काम नहीं किया।”

“क्या आपने किसी राजनीतिक संस्था अथवा आतंकवादी से सम्पर्क नहीं रखा?”

“मैंने अपनी जानकारी में कोई ऐसी बात नहीं की।”

“आपने राजनीति पर शायद कभी व्याख्यान नहीं दिया होगा?”

“नहीं। मैंने कभी किसी भाँति का व्याख्यान नहीं दिया।”

“ओह! तो आपके कहने का अभिप्राय यह है कि आप निरपराध पकड़े गये थे?”

“मैंने जो कुछ किया वह यह था—सेठ कुंजविहारी इलाहाबाद के एक धनी आदमी हैं। उनको किसी ने एक पत्र भेजा कि पचास हजार रुपया क्रांतिकारी दल के लिए निश्चित स्थान पर पहुँचा दिया जाये। सेठ साहब मेरे हितचिंतक, पूज्य और बड़े हैं। उन्होंने मुझे यह सब बता दिया और साथ ही पुलिस में

रिपोर्ट कर दी। जिस स्थान पर रुपया माँगा था वह मेरे एक मित्र के मित्र का था। मुझे विश्वास हो गया कि शायद मेरे मित्र अथवा उसके मित्र का यह काम है। इस कारण मैं अपने मित्र को सचेत करने वनारस गया जहाँ रुपया माँगा था। जब मैं अपने मित्र के घर पहुँचा तो वहाँ केवल उसकी वहिन और माँ थी। मित्र नहीं था। मैंने वहाँ पहुँचने का सब वृत्तांत सुनाया। इस पर उन्होंने कहा कि यह चिट्ठी उसके मित्र के किसी जन्म ने भेजी प्रतीत होती है। वह निश्चय से जानती थी कि उनके मित्र ने कोई ऐसा पत्र नहीं लिखा। मुझसे यह सुन कि पुलिस उनके मित्र के मकान पर छापा डालना चाहती है, वह माँ और बेटी अपने मित्र को सचेत करने चली गईं। जब वे बहुत देर तक नहीं लौटीं, तो मैं वहाँ गया और पुलिस के फंदे में फँस गया।

“यथार्थ में वह पत्र उसके मित्र के किसी जन्म ने लिखा था। वह घर पर नहीं था। मैंने ज्योंही मकान में झाँककर देखा तो पकड़ा गया। जब पुलिस ने देखा कि मेरे विपरीत कोई अपराध सिद्ध नहीं हो सका तो मुझे रैग्युलेशन बन्दी बना लिया गया।”

“और वह माँ और बेटी?”

“वे दूर से ही पुलिस को देखकर वापस आ गई थीं।”

यह कथा सुनकर वनारस को क्रोध आ गया और बोला, “तुमने भारी मूर्खता की। तुम औरतों के पीछे क्यों गये थे?”

“वह मेरे मित्र की वहिन और मेरी भाबी पत्नी थी।”

कलावती ने फिर पूछा, “उम क्या बीमारी थी?”

“जब मैं बन्दी था तो एक दिन ‘पायोनियर’ में एक समाचार छपा था कि पूर्णिमा, यह उस लड़की का नाम था, एक पुलिस अफसर को गोली का निशाना बनने में बचाती-वचाती स्वयं घायल हो गई थी। उसकी अवस्था शोचनीय हो गई तो मेरे मन में भाग निकलने की सूझी और मैं अपने प्रयत्न में सफल हुआ। जब मैं उसके पास पहुँचा तो उसकी अवस्था सुधरने लगी। वह स्वस्थ हो गई। जब मेरा उससे विवाह लगभग निश्चित हो गया तो उसने कहा, मेरा जेल से भाग आना सत्याग्रह-सिद्धांत के विपरीत है। वह पिछले सत्याग्रह-आन्दोलन में बहुत अग्रसर होकर भाग ले रही थी। यथार्थ में वह गोली से घायल भी उस समय हुई थी जब पुलिस के लोग उस पर और उसके सत्याग्रही साथियों पर लाठियाँ बरसा रहे थे। किमी नवयुवक को पुलिस को लाठियाँ चलाते देख क्रोध आ गया और उसने एक पुलिस अफसर पर गोली चला दी। पूर्णिमा ने समय पर देखा लिया और उस पुलिस अफसर के आगे खड़ी हो गई। परिणाम यह हुआ कि वह घायल हो गई थी।

“इस विषय में उमने सत्याग्रही नेताओं से भी सम्मति ली थी। उनकी

सम्मति यह थी कि मुझे विवाह करना तो दूर रहा, मुझे सम्पर्क रखना भी उचित नहीं। मैंने यही समझा कि उसको प्रसन्न करने का सर्वोत्तम उपाय पुनः जेल में चला जाना है। परन्तु अब तो वह मर गई है और मुझे अपने चित्त की शांति के लिए भी जेल ही एक स्थान प्रतीत होता है।”

“ओह !” कलावती के मुख से दीर्घ श्वास निकला।

बन्नाराम ने कहा, “तो यह कहना चाहिए कि तुम्हारी मुसीबतों की जड़ यह लड़की ही थी। उसी के कारण तुम पकड़े गये। उसी के लिए तुमने अपने जीवन की बाजी लगाकर वह जीवट का काम किया ज। असम्भव ही था। तुम्हारे वहाँ से भाग आने का समाचार सुनकर सब चकित होते थे और अब उसी के आदेश से पुनः जेल जाने को तैयार हो।”

कलावती ने स्त्री-मुलभ सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा, “उस बेचारी का क्या दोष है? यह तो मिथ्या विचारों का परिणाम है। क्या जाने उसने क्यों प्रियतम वस्तु पाकर भी त्याग दी? प्रतीत होता है कि बीमारी ने उसके मस्तिष्क को भी खराब कर दिया था।”

मधुसूदन ने पूर्णिमा की सफाई देते हुए कहा, “वह मुझे बहुत प्रेम करती थी। एक समय था कि मैं सर्वथा निर्धन, निस्सहाय और बेरोजगार था। उस समय उसने मेरी स्त्री बनना स्वीकार कर लिया था। मैंने इन्कार किया था। कारण यह कि मैं गरीब था। परन्तु वह प्रतीक्षा करने को तैयार हो गई थी। उसकी धारणा थी कि मैं अपने निर्वाह के लिए जब भी चाहूँ पैदा कर सकता हूँ। जब मैंने उसका विचार इतना दृढ़ देखा तो मैंने अपने कारोबार का विचार सोचा। इसी बीच मैं पकड़ा गया और वह अनिश्चित काल तक मेरी प्रतीक्षा करने पर तुल गई।

“उसकी शोचनीय अवस्था का समाचार पढ़कर मैं जेल से भागा और मेरे मरने का समाचार पढ़ वह और भी बीमार हो गई। मेरे जीवित पहुँच जाने पर वह पूर्णतः स्वस्थ हो गई थी, परन्तु उसको महात्मा गांधी के अहिंसावाद पर अगाध विश्वास था। अहिंसावाद का प्रतिपादन करने वालों ने लिखा है कि एक भागे हुए कैदी को आश्रय देना एक सत्याग्रही के लिए उचित नहीं। बस, यही कारण था कि उसके मन की प्रबल इच्छा का मटियामेट उसके अपने हाथों से हुआ। मुझे उसने वापस जेल जाने को कहा। मैं चला आया और वह स्वयं बीमार हो गई। अब अन्त यह है कि वह तीन दिन हुए मर गई है। मरने तक उसके प्रबल सिद्धान्तों का संघर्ष उसके मन की इच्छाओं से होता रहा है और अन्त तक सिद्धान्त ही प्रबल रहे हैं।”

बन्नाराम ने सारी कथा सुनी और कठोर मुद्रा धारण कर कहा, “उस मूर्ख स्त्री ने अपना जीवन, सुख और शांति का नाश किया, तुम्हारे सुख और जीवन में विष घोल दिया और अब हमारे जीवन को भी खराब करना चाहती है। यह

सब इस कारण है कि कोई महात्मा अपने अधूरे ज्ञान के बल पर सांसारिक व्यक्तियों के साथ तजुर्बे कर रहा है। किसी का कुछ भी अधिकार नहीं कि वह दूसरों के जीवन के साथ खेल खेले। वह खेल, जो अभी केवल-मात्र खोज कही जा सकती है।

“भला यह बताओ कि जब तुम बिना अपराध पकड़े गये थे, तो वहाँ से निकल आना क्या उस हिंसा का विरोध नहीं, जो तुम पर की गई थी? फिर उस पर आपत्ति क्यों की गई? चाहे कुछ भी हो। तुम लोग जो मन में आवे करो, परन्तु तुम लोगों की मूर्खता से मैं अपने को बरबाद नहीं होने दूँगा।”

मधुसूदन ने कुछ अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, “आपकी बरबादी? यह कैसे? मैं तो यह समझता हूँ कि यदि आप मुझे पकड़ लेंगे तो अपने अफसरों में मान पायेंगे।”

बन्नाराम ने उत्तर दिया, “नहीं। तुम इन बातों को नहीं समझ सकते। पहले तो मेरे रिकार्ड में यह धब्बा लगा कि मेरे प्रबन्ध में एक कैदी भाग गया। अब तुम यदि जीवित पकड़े गये तो एक और धब्बा लगेगा। वह यह कि मैंने उस लाश को गलत पहचाना जो तुम्हारी बताई गई थी। उस लाश को पहचानने वालों में मैं मुख्य था। तो अब तुम्हारा अभिप्राय यह है कि मैं अपने-आप ही अपनी गलती की घोषणा कर दूँ। मुझसे यह नहीं होगा और यदि तुमने फिर मधुसूदन बनने का यत्न किया तो तुम मेरी दया और उदारता के लिए मुझे दण्ड दोगे।

“देखो, गोपाल, मुझे पहले दिन ही ज्ञात हो गया था कि तुम भागकर जीवित निकल गये हो। मुझे यह विदित था कि वह मृत शरीर एक अहीर युवक का था। मैंने उसके बाप को पचास हजार रुपया देकर वहाँ से भगा दिया था। यह इस कारण कि मैं तुम्हारे पुनः पकड़े जाने की सम्भावना को मिटा देना चाहता था। मैं और कलावती जब तुम जैसे सुशील, योग्य और गुणी युवक को अपनी युवा अवस्था की घड़ियाँ जेल में व्यर्थ खोते देखते थे तो भगवान् से प्रार्थना किया करते थे कि तुम्हें स्वतन्त्रता मिले और तुम अपना तथा संसार का भला कर सको।

“अब यदि तुम पकड़े गये तो मेरी सब योजना व्यर्थ जायेगी।”

कलावती ने इस समय तक चाय के लिए कहला भेजा था। चाय आ गई। मधुसूदन बन्नाराम की बातें सुन सन्न रह गया था। वह यह नहीं समझ सका था कि उसके आत्मसमर्पण से किसी को हानि भी हो सकती है। वह गम्भीर विचार में पड़ गया। सबसे विशेष बात उसके लिए कलावती की उससे सहानुभूति थी। वह इस नई परिस्थिति की उलझन में इतना व्यस्त था कि कलावती को कई बार कहना पड़ा, “चाय पी लीजिये। धैर्य धरिये।”

इसके पश्चात् जब मधुसूदन को सुधि आई, उसने खड़े होकर हाथ जोड़कर

कहा, “क्षमा करें। मुझे इस बात का पता नहीं था कि आपने मेरे लिए इतना कुछ किया है। इस बात को जानने के पश्चात् अब मेरा यह धर्म हो गया है कि बिना आपकी अनुमति प्राप्त किये कोई ऐसी बात न करूँ जिसमें मधुसूदन का उल्लेख उठ खड़ा हो। मैं अब गोपाल हूँ। आपकी इच्छा है कि मैं यही रहूँ। यथाशक्ति यही होगा।”

: ६ :

मधुसूदन का इन सब ठोकरों से दिमाग हिल गया था। वह आगे-पीछे की कुछ भी बात सोच अथवा समझ नहीं सकता था। वह वन्नाराम से विदा हो वापस पैदल चल पड़ा। ‘अब क्या हो?’ यह सोचता जाता था। इस सोच को वह अपने बनारस में पकड़े जाने से आरम्भ करता था और एक-एक घटना का दृश्य उसकी दृष्टि के सम्मुख खिंच जाता था। कलावती और वन्नाराम के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार ने उसके मन को कुछ शांति दी थी और इस स्थान तक सोचकर वह अपने मन से प्रश्न करता था, ‘अब क्या हो?’ इस प्रश्न के उठते ही उसका मस्तिष्क भिन्ना उठता था। उसकी विचारधारा यहाँ आकर रुक जाती थी। यदि वह आगे की सोचने लगता तो उसके मन में अंट-शंट विचार आते थे जिनमें न कोई क्रम होता था और न ध्येय।

लक्ष्यहीन वह चला जा रहा था। संज्ञाहीन, दिग्भ्रमित और निष्प्रयोजन चला जाना ही उसकी समझ में आता था। अब वह पथच्युत हो गया और खेतों में चलने लगा। वह अनुभव करता था कि कई गाँव मार्ग में आये हैं, परन्तु उसका मन उसे आगे चलने के लिए ही कहता था। किञ्चित्मात्र भी ठहरने पर उसके मन में अशान्ति उत्पन्न हो जाती थी। वह फिर चल पड़ता था।

चलते-चलते रात हो गई, फिर दिन हो गया, फिर रात हो गई। यह क्या? उसे थकावट ही नहीं हुई। मन में आया, ‘पेड़ के नीचे ठहर जाऊँ।’ फिर सोचने लगा, ‘लक्ष्य तो मिला नहीं, ठहरकर क्या करूँगा?’ फिर चलने लगा। उसे न भूख सताती थी, न प्यास। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि उसे किसी निश्चित स्थान पर पहुँचना है और वह निश्चित स्थान दूर परन्तु उसके सम्मुख है। वह नाक की सीध पर चलता चला जा रहा था। धीरे-धीरे उसका समय का ज्ञान भी लुप्त हो गया।

कई दिन पश्चात् लखनऊ में केसरबाग के चौराहे पर एक पागल, जिसकी दाढ़ी-मूँछ लम्बी-लम्बी हो गई थीं, कपड़े चिथड़े हो चुके थे, पाँवों में अस्थिरता, आँखों में व्याकुलता, मुख पर झुर्रियाँ और सिर पर विकराल बाल थे, खड़ा था। छोटे-छोटे बच्चे उसे कंकर-पत्थर मार रहे थे। कोई पीछे से आता था और उसकी लाठी घसीट लेता था। जब वह उस ओर देखता था तो दूसरी ओर से कोई फटी धोती की लांग निकाल जाता था।

श्री गुरुदत्त की प्रतिनिधि रचनाएं

हिन्दी साहित्य को श्री गुरुदत्त ने अपनी सशक्त लेखनी से 250 के लगभग अनुपम रचनाएं दी हैं। इन रचनाओं में से चुन कर कुछ विशिष्ट रचनाएं दस खण्डों में प्रकाशित की गई हैं। सभी विशुद्ध भारतीय विचारधारा को दृष्टिकोण में रखकर लिखे गए सामाजिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक, व पौराणिक उपन्यास हैं — उनका विवरण इस प्रकार है:-

1 - मेघवाहन , सागर तरंग , विक्रमादित्य साह्यांक (तीन ऐतिहासिक उपन्यास)	150 00
2 - सहस्रवाहू , गगन के पार , अन्नरिक्ष में (तीन वैज्ञानिक उपन्यास)	150 00
3 - कला, कामना, अनदेखे बन्धन (तीन सामाजिक उपन्यास)	150 00
4 - एक और अनेक, मानव (दो भावनाप्रधान सामाजिक उपन्यास)	180 00
5 - परित्राणाय साधूनाम् (सम्पूर्ण महाभारत कथा उपन्यास रूप में)	550 00
6 - स्वाधीनता के पथ पर , पथिक (राजनीतिक शृंखला के प्रथम दो उपन्यास)	200 00
7 - स्वराज्यदान , दासता के नए रूप (राजनीतिक शृंखला की दो कड़ियाँ)	240 00
8 - देश की हत्या , विश्वासघात (राजनीतिक शृंखला के अन्तिम उपन्यास)	220 00
9 - प्रभातवेला , कुमार सम्भव , उमड़ती घटाएं (तीन उपन्यास पौराणिक पृष्ठभूमि पर)	280 00
10- गंगा की धारा (मुगल काल पर उपन्यास)	280 00
इस बौट (10 खण्ड)का कुल मूल्य	2400 00

(Tele/Fax - 51545969, 23553624) E Mail - indiabooks@rediffmail.com

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी डी चैम्बर्स , 10/54 डी वी गुप्ता मार्ग



ल्ली-110005

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Received by.		
Date Ent. by		
Checked		

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

R 089.9143

वर्ग संख्या.....*Group - 5*

आगत संख्या. *168021*

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित
30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए।
अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

2 वी डी चैम्बर्स, 10/54 डी वी गुप्ता मार्ग



168021

ल्ली-110005

GURUKUL KANGRI LIBRARY		
	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Received by		
Data Ent. by		
Checked		



उपन्यासकार श्री गुरुदत्त

युवावस्था से ही राजनीतिज्ञों से सम्पर्क, क्रान्तिकारियों से समीप का सम्बन्ध तथा इतिहास का गहन अध्ययन--- इन सब की पृष्ठभूमि पर श्री गुरुदत्त ने कुछ उपन्यास लिखे हैं।

‘स्वाधीनता के पथ पर’, ‘पथिक’ तथा ‘स्वराज्यदान’ राजनीतिक उपन्यासों की श्रृंखला में प्रथम तीन कढ़ियां हैं जिन्होंने उपन्यास जगत् में धूम मचा दी थी। श्री गुरुदत्त चोटी के उपन्यासकार माने जाने लगे।

इन उपन्यासों की श्रृंखला में ही ‘विश्वासघात,’ ‘देश की हत्या’, ‘दासता के नये रूप’ तथा ‘सदा वत्सले मातृभूमे!’ लिखकर श्री गुरुदत्त ने १९२० से स्वाधीनता आन्दोलन का विवरण उपन्यासों के रूप में अत्यन्त ही रोचक शैली में लिपि-बद्ध कर दिया है।



हिन्दी साहित्य सदन

२ बी.डी. चैम्बर्स, १०/५४ डी बी गुप्ता रोड,

कलकत्ता-१, नवम्बर १९५५